भारतवर्ष का इतिहास

लेखक

डॉ॰ अवधबिहारी पाण्डेय एम॰ ए॰, डी॰ फिल॰

भूतपूर्व रीडर इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड सन्स

पोस्ट बाक्स न॰ १७

चौक, वाराणसी

प्रकाशक :
गोपीनाथ भार्गव एम० ए०,
नन्दकिशोर एण्ड सन्स,
चौक, वाराणसी

दशम संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, १९६८

मूल्य ५ ००

प्रमाद,
दीपक प्रेस,
१७।२७२ नदेसर, वाराणसी

भूमिका

यह पुस्तक हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है पाठ्यक्रम में जिन विषयो का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है उन पर दृष्टि रखते हुए भारतीय विकास केक्रम को यथासम्भव शृ खलाबद्ध रखने का प्रयत्न किया गया है । इसमें प्रान्तीय राजवंशो तथा दक्षिण के साम्राज्यो का विस्तृत वर्णन नहीं है, परन्तु यथास्थान उनके महत्त्व की ओर संक्षेप में संकेत कर दिया गया है । प्राचीन भारत के इतिहास में सभ्यता,कला तथा धर्म के विकास को उतना ही महत्त्व दिया गया है जितना राजनीतिक घटनाओ को । आशा है, इससे पाठको को प्राचीन भारत के विभिन्न युगो के जीवन का दिग्दर्शन हो जायगा ।

प्रत्येक अध्याय में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि उसमें आधुनिक अनुसंधानो का निष्कर्ष इस प्रकार आ जाय कि विद्यार्थियो को किसी प्रकार की दुरूहता का अनुभव न हो । साधारणत इसमें विवादग्रस्त विषयों में उस पक्ष का प्रतिपादन किया गया है जिसका समर्थन अधिकांश विद्वानो ने किया है । ऐसे सभी स्थलो में उन घटनाओ का उल्लेख अवश्य कर दिया गया है जिनके आधार पर कोई मत निश्चित किया गया है ताकि विद्यार्थियो को कोई ऐसी बात न बताई जाय जो गलत साबित हो चुकी है, क्योंकि बहुधा हाई स्कूल के विद्यार्थी जो गलत बातें पढ लेते हैं उनको वह एम० ए० तक भुलाने में सफल नहीं होते ।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में मुख्य घटनाओ को तिथिवार एकत्रित कर दिया गया है जिससे विद्यार्थियो का ध्यान उनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो जाय । साथ ही उन घटनाओ से सम्बंधित ज्ञातव्य बातो के ऊपर प्रश्न दे दिये गये हैं । इन दोनो की सहायता से विद्यार्थियो के लिए इतिहास का समुचित ज्ञान प्राप्त करना अधिक सुगम होगा ।

इस पुस्तक म जितने नक्शे दिये गये हैं उनमें ऐसे स्थान नहीं दिखाये गये हैं जिनका उल्लेख नहीं है और वे सभी स्थान दिखाने की चेष्टा की गई है जिनका जिक्र पुस्तक में है । साम्राज्यो की सीमाएँ अंकित करने म आधुनिक

अनुसन्धानों का पूरा ध्यान रखा गया है। कुछ नक्शों में तिथियों, चिह्नों अथवा अन्य ढंगों का उपयोग किया गया है जिनके कारण आशा है कि उनकी उपयोगिता बढ़ जायगी। प्रत्येक नक्शे में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है उनको संक्षेप में समझा दिया गया है।

इस पुस्तक में केवल उन चित्रों को स्थान दिया गया है जिनका कला अथवा संस्कृति के विकास से सम्बन्ध है। क्योंकि प्रायः व्यक्तियों के चित्र नीचे दर्जे की पुस्तकों में आ चुके हैं। वर्तमान युग की विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए भारतीय जीवन के विभिन्न अंगों में जिन व्यक्तियों ने ख्याति प्राप्त की है उनके चित्र दे दिये गये हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन, शासन विधान के इतिहास अथवा शिक्षा के विकास का विवरण १९४५ से अन्त तक दिया गया है। जो घटनाएँ बिलकुल हाल की हैं उनका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त दिया गया है और यथासम्भव विवादग्रस्त पहलुओं का जिक्र नहीं किया गया है।

पुस्तक के अन्त में दो परिशिष्ट जोड़ दिये गये हैं—एक में मुख्य राज घरानों की वंशावलियाँ हैं और दूसरे में आधुनिक काल के गवर्नर-जनरलों के समय की मुख्यतम घटनाओं का क्रमवार विवरण है। वंशावलियों में सभी शासकों का राज्यकाल अंकित कर दिया गया है और जहाँ एक ही वर्ष अथवा समय में एक से अधिक शासक हुए हैं वहाँ उनके क्रम का संकेत कर दिया गया है। इन वंशावलियों में उन राजाओं का भी उल्लेख है जिनका मूल पुस्तक में कोई विवरण नहीं है।

पाठकों की सुविधा की दृष्टि से विषय-सूची में प्रत्येक अध्याय की मुख्य बातों का संक्षिप्त विवरण दे दिया गया है। इसी उद्देश्य से दाहिनी ओर के पृष्ठों में ऊपर उस विषय का उल्लेख कर दिया गया है जिसका उसमें वर्णन है। जहाँ कोई नई बात आरम्भ होती है, वहाँ पैराग्राफ के आरम्भ में उसका वर्णन कर दिया गया है। भाषा को सरल, सुबोध और विषयानुकूल रोचक बनाने का उद्योग किया गया है।

प्रयाग विश्वविद्यालय
(जनवरी १९४६ ई०)

अवधविहारी पाण्डेय

— ❀ —

सप्तम (संशोधित एवं परिवर्धित) संस्करण

इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन और देश का पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होना प्राय एक ही समय हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन, संशोधन एवं नव निर्माण के काय किये हैं। माध्यमिक विद्यालयों की इतिहास की पाठ्य पुस्तक में इस प्रकार की आधुनिकतम घटनाओं का समावेश कराना अत्यन्त दुष्कर है। किन्तु हमारे वर्तमान पाठ्यक्रम में जिस नीति का पालन किया गया है उसको दृष्टिगत रखते हुए इन घटनाओं की उपेक्षा करना इतिहास के विद्यार्थियों के प्रति अन्याय होता। अतएव इस संस्करण में पुस्तक को आद्योपान्त संशोधित कर दिया गया है और विभाजन तथा नव-नामकरण-जनित परिवर्तनों को खपा दिया गया है। कुछेक स्थलों में घटनाओं के विश्लेषण का दृष्टिकोण बदल गया है और जो सामग्री पहले अनुपयुक्त अर्थात् अवाछनीय कही जाती थी वही अब राष्ट्रजीवन के आवश्यक अग के रूप में स्थान पा गयी है यथा क्रान्तिकारी आन्दोलन का विवरण। पिछले सात अध्यायों में बहुतेरी नयी बातें आ गयी हैं और आशा की जाती है कि उनके कारण भारतीय सघ के रचनात्मक कार्यों एव भारतीयों की बाह्य विश्व में प्रतिष्ठा एव लोकप्रियता का कुछ परिचय मिलेगा।

पुस्तक के आकार में विशेष वृद्धि किये बिना जितनी नयी सामग्री दी जा सकती थी उतनी ही देने का उद्योग किया गया है किन्तु उसके चयन म पिछले १२ वर्ष की समस्त कार्यावली का मथन किया गया है। पाठक देखेंगे कि पुस्तक में एकदम हाल की घटनाओं का भी समावेश कर दिया गया है।

राज्यों के पुन संघटन का नया मानचित्र भी दिया जा रहा है। आशा है, अपने वर्तमान कलेवर में प्रस्तुत पुस्तक पहले से अधिक उपयोगी एव आकर्षक सिद्ध होगी।

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
१० नवम्बर, १९५८ ई०

अवधविहारी पाण्डेय

— ❀ —

नवम् संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

इस संस्करण में यत्र-तत्र कतिपय छापे की भूलें ठीक कर दी गयी हैं। कुछ स्थानों में अन्य आवश्यक परिवर्तन भी कर दिये गये हैं और अगस्त १९६४ तक की घटनाओं का समावेश कर दिया गया है। राज्यों के पुनस्संघटन का नया मानचित्र भी दिया जा रहा है।

१५ अगस्त, १९६४

अवधविहारी पाण्डेय

— ❦ —

दशम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

इस संस्करण में यत्र-तत्र कतिपय छाप की अशुद्धियाँ दूर कर दी गई हैं कुछ अध्यायों में आवश्यक परिवर्तन भी कर दिये गये हैं। और अब तक के समस्त घटनाओं का समावेश कर दिया गया है। आशा है कि छात्रों को अब यह पुस्तक और अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

अवधविहारी पाण्डेय

— • —

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

अध्याय ८

अध्याय १

भारतभूमि और उसके निवासी

हमारा देश—भारतवप एक विशाल देश है, लेकिन इसकी सीमायें इतनी स्पष्ट है कि यह एशिया महाद्वीप के दूसरे भागा से बिलकुल भिन्न है। इसका फल यह हुआ है कि यहाँ के निवासिया का जीवन एक निराले ढग का रहा है और उनके रीति रिवाज तथा आचार-विचार दूसरा से भिन्न, किन्तु देश क सभी भागा में प्राय एक स रहे हैं। हमारे देश की आधी सीमा हिमालय और उसकी पवत-श्रेणियाँ बनाती हैं और आधी हिन्द महासागर तथा उसस मिले हुए छोटे सागर।

प्राकृतिक दृष्टि से हम अपने देश का निम्नांकित भागो में विभाजित कर सकते हैं—

(१) हिमालय पवत माला और उसकी तराई,

(२) सिन्ध और गगा का निचला समतल मदान,

(३) थार और सिन्ध का रेगिस्तान,

(४) विन्ध्य पवतमाला,

(५) दक्षिण का पठार, और

(६) समुद्रतट के सँकरे उपजाऊ मैदान।

हिमालय पवतमाला—हिमालय पहाड न केवल हमारे देश की प्राकृतिक शोभा बढाता है वरन् और कई दृष्टिया से बहुत उपयोगी भी है। हमारे यहाँ उत्तरी भारत में जितनी वर्षा होती है वह प्राय मौसमी हवाओ के कारण होती है। यह हवाएँ बगाल की खाडी से भाप के रूप में पानी लेकर उत्तर-पश्चिम की ओर चलती हैं। हिमालय इनको रोक लेता है और उनका सब पानी हमारे देश में गिरवा देता है। यही पानी सिन्ध-गगा के मैदान को हरा भरा बनता और असंख्य नदिया को प्रवाहित करता है। यही पहाड एक मजबूत दीवाल की तरह विदेशियो का यहाँ आने से रोकता है। इसी की चोटिया पर जमी हुई बर्फ गर्मी में गलकर गगा, सिन्ध, ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियो का सूखने से बचाती है।

हिमालय की तराई में अनुपम सुन्दरता के प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं। देश विदेश के यात्री उनको आँख भर देखने के लिए हजारों मील की यात्रा करते और अपार धन व्यय करते हैं। इन्हीं तराइयों में विशाल वृक्षों से भरे घने जंगल हैं। उनकी लकड़ी हमारे बहुत काम की है। इन्हीं जंगलों में छिपे जंगली जानवर साहसी आदमियों को आखेट का आनन्द लेने का अवसर देते हैं।

सिन्ध-गंगा का मैदान—हिमालय की तराई से सटा हुआ एक समतल चौरस मैदान है। इसमें बड़ी उपजाऊ मिट्टी भरी पड़ी है। इस मिट्टी को लाखों वर्षों से हिमालय से निकलने वाली नदियाँ ढोती रही हैं। उन्हीं के पानी से इस मैदान के खेतों की सिंचाई होती है। इसमें आबादी बहुत घनी है। प्राय सभी प्रकार के अन्न इसमें पैदा होते हैं। भारतवर्ष का यह भाग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी भाग में बड़े-बड़े साम्राज्य बने बिगड़े हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े महात्माओं ने नये नये धर्मों को जन्म दिया है। यहीं के लोगों की समृद्धि के कारण विदेशी भारतवर्ष को 'सोने की चिड़िया' कहा करते थे।

थार और सिन्ध का रेगिस्तान—गंगा सिन्ध के मैदान और विन्ध्य पर्वत माला के बीच में कुछ भाग ऐसा है जहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इसके कारण यह भाग रेगिस्तान हो गया है। इसमें सिन्ध और राजस्थान का बहुतेरा भाग आता है। राजस्थान के लोग प्राय बड़े परिश्रमी और साहसी होते हैं, क्योंकि उनको जीविका कमाने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

विन्ध्याचल पर्वतमाला—उत्तरी हिन्दुस्तान के मैदान और दक्षिण भारत के पठार का विभाजित करनेवाला विन्ध्याचल पर्वत है। यह पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूरब में बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ है। यह कहीं पर भी बहुत ऊँचा नहीं है, लेकिन इसका अधिकतर भाग घने जंगलों से ढका हुआ है। इसलिए उत्तर से दक्षिण जाने में यह काफी बाधक होता है। विन्ध्य के पहाड़ी प्रदेश में आज तक जंगली जातियाँ रहती हैं, जो सभ्यता में बहुत पिछड़ी हुई हैं।

दक्षिण का पठार—भारतवर्ष का प्राचीनतम भाग दक्षिण का पठार है। उत्तरी भारत बहुत पीछे समुद्र के गर्भ से निकल कर ऊपर आया है। दक्षिणी पठार का आकार तिपाड़े का-सा है। उसके तीनों ओर पहाड़ों की एक दीवाल-सी है—उत्तर में विन्ध्याचल और उसकी शाखाएँ, पश्चिम में पश्चिमी घाट तथा

पूरब में पूरबी घाट। पश्चिमी घाट तथा पूरबी घाट के कारण यहाँ पर वर्षा भी कुछ कम होती है। इस कारण भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है, जितनी कि उत्तरी भारत में। लेकिन 'रेगुर' नाम की कपास की काली मिट्टी यहाँ खूब मिलती है। इस पठार का ढाल पूरब की ओर है और सभी नदियाँ पश्चिमी घाट से निकल कर पूरबी घाट को लाँघती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी उनमें मुख्य हैं। इस पठार का उत्तरी-पश्चिमी भाग, जो महाराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है, किले बनाने के लिए बहुत ही अच्छा है। इस कारण यहाँ के निवासी स्वतंत्र रहे हैं। उनमें साहस तथा परिश्रम कूट-कूट कर भरा रहता है।

समुद्र-तट के मैदान—पूरबी घाट तथा पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच में दो सँकड़े उपजाऊ मैदान हैं। पश्चिम की ओर के मैदान के उत्तरी भाग को कोकण और दक्षिणी भाग को मालाबार कहते हैं। इन मैदानों में आबादी खूब घनी है। यहाँ मसाला, नारियल आदि की अच्छी पैदावार होती है। इस भाग में कई छोटे बड़े बन्दरगाह भी हैं जिनमें बम्बई सबसे मुख्य है। यहाँ के निवासी अच्छे मल्लाह भी होते हैं। सामान ढोनेवाले जहाजों का व्यवसाय यहाँ पर बहुत बढ़ाया जा सकता है। पूरबी समुद्र-तट के मैदान को उत्तर में कलिंग और दक्षिण में चोलमण्डल कहते हैं। इस ओर नदियों के डेल्टे बहुत उपजाऊ भाग हैं। लेकिन समुद्र-तट ऐसा सपाट है कि उसमें अच्छे बन्दरगाह बनाना कठिन है। इस ओर मद्रास का बन्दरगाह बहुत रुपया व्यय करके तैयार किया गया है।

भारत-भूमि की कुछ विशेषताएँ—हमारे देश का अधिकतर भाग सम शीतोष्ण कटिबन्ध में है। इस कारण यहाँ पर न तो बहुत गर्मी ही पड़ती है और न बहुत ठंडक। किन्तु इसके विभिन्न भागों के जलवायु में काफी अन्तर है। उत्तर का पहाड़ी प्रदेश इतना ठंडा है कि यहाँ पर लोग गले में अँगीठी बाँधे रहते हैं। जाड़े में खूब बर्फ गिरती है और गर्मी में भी धूप कभी असह्य नहीं मालूम होती। इसके विपरीत सिंध प्रान्त में जेकोबाबाद के आस-पास का भाग इतना गर्म हो जाता है कि गर्म देश का मुकाबिला करने लगता है। इसमें संसार का सबसे ऊँचा पहाड़ सबसे उपजाऊ मैदान और सबसे स्वच्छ जलवाली नदी गंगा विद्यमान है। इसमें एक ओर आसाम में संसार का सबसे अधिक वर्षा वाला प्रदेश है और दूसरी ओर सिंध राजस्थान का मरुस्थल। इसमें अपनी आवश्यकता से अधिक अन्न उत्पन्न हो सकता

है। शक्कर के लिए गन्ना और कपड़ा के लिए ऊन तथा सूत भी कम नहीं है और जूट की पैदावार में तो भारत सब देशों का मुखिया है। इसमें लोहा, कोयला आदि भी खूब मिलता है। नदियों के पानी से सिंचाई की नहरों और कारखाने चलाने के लिए बिजलीघरों के बनाने में भी सुविधा है। इस प्रकार यह देश संसार के सर्वोत्तम भागों में से एक है।

हमारे देश-वासी—दूसरे देशों की भाँति हमारे देश में भी सब लोग किसी एक ही नस्ल या जाति के नहीं हैं। विद्वानों ने मनुष्य जाति को रंग, नाक तथा सिर की बनावट के आधार पर कई भागों में विभाजित किया है। इनमें मुख्य जातियाँ, जिनका रक्त हमारे देश-वासियों की नसों में प्रवाहित हो रहा है, पाँच हैं। वे हैं—आग्नेय, हब्शी, द्रविड, आर्य और मंगोल। आग्नेय जाति के लोगों की संतान आजकल भी नीकोबार द्वीप में रहती है। यह नाटे कद भद्दे रूप और काले रंग के होते हैं। मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश में रहनेवाले कोल, संथाल और मुंड तथा आसाम के खासी जाति के लोग भी इन्हीं के वंशज मालूम होते हैं। इन लोगों की भाषा भी अलग है। इस जाति का कुछ रक्त द्रविड और आर्य जाति के लोगों में भी मिल गया है और इस प्रकार मिल जाने वाले लोग अधिक सभ्य हैं।

हब्शी जाति के लोग भारत के बाहर अफ्रीका में सबसे अधिक रहते हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि अण्डमान द्वीप के काले, नाटे भद्दे रूप और खूब घने बालवाले व्यक्ति इन्हीं की संतान हैं। भारत के और भागों में इनके वंशजों का अब कोई पता नहीं चलता।

द्रविड जाति के लोग गेहुएँ रंग, औसत कद, लम्बे सिर और सुन्दर आकृति के होते हैं। दक्षिण भारत में प्रायः द्रविड़ों का ही निवास है। उत्तर भारत की जनता में भी उनका रक्त काफी मिला हुआ है, क्योंकि एक समय ऐसा था जब कि सारे भारतवर्ष में उन्हीं का अधिकार था।

मंगोल जाति के लोग पीले रंग, चौड़े मुख चपटी नाक, कुछ नाटे कद और पतली आँखवाले होते हैं। इनके दाढ़ी मूँछ भी बहुत कम होता है। हमारे देश में यह जाति विशुद्ध रूप में बहुत कम मिलती है। आसाम और हिमालय की उत्तरी तराई में इस जाति के लोग कुछ अधिक संख्या में हैं, लेकिन नैपाल, बंगाल आसाम, गढ़वाल और कुमायूँ की साधारण जनता में भी इनका रक्त काफी मिला हुआ है।

भारतीय मानव-जातियाँ
मगोल
आर्य
द्रविड़
मगोल द्रविड़
आर्य द्रविड़
शक द्रविड़
तुर्क ईरानी
अरब सागर
बगाल की खाडी

आर्य जाति के लोग लम्बे कद, गोरे रंग, लम्बी उभरी हुई नाक, सुन्दर आकृति और लम्बे सिरवाले होते हैं। पंजाब, राजस्थान तथा कश्मीर में इस जाति के लोगों की संख्या अधिक है। उत्तरप्रदेश, बिहार मध्यप्रदेश, गुजरात, मध्य भारत आदि के निवासियों में भी इनका काफी अंश मौजूद है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) भारतवर्ष के प्राकृतिक भागों का संक्षिप्त वर्णन करो।
(२) हमारे देश में किन नस्लों के लोग पाये जाते हैं और कहाँ?

अध्याय २

आर्यों के पहले की सभ्यता

आज से लगभग ६००० वर्ष पहले की सभ्यता का इतिहास हमें बहुत कुछ मालूम है। लेकिन हमारे देश में उससे लाखों वर्ष पहले ही मनुष्य रहने लगे थे। अधिकतर विद्वानों की राय है कि हिन्दुस्तान के सबसे पहले निवासी भी कहीं बाहर ही से आये थे। भारतवर्ष में मनुष्य जाति का जन्म नहीं हुआ। जिन लोगों के बारे में हमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त है वह पाषाण-युग के निवासी कहे जाते हैं।

पाषाण युग—जिस समय मनुष्य निरा जंगली और असभ्य था उस समय वह पत्थर के हथियारों और औजारों का प्रयोग करता था। वह हथियार शिकार करने के काम में आते थे। जिस पत्थर का वह प्रयोग करते थे वह खुरदुरा और कमजोर था। चूँकि वह लोग पत्थर के हथियारों की सहायता से ही अपनी जीविका निर्वाह करते थे, इसलिए इनको पाषाण युग का निवासी कहते हैं। पाषाण-युग के निवासियों को दो भागों में बाँटा गया है—पूर्व पाषाण-युग और उत्तर पाषाण-युग।

पूर्व पाषाण-युग के निवासी नाटे कद, काले रंग, भद्दी आकृति और घने बालवाले लोग थे। इनका भोजन जंगली फल-मूल, शिकार किये हुए जानवरों का मांस और नदियों-तालाबों से पकड़ी गई मछलियाँ थीं। वे बहुधा लम्बी पत्तियाँ या पेड़ों की छाल या चमड़े के टुकड़े कमर के नीचे बाँध लेते थे और शेष शरीर नंगा रखते थे। अभी उन्होंने एक जगह परिवार बनाकर रहना नहीं सीख पाया था। पहाड़ों की गुफाएँ, विशाल पेड़ों की छाया तथा शाखाएँ ही उनके घर थे और इनको वे बराबर बदलते रहते थे। इन्हीं गुफाओं में उनके कुछ हथियार मिले हैं। हमारे देश में इस युग के लोगों के हथियार मद्रास, गुण्टूर, और कड़ापा जिलों में मिले हैं। इस कारण इस भाग को पूर्व पाषाण-युग के मनुष्य का निवासस्थान कहते हैं।

धीरे धीरे मानव-जाति ने सभ्यता की एक और मंजिल तय की। अब वे अधिक चिकने तथा मजबूत पत्थर के नोकीले और चमकीले हथियार बनाने लगे। इस काल को उत्तर पाषाण-युग कहते हैं। जिस पत्थर का प्रयोग इन लोगों ने किया है वह दक्षिणी भारत में बिलारी जिले में बहुत मिलता है। वहीं पर इनके हथियार बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं। लेकिन इस काल के हथियार भारत के दूसरे भागों में भी काफी संख्या में पाये गये हैं। उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले और गाजीपुर जिले में ऐसे बहुत से हथियार मिले हैं।

इस काल के लोग काफी सभ्य हो गये थे। बहुत-से हथियारों में दाँत बनाते थे। उनको घिसकर खूब चिकना और तेज करते थे और भिन्न भिन्न अवस्थाओं के अनुकूल तरह-तरह के अस्त्र तैयार रखते थे। वे कुटुम्ब बनाकर निश्चित स्थानों में रहने लगे थे। घरेलू कार्यों के लिए वे मिट्टी के बर्तन भी बनाते थे जिनको चाक की सहायता से तैयार करते थे। एक जगह रहने के कारण वे पशु पालना और खेती करना भी सीख गये थे। आग का प्रयोग वह अच्छी तरह जानते थे। अपने मुर्दों का वह पत्थर की कब्रों या बर्तनों में गाड़ते थे। वे मुर्दों के साथ कब्र में हथियार और अनाज भी रखते थे। इससे मालूम होता है कि वे समझते थे कि शरीर नष्ट होने पर भी जीवात्मा रहती है। मिर्जापुर तथा दूसरे स्थानों में इनके कुछ चित्र मिले हैं जिनमें इन्होंने आखेट में व्यस्त लोगों का चित्र खींचा है।

आर्य जाति के लोग लम्बे कद, गोरे रंग लम्बी उभड़ी हुई नाक, सुन्दर आकृति और लम्बे शिरवाले होते हैं। पंजाब, राजस्थान तथा काश्मीर में इस जाति के लोगों की संख्या अधिक है। उत्तरप्रदेश, बिहार मध्यप्रदेश, गुजरात, मध्य भारत आदि के निवासियों में भी इनका काफी अंश मौजूद है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) भारतवर्ष के प्राकृतिक भागों का संक्षिप्त वर्णन करो।
(२) हमारे देश में किन नस्लों के लोग पाये जाते हैं और कहाँ?

अध्याय २

आर्यों के पहले की सभ्यता

आज से लगभग ६००० वर्ष पहले की सभ्यता या इतिहास हमें बहुत कुछ मालूम है। लेकिन हमारे देश में उसके लाखों वर्ष पहले ही मनुष्य रहने लगे थे। अधिकतर विद्वानों की राय है कि हिन्दुस्तान के सबसे पहले निवासी भी कहीं बाहर ही से आये थे। भारतवर्ष में मनुष्य जाति का जन्म नहीं हुआ। जिन लोगों के बारे में हमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त है वह पाषाण-युग के निवासी कहे जाते हैं।

पाषाण युग—जिस समय मनुष्य निरा जंगली और असभ्य था उस समय वह पत्थर के हथियारों और औजारों का प्रयोग करता था। यह हथियार शिकार करने के काम में आते थे। जिस पत्थर का वह प्रयोग करते थे वह भुरभुरा और कमजोर था। चूंकि यह लोग पत्थर के हथियारों की सहायता से ही अपनी जीविका निर्वाह करते थे, इसलिए इनको पाषाण युग का निवासी कहते हैं। पाषाण-युग के निवासियों को दो भागों में बाँटा गया है—पूर्व पाषाण-युग और उत्तर पाषाण-युग।

पूर्व पाषाण-युग के निवासी नाटे कद, काले रंग, भद्दी आकृति और घने बालवाले लोग थे। इनका भोजन जंगली फल-मूल, शिकार किये हुए जानवरों का मास और नदियों-तालाबो से पकड़ी गई मछलियाँ थी। ये बहुधा लम्बी पत्तियाँ या पड़ो की छाल या चमड़े के टुकड़े कमर के नीचे बाँध लेते थे और शेष शरीर नंगा रखते थे। अभी उन्होंने एक जगह परिवार बनाकर रहना नही सीख पाया था। पहाड़ो की गुफाएँ, विशाल पेड़ो की छाया तथा शाखाएँ ही उनके घर थे और इनको वे बराबर बदलते रहते थे। इन्हीं गुफाओं में उनके कुछ हथियार मिले हैं। हमारे देश में इस युग के लोगो के हथियार मद्रास, गुण्टूर, और कड़ापा जिलों में मिले हैं। इस कारण इस भाग को पूर्व पाषाण-युग के मनुष्य का निवासस्थान कहते हैं।

धीरे धीरे मानव-जाति ने सभ्यता की एक और मंजिल तय की। अब ये अधिक चिकने तथा मजबूत पत्थर के नोकीले और चमकीले हथियार बनाने लगे। इस काल को उत्तर पाषाण-युग कहते हैं। जिस पत्थर का प्रयोग इन लोगो ने किया है वह दक्षिणी भारत में विलारी जिले में बहुत मिलता है। वहा पर इनके हथियार बहुत बडी संख्या में मिले हैं। लेकिन इस काल के हथियार भारत के दूसरे भागो में भी काफी संख्या में पाये गये हैं। उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले और गाजीपुर जिले में ऐसे बहुत से हथियार मिले हैं।

इस काल के लोग काफी सभ्य हो गये थे। बहुत-से हथियारो में दाँत बनाते थे। उनको घिसकर खूब चिकना और तेज करते थे और भिन्न भिन्न अवस्थाओं के अनुकूल तरह-तरह के अस्त्र तैयार रखते थे। वे कुटुम्ब बनाकर निश्चित स्थानो में रहने लगे थे। घरेलू कार्यों के लिए वे मिट्टी के बर्तन भी बनाते थे जिनको चाक की सहायता से तैयार करते थे। एक जगह रहने के कारण वे पशु पालना और खेती करना भी सीख गये थे। आग का प्रयोग वह अच्छी तरह जानते थे। अपने मुर्दों को वह पत्थर की कब्रों या बरतनो में गाड़ते थे। वे मुर्दों के साथ कब्र में हथियार और अनाज भी रखते थे। इससे मालूम होता है कि वे समझते थे कि शरीर नष्ट होने पर भी जीवात्मा रहती है। मिर्जापुर तथा दूसरे स्थानों में इनके कुछ चित्र मिले हैं जिनमें इन्होंने आखेट में व्यस्त लोगों का चित्र खींचा है।

धातु युग—उत्तर पाषाण-युग के निवासियों ने धीरे धीरे यह अनुभव किया कि पत्थर या हड्डी के हथियार काफी मजबूत नहीं होते। बोझ भी उनका बहुत होता था। इसलिए वे किसी ऐसे पदार्थ की खोज करने लगे जो इन असुविधाओं को दूर कर दे। इसी खोज का फल धातुओं का आगमन है। दक्षिणी भारत के लोगों ने पत्थर के बाद सीधे लोहे का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। लेकिन उत्तरी भारत में पाषाण और लौह-काल के बीच में एक ताम्र-काल भी हुआ। यहाँ के लोगों ने पहले ताँबे का प्रयोग किया और उसके पश्चात् लोहे का।

उत्तरी भारत में प्राय सभी स्थानों पर ताँबे के हथियार, बर्तन, औजार आदि मिले हैं। इससे मालूम होता है कि ताम्र-युगीन सभ्यता का प्रचार प्राय सारे उत्तरी भारत में था। इस युग के कुछ प्राचीन नगरों के खँडहर पंजाब, सिन्ध और बिलोचिस्तान में सिन्ध नदी की घाटी में मिले हैं। उन नगरों में पंजाब के मांटगोमरी जिले में हड़प्पा और सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में मोहेंजोदड़ो विशेष महत्त्व के हैं। इन नगरों के खंडहरों की जाँच से पता लगता है कि उस समय के लोगों ने पत्थर का प्रयोग बन्द नहीं किया था, वरन् इसके साथ-साथ वे धातुओं का प्रयोग भी करने लगे थे। धातुओं में यद्यपि कुछ गहने, मूर्तियाँ और बर्तन सोने, चाँदी, काँसे, टीन तथा पीतल के भी मिले हैं लेकिन ताँबे की बनी चीजें बहुत अधिक हैं। इस कारण इन नगरों को ताम्र-युग की सभ्यता का नमूना मानते हैं। सिन्ध नदी की घाटी में स्थित होने के कारण इसे सिन्धु नदी की सभ्यता भी कहते हैं।

नगर की इमारतें—मोहेंजोदड़ो के घर तालाब आदि बहुत टूटे-फूटे नहीं हैं। नगर में स्वच्छ चौड़ी सड़कें और उनसे मिलती हुई सीधी गलियाँ बनी हुई हैं। सड़कों के किनारे पानी बहने के लिए नालियाँ बनी हैं। घरों के अन्दर के गन्दे पानी के बहने के लिए बन्द नालियाँ हैं। वे इस चातुरी के साथ बनाई गई हैं कि उनको आवश्यकता पड़ने पर खोला भी जा सके और शेष समय वह ऊपर की वायु को बिना दूषित किये घरों की गंदगी को बाहर निकाल ले जायें। कूड़ा इकट्ठा करने का भी उचित प्रबन्ध था। घर छोटे-बड़े सभी प्रकार के थे। कुछ में तो केवल २ ३ कमरे हैं और कुछ इतने बड़े हैं कि महल मालूम होते हैं। उनमें से सबसे बड़ा ६७ फीट लम्बा और ८५ फीट चौड़ा है। उसके दरवाजे पर पहरेदार की कोठरी भी है। प्राय ये पकाई हुई ईंटों तथा चूने का गारे से बनाये गये हैं। मकानों में स्नानागारों, कुओं, दरवाजों और

खिड़कियों का विशेष प्रबन्ध है। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। इन मकानों से उनमें निवासियों की स्वच्छता, सादगी और सम्पन्नता स्पष्ट प्रकट होती है।

विशाल स्नानागार—इनसे कहीं अधिक महत्त्व की वस्तु एक विशाल स्नानागार है। यह ३९ फीट लम्बा, २३ फीट चौड़ा और ८ फीट गहरा है। इसकी दीवालें ऐसे पदार्थ से बनाई गई है जिसमें पानी भेद न सके। स्वच्छ पानी आने और गन्दा पानी निकालने का सराहनीय प्रबन्ध किया गया है। स्नानागार के आस पास बरामदे और छोटे-छोटे कमरे हैं जिनमें गर्म हवा या गर्म पानी से नहाने का प्रबन्ध था। इसका उपयोग नगर के सभी लोग कर सकते थे।

वेश-भूषा—यहाँ के निवासियों का पहिनावा भी पिछले युगों के लोगों से अधिक सभ्यतापूर्ण था। यह सूत तथा ऊन कातना और बुनना जानते थे। पुरुष बहुधा एक कपड़ा धोती की तरह पहिनते थे और एक कपड़ा चादर की तरह ओढ़ते थे। स्त्रियों का पहनावा कुछ भिन्न था। कपड़ों की अपेक्षा स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों को ही आभूषणों का बहुत शौक था। हार, कान की बालियाँ, हाथों की चूड़ियाँ, कंगन, अँगूठा, पैर के कड़े तथा कमर की करधनी आदि गहने मिले हैं। आभूषण सोने, चाँदी, काँसे, मूँगे तथा हाथी दाँत के होते थे। इन लोगों को बाल सवारने का भी बहुत शौक था। स्त्रियाँ कई प्रकार से बाल सजाती थीं, पुरुष दाढ़ी रखते थे और सिर के बालों में कंघा करते थे।

भोजन—इनका भोजन सादा मालूम होता है। इनको खेती करने का ज्ञान अवश्य था। गेहूँ और जौ अवश्य पैदा होता था। सम्भवतः कुछ और अन्न भी होते होंगे। माँस, दूध, दही, फल, मूल आदि भी भोज्य-पदार्थों में थे।

व्यवसाय—इस काल के निवासी प्रायः व्यापारी थे। वे स्थल तथा जल मार्गों से व्यापार करते थे। शायद वे अपने नाम के ठप्पे भी रखते थे। उनमें से कुछ लोग खेती भी करते रहे होंगे। कुछ लोग सोनार, बढ़ई, कुम्हार, धोबी, नाई आदि का भी काम करते थे। पकाये, पालिश किए हुए और रँगे मिट्टी के बरतन उस समय के कुम्हारों की चतुराई का परिचय देते हैं। इस उच्च कोटि के बरतन तत्कालीन जगत् में कहीं नहीं बनते थे। हड़प्पा में एक घड़ा मिला है जिस पर बहुत सुन्दर सोने का काम है। ताँबे के सुन्दर बरतन, हथियार और मूर्त्तियाँ भी बनती थीं। इन मूर्त्तियों में एक नग्न स्त्री नर्तकी की मूर्त्ति भी है। सम्भवतः वह जंगली जाति की थी। उनकी गाड़ी आजकल की-सी होती थी।

मनोरंजन के साधन—अवकाश तथा उत्सवों के समय वे खूब आनन्द मनाते थे। वे नाचना-गाना पसन्द करते थे। जुआ और शतरंज से मिलता हुआ खेल भी खेलते थे। सार्वजनिक स्थानों में इकट्ठा होकर भी वे अपना मन बहलाते थे। एक ऐसे प्रासाद के खंडहर मिले हैं जिसमें बहुत से खम्भे हैं और जिसका सहन बहुत बड़ा है। वह संभवतः पंचायत घर या मन्दिर था, यद्यपि उसमें कोई मूर्ति नहीं मिली है।

उनका धर्म—मोहंजोदड़ो में जो तमाम ठप्पे (सीलें) मिले हैं उनको देखने से इनके धार्मिक विचारों का कुछ पता चलता है। उनमें से कुछ लोग योगियों की भाँति तपस्या करना अच्छा समझते थे। एक ठप्पे पर शिव पशुपति का चित्र बना मालूम होता है। पीछे त्रिशूल है, आस-पास पशु हैं और वह स्वयं ध्यानावस्थित हैं। अधिकतर लोग पेड़, नदियों, पृथ्वी-माता, शिव तथा पार्वती की पूजा करते थे। साँप, चीता ऐसे कुछ घातक जानवरों की भी पूजा की जाती थी। अपने मुर्दों को वे जलाते थे। शायद उनके मन्दिर भी होते थे जहाँ लोग मिलकर पूजा करते थे।

काल—मोहेंजोदड़ो में जो खंडहर मिले हैं उनके सात स्तर हैं। इन सातों नगरों की पूरी खुदाई नहीं हो पाई है। फिर भी जो वस्तुएँ मिली हैं उनके आधार पर इस सभ्यता का लगभग ३२५० ई० पू० का बताया जाता है। लेकिन उत्तर पाषाण-युग से उन्नति करके इस कोटि की सभ्य अवस्था में पहुँचने में कई शताब्दियाँ लगी होंगी। इस कारण बहुत से विद्वानों की राय है कि सिंध घाटी की ताम्र-कालीन सभ्यता आज से लगभग ६००० वर्ष पुरानी होगी।

निवासी—इन नगरों के निवासी किस जाति के थे? विद्वानों में अभी इस विषय में बहुत मत भेद है। यह सभ्यता आर्यों के पहले की अवश्य है। आर्य लोग नगरों में रहना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने नगरों में रहनेवाले बहुत से 'राक्षसों' तथा 'दस्युओं' का नाश भी किया था। उनसे और द्रविड़ों से भारत भूमि के लिए बहुत युद्ध भी हुआ था। इसलिए संभव है कि सिंध घाटी के निवासी द्रविड़ ही हों। बिलोचिस्तान में एक ऐसी भाषा भाषी जाति मिली है जिसकी बोली द्रविड़-वर्गीय मालूम होती है। इससे भी यही संदेह होता है कि सिंध घाटी की सभ्यता द्रविड़ सभ्यता थी। फारस, मेसोपोटामिया आदि में भारतीय ढंग के मिलते हुए ठप्पे मिले हैं। लेकिन उनसे यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ के निवासियों ने सिन्ध की घाटी पर भी अधिकार कर लिया था। इन लोगों के

ठप्पों पर जो चिह्न बने हैं वह चित्रात्मक भाषा के अक्षर प्रतीत होते हैं। लेकिन वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी।

द्रविड़ जाति और उसकी सभ्यता—धातु-युग में हमारे देश में एक नई जाति का आगमन हुआ। यहाँ के आदिम निवासी उनका सामना न कर सके और उसके आधीन हो गये। इन नवागंतुकों और आदिम निवासियों में विवाह सम्बन्ध हो गये और वे एक-दूसरे से खूब हिल मिल गये। इन्हीं की सन्तान वे लोग हैं जिन्हें हम द्रविड़ नाम से पुकारते हैं।

द्रविड़ यहाँ आने के पूर्व कहाँ रहते थे ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने उत्तर, उत्तर पश्चिम, दक्षिण आदि से उनका आना बताया है। परन्तु बिलोचिस्तान में मिले हुए द्रविड़वंशीय भाषा-भाषी व्यक्तियों के होने के कारण बहुतेरे विद्वानों का अनुमान है कि वे सम्भवतः सुमेरिया से उत्तर-पश्चिम के मार्ग द्वारा इस देश में आये और पहले उत्तर भारत में बसे। कालान्तर में वह देश भर में फैल गये और सर्वत्र उनका स्वामित्व हो गया।

द्रविड़ों ने आर्यों के आने के पूर्व काफी उन्नति कर ली थी। वे ग्रामों तथा नगरों में सुन्दर साफ-सुथरे घर बना कर रहते थे। उनकी रक्षा के लिए वे किले और परकोटे बनाते थे। द्रविड़ सैनिक बड़े वीर और साहसी होते थे और उनके हथियार प्रायः ताँबे तथा कभी-कभी अन्य धातुओं के होते थे।

शांति के समय वे पशुपालन खेती, व्यापार तथा दस्तकारी में अपना समय लगाते थे। उन्हें सुन्दर बर्तन बनाना, चाँदी सोने के आभूषण तैयार करना तथा कपड़ा बुनना अच्छी तरह आता था। वह कई प्रकार के सुस्वादु भोजन पकाते और खाते थे। व्यापार के लिए वे नदियाँ तथा समुद्रों को लाँघ कर दूर-दूर तक जाते थे। मिस्र तथा मेसोपोटामिया से उनका काफी व्यापार होता था। इन सबसे विदित होता है कि वह काफी सभ्य, साहसी, सुरुचिपूर्ण तथा सुखी थे।

उन्होंने भाषा का भी आविष्कार कर लिया था। उन्हीं की भाषा आदिम निवासियों ने भी स्वीकार कर ली। यह भाषा इतनी दृढ़ हो गई थी कि आर्यों को अपनी भाषा में इससे कई बातें शामिल करनी पड़ी।

द्रविड़-शासन प्रायः राजतन्त्रात्मक था। देश भर में अनेक द्रविड़ राजे थे। वे बहुधा आपस में लड़ते भी थे और इस प्रकार उनकी सेनाओं को शिक्षा मिलती रहती थी। आर्यों के आने पर इन शासकों ने घोर विरोध किया और उनके दाँत खट्टे कर दिये।

द्रविड धर्म बहुत उन्नत नहीं था, परन्तु आर्यों के धर्म की अपेक्षा वह नीची कोटि का भी नहीं था। वे जीवात्मा की अमरता में विश्वास करते और शवों को गाडने के समय उसके साथ हथियार तथा भोजन-सामग्री रख देते थे। वे योग की क्रियाओं से परिचित थे और शिव, पृथ्वी तथा नागों की पूजा करते थे। इस भांति भाषा, धर्म, शासन तथा सामाजिक स्थिति में वे किसी प्रकार आर्यों से घट कर नहीं थे। यही कारण है कि हारने पर भी उन्होंने भारतीय आर्य सभ्यता के निर्माण में बहुत प्रभाव डाला।

मुख्य तिथियाँ

प्राक्कालीन भारत की सभ्यता का आरम्भ	४००० ई० पू०
मोहेंजोदड़ो की सभ्यता का समय	३२५० ई० पू०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) पाषाण-युग के निवासियों का वर्णन करो।

(२) सिन्ध घाटी की सभ्यता के जानने के क्या साधन हैं?

(३) मोहेंजोदड़ो के निवासियों के सभ्य तथा धनी होने के क्या प्रमाण हैं?

(४) सिंध घाटी की सभ्यता के कौन से अंश अब तक हमारे समाज में विद्यमान हैं?

(५) द्रविड जाति और उसकी सभ्यता का संक्षेप में वर्णन करो।

अध्याय ३

वैदिक आर्यों की सभ्यता

आर्यों के आने के पहल भारत की दशा—ताम्र-युग के बाद यहाँ पर लाह का भी प्रचार हो गया। मोहजोदडो के निवासी चाहे जो रहे हो लेकिन धीरे-धीरे सारे उत्तरी तथा दक्षिणी भारत पर द्रविडो का अधिकार जम गया। धीरे धीरे उन्होने यहाँ के निवासियो से सभी अच्छे स्थान छीन लिये, उनको वश में कर लिया और उनको अपने रग म रँग लिया। यहाँ के बहुत स मु ड, संथाल आदि द्रविडो के साथ घुल मिल गये। जिस समय द्रविड इस प्रकार भारत में अपना सिक्का जमाये हुए थे, उसी समय आय जाति ने भारत पर आक्रमण किया।

आर्यों का आगमन—यह उत्तर-पश्चिम के दर्रों से भारतवष में घुसे। यह कहाँ स चलकर आये थे, कहना कठिन है। लेकिन यहाँ आने के ठीक पहले वह फारस तथा अफगानिस्तान में ठहर चुके थे। यह लाग बड़े गोरे, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा वीर लडाके थे। सिंध नदी के पास पहुँचने पर उन्हें यह देश बडा सुहावना लगा और वे जी-जान तोडकर इसमें घुसने का प्रयत्न करने लगे। द्रविडो ने उनका जम कर विराध किया, इनको पग-पग पर रोका और इनको सहसा घुसने न दिया। लेकिन आर्यों का सैनिक सगठन और शारीरिक बल अन्त में द्रविडो स अधिक उच्च कोटि का निकला। द्रविडो के पैर उखडने लगे। उनकी कुछ भूमि पर विदेशी आर्यों का अधिकार हो गया। आर्यों ने जीती हुई भूमि से बढ कर कुछ और जीतना चाहा। उधर द्रविडो ने उन्हें सिंध पार खदेडना चाहा। लेकिन सैकडो वर्षों के लगातार युद्ध के पश्चात् आर्यों ने द्रविडो को पजाब स निकाल बाहर किया। इसी बड़े धावे में उन्होंने गगा-जमुना की घाटी तथा प्राय सारे उत्तरी भारत पर अपना अधिकार कर लिया। कुछ द्रविड दक्षिण भाग आये थे और वहाँ उन्होंने अपने शक्तिशाली राज्य बना कर आर्यों का दक्षिण की ओर बढना राक दिया। कुछ उत्तरी भारत में ही रह गये और उन्होंने आर्यों से मल कर लिया। आरम्भ में ऐसे द्रविडो के साथ दासो का-सा व्यवहार किया गया, लेकिन बाद में आय राजनीतिज्ञो ने इस नीति को बदल दिया। उन्होने द्रविडो के साथ बराबरी का

वैदिक कालीन भारत
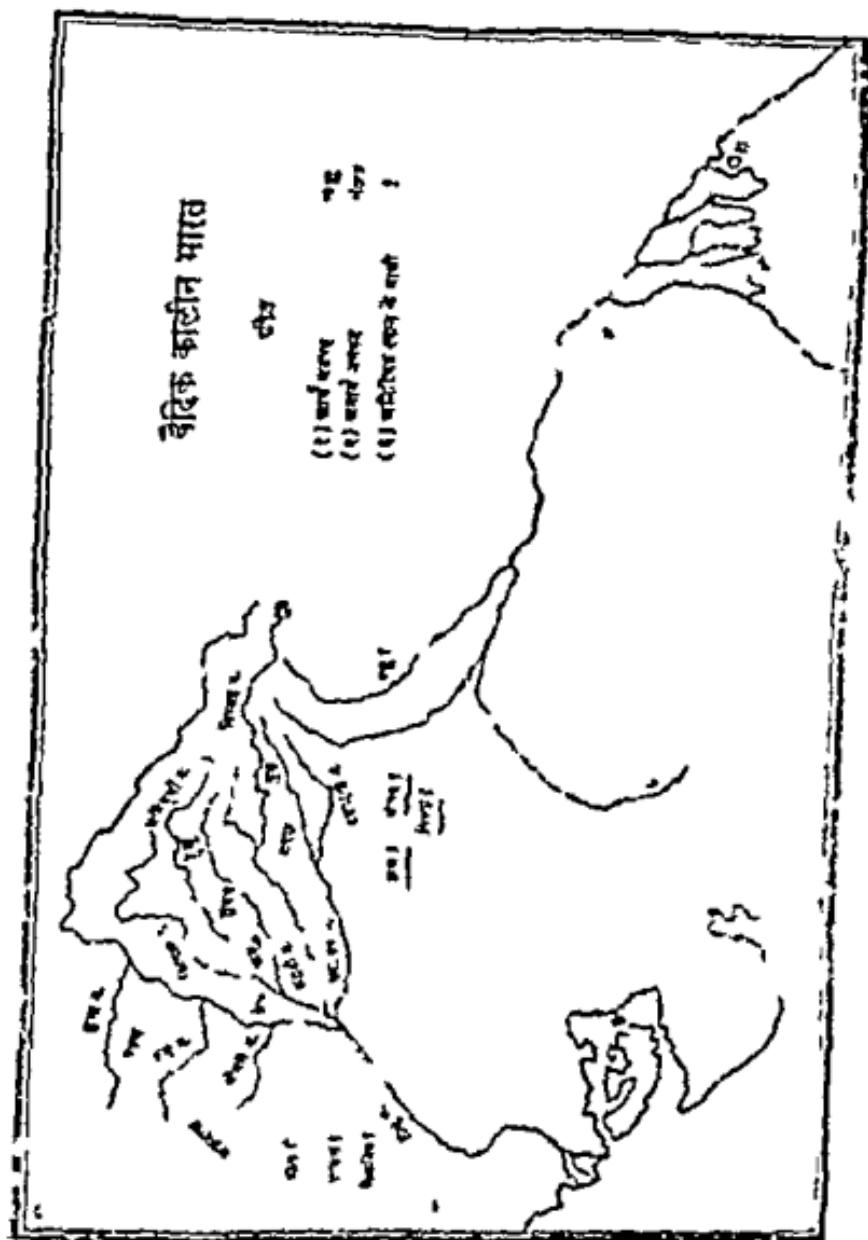
व्यवहार करना आरम्भ किया। द्रविड सभ्यता ने आर्य सभ्यता पर विजय पाई। धीरे धीरे भारत में यह दोनो जातियाँ उसी प्रकार मिल गईं जिस प्रकार पहले द्रविड और पुराने निवासी घुल मिल गये थे।

वेद—भारतवर्ष में आने के पश्चात् आर्यों ने वेदों की रचना की। इन वेदों से ही हमें आर्यों के दैनिक जीवन, उनके धर्म आचार विचार आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। वेद चार हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इनमें से ऋग्वेद सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू वेदों को ईश्वर का वाक्य मानते है। उनका विश्वास है कि वे ब्रह्मा के चारो मुख से प्रकट हुए हैं। प्राचीन ऋषियो ने वेदों के मन्त्रों को देखा था, उन्होंने इन मंत्रों की रचना नहीं की। इस कारण उन्हे इन मन्त्रों के द्रष्टा' कहते हैं। यह वेद मन्त्र ब्रह्मा के मुख से निकले और ऋषियो ने इनको ज्ञान-कर्णों से सुना इसलिए वेदो को 'श्रुति भी कहते हैं। प्रत्येक वेद में मन्त्रों का एक संग्रह है। इस मन्त्र भाग को 'संहिता' कहते हैं। संहिता का अर्थ समझाने तथा यज्ञ करने की विधियाँ बताने के लिए कुछ गद्य में रचनाएं की गईं। वेदों के इस भाग का नाम 'ब्राह्मण' है। इन 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का कुछ भाग ऐसा है जो एकान्त में मनन करने योग्य है। इस भाँति के जितने अंश हैं उनको 'आरण्यक (एकान्त वन में मनन करने योग्य भाग) कहते हैं। आरण्यक भगवान् के स्वरूप, सृष्टि, आत्मा आदि के विषय की चर्चा करते हैं। इन आरण्यकों में जो भाग ईश्वरज्ञान से स्पष्ट सम्बन्ध रखता है उसे 'उपनिषद्' कहते हैं। इस प्रकार वेदों के चार अंश हुए—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्।

संहिता—ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि इन चारों में संहिता भाग सबसे प्राचीन और अधिक महत्त्व का है। संहिता में जो मन्त्र हैं भिन्न भिन्न देवताओं की स्तुतियाँ हैं। उनमें उन देवताओं का वर्णन है जिनसे आर्य संकट में सहायता और शांति के समय सुख पाने की आकांक्षा रखते थे। देवताओं की प्रशंसा करने के सिलसिले में वे ऐसी बातें कह जाते हैं जिनसे उस समय की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक स्थिति प्रकट होती है। किस काल में आर्य कहाँ तक गये थे यह भी संहिता भाग के पढ़ने से मालूम हो जाता है। ऋग्वेद के संहितावाले ही मन्त्र कुछ घटा-बढ़ा कर लेकिन किसी दूसरी तरतीब से, अन्य संहिताओं में रखे गये हैं।

वेदों के निर्माण का समय—इन चारों वेदों के भिन्न भिन्न भाग काफी अंतर से बने मालूम होते हैं। विद्वानों की राय है कि वेदों का प्राचीनतम भाग

लगभग २१०० ई० पू० का बना है और शेष भाग ८०० ई० पू० तक प्रबन्ध बन गया था। वेदों का अंतिम संकलन और वर्गीकरण महर्षि वेदव्यास ने किया। उसी रूप में वेद अब तक चले आते हैं।

वैदिक आर्यों का जीवन (१) निवास-स्थान—जब आर्य पहले-पहल यहाँ आकर बसे तब उनका जीवन बहुत ही सादा था। उनके मुख्य व्यवसाय पशु-पालन और कृषि थे। इसलिए उनको ऐसा ही स्थान रुचता था जहाँ खेती के लिए उपजाऊ भूमि, पशुओं के लिए घास के मैदान और पीने तथा नहाने के लिए स्वच्छ जल मिल सके। नदियों के किनारे यह सभी आवश्यकताएं भली भाँति पूरी हो जाती थीं। इसी कारण वे नदियों के किनारे छोटे-छोटे गाँव बनाकर रहते थे। वे नगरों में रहना हेय समझते थे। द्रविड़ों को वे 'नगर में रहनेवाले राक्षस' कहते थे और अपने एक प्रधान देवता की प्रशंसा में उसका नाम उन्होंने 'पुरन्दर' अर्थात् 'पुर' या 'नगर' का नष्ट करने वाला रख दिया था। इन सब बातों से पता चलता है कि वे स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल तथा प्राकृतिक छटा के मध्य में ही विशेष प्रसन्न रहते थे। उनके घर प्राय: फूस और मिट्टी के होते थे। गाँवों के बनाने के नियम थे। गलियाँ और सड़कें एक निश्चित दिशा में ही बनाई जाती थीं। प्रत्येक गाँव में एक ऐसा स्थान रहता था जहाँ गाँववाले इकट्ठा होकर सबके लाभ की बातों पर विचार करते थे।

(२) साधारण आर्य परिवार—प्रत्येक गाँव में कई घर होते थे। प्रत्येक घर का मालिक पिता होता था। उसकी आज्ञा के अनुसार सब लोग घर का कार्य करते थे। परिवार में माता का स्थान भी काफी सम्मानपूर्ण था। जिस प्रकार पिता गृह-स्वामी कहलाता था उसी प्रकार माता गृह-स्वामिनी कहलाती थी। माता पिता की सम्मति से ही घर के सब काम होते थे। परिवार के रीति रिवाजों की रक्षा वे ही करते थे। स्त्रियाँ विदुषी होती थीं। अपाला और घोषा तो मंत्र-मंत्रों की 'द्रष्टा' मानी जाती हैं। विवाह स्त्री पुरुष की इच्छा से होते थे। स्त्रियों में पर्दा प्रथा नहीं थी। वे प्राय: सभा आदि में आ जा सकती थीं और पति के प्रत्येक कार्य में यथासंभव सहयोग करती थीं। बाल-विवाह अथवा अनमेल विवाह न होते थे। सती होने की प्रथा नहीं थी। संभवत: विधवा-विवाह भी प्रचलित था।

(३) आर्यों का भोजन—आर्यों का भोजन सादा लेकिन बलप्रद था। वे गेहूँ जौ की रोटी, दाल, फल, मूल, दूध, घी, दही आदि साधारण आहार में लेते

थे। कभी-कभी वे मांस भी खाते थे। शरीर स्वस्थ रखने के लिए जो उपयोगी पदार्थ उन्हें मालूम थे, उन सभी का प्रयोग वे करते थे। आर्यों ने अपने वेदों में 'सोम' की महिमा का बहुत वर्णन किया है। अपने देवताओं के दीर्घ-जीवी होने का एक कारण वे इसी को समझते थे। उन्होंने ऋग्वेद के १० मण्डलों में पूरा नवाँ मण्डल सोम की ही प्रशंसा में रच डाला था। 'सोमलता' के डंठल को कूटने से जो रस निकलता था उसे वे बहुत प्रेम से पीते थे। यह कहना कठिन है कि 'सोमरस' मादक था या नहीं। सोम के अतिरिक्त वे 'सुरा' का भी प्रयोग करते थे। इसे कच्चे जौ से तैयार करते थे। यह मादक होती थी। उत्सवों के समय इसका विशेष उपयोग किया जाता था।

(४) वेश भूषा—आर्य ऊन के वस्त्र पहिनते थे। उनकी पोशाक में बहुधा तीन वस्त्र होते थे। कमर के नीचे लपेटनेवाले कपड़े को 'नीवि' कहते थे। इसके अतिरिक्त एक और कपड़ा ऊपरी भाग पर पहिनते थे। इसके ऊपर से एक ढीला कोट या अँगरखा पहिनते थे जिसमें किनारे किनारे सोने की कारचोबी रहती थी। वस्त्रों के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे। कानों में मोटी वालियाँ, गले में हार, बाजूबन्द, कड़े तथा अनन्त पहिनते थे। आभूषण सोने के होते थे। कुछ धनी व्यक्ति मणियों का भी प्रयोग करते थे। आर्य अपने शरीर को खूब स्वच्छ रखते थे। पुरुष बालों में तेल डालते और कंघी करते थे। कभी-कभी सिक्खों की तरह बालों का जूड़ा भी बाँधते थे। दाढ़ी भी अधिकतर लोग रखते थे। लेकिन उनको छुरे का प्रयोग मालूम था और वे बाल भी बनाते थे। स्त्रियाँ अपने बालों की वेणी गूँथती थीं। कभी-कभी वे चार वेणियाँ बनाती थीं। स्त्रियाँ रंगीन वस्त्र, चमकीले आभूषण और सुगंधित फूलों का खूब प्रयोग करती थीं।

(५) आमोद प्रमोद—आर्य स्त्री-पुरुष सुखमय जीवन बिताने के इच्छुक रहते थे। उत्सवों में तथा अवकाश के समय खूब आनन्द मनाते थे और मनोरंजन के साधनों का उपयोग करते थे। वे बाजे बजाते, गाना गाते और नाचते थे। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों ही भाग लेते थे। घुड़-दौड़ और रथ-दौड़ का भी उन्हें शौक था। पासे से जुआ खेलना उन्हें बहुत ही प्रिय था।

(२) व्यवसाय—इतनी प्रसन्नता और स्वच्छन्दता से रहना तभी संभव हो सकता था जब उनकी दशा अच्छी रही हो। आर्य मवेशी पालते थे और खेती करते थे। यही उनके मुख्य उद्यम थे। उर्वरा भूमि होने के कारण उनको काफी

काम होता था। इनके अतिरिक्त उनमें कुछ लोग सोनार, बढ़ई, कुम्हार आदि का भी काम करते थे। रथ चलाने वाले बढ़ई का बहुत महत्व होता था क्योंकि रथ के अच्छे होने पर ही आर्य विजय की आशा रख सकते थे।

(७) जाति या वर्ण-व्यवस्था—कार्यों के विभाजन के आधार पर आज कल की-सी जाति-व्यवस्था उस समय नहीं थी। भारत में आने के पहले शायद उनमें वर्ण व्यवस्था भी नहीं थी। लेकिन यहाँ आने पर जब उन्हें प्राय बराबर ही लड़ाई में व्यस्त रहना पड़ा तब उनको कार्य विभाजन की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने कुछ लोगों को पूजा-पाठ करने तथा विद्या पढ़ने-पढ़ाने का कार्य विशेष रूप से सौंप दिया। यह लोग ब्राह्मण कहे जाते थे। कुछ लोगों को समाज रक्षा का कार्य सौंप गया। ये सैनिकों तथा शासकों का काम करते थे। इनको क्षत्रिय कहते थे। तीसरी श्रेणी के व्यक्ति थे जिनका कार्य खेती तथा व्यवसाय करना था। ये वैश्य कहलाने लगे। इनके अतिरिक्त द्रविड़ बन्दियों की एक नई श्रेणी बनाई गई। ये शूद्र कहे जाते थे। उनका काम उच्च श्रेणी वालों की सेवा करना था। प्रथम तीन श्रेणियों में कोई ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं था। वे आपस में बराबर माने जाते थे। सभी एक दूसरे के यहाँ खाते पीते थे और विवाह सम्बन्ध करते थे। किसी वैश्य या क्षत्रिय के लिए ब्राह्मण बन जाना या ब्राह्मण के लिए वैश्य या क्षत्रिय बन जाना सम्भव तथा प्रचलित था। अस्तु, वर्ण-व्यवस्था वैदिक काल में केवल आरम्भ हुई थी। आगे चलकर इसमें दोष उत्पन्न होने लगे। वर्णों के अन्तर्गत भोजन, निवास-स्थान आदि के आधार पर भेद-उपभेद बन गये, जो जातियाँ कहलाने लगीं। विभिन्न वर्णों और जातियों का संगठन बढ़ता गया कि क्रम पर रखा जाने लगा और खान-पान तथा विवाह आदि में बहुत भेद भाव उत्पन्न हो गया। यहाँ तक कि आजकल लगभग ३००० जातियाँ हो गई हैं जिनके खान-पान विवाह आदि के नियम अलग अलग हैं। उस समय में वर्ण-व्यवस्था केवल सामाजिक सुविधा के लिए उत्पन्न हुई थी और उसका अर्थ था कार्य-विभाजन।

(८) आर्यों का धर्म—प्राय सभी आर्य प्रकृति के उपासक थे। आरम्भिक काल में वे सैंतीस प्रधान देवताओं की पूजा करते थे जिनमें इन्द्र वरुण, सूर्य तथा वायु मुख्य हैं। इनको प्रसन्न करने के लिए वे मंत्र पढ़ते थे और यज्ञ करते थे। यज्ञों में पशुओं की बलि भी दी जाती थी। आर्यों का विश्वास था कि जो भोज्य पदार्थ हवन किया जाता है। उससे देवताओं का भोजन मिलता

है। इन यज्ञों में वे सोम तथा सुरा भी अपण करते थे। प्रकृति की विभूतिया को ही वे देवता मानकर पूजते थे। गो पूजन भी प्रचलित था, क्योंकि गौग्रो से उनको दूध-दही तथा खेता के लिए सुन्दर बछड़े मिलते थे। ऋग्वेद के कुछ मत्रा से पता चलता है कि उन्हें यह भी अनुभव होने लगा था कि इन देवताग्रा से महत्तर एक ईश्वर है जिसकी शक्ति अनन्त है और जिसकी इच्छा के अनुसार इन सभी देवताग्रो को काय करना पडता है। वैदिक-काल का अन्त होते-होते यज्ञा की क्रियाए अधिक जटिल होने लगी और एक परब्रह्म परमात्मा म विश्वास दृढ हाता गया। उपनिषदो में ईश्वर की सत्ता तथा आत्मा पर गूढ विचार प्रकट किए गए गये हैं।

राजनीतिक सगठन—वदिक काल म आर्यां के छोटे छाटे राज्य थे। उस समय राज्यो का 'जनपद कहते थे। प्रत्येक जनपद का एक राजा हाता था। ऋग्वेद के काल में १० जनपदा का वणन मिलता है जिनमें भरत-वशी राजा सुदास का नाम सबसे मुख्य है। जनपदा के अन्तर्गत कई एक 'विश' हाते थे। प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे, और प्रत्येक ग्राम में कइ कुटुम्ब हाते थे। जिस प्रकार कुटुम्ब में पिता की आज्ञा सबको माननी पडती थी, उसी प्रकार ग्राम का प्रधान, ग्रामणी होता था। युद्ध के समय वही ग्रामीण जनता का नेता होता था। बहुधा ग्रामणी और विशपति का पद वशर्यों का दिया जाता था। सारे जनपद का स्वामी राजा हाता था। कभी कभी कइ नजपदा के ऊपर भी एक ही राजा हाता था। राजा ही युद्ध के समय सेनापति का पद ग्रहण करता था। उनका कतव्य था कि प्रजा को आंतरिक अशांति और बाह्य आक्रमण से बचावे। राजा बिलकुल मनमानी नही कर सकता था। उसे कुछ मन्त्रिया की सलाह स काम करना पडता था। मन्त्रिया म पुरोहित बहुत ही सम्मानित हाता। दूसरे मन्त्रिया में सेनानी और ग्रामणी उल्लेखनीय हैं। आर्यों की एक सभा और एक समिति भी हाती थी। इनके कारण भी राजा निरंकुश नहा हो पाते थे, वरन् उनको प्रजा की इच्छानुसार शासन करना पडता था। राजा प्रजा से कर लेता था। वह न्याय भी करता था और सैनिक सगठन ठीक रखता था।

(१०) सैनिक सगठन—आर्यों को सेना की ओर विशेष ध्यान दना पडता था, क्योंकि उनके शत्रु 'दस्यु' बड़े भयकर लोग थे। वे नगरों में किले बनाकर रहते थे, आर्यों की ही भांति लड़ाई के हथियार उनके पास थे और

उनके राजे बड़े शक्तिशाली थे। वे ग्रामों पर शत्रु ही आक्रमण किया करते थे। इसलिए आर्य अपना सैनिक संगठन बहुत चुस्त रखते थे। प्राय: प्रत्येक वयस्क व्यक्ति सैनिक का कार्य करता था। वे रथों पर चढ़कर और पैदल लड़ते थे। उनके हथियार धनुष बाण, फरसा, भाला, कटार आदि थे। वे कवच और शिरस्त्राण का भी उपयोग करते थे। सेना ग्रामवार इकट्ठा होती थी। युद्ध के समय सभी ग्रामों की अलग अलग टुकड़ियाँ इकट्ठा होती थीं युद्ध को 'संग्राम' अर्थात् 'ग्रामीण टुकड़ियों का एकत्रित रूप' कहते थे। आर्य कभी-कभी आपस में भी लड़ते थे। ऋग्वेद में राजा सुदास और दूसरे १० राजाओं के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। युद्ध के समय पुरोहित विजय के लिए देवताओं की स्तुति करते थे।

इन सब बातों से पता चलता है कि यद्यपि आर्यों को प्रारम्भिक काल में युद्ध का निरन्तर भय रहता था, तो भी वे अपना जीवन बहुत स्वच्छन्दता और सुख से बिताते थे। उनका धर्म, उनके सामाजिक नियम तथा राजनीतिक संग ठन काफी सादे थे वे जीवन को सुखमय बनाने का भरसक प्रयत्न करते थे और संसार के सभी सुखों का पूर्ण रूप से उपयोग करना पसन्द करते थे।

मुख्य तिथियाँ

द्रविड़ों का भारत में प्रभुत्व	४००० ई० पू० से २५०० ई० पू०
आर्यों का आगमन	२५०० ई० पू०
वेदों का निर्माण	२५०० ई० पू० से ८०० ई० पू०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) आर्यों को भारत विजय में क्या कठिनाई पड़ी ?

(२) आर्यों में वर्ण-व्यवस्था क्या उत्पन्न हुई ?

(३) आर्यों के सामाजिक जीवन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो।

(४) वेद क्या हैं ? उनका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है ?

अध्याय ४

प्राचीन आर्य साहित्य और आर्य सभ्यता का विकास

वेदाङ्ग—वेदों के पश्चात् आर्यो ने और बहुत से ग्रन्थो की रचना की जिनका समय हमें ठीक मालूम नही है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे बहुत ही प्राचीन हैं। जिन ग्रन्था का इस अध्याय में उल्लेख किया जायगा उनमें से अधिकाश ७०० ई० पू० और २०० ई० पू० के बीच में बने मालूम हाते है। वेदा को समझने और उनम बताई क्रियामा को ठीक-ठीक करने के लिए कुछ ग्रन्थ रचे गये। उनका सामूहिक नाम वेदाग है।

वद के मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण बहुत आवश्यक था, क्योकि थोडी भूल से मन्त्र का अर्थ कुछ से कुछ हो सकता था। 'शिक्षा' में वेदमन्त्रो के शुद्ध उच्चारण पर महत्त्व दिया गया है। मन्त्र सब एक ही ढग के नहीं हैं। वे विविध प्रकार के पद्यों में लिखे हैं। 'छद' में इन विभिन्न पद्या की विशेषता और उनके लक्षण बताए गए हैं। यह ज्ञान मन्त्रों को ठीक-ठीक पढने और समझने में सहायक होता है। यह बताने के लिए कि मन्त्रा में जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनके रूप कहाँ किस नियम द्वारा बदले गए हैं 'व्याकरण' की रचना की गई। व्याकरणो में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' सवश्रेष्ठ है। आगे चलकर इस व्याकरण का इतना महत्त्व बढा कि विद्वानो ने केवल इसके 'भाष्य' या टीकाएँ लिखकर ही सतोष किया और कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उसके टक्कर का नही लिखा। शब्दा के रूपों के ज्ञान मात्र स उनका अथ नही प्रकट होता। वेदों की सस्कृत बाद की सस्कृत से भिन्न भी है। इसलिए उनकी भाषा समझना और भी कठिन होने लगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए "निघण्टु" रचा गया। उसमें वदिक भाषा के शब्दा का अथ दिया गया है। वैदिकमन्त्रो का अथ जान लेने पर उनमें बताये यज्ञों का करना आसान हो जाता है। लेकिन सभा यज्ञो की विधियाँ पूर्णरूप से वेद में नहा बताइ गई हैं। यज्ञा तथा दूसरे आवश्यक सस्कारों की विधि बताने के लिए जा ग्रन्थ रचे गये उनको 'कल्प' कहते हैं। यज्ञा तथा सस्कारो का उचित रूप से करने के लिए नक्षत्रो तथा ग्रहों की स्थिति जानना भी आवश्यक समझा गया। शुभ मुहूर्त में किया गया काम सफल होता है और कुसमय म आरम्भ किया गया कार्य लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा सकता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए 'ज्योतिष' की रचना की गई। इस प्रकार वेदांग ६ हैं —

प्रकार ब्राह्मणी का पुत्र ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता से पुत्र से उत्तम समझा जाता था। फल यह हुआ कि जाति व्यवस्था का रूप फैलने लगा। जाति या वर्ण अब जन्म से निश्चित होता था, कर्म से नहीं। इस प्रकार सामाजिक संगठन में कट्टरता आने लगी और एकता नष्ट होने लगी।

आश्रम—इस काल के आर्यों ने अपने जीवन को चार भागों में बाँट दिया था। प्रथम आश्रम 'ब्रह्मचर्य' था। उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी बालक गुरु के आश्रम में जाकर विद्या पढ़ता था। २४ वर्ष की अवस्था होने पर वह विवाह करता था। अब दूसरा आश्रम 'गृहस्थ' आरम्भ होता था। वह शुभ देवताओं की पूजा करता, परिवार के सम्मान को बढ़ाता, कुटुम्बियों के लालन पालन का प्रबन्ध करता और अतिथियों का सत्कार करता था। लगभग ५० वर्ष की अवस्था होने पर वह परिवार का भार अपने पुत्र को सौंपकर जंगल में एकान्तवास करने और तप करने के लिए चला जाता था। इसे 'वानप्रस्थ' आश्रम कहते थे। कभी-कभी स्त्रियाँ भी अपने पतियों के साथ जाती थीं और तपस्या करती थीं। लगभग ७५ वर्ष की आयु होने पर जब मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर चुकता था और अपनी इन्द्रियों को अधीन कर लेता था तब वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। अब वह घूम घूमकर लोगों को उनके कर्तव्य की शिक्षा देता और भिक्षा करके भोजन करता था। एक ही स्थान में न रहने से कारण संन्यासी का सांसारिक माया-मोह से बचे रहने में आसानी होती थी।

धार्मिक परिवर्तन—वैदिक धर्म में भी अब बहुत हेर-फेर हो गया था। देवताओं की संख्या अब बहुत बढ़ गई थी। यज्ञों का महत्त्व बढ़ रहा था और इनको ठीक तरह से करने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती थी। इस प्रकार कर्मकाण्ड बहुत बढ़ गया और साधारण व्यक्ति उससे निभा न पाता था। देवताओं में इन्द्र के स्थान पर शिव और विष्णु का महत्त्व बढ़ने लगा। शिव की पूजा शायद द्रविड़ों की देन है। इसी काल में ईश्वर के अवतारों की भी कल्पना की गई। मुख्य अवतार 'राम' और 'कृष्ण' थे। कुछ लोग कर्मकाण्ड से ऊब कर इन अवतारों की भक्ति पर ही जोर देने लगे। अधिकतर लोग तपस्या का बहुत आवश्यक समझने लगे। उनका विचार था कि तपस्या के बिना मोक्ष नहीं मिलेगा। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी हुए जिन्होंने ज्ञान की महत्ता बताई। यह लोग कहते थे कि भगवान् का ज्ञान प्राप्त करना कर्मकांड से अधिक अच्छा है। इन्हीं लोगों ने षट्-दर्शन रचे।

राजनीतिक सगठन—वैदिक काल में छोटे-छोटे जनपदो के स्थान पर अब विशाल साम्राज्य बनने लगे। राजाओ की इच्छा अब चक्रवर्ती सम्राट् बनने की होने लगी। वे छोटे राजाओ को हराकर अपनी कीर्ति बढाने के लिए राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करते थे। इन राजाओ के बलवान् होने के कारण छोटे राज्यों का स्वतत्र रह सकना कठिन हो गया। ऐसे राज्यो में कुछ व्यक्ति ऐसे हुए जिन्होंने स्वतत्रता की रक्षा के लिए दो सराहनीय उपाय किए। प्रथम, उन्होंने प्रजा की पूरी मदद पाने के लिए प्रजा के शासनाधिकार बढा दिये। प्रजा राजा को चुनने लगी और राजा को प्रजा द्वारा चुने गये परिषद् की सलाह से काम करना पड़ता था। दूसरे, यदि इस प्रकार के कई छोटे राज्य पास-पास होते थे तो वे अपना सघ भी बना लेते थे। इस प्रकार एक ओर तो राजा पहिले से अधिक शक्तिशाली होने लगे और दूसरी ओर वैदिक काल की सभा और समिति का प्रभाव इतना बढ गया कि व राजा को इच्छानुसार चलाने लगा। परन्तु यद्यपि इस काल म प्रजातत्र तथा राजतत्र रियासतें दोनो ही थी, तो भी राजतत्र प्रणाली ही अधिक प्रचलित थी और योग्य राजे निरकुश हो सकते थे।

कला-कौशल में उन्नति—वैदिक काल की ग्रामीण सभ्यता धीरे-धीरे नागरिक सभ्यता म परिणत हो गई। इस काल में प्राय सभी राज्यो म एक अथवा अनेक विशाल नगर बन गये थे। व बहुत दृष्टियो से पिछले द्रविड नगरो की भाँति थे। उनमें चतुर कारीगर रहते थे। युधिष्ठिर का महल ऐसी कला से बनाया गया था कि उसमें नया आदमी धोखे में पड जाता था। इसी काल मे समुद्र पर पुल बाँधनेवाले इञ्जीनियर भी पैदा हुए। अस्त्र-शस्त्रो में भी बहुत अधिक उन्नति की गई। रामायण तथा महाभारत में जिस प्रकार के हथियारो का वर्णन किया गया है यदि उनमें स कुछ भी वास्तविक हैं तो निश्चित ही उन्होंने साधारण धनुष बाण, बरछी भाले, चौन, मुग्दर स बहुत उन्नति कर ली थी। स्त्रियो के आभूषण, घर के काम के सामान आदि में भी काफी उन्नति हो गई थी।

इस काल का यदि हम सरसरी तौर से सिंहावलोकन करें तो हमें मालूम होगा कि आर्य कुछ दिशाओ में आगे बढे और कुछ में नीचे गिरे। विष्णु-शिव की प्रधानता मानकर वे आगे बढे तो कर्मकाण्ड के पचडे में फँसकर बहुत पिछड

गये। आश्रम-व्यवस्था द्वारा यदि उन्होंने सामाजिक उन्नति की तो स्त्रियों की समानता छीन कर और जाति-पाँति का भेद पैदा करके वे कमजोर होने लगे। राजनीतिक संगठन में भी प्रजातन्त्र प्रणाली उन्नति प्रगट करती है तो निरंकुश साम्राज्यवादिता अवनति। उन्हों ने भारतवर्ष के अधिक भाग में अब अपना अधिकार जमा लिया था। भारतवर्ष के दक्षिणी भाग पर उनका प्रभाव अधिक नहीं था, लेकिन वे वहाँ की दशा से परिचित थे। राजाओं में संधि या युद्ध अब न्याय और अन्याय के आधार पर नहीं, वरन् आपसी फूट, ईर्ष्या अथवा हौसलेमंदी के आधार पर होते थे।

मुख्य तिथियाँ

भारत युद्ध की तिथि	१००० ई० पू० के लगभग
पाणिनि का व्याकरण	७०० ई० पू० के लगभग
रामायण की मूल कथा की रचना	५०० ई० पू० के लगभग
महाभारत की रचना	५०० ई० पू०—४०० ई० पू०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) वेदाङ्ग किसे कहते हैं? वेदांगों के किस भाग में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री मिलती है?

(२) सूत्र का क्या अर्थ है? कल्प-सूत्रों में किस विषय का वर्णन है?

(३) इस काल में सामाजिक जीवन में कौन सी नई बातें आ गई थीं?

(४) वैदिक धर्म और इस काल के धर्म में क्या अन्तर है?

(५) प्रजातन्त्र शासन की उत्पत्ति क्यों हुई?

अध्याय ५

बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म

८०० ई० पू० के लगभग कुछ नए सम्प्रदाय उत्पन्न होने लगे, जो ब्राह्मण धम का विरोध करने लगे। इन सम्प्रदायों के प्रचारक बहुत सादा तथा पवित्र जीवन व्यतीत करते। दूसरे जीवो को बलि देने के बजाय वे तपस्या द्वारा अपने शरीर को ही कष्ट देते थे जिससे उनकी इच्छाओं का दमन हो जाय। वे अपने मत का प्रचार घूम-घूम कर करने लगे और शीघ्र ही उनके अनुयायियों की सख्या बढने लगी। ऐसे सम्प्रदायो में बौद्ध धर्म तथा जन धम अधिक प्रसिद्ध हैं।

जैन धम—जैनी लोगा का विश्वास है कि उनके धम की शिक्षा २४ तीर्थङ्करा ने दी है, जिनमें प्रथम तीथङ्कर ऋषभदेव थे। वास्तव में हमें केवल २३ वें तीथङ्कर पार्श्वनाथ और २४ वें तीथङ्कर महावीर स्वामी के ही विषय में ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त है। जनिया के दूसरे तीथङ्करो की भाँति पार्श्वनाथ भी क्षत्रिय थे। इनके पिता अश्वसेन काशी के राजा थे। पार्श्वनाथ जी ने सयास ले लिया था। उनकी शिक्षा में अहिंसा, झूठ न बोलना, चोरी न करना और धन एकत्रित न करने पर विशेष जार दिया गया था। उनके अनुयायियो की सख्या ठीक मालूम नहीं है। उनके लगभग २५० वर्ष बाद २४ वें तीथङ्कर महावीर स्वामी का जम वशाली के निकट कुदग्राम म हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ एक क्षत्रिय सामन्त थे। महावीर का नाम पहले वधमान था। इनके मामा लिच्छवि राज्य के शासक थे और उनकी लडकी मगध के राजा बिम्बिसार को ब्याही थी। इससे पता चलता है कि वधमान के पिता सम्मानित पुरुष थे और मगध तथा लिच्छवि राज्यो म उनकी काफी प्रतिष्ठा रही होगी। वधमान ३० वष तक घर में ही रहे। लेकिन राजसी ठाट-बाट स उनका जी हट गया। वे संसार के बधो और आवागमन के चक्कर स मोक्ष (छुटकारा) पाने का माग ढूँढना चाहते थे। इस उद्देश्य से वे सयासी हो गये और १२ वर्ष की तपस्या के बाद उनको ज्ञान प्राप्त हो गया। उन्हाने सासारिक बधना को तोड दिया। इसलिए उनको लोग 'निग्र थ' कहते थे। उन्होंने अपनी इन्द्रिया पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसलिए उन्हें 'जिन' या जीतनेवाला कहते थे। 'जिन' के शिष्य 'जैन' कहलाने लग। इस प्रकार सिद्ध होता है कि वर्तमान जन धर्म के

वास्तविक संस्थापक यही थे। उन्होंने माया, मोह लोभ आदि शत्रुओं पर सहज में ही विजय पाली थी, इसलिए उन्हें 'महावीर' भी कहने लगे।

ज्ञानप्राप्त करने के पश्चात् वह घूम घूम कर दूसरों को भी मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताने लगे। उनकी तपस्या तथा उनके उच्च यश का प्रभाव बहुत लोगों पर पड़ा। शीघ्र ही उनके अनुयायियों की सख्या बढ़ने लगी। अपने जीवन के शेष ३० वर्षों में उन्होंने कोशल, मिथिला, मगध तथा अङ्ग राज्यों में काफी प्रभाव प्राप्त कर लिया। महावीर स्वामी की मृत्यु पटना जिले के पावा नगर में हुई थी। उनके समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। लेकिन बहुत से लोग उनका जन्म ५४० ई० पू० में और मृत्यु ७२ वर्ष बाद ४६८ ई० पू० में मानते हैं।

महावीर की शिक्षा—महावीर जी के अनुसार संसार में सबसे बड़ा कष्ट आवागमन, अर्थात् बार-बार पैदा होना और मरना है। आवागमन का नाश कर देना ही मुक्ति या मोक्ष है। आवागमन का कारण हमारे कर्म हैं। इसलिए यदि जन्म मरण से छुटकारा पाना है तो कर्म के बंधन का नष्ट करना पड़ेगा। कर्म का बंधन तोड़ने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है—सम्यक् विश्वास सम्यक् ज्ञान और सम्यक् कर्म। इन्हीं तीनों को वह 'त्रिरत्न' कहते थे। उनके अनुसार प्रत्येक जन का यह सम्यक् विश्वास रखना चाहिए कि जिस प्रकार उसके शरीर में एक जीवात्मा है उसी प्रकार संसार के सभी दूसरे पदार्थों में भी एक जीवात्मा है। ईश्वर संसार का कर्ता हर्ता अर्थात् बनाने और नाश करने वाला नहीं है। उसमें केवल वे ही सब गुण हैं। जो जीव में हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि ईश्वर में वे गुण पूर्ण तौर से विकसित और प्रकट रहते हैं और जीव में साधारण मात्रा में तथा कुछ कुछ छुपे हुए। मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह 'सम्यक् ज्ञान' प्राप्त करना चाहिए कि बिना कर्म-बंधन तोड़े वह संसार से छुटकारा नहीं पा सकता। कर्म बन्धन तोड़ने के लिए जिस 'सम्यक् कर्म' की आवश्यकता है उसमें कई बातें शामिल हैं। उसके लिए 'अहिंसा', 'किसी जीव को कष्ट न देना', 'झूठ न बोलना' 'चोरी न करना', 'धन न इकट्ठा करना और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना' आवश्यक है। अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए उसे तपस्या करनी चाहिए। तपस्या के लिए बहुत सी यौगिक क्रियाएँ बताई गई हैं।

इस धर्म में न तो कहीं वेदों के महत्त्व का वर्णन है और न ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के लिए स्थान। जैनी वेदों में लिखी बातों को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। यज्ञों के तो ये कट्टर विरोधी हैं, क्योंकि उनमें बलिदान किया जाता था। उनका मोक्षमार्ग सभी के लिए समान रूप से खुला है। इसलिए धर्म की दृष्टि से इसमें कोई जाति पाँति का भेद भाव नहीं है।

गौतम बुद्ध—वर्धमान, 'महावीर' के समय में दूसरे प्रधान धर्म प्रचारक गौतम बुद्ध थे। गौतम का जन्म ५६३ ई० पू० के लगभग कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी बाग में हुआ था। उनके पिता का नाम शुद्धोधन और माता का नाम माया था। शुद्धोधन शाक्य राज्य के शासक थे। माया ने स्वप्न देखा था कि उनके गर्भ में एक सुन्दर श्वेत हाथी प्रवेश कर रहा है। यह स्वप्न ज्योतिषियों को बताया गया। उन लोगों ने कहा कि जो बालक उत्पन्न होगा वह या तो चक्रवर्ती राजा होगा या एक बड़ा महात्मा। जब बालक गौतम बड़ा हुआ और बहुधा विचारमग्न दिखाई पड़ने लगा तो माता पिता को भय हुआ कि वह घर छोड़कर कहीं सन्यासी न हो जाय। गौतम किसी को दुखी, बीमार या कष्ट पाते देखकर बहुत उधेड़-बुन में पड़ता था। वह सोचा करता था कि ऐसे जीवन से क्या लाभ जिसमें इतने कष्ट उठाने पड़ें। गौतम की इस विचार धारा को रोकने के लिए उनके पिता ने इनका विवाह एक परम रूपवती कन्या से कर दिया। उसका नाम गोपा या यशोधरा था। गौतम को फँसाये रखने के लिए संसार के सभी सुख प्रस्तुत किये गये, लेकिन आखिरकार एक दिन उनके मन में आया कि वह अपना समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। बस वह उठे और अपनी स्त्री तथा नन्हें बच्चे राहुल को सोता छोड़कर घर से चल दिये। उस समय उनकी अवस्था ३० वर्ष की थी। उन्होंने पहले धार्मिक पुस्तकों का पाठ किया, पर उससे उन्हें शान्ति नहीं मिली। तब उन्होंने घोर तपस्या की। शरीर सूख कर काँटा हो गया। पर यह भी व्यर्थ ही हुआ। तब उन्होंने इसे भी छोड़ दिया। उनके साथी तपस्वियों ने इनको कायर और पतित समझ कर छोड़ दिया। उस समय सुजाता नाम की एक स्त्री ने इनको खीर खिलाई। धीरे-धीरे यह स्वस्थ हो गये और एक दिन जब वह पीपल के पेड़ के नीचे आसन लगाये बैठे थे तब यकायक उनको ज्ञान की प्राप्ति हो गई। संसार के कष्टों से निर्वाण प्राप्ति का उपाय वे समझ गये। इस कारण आगे चलकर वह 'बुद्ध' के नाम से विख्यात हुए। जिस पेड़ के नीचे बुद्ध जी को ज्ञान प्राप्त हुआ था, उस पेड़ का नाम 'बोधि-वृक्ष' पड़ गया और उस स्थान का साधारण नाम 'गया' से बदल कर 'बुद्धगया' हो गया। बुद्ध जी ने पहले काशी के निकट सारनाथ के

महात्मा बुद्ध (अजन्ता)

उपवन में रहनेवाले अपने साथिया को शिक्षा दी। उसे 'धमचक्र-प्रवतन' अर्थात् 'धमरूपी पहिये को चलना' कहते हैं। यहो से बुद्ध जी के शिष्यों की सख्या बढने लगी। वे स्वय घूम-घूम कर शिक्षा देते थे और शिष्यो को भी, जो भिक्षु कहलाते थे, उन्हाने यही आना दी। उन्हाने उनसे कहा था कि देखो केवल एक दिशा में ही न जाना, वरन् सभी ओर जाकर लागो को शान्ति-लाभ का माग दिखाओ। बुद्ध जी ने लगभग ४४ वप शिक्षा दा और उसके पश्चात् ८० वप की आयु में कुशीनगर नामक स्थान में ४८३ ई० पू० में शरीर त्याग दिया।

बुद्ध जी की शिक्षा—बुद्ध जी कहत थे कि हम सब लोगा के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि ससार में दु:ख है, प्रत्येक दु ख का एक कारण है। उस कारण का निवारण किया जा सकता है और उसके निवारण के पश्चात् ही दु ख का अन्त हो सकता है। दु ख का अ त कर देना हा निर्वाण प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अष्टाङ्गिक माग का अनुसरण करना आवश्यक है।

अष्टाङ्गिक मार्ग म ८ बातें बताई गई हैं —(१) सम्यक दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक वाक, (४) सम्यक कर्मान्ति, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक व्यायाम, (७) सम्यक स्मृति और, (८) सम्यक् समाधि। सम्यक् का अर्थ है उचित अथवा ठीक-ठीक। बुद्ध कहते थे कि निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि साधक यह अच्छी तरह समझ ले कि ससार अनित्य है, दु खपूर्ण है और कम का ब धन किस प्रकार का है। यह समझने पर ही उसे सम्यक दृष्टि प्राप्त होगी और तभी वह अपने उद्देश्य को सदा सामने रख सकेगा। सम्यक् दृष्टि आने पर उसे सम्यक सकल्प करके गृहस्थी के जजाल से अलग हो भिक्षु हो जाना चाहिए और इस वैराग्य के सकल्प पर दृढ रहना चाहिए। अब उसकी ऐसी स्थिति हो गई कि वह निर्वाण प्राप्ति क लिए उद्याग कर सकता है। उस इच्छाओ के ब धन का तोड देना है। इच्छाओ का दमन खूब सुख में लिप्त रहने अथवा शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देने स नही हागा। यह दोना ही गलत हैं, क्योंकि यदि वीणा क तार का खूब ढीला कर दें तो वह बजेगी ही नहीं और यदि खूब कस दें तो वह टूट जायगी और मधुर सगीत निकालना सदा के लिए असंभव हो जायगा। मधुर सगीत क लिए मध्यम मार्ग का अनुसरण करना ठीक होगा। यही मध्यम-मार्ग 'शील' है जिसमें सम्यक् वाप् से लेकर सम्यक् आजीव तक के तीन अग सम्मि

लिप्त हैं। इच्छाओं के दमन के लिए जिस संयम अथवा शील की आवश्यकता होती है उसमें वाणी का संयम प्रथम स्थान रखता है। अस्तु हमें झूठ, चुगली कटुवाणिता तथा बकवास से बचना चाहिए। यही सम्यक् वाक् है। फिर कर्म की शुद्धता लानी चाहिए। इसमें अहिंसा, अस्तेय आदि सम्मिलित हैं। यही सम्यक् कर्मान्त है। आहार-व्यवहार की शुद्धि के लिए हथियारों, जीवधारियों, मांस मदिरा तथा विषैले पदार्थों का व्यापार छोड़ देना चाहिए। इस भाँति सम्यक् आजीव की उपादेयता सिद्ध हो जाती है। उस अभ्यास के फलस्वरूप साधक का आचरण शुद्ध हो जायगा और वह मानसिक नियम अथवा समाधि की विभिन्न क्रियाओं के लिए तैयार हो सकेगा। अब उसे सम्यक् व्यायाम द्वारा उन बुरे विचारों को उठने से रोकना चाहिए जो अभी तक नहीं उठे, जो उठ चुके हैं उनको निकाल देना चाहिए। और जो सद्विचार नहीं आये हैं उनको लाना चाहिए तथा जो सद्विचार आ चुके हैं उनको सञ्चित करना चाहिए। इसके उपरान्त वह सम्यक् स्मृति अथवा चेतना में प्रवेश करता है और अपने शरीर, भाव तथा मन पर मनन करता हुआ बुद्धों की शिक्षाओं का निरंतर ध्यान रखता है। अब वह सम्यक् समाधि के लिए प्रयत्न करता है और अनेक बाधाओं का क्रमशः निवारण करता हुआ सम्पूर्ण इच्छाओं से छूटने का अनुभव करता है और इस भाँति निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। यह अष्टाङ्गिक मार्ग सभी के लिए खुला था। यदि मनुष्य भिक्षु बनकर बौद्ध संघ में मिल जाय तो उसके लिए निर्वाण प्राप्त करना सरल होगा, लेकिन परिवार के साथ रहते हुए भी इस मार्ग का अवलंबन करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति में सदाचारी रहने से भी बहुत सहायता मिलती है। यदि हम अच्छे काम करते हैं तो अगले जन्म में हम श्रेष्ठ जीव बनते हैं और धीरे धीरे हम निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत यदि हम बुरे काम करते हैं तो हम गिरते जाते हैं और हमारे लिए निर्वाण प्राप्त करना और कठिन होता जाता है। इसलिए सभी लोगों को चाहिए कि सदाचार के पाँच नियमों का पालन करें—(१) चोरी न करना, (२) अहिंसा, (३) नशीली चीजों का प्रयोग न करना, (४) झूठ न बोलना (५) व्यभिचार से बचना। बुद्ध जी ने अपने धर्म की शिक्षाएं जनता की भाषा में दी और उनके अधिकाधिक प्रचार के लिए उन्होंने एक संघ बनाया। संघ के सदस्यों को भिक्षु कहते थे। भिक्षुओं को धर्म के और उन नियमों के अतिरिक्त कुछ विशेष नियम मानने पड़ते थे। उनको आपस में

सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं थी। वे इत्र-फूल अथवा दूसरी सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकते थे। उन्हें नियत समय पर ही भोजन करने की आज्ञा थी। मोटे नम गद्दों पर सोने की उनको मनाही थी और वे न तो धन ले सकते थे और न उसे अपने पास रख सकते थे। यह सब नियम उनके चरित्र को निर्मल रखने के लिए बनाए गये थे।

बुद्धजी की शिक्षाएँ बहुत सरल थीं। सभी उनको ग्रहण कर सकते थे और उनके अनुसार अपना जीवन बिता सकते थे। सबकी बोली में शिक्षा दी जाने के कारण इसका प्रचार और भी अधिक हो गया। बुद्धजी के यश, व्यक्तित्व, आकर्षक प्रचार प्रणाली ने भी लोगों को उनकी ओर आकृष्ट किया। भिक्षुओं के प्रयत्न ने उन शिक्षाओं को और दूर तक फैला दिया। बुद्धजी ने निर्वाण प्राप्ति का मार्ग सब जाति के लोगों के लिए खोल दिया। इस धर्म में भी वेदों या ब्राह्मणों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया।

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म की तुलना—जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म की शिक्षाओं में कुछ समता होने के कारण कुछ लोगों ने इनको एक समझने की भूल की है। दोनों ही वेदों तथा ब्राह्मणों को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। यज्ञों को दोनों ही बुरा बताते हैं। अहिंसा दोनों ही का एक मूल मन्त्र है। दोनों ही का उद्देश्य आवागमन के दुःख से छुटकारा प्राप्त करना है और दोनों ही इस जन्म-मरण का कारण कर्म को मानते हैं।

लेकिन इतनी समता होते हुए भी दोनों धर्मों में मौलिक भेद हैं। जैनी ईश्वर को मानते हैं, परन्तु उसे सृष्टि का कर्त्ता-हर्ता नहीं मानते। बौद्ध ईश्वर को मानते ही नहीं। जैनी कर्म से छुटकारा पाने का उपाय तपस्या बताते हैं। यहाँ तक कि भूखा मर जाना उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ कर्म है। बौद्ध तपस्या द्वारा शरीर को कष्ट देना व्यर्थ और अनावश्यक बताते हैं। बौद्ध अहिंसा का अर्थ केवल बड़े जीवधारियों तक ही सीमित रखते हैं। जैनियों के अनुसार खटमलों, मच्छरों और पतङ्गों आदि को मारना तो पाप है ही, खाने या पीने की चीजों में रहनेवाले छोटे कीटाणुओं को खा जाना भी पाप है। इसलिए वे खाना बन्द करके मर जाते हैं। दिगम्बर जैन नंगी प्रतिमाओं की पूजा करते हैं, लेकिन बौद्धों को यह पसन्द नहीं है। जैनी अपने २४ तीर्थङ्करों की पूजा करते हैं और उनके धार्मिक ग्रन्थों को 'अंग' कहते हैं। इसके विपरीत बौद्ध या तो बुद्धजी की प्रतिमा पूजते हैं या उनके बताये मार्ग पर चलना ही काफी समझते हैं। उनके धार्मिक ग्रन्थों को

भारत
अरब
सागर
बंगाल
की
खाडी

'त्रिपिटक' कहते हैं। जाति पाँति के भेद जैनियों में अब भी बाकी हैं, लेकिन बौद्धों में इस प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये दानो धर्म स्वतन्त्र तथा भिन्न हैं।

राजनीतिक दशा—महाभारत के युद्ध के बाद का इतिहास ठीक से मालूम नहीं हैं। बुद्धजी के समय में पहले जमाने से कुछ बड़े राज्य थे जिनको 'महा जनपद' कहते थे। इनमें से कुछ के शासक निरंकुश राजे थे। ऐसे राज्यों में चार मुख्य थे—

(१) कोशल—जिसकी राजधानी साकेत या अयोध्या थी।
(२) मगध—जिसकी राजधानी राजगृह थी।
(३) अवन्ति—जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

बुद्ध के समय कोशल में प्रसेनजीत राज्य कर रहा था। उसकी बहन मगध के राजा बिम्बिसार को ब्याही थी। मगध में बुद्धजी के समय में बिम्बिसार और उसके पुत्र अजातशत्रु ने शासन किया। इन्हीं के काल से मगध की उन्नति होने लगी। कौशाम्बी में महाराज उदयन राज्य करते थे। यह बड़े ही वीर तथा संगीतज्ञ थे। इसी समय उज्जयिनी में प्रद्योत शासन कर रहे थे। प्रद्योत बड़े ही शक्तिशाली सम्राट थे। उन्होंने पड़ोसी राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। धीरे धीरे इन चारों राज्यों ने दूसरे छोटे-छोटे राज्यों का अन्त कर दिया। आगे चल कर इनमें स्वयं युद्ध होने लगे, और मगध ने उन सबको जीत कर एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया।

इनके अतिरिक्त बुद्धजी के समय में कुछ प्रजातन्त्र राज्य भी थे। इनमें से कुछ ने अपने संघ बना लिये थे। ऐसे संघों में मल्ल और वृज्जि मुख्य है। १६ महाजनपदों में ये दो यह भी थे। प्रजातन्त्र राज्यों में मोरिया, शाक्य, विदेह, मल्ल तथा लिच्छवि मुख्य थे। इनमें लिच्छवि राज्य बहुत दिनों तक काफी प्रभावशाली रहा। इन राज्यों में शासन का कार्य प्रजा की एक सभा द्वारा होता था। यही सभा अपना एक सभापति चुन लेती थी, जो राजा कहा जाता था। राज्य के मुख्य विषयों पर सभी की राय लेनी आवश्यक थी। मतभेद होने पर वोट लिए जाते थे और बहुमत के अनुसार निर्णय होता था। इन राज्यों को गणराज्य भी कहते थे। लेकिन मगध का प्रभुत्व बढ़ने पर इनमें से बहुत से प्रजातन्त्र राज्य नष्ट हो गये।

यूनान तथा भारत की सभ्य जातियों का सम्पर्क पहले से अधिक हो गया। इसके फलस्वरूप भारतीय विदेशी व्यापार के लिए नए मार्ग निकल आये। हमारे देशवासियों ने यूनानियों की मूर्तिकला तथा चिकित्साविधि से लाभ उठाया और उनको ज्योतिष, दर्शन तथा धर्म के क्षेत्र में अनेक बातें सिखाईं। यूनान के द्वारा यूरोप पर भी हमारी संस्कृति का प्रभाव जमा। हम आगे के पृष्ठों में पढ़ेंगे कि मौर्यकाल में यह सांस्कृतिक सम्पर्क किस प्रकार बढ़ता गया।

चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक जीवन—मगध के अन्तिम नंद राजा का नाम बौद्ध ग्रन्थों में धनानन्द लिखा है। शायद वह जैन था। उसका एक मन्त्री शकटार भी जैन था। अपने धन तथा पराक्रम के मद में वह ब्राह्मणों का अनादर और प्रजा पर अत्याचार भी करने लगा। ब्राह्मण उसे शूद्र समझ कर राज्य करने के लिए अयोग्य समझते थे। जिन क्षत्रियों का राज्य उसने छीन लिया था वे भी उससे असंतुष्ट थे। इनमें से एक क्षत्रिय राजकुमार पिप्पलिवन के मौर्यों का वंशज चन्द्रगुप्त था। नंद के यहाँ उसका पिता बंदी था। कुमार चन्द्रगुप्त देश से भाग निकला और बहुत दिनों तक जंगली प्रान्तों में घूमता फिरता पंजाब पहुँचा। कहते हैं कि वहाँ उसने सिकन्दर से भेंट की और उसे नंद पर चढ़ाई करने के लिए प्रोत्साहित किया। किसी कारण वश सिकंदर चन्द्रगुप्त से अप्रसन्न हो गया। चंद्रगुप्त को इसका पता लग गया और वह अपनी जान बचाकर वहाँ से भाग निकला। भागते भागते थककर वह एक स्थान पर सो गया। इतने में यूनानी उसके पकड़ने निकल आ गए। एकाएक एक शेर आ गया और उसने अपनी जीभ से चाट-चाटकर चंद्रगुप्त को जगा दिया। एक दूसरे अवसर पर उसे दुश्मनों ने घेर लिया। वह बड़े संकट में था कि किस प्रकार जान बचाए कि इतने में एक श्वेत हाथी दिखाई पड़ा। उसने आसानी से चन्द्रगुप्त को चढ़ जाने दिया और उसे लेकर वह यूनानियों से दूर भाग गया। चन्द्रगुप्त को अब विश्वास हो गया कि ईश्वर उसका रक्षक है और वह निश्चय ही एक बड़ा आदमी होगा। इसी समय उसकी भेंट चाणक्य नामक एक ब्राह्मण से हो गई। चाणक्य को कौटिल्य और विष्णुगुप्त के नामों से भी स्मरण किया जाता है। वह तक्षशिला के विश्वविद्यालय में [illegible] राजनीतिशास्त्र का प्रधान अध्यापक था। चाणक्य के मस्तिष्क और चंद्रगुप्त के पराक्रम ने यूनानियों को भारत छोड़ने पर विवश किया। चन्द्रगुप्त अब एक शक्तिशाली सम्राट हो गया। उसने इसी समय नंद से बदला लेने का निश्चय किया। नंद की प्रजा उससे

मौर्य साम्राज्य

असंतुष्ट थी ही। चंद्रगुप्त ने कुछ कर्मचारियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। युद्ध में चन्द्रगुप्त ने नंद की सेना को बुरी तरह हराया और नंद को अपने साम्राज्य तथा प्राणों से हाथ धोना पड़ा। यह सब लगभग ३२१ ई० तक हो गया।

चन्द्रगुप्त का साम्राज्य—चंद्रगुप्त ने मगध और पंजाब की विजय के बाद दूसरे कौन-से प्रदेश जीते और कब जीते, यह ठीक-ठीक मालूम नहीं है। लेकिन इतना निश्चित है कि उत्तरी भारत का प्रायः सभी भाग उसके अधीन हो गया था। दक्षिणी भारत में कुछ प्रान्तों पर भी शायद उसका अधिकार था। पंजाब और सिंध के ऊपर सन् ३०५ ई० पू० में सेल्यूकस ने आक्रमण किया। वह सिकन्दर का सेनापति था और यह सोचता था कि मैं सिकन्दर द्वारा जीते गये प्रान्तों पर आसानी से अपना अधिकार जमा लूँगा। लेकिन न तो अब प्रान्तों में देशद्रोही शासक थे और न पंजाब में फूट ही थी। इसके विपरीत अब यहाँ का शासक चन्द्रगुप्त मौर्य था, जो कि यूनानियों की युद्ध प्रणाली से भली भाँति परिचित था। वह अपनी विशाल सेना लेकर सेल्यूकस का सामना करने के लिए पहुँच गया। सेल्यूकस इस सेना को देखते ही डर गया। इसी समय उसके राज्य पर पश्चिम से एक दूसरे यूनानी शासक ने आक्रमण कर दिया था। सेल्यूकस ने इसलिए चन्द्रगुप्त से सन्धि करके अपनी जान बचानी चाही। चन्द्रगुप्त ने उससे ऐसी शर्तों पर संधि करने का प्रस्ताव किया जिससे सहसा सेल्यूकस दोबारा भारत की ओर आने का साहस न कर सके। इस भाँति उसने वर्तमान अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान और हिरात अपने साम्राज्य में मिला लिये। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ एक यूनानी राजकुमारी का विवाह भी कर दिया। कुछ लोग कहते हैं कि उसका नाम हेलेन था और वह सेल्यूकस की पुत्री थी। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को मित्रता के नाते १०० हाथियों का दस्ता भेंट किया। इसकी सहायता से सेल्यूकस पश्चिमी शत्रु पर विजयी हुआ। उसने चन्द्रगुप्त से बराबर मित्रता का व्यवहार रखा और उसके दरबार में अपना एक दूत मेगस्थनीज को भेजा।

चन्द्रगुप्त का शासन-प्रबन्ध—हिन्दूकुश पर्वत से लेकर बंगाल तक और हिमालय पहाड़ से लेकर लगभग मैसूर तक फैले हुए विशाल साम्राज्य की रक्षा, शान्ति तथा उन्नति के लिए चन्द्रगुप्त ने उचित शासन प्रबन्ध भी किया। हमें चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध के बारे में अधिकतर बातें मेगस्थनीज

की पुस्तक 'इण्डिका' और चाणक्य की पुस्तक 'अर्थशास्त्र' से मालूम हुई हैं। लेकिन दुर्भाग्य से 'इण्डिका' की कोई पूरी प्रति नही मिलती। हमें केवल उसके कुछ अंश दूसरे लेखको की पुस्तकों में उद्धरण के रूप में मिले है। अर्थशास्त्र भी चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का वर्णन करने के लिए नहीं रचा गया था। वह तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमें लेखक ने बताया है कि राजा को अपने राज्य का किस प्रकार संघटन करना चाहिए, किन अपराधो की क्या सजा देनी चाहिए, कर कितना लेना चाहिए और शांति तथा सुव्यवस्था के लिए क्या विशेष प्रयत्न करना चाहिए। लोग कहते हैं कि चूँकी इस ग्रन्थ का रचयिता चाणक्य चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री था इसलिए साधारण रूप से इसी के नियमो के अनुसार राज्य का प्रबन्ध किया गया होगा।

केन्द्रीय शासन सम्राट्—साम्राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी सम्राट् था। उसकी आज्ञा सभी को माननी पडती थी। उचित प्रबन्ध के लिए वही नियम बनाता था। इन नियमो को शासन कहते थे। राज्य के बड़े कर्मचारियों की नियुक्ति वही करता था और उनके कामों की देखभाल करता था। इस काय के लिए वह गुप्तचर नियुक्त करता था, जो उसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में सूचना देते थे। दूसरे देशो के दूतो से वही बातचीत करता था और वही दूसरे देशो के लिए अपना दूत भी नियुक्त करता था। साम्राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश भी राजा ही था। वह सेना के संगठन और युद्ध-संचालन की ओर भी पूरा ध्यान देता था। इस विषय में वह सेनापति से सलाह भी करता था।

मन्त्रिपरिषद्—यद्यपि सम्राट का सब कुछ करने का अधिकार था, तो भी उसे दूसरे व्यक्तियो की सलाह से ही काम करना पड़ता था। राज्य के बड़े कर्मचारी अमात्य और सचिव कहलाते थे। इनकी संख्या ठीक मालूम नहीं है। इनमें ८ मुख्य थे—

(१) पुरोहित—यह राजा को धार्मिक नियमो की शिक्षा देता था। पुरोहित के पद पर सदा ब्राह्मण ही रहता था।

(२) मन्त्रिन्—इसका काम कुछ हद तक प्रधान मन्त्री का सा था।

(३) सेनापति—सम्राट् के बाद यही सेना का सबसे बड़ा अफसर था।

(४) युवराज—इसे मन्त्रि परिषद् में इसलिए रखा जाता था जिससे कि राजसम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाय।

असंतुष्ट थी ही। चंद्रगुप्त ने कुछ कर्मचारियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। युद्ध में चन्द्रगुप्त ने नंद की सेना को बुरी तरह हराया और नंद को अपने साम्राज्य तथा प्राणों से हाथ धोना पड़ा। यह सब लगभग ३२१ ई० तक हो गया।

चन्द्रगुप्त का साम्राज्य—चन्द्रगुप्त ने मगध और पंजाब की विजय के बाद दूसरे कौन-से प्रदेश जीते और कब जीते, यह ठीक-ठीक मालूम नहीं है। लेकिन इतना निश्चित है कि उत्तरी भारत का प्रायः सभी भाग उसके अधीन हो गया था। दक्षिणी भारत के कुछ प्रान्तों पर भी शायद उसका अधिकार था। पंजाब और सिंध के ऊपर सन् ३०५ ई० पू० में सेल्यूकस ने आक्रमण किया। वह सिकन्दर का सेनापति था और वह सोचता था कि मैं सिकन्दर द्वारा जीते गये प्रान्तों पर आसानी से अपना अधिकार जमा लूंगा। लेकिन न तो अब आम्भी ऐसे देशद्रोही कायर थे और न पंजाब में फूट ही थी। इसके विपरीत अब वहाँ का शासक चन्द्रगुप्त मौर्य था, जो कि यूनानियों की सभी चालों से भली भाँति परिचित था। वह अपनी विशाल सेना लेकर सेल्यूकस का सामना करने के लिए पहुँच गया। सेल्यूकस इस सेना को देखते ही डर गया। इसी समय उसके राज्य पर पश्चिम से एक दूसरे यूनानी शासक ने आक्रमण कर दिया था। सेल्यूकस ने इसलिए चन्द्रगुप्त से सन्धि करके अपनी जान बचानी चाही। चन्द्रगुप्त ने उससे ऐसी शर्तों पर संधि करने का प्रस्ताव किया जिससे सहसा सेल्यूकस दोबारा भारत की ओर आने का साहस न कर सके। इस भाँति उसने वर्तमान अफग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान और हिरात अपने साम्राज्य में मिला लिये। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ एक यूनानी राजकुमारी का विवाह भी कर दिया। कुछ लोग कहते हैं कि उसका नाम हेलेन था और वह सेल्यूकस की पुत्री थी। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को मित्रता के नाते ५०० हाथियों का दस्ता भेंट किया। इसकी सहायता से सेल्यूकस पश्चिमी शत्रु पर विजयी हुआ। उसने चन्द्रगुप्त से बराबर मित्रता का व्यवहार रखा और उसके दरबार में अपना एक दूत मेगस्थनीज को भेजा।

चन्द्रगुप्त का शासन-प्रबन्ध—हिंदूकुश पर्वत से लेकर ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय पहाड़ से लेकर लगभग मैसूर तक फैले हुए विशाल साम्राज्य की रक्षा, शान्ति तथा उन्नति के लिए चन्द्रगुप्त ने उचित शासन प्रबन्ध भी किया। हमें चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध के बारे में अधिकतर बातें मेगस्थनीज

की पुस्तक 'इण्डिका' और चाणक्य की पुस्तक 'अर्थशास्त्र' से मालूम हुई हैं। लेकिन दुर्भाग्य से 'इण्डिका' की कोई पूरी प्रति नहीं मिलती। हमें केवल उसके कुछ अंश दूसरे लेखकों की पुस्तकों में उद्धरण के रूप में मिले हैं। अर्थशास्त्र भी चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का वर्णन करने के लिए नहीं रचा गया था। वह तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमें लेखक ने बताया है कि राजा को अपने राज्य का किस प्रकार संघटन करना चाहिए, किन अपराधों की क्या सजा देनी चाहिए, कर कितना लेना चाहिए और शांति तथा सुव्यवस्था के लिए क्या विशेष प्रयत्न करना चाहिए। लोग कहते हैं कि चूँकि इस ग्रन्थ का रचयिता चाणक्य चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री था इसलिए साधारण रूप से इसी के नियमों के अनुसार राज्य का प्रबन्ध किया गया होगा।

केन्द्रीय शासन सम्राट्—साम्राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी सम्राट् था। उसकी आज्ञा सभी को माननी पड़ती थी। उचित प्रबन्ध के लिए वही नियम बनाता था। इन नियमों को शासन कहते थे। राज्य के बड़े कर्मचारियों की नियुक्ति वही करता था और उनके कामों की देखभाल करता था। इस कार्य के लिए वह गुप्तचर नियुक्त करता था, जो उसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में सूचना देते थे। दूसरे देशों के दूतों से वहां बातचीत करता था और वही दूसरे देशों के लिए अपना दूत भी नियुक्त करता था। साम्राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश भी राजा ही था। वह सेना के संगठन और युद्ध-संचालन की ओर भी पूरा ध्यान देता था। इस विषय में वह सेनापति से सलाह भी करता था।

मन्त्रिपरिषद्—यद्यपि सम्राट् को सब कुछ करने का अधिकार था, तो भी उसे दूसरे व्यक्तियों की सलाह से ही काम करना पड़ता था। राज्य के बड़े कर्मचारी अमात्य और सचिव कहलाते थे। इनकी संख्या ठीक मालूम नहीं है। इनमें ८ मुख्य थे—

(१) पुरोहित—वह राजा को धार्मिक नियमों की शिक्षा देता था। पुरोहित के पद पर सदा ब्राह्मण ही रहता था।

(२) मन्त्रिन्—इसका काम कुछ हद तक प्रधान मन्त्री का सा था।

(३) सेनापति—सम्राट के बाद वही सेना का सबसे बड़ा अफसर था।

(४) युवराज—इसे मन्त्रि परिषद् में इसलिए रखा जाता था जिससे कि राजसम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाय।

(५) समाहर्ता—यह श्रय विभाग का श्रध्यक्ष था। वही सारे राजकर इकट्ठा करवाता था।

(६ सन्निधाता—कोषाध्यक्ष था। राज्य के श्राय-व्यय का हिसाब उसी के पास रहता था।

(७) प्रदेष्टृ यह न्याय विभाग तथा कुछ दूसरे छोटे विभागों की देख रेख करता था।

(८) प्रशास्तृ—वह पत्र व्यवहार करता था।

इन श्राठ में से भी प्रथम चार श्रधिक प्रभावशाली थे। वे सम्राट की श्रतरंग सभा के सदस्य थे। प्राय उन्हीं की सलाह से काम होते थे। पूरे मन्त्रि परिषद् की बैठक कम होती थी। सारा शासन कई विभागों में बंटा था श्रौर प्रत्येक विभाग के श्रलग-श्रलग श्रफसर थे।

प्रान्तीय सरकार—सारा साम्राज्य चार 'चक्रों' या बड़े सूबों में विभाजित था। चक्रों का शासन प्राय राजकुमारों को ही दिया जाता था। पाटलिपुत्र के श्रास-पासवाले चक्र का प्रबन्ध सम्राट स्वयं करता था। इन प्रांतो के नाम थे—

(१) उत्तरापथ—इसकी राजधानी तक्षशिला थी। इसमें श्रफगानिस्तान बिलोचिस्तान, हिरात, पंजाब, सिंध तथा कश्मीर का कुछ भाग था।

(२) मध्यप्रदेश श्रौर प्राच्यप्रदेश—इसकी राजधानी पाटलिपुत्र था। इसमें वर्तमान उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा का कुछ भाग सम्मिलित था।

(३) श्रवन्तिरथ—इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसके श्रन्तर्गत सौराष्ट्र, मध्यभारत, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश का कुछ भाग था।

(४) दक्षिणापथ—इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी। इसमें नर्मदा नदी की तराई तथा दक्षिण भारत का कुछ भाग शामिल था।

प्रत्येक बड़ा प्रांत या चक्र कई जनपदों में विभक्त था। इनमें से कुछ जनपदों में करद सरदार राज्य करते थे। शेष जनपदों पर सरकारी कर्मचारी शासन करते थे। उनको राजुक श्रौर महामात्र कहते थे।

स्थानीय शासन—प्रत्येक जनपद ४ भागों में विभक्त किया गया था श्रौर प्रत्येक भाग पर एक स्थानिक शासन करता था। स्थानिकों के नीचे गोप होते थे। गोपों के श्रधिकार में कई गांव रहते थे। गोप के नीचे प्रत्येक गांव में

एक ग्रामिक रहता था। ग्रामिक का पद गाँव के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को दिया जाता था। उसे वेतन नहीं मिलता था और गाँव के प्रबन्ध में उसे 'ग्रामवृद्ध' (गाँव के बड़े-बूढ़ों की सभा) की सलाह माननी पड़ती थी। गोपों से लेकर राजकुमारों तक शेष सभी अफसर सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे और उनको सलाह देने के लिए कोई प्रजाद्वारा निर्वाचित सभा या समिति नहीं थी।

सैनिक प्रबन्ध—इतने बड़े साम्राज्य की रक्षा के लिए एक विशाल सेना की आवश्यकता थी। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त के सैनिक-संगठन की बड़ी प्रशंसा की है। सेना का सारा प्रबन्ध एक बोर्ड को सौंप दिया गया था। उस बोर्ड के ३० सदस्य थे और सेनापति उसका प्रधान होता था। बोर्ड को ५ ५ सदस्यों की ६ समितियों में बाँट दिया गया था। पहली पदल सैनिकों का प्रबन्ध करती थी। चन्द्रगुप्त की सेना में ६ लाख पदल सिपाही थे। दूसरी, घुड़सवारों का प्रबन्ध करती थी। घुड़सवारों की संख्या ३०,००० थी। तीसरी रथ पर चढ़कर लड़नेवाले सैनिकों की देख रेख करती थी। रथों की संख्या ८००० थी। चौथी, हस्ति-सेना का प्रबन्ध करती थी। चन्द्रगुप्त के पास ९००० विशाल हाथियों की सेना थी। पाँचवीं, नावों तथा बजरों का प्रबन्ध करती थी। नदियों के पार करने का उचित प्रबन्ध करना इसी का काम था। छठी, रसद और सामान ढोने का प्रबन्ध करती थी। कहते हैं कि चन्द्रगुप्त की सेना में हजारों बैल और खच्चर इस काम के लिए रखे जाते थे। इसी समिति का काम वैद्यों तथा औषधियों का प्रबन्ध करना था। घायल अथवा बीमार सैनिकों की दवा का पूरा प्रबन्ध किया जाता था। सेना को वेतन सरकारी खजाने से दिया जाता था। सैनिकों की भर्ती के नियम राजा ही बनाता था। इस प्रकार सेना पर राजा का पूर्ण अधिकार रहता था और उसके विद्रोही होने की बहुत कम आशंका रहती थी। साम्राज्य की शांति तथा रक्षा के विचार से इनकी छोटी छोटी टुकड़ियाँ दुर्गपालों तथा अन्तपालों की अध्यक्षता में स्थान स्थान पर रख दी गई थीं। प्रांतीय राजधानियों तथा सीमान्त किलों में चुने हुए सैनिक रखे जाते थे।

नगरों का प्रबन्ध—मौर्य-काल में नगरों की संख्या काफी बढ़ गई थी। उनमें से कुछ तो पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, तक्षशिला, काशी, अयोध्या की भाँति बहुत बड़े थे और अन्य छोटे दर्जे के थे। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के शासन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सम्भव है दूसरे नगरों का प्रबन्ध भी इसी

प्रकार होता हो। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय पाटलिपुत्र एक विशाल नगर था। इसकी लम्बाई ६ मील और चौड़ाई १॥ मील थी। नगर का परकोटा लकड़ी का बना था। उसमें ६४ फाटक थे और स्थान-स्थान पर ५७० गुम्बज तथा मीनारें थीं। इस दीवार के बाहर एक ६०० फीट चौड़ी खाई थी। उसमें ३० हाथ गहरा पानी भरा रहता था। इसके कारण नगर पर अचानक हमला करना कठिन था। नगर के भीतर सुन्दर मकान बने थे। उनमें सबसे सुन्दर राजमहल था। इसके खंडहर ७०० वर्ष बाद तक बने थे। महल भी लकड़ी का बना था। उस पर सुन्दर बेल-बूटे कढ़े थे। महल में सैकड़ों चारदर वाजे, झूठे जीने आदि बने थे। इस कारण किसी नये आदमी का उसमें घुस कर किसी नियत स्थान पर पहुँचना असंभव था। उसके अन्दर आनेजाने वालों की पूरी तलाशी ली जाती थी। नगर का प्रधान अफसर नागरिक कहलाता था। सारे नगर को चार भागों में बाँटा जाता था और प्रत्येक भाग एक स्थानिक के अधीन रहता था। स्थानिकों के नीचे गोप रहते थे जो कि १०-१५ परिवारों की देख रेख करते थे। नगर में ३० व्यक्तियों का एक बोर्ड भी होता था। यह नागरिकों की सहायता पहुँचाता था। सुविधा के लिए इसके सदस्यों को ६ समितियों में बाँट दिया गया था। प्रत्येक समिति को अलग अलग काम सुपुर्द किया गया था। पहली, जन्म-मरण का हिसाब रखती थी। दूसरी, दस्तकारी का प्रबन्ध करती थी। तीसरी, चुंगी तथा दूसरे कर वसूल करती थी। चौथी, विदेशियों के ठहरने आदि का प्रबन्ध करती थी। और उनके ऊपर दृष्टि रखती थी कि वे क्या करते और कहाँ आते-जाते हैं। पाँचवीं, बाजारों में दुकानों तथा व्यापारियों का प्रबन्ध करती थी और उचित नियम बनाती थी। छठी सरकारी तथा दूसरे कारखानों की देख रेख करती थी। पुलिस का उचित प्रबन्ध था और नागरिकों की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था।

दण्ड विधान—मौर्य-साम्राज्य स्थापित हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। इसलिए षड्यन्त्र तथा अपराध कुछ अधिक होते थे। इनको रोकने के लिए चन्द्रगुप्त ने कड़ा दण्ड विधान बनाया था। छोटे-छोटे अपराधों पर हाथ-पैर काट लिए जाते थे। तालाब का बाँध तोड़ना, सरकारी कर्मचारियों को चोट पहुँचाना, राज्य की आय को हानि पहुँचाना, चोरी करना आदि अपराधों पर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। न्याय के लिए राज्य भर में न्यायाधीश नियुक्त थे। पुलिस

तथा गुप्तचरों की सहायता से अपराधों का पता लगाया जाता था। कभी-कभी अपराध मालूम करने के लिए कड़ी यातनाएँ भी दी जाती थी।

सरकारी आय—राज्य की मुख्य आय भूमि-कर से होती थी। किसानों को पैदावार का $\frac{1}{4}$ करके रूप में देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त जहाँ खेती के लिए तालाब बनाये गये थे वहाँ सिंचाई का कर भी लिया जाता था। यह उपज का $\frac{1}{5}$ होता था। इनके अतिरिक्त चुङ्गी, जगलात, खानों आदि से भी सरकार को आमदनी होती थी।

चन्द्रगुप्त की मृत्यु—चन्द्रगुप्त की मृत्यु किस समय हुई यह ठीक मालूम नहीं है। जैनियों के अनुसार चन्द्रगुप्त अपने राज्य-काल के अंतिम वर्षों में जैनी हो गया था। २९७ ई० पू० के लगभग उसने राज्य त्याग दिया और जैन धर्म के गुरु भद्रबाहु के साथ मैसूर की पहाड़ियों में जाकर तपस्या करने लगा। कुछ दिन बाद वह वहीं पर उपवास करके मर गया।

विन्दुसार अमित्रघात—चन्द्रगुप्त के संन्यास लेने पर उसका पुत्र विन्दुसार गद्दी पर बैठा। उसके राज्य की बहुत कम घटनाएँ मालूम है। उसने पश्चिम के यूनानी शासकों से मित्रता का व्यवहार बनाये रखा। उनमें से एक सीरिया का सम्राट एण्टियाकस था। बिन्दुसार ने उसके पास शराब, अञ्जीर और एक यूनानी दार्शनिक भेजने के लिए एक पत्र भेजा था। ऐण्टियाकस ने शराब तथा अञ्जीर के साथ लिख भेजा कि उसके देश में दार्शनिक नहीं बिकते।

विन्दुसार को 'अमित्रघात' अर्थात् शत्रुओं को मारनेवाला कहते थे। इससे मालूम होता है कि उसने कुछ विजयें प्राप्त की थीं। उसने नये देश जीते या नहीं, लेकिन यह निश्चय है कि उसके समय में दूरस्थ प्रान्तों में विद्रोह हुए थे और विन्दुसार ने उन सबको शान्त कर दिया था। ऐसा ही एक विद्रोह उसके पुत्र सुषीम के विरुद्ध तक्षशिला में हुआ और उसे शान्त करने के लिए उज्जयिनी से अशोक भेजा गया था। बिन्दुसार की मृत्यु २७२ ई० पू० में हुई।

अशोक—विन्दुसार की मृत्यु के बाद अशोकवर्धन अथवा अशोक राजा हुआ। वह उज्जयिनी तथा तक्षशिला का शासक रह चुका था और अपनी योग्यता का प्रमाण दे चुका था। लंका की पुरानी बौद्ध-पुस्तकों में अशोक को बहुत निर्दयी बताया गया है। कहते हैं कि अपने ९९ भाइयों का वध करके राज्य प्राप्त किया था। यह बात सच नहीं मालूम होती। बौद्धों ने शायद अपने धर्म की महत्ता को दिखाने के लिए ही यह झूठी कहानी गढ़ दी है। लेकिन यह

संभव है कि अशोक को अपने बड़े भाई से युद्ध करना पड़ा हो। सम्भवतः इस युद्ध के कारण ही अशोक का राज्याभिषेक २६६ ई० पू० में हुआ था।

कलिंग-विजय—राज्याभिषेक के ८ वर्ष बाद २६१ ई० पू० में अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की। कलिंग नंदों के काल में मगध के अधीन रह चुका था। चन्द्रगुप्त ने जब नंदों का नाश किया तब शायद कलिंग स्वतंत्र हो गया था। अशोक कलिंग को कई कारणों से जीतना चाहता था। एक तो कलिंग मगध के अधीन रह चुका था। दूसरे व्यापार के कारण वह एक धनी प्रान्त था। तीसरे अशोक विजय द्वारा अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहता था और अपनी प्रजा को दिखाना चाहता था कि वह एक पराक्रमी शासक है। इस युद्ध में डेढ़ लाख युद्ध बन्दी हुए, एक लाख मारे गये और कई लाख भूख तथा बीमारी से काल के ग्रास हुए। अशोक के ऊपर इस युद्ध का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे राज्य-लिप्सा के कारण इतने निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने युद्ध का अंत कर देने का निश्चय किया। उसने रण-भेरी को अपना सदा के लिए बंद कर दिया और उसके स्थान पर धर्म-घोष को देश-विदेश में पहुँचाया।

अशोक का धर्म—अशोक ने उस समय के प्रचलित धर्मों की शिक्षाओं में से सदाचार के नियमों को छाँट लिया और अपनी प्रजा को इन नियमों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह कहता था कि माता-पिता तथा गुरु की आज्ञा मानना, दीन दुखियों की सहायता करना, मित्रों तथा संबंधियों से स्नेह पूर्ण व्यवहार करना, सच बोलना और क्रोध, मद, मोह से बचना ही धर्म का सार है। जीव-मात्र पर दया करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। हमें किसी का भी वध करने का अधिकार नहीं है। इसलिए उसने यज्ञों की मनाही करवा दी। शिकार खेलना, मांस खाना उसने स्वयं बन्द कर दिया और दूसरों को भी बन्द करने का आदेश दिया। इन नियमों पर बौद्ध धर्म में विशेष जोर दिया गया था। इसी समय अशोक की उपगुप्त नामक बौद्ध भिक्षु से भेंट हो गई। उसके प्रभाव से अशोक बौद्ध हो गया, जैसा कि उसने अपने एक शिलालेख में स्वयं स्वीकार किया है। लेकिन अशोक को बौद्ध धर्म में सदाचार के नियम, जीवमात्र पर दया तथा इच्छाओं को रोकना और सादगी तथा पवित्रता से जीवन बिताना ही विशेष महत्त्व की बातें मालूम होती थीं। उसका कहना था कि यह बातें सभी धर्मों में है और इनको सभी को मानना चाहिए।

धर्म प्रचार—जिस धर्म की कल्पना अशोक ने की वह एक साधरण मानवधर्म था। वह स्वयं ब्राह्मणों तथा जैनियों का भी आदर करता था और उनको दान देता था, लेकिन उसकी कृपा बौद्ध भिक्षुओं पर विशेष रूप से रही और उसने उनकी सहायता से ही अपने विचारों को देश विदेश में फैलाने का प्रयत्न किया। धर्म की शिक्षा सब व्यक्तियों तक फैलाने और उनको सचमुच धार्मिक बनाने के लिए अशोक ने कई उपाय किये। उसने स्वयं घूम घूमकर भिक्षुओं की भाँति लोगों को धर्म की शिक्षा दी। उसने स्थान-स्थान पर मेले लगवाये और उनमें स्वर्ग के दृश्य दिखलाये और बतलाया कि सदाचारियों को ये सब सुख मिलेंगे। उसने एक नये प्रकार के कर्मचारी नियुक्त किये। उनका नाम धर्म महामात्र रखा गया। वे केवल प्रजा के चाल चलन की देख भाल करते थे और उसको धर्म की शिक्षा देते थे। दूसरे राजकर्मचारियों को भी शिक्षा दे रखी थी कि वर्ष में कुछ दिन वे प्रजा को धर्म की शिक्षा दें और उनके आचरण को सुधारें। जो कर्मचारी इस कार्य की ओर उचित ध्यान देते थे उन पर उसकी विशेष कृपा रहती थी। उसने धर्म की मूल शिक्षाओं को साम्राज्य के कोने-कोने में शिलाओं तथा स्तम्भों पर खुदवा दिया था, ताकि लोग उनको आसानी से जान सकें और उसका पालन कर सकें। प्रयाग के किले में अब भी एक ऐसा स्तम्भ सुरक्षित है। उसने २५२ ई० पू० में एक बौद्ध भिक्षुओं की सभा की। उसका प्रधान उपगुप्त था। उसमें बौद्धों के आपसी साम्प्रदायिक झगड़े ते किये गये और एक संयुक्त संघ बनाया गया। संघ का सारा खर्चा अशोक ने देना स्वीकार किया। इस संघ की ओर से उत्तर हिमालय की तराई, कश्मीर तथा गान्धार, दक्षिण में महाराष्ट्र, चेर, चोल, पाण्ड्य, केरल तथा सिंहल, पूरब में ब्रह्मा, और पश्चिम में सिरिया, फारस, मिस्र तथा यूनान आदि देशों में बौद्ध-भिक्षु भेजे गये। उन्होंने वहाँ पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ये राज्य के संघ से पाठशालाएँ तथा मनुष्यों और पशुओं के लिए अस्पताल खोलते थे। इसका प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ा और बहुत से लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को इसी कार्य के लिए लंका भेजा। अशोक ने भिक्षुओं के रहने के लिए बहुत से विहार बनवाये। महात्मा बुद्ध की हड्डियाँ आठ स्तूपों में बंद थीं। वे सभी पूर्वी भारत में थे। उन तक पहुँच सकना सबके लिये सुगम न था। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर सैकड़ों स्तूप बनवाये और उनमें बुद्धजी की हड्डियों का कुछ

भाग रखवा दिया। ऐसा ही एक स्तूप काशी के पास सारनाथ में बनवाया गया था। लेकिन अब वह नष्ट हो गया है। सांची तथा भारहुत में अब भी अशोक के स्तूप मौजूद हैं।

अशोक के धार्मिक विचारों का उसके शासन प्रबन्ध पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। उसके पहले के शासक केवल शांति स्थापित करके प्रजा को धनी, सुखी तथा उन्नतिशील बनाना चाहते थे। अशोक कहता था कि सारी प्रजा मेरे पुत्रों के समान है। मैं केवल उनके सांसारिक सुख की कामना नहीं करता, वरन् मैं चाहता हूँ कि उनका परलोक भी सुधरे। इसलिए वह उनको सदाचारी बनाना चाहता था। उसने अपने पवित्र तथा सादे जीवन द्वारा प्रजा को भी वैसा ही बनने के लिए प्रेरणा दी। दान विभाग का काम अब केवल विद्यार्थियों और साधुओं की ही सहायता करना नहीं था, वरन् उससे गरीबों की भी सहायता दी जाती थी। उसने दण्ड विधान पहले से कुछ हल्का कर दिया। मनुष्यों तथा पशुओं के लिए चिकित्सालय खोले गये। राज्य के धनी व्यक्तियों ने भी उसका अनुकरण किया। राज्य की ओर से ११ मील पर धर्मशालाएँ बनवा दी गई जहाँ गरीबों को मुफ्त भोजन भी मिलता था। सड़कों के किनारे सायेदार वृक्ष लगवाये गये। मीठे पानी के कुए खुदवाये गये। उसे प्रजा को सुखी रखने का इतना ध्यान रहता था कि उसने आज्ञा दे रखी थी कि चाहे वह सोता हो, स्नान करता हो, या भोजन करता हो, लेकिन उसे तुरन्त प्रजा की फरियाद की सूचना दी जाय। उसने राजकर्मचारियों को चेतावनी दे रखी थी कि यदि वे प्रजा पर अत्याचार करेंगे तो उनको कठोर दण्ड मिलेगा।

अशोक की महत्ता—सचमुच अशोक हमारे इतिहास का एक जगमगाता हुआ हीरा है, जिससे संसार के किसी शासक की तुलना नहीं की जा सकती। भारतीय तथा विदेशी इतिहासकार उसकी प्रशंसा करते थकते नहीं। उसने राजा के कर्तव्य का जितना उच्च आदर्श बनाया था वह बहुत ही सराहनीय है। उसने राजा होकर भी भिखारी की तरह जीवन बिताया। उसने धर्म प्रचार करते हुए भी किसी धर्म पर अत्याचार नहीं किया, वरन् सभी का आदर-सत्कार किया। वह लोगों के धन तथा राज्य की कामना छोड़कर उनके स्नेह को अधिक मूल्यवान समझता था। हार होने के पश्चात् तो बहुत से राजाओं ने युद्ध बंद कर दिया है, लेकिन युवावस्था में ही विजय लाभ करने पर अपनी इच्छा से 'भेरी घोष' का अन्त करने वाला संसार में एकमात्र

ूक अशोक ही हुआ है। दूसरे देशों के साथ उसने सदा मैत्री का भाव ा। उनके राज्य अथवा धन को प्राप्त करने के स्थान पर वह अपने रूपये वहाँ की प्रजा के सुख के लिए चिकित्सालय खुलवाता था। इन सब बातों देखते हुए यह कहने में कोई सकोच नहीं मालूम होता कि वह अवश्य ही वतात्मा का प्रिय' रहा होगा।

साम्राज्य का पतन २३२–१८४ ई० पू०—अशोक ने धर्म प्रचार की र विशेष ध्यान देकर साम्राज्य की सैनिक शक्ति को कुछ क्षीण कर दिया। सकी धार्मिक नीति से सभव है कि कुछ ब्राह्मण भी असतुष्ट रहे हों, क्योंकि उसने पशुबलिवाले यज्ञ भी बद करवा दिये थे। दूसरा कारण साम्राज्य के तन का यह भी था कि अशोक के उत्तराधिकारी इतने योग्य नहीं थे कि उस शाल साम्राज्य की रक्षा कर सकते। तीसरा कारण अद्ध-स्वतन्त्र राज्यों का द्रोह था। अशोक तथा चन्द्रगुप्त ने बहुत से राजाओं को अपने राज्यों पर ासन करने का अधिकार दे दिया था। केन्द्रीय शासन शिथिल होने पर ऐसे ज्य स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगे। चौथे, पुष्यमित्र शुङ्ग, जो कि हद्रथ का मन्त्री था, स्वय शासक बन बैठा। इस प्रकार मौर्य-साम्राज्य का न्त हो गया।

मौर्यकालीन सभ्यता—मौर्य शासकों के समय में प्रजा सुखी थी। कृषि, ापार, कारीगरी प्रजा के मुख्य उद्यम थे। इस समय में लकडी, पत्थर तथा ाने चाँदी के बहुत अच्छे कारीगर थे। चन्द्रगुप्त के महल का जो वर्णन मिलता उससे उस समय के लोगो की कारीगरी का पता चलता है। अशोक ने बौद्ध र्म के प्रचार के लिए बहुत से शिला स्तम्भ बनवाये और जगह-जगह पर उनको ्थापित कराया। उन पर की हुई पालिश इतनी सुन्दर है कि वह अभी तक सी ही बनी है। सारनाथ के स्तम्भ के ऊपरी भाग पर जो सिंहों की मूर्तियाँ नाई गई थीं उनके लिए कारीगर ने ऐसे सफेद पत्थर का प्रयोग किया है जसमें स्वाभाविक काली धारियाँ हैं। उनके कारण सिंहों की आकृति और ्वाभाविक हो गई है। इसी समय में साँची का स्तूप तथा दूसरे अनेक स्तूप ानवाये गऐ। अशोक के काल में 'बराबर' पहाडा की चट्टानों को काटकर ुफाएँ बनाई गई थीं। ये गया के पास हैं। अशोक ने उन्हें आजीविका जैनो के लिए बनवा दिया था। उन गुफाओं का बनना प्रशंसा के योग्य तो है ही उसस

भी बढ़कर है उनकी दीवारों और छतों पर की गई पालिश। यह आज भी शीशे की तरह चमकती है।

कला की उन्नति के साथ-साथ पाली साहित्य ने बहुत उन्नति की। अशोक के शिलालेख पाली भाषा में हैं। वे स्थान-स्थान पर पाये गये हैं। इन शिलालेखों से पता चलता है कि उस समय लोग काफी पढ़े लिखे होंगे, नहीं तो यह लेख बेकार ही होते, क्योंकि उन सबको सर्वसाधारण के पढ़ने के लिए ही खुदवाया गया था। मौर्य-काल में ही बौद्धों के धर्म-ग्रन्थों की रचना हुई। जैन धर्म की कुछ पुस्तकें भी इसी समय लिखी गईं।

कला तथा साहित्य की उन्नति उसी समय होती है जब देश में सुख तथा शांति का वास होता है। मेगस्थनीज के वृत्तांत से पता चलता है कि प्रजा के पास धन धान्य की कमी नहीं थी। मौर्य शासक प्रजापालक सम्राट थे और उसकी उन्नति के लिए सब कुछ करने को तैयार रहते थे। यद्यपि उस समय दण्ड कठोर और गुप्तचरों का प्रयोग काफी था, तो भी मेगस्थनीज लिखता है कि अपराध बहुत कम होते थे। लोग सदाचारी थे। बहुधा लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे और उनका सामान बराबर सुरक्षित बना रहता था। विदेशी यात्रियों की सुविधा तथा रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाता था। उनके बीमार पड़ने पर सरकारी वैद्य उनका इलाज करते थे। यदि किसी कारण उनकी मृत्यु हो जाती तो उनका सामान उनके वारिसों को भेज दिया जाता था।

व्यापार की उन्नति का इससे पता चलता है कि पाटलिपुत्र की ६ प्रबन्धक समितियों में से ३ व्यापार, कारीगरी और दस्तकारी का ही प्रबन्ध करती थीं। सरकार की ओर से नियम बना दिये गये थे कि लोग गुट बनाकर सामान का दाम बढ़ा न दें। सरकार की ओर से प्रजा के सभी कामों की देख भाल की जाती थी, लेकिन इसका उद्देश्य जनता को कष्ट पहुँचाना नहीं, वरन् उनको अधिक-से अधिक सुविधा तथा सुख देना था। अशोक के समय में प्रजा-हित की ओर अधिक ध्यान रखा गया।

जाति-व्यवस्था अब दृढ़ होती जा रही थी। छोटे वर्णों के लोगों में विवाह करना बुरा समझा जाता था। पंजाब में स्त्रियाँ बेची भी जाती थीं और विधवाएँ सती भी होती थीं। इससे पता चलता है कि स्त्रियों की दशा बराबर गिरती जा रही थी। बहु विवाह तथा बाल विवाह की प्रथाएँ भी चल पड़ी थीं।

अशोक ने बहुत से अंधविश्वासों तथा बुरी प्रथाओं को भी रोक दिया और समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। उसी की प्रेरणा तथा बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रचार के कारण लोग मांस कम खाने लगे थे। धार्मिक विचारों में लोग उदार थे। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आजीविका आदि सभी सम्प्रदायों के साधु समाज में पूज्य समझे जाते थे और लोग उनकी आवभगत करते थे। विद्वानों में शास्त्रार्थ होते थे, लेकिन उनका उद्देश्य सिर फोड़ना नहीं, वरन् ज्ञान बढ़ाना रहता था। विदेशियों को भारतीय बनाने की प्रथा थी। इन सब बातों से पता चलता है कि मौर्यकालीन समाज सुखी, शांत, धनी, उन्नत, सदाचारी तथा उदार था। शासन की सफलता का यह सबसे सुन्दर प्रमाण है।

मुख्य तिथियाँ

चन्द्रगुप्त मौर्य का राजा होना	३२१ ई० पू०
सेल्यूकस से संधि	३०५ ई० पू०
बिन्दुसार का गद्दी पर बैठना	२९७ ई० पू०
बिन्दुसार की मृत्यु	२७२ ई० पू०
अशोक का राज्याभिषेक	२६९ ई० पू०
कलिंग-विजय	२६१ ई० पू०
बौद्धों की तीसरी सभा	२५२ ई० पू०
अशोक की मृत्यु	२३२ ई० पू०
अशोक के उत्तराधिकारी	२३२–१८४ ई० पू०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था? उसको एक विशाल साम्राज्य बनाने में किन बातों से सहायता मिली?
(२) चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का वर्णन करो।
(३) अशोक के साम्राज्य की सीमायें क्या थी? उसने कलिंग के अतिरिक्त दूसरे देश क्यों नहीं जीते?
(४) अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए क्या उपाय किए? उसकी धार्मिक नीति का राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा?
(५) मौर्य साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे?
(६) मौर्यकाल की सामाजिक दशा तथा सभ्यता का वर्णन करो।

अध्याय ७

ब्राह्मण राजवंश तथा कनिष्क का साम्राज्य

ब्राह्मण राजवंश—अशोक के उत्तराधिकारियों ने जब सेना की ओर उचित ध्यान न दिया तो विदेशी शासकों की हिम्मत भारत पर आक्रमण करने की पड़ने लगी। उस समय देश की स्वतंत्रता नष्ट होने की बहुत आशंका थी। उस समय के बहुत से क्षत्रिय राजे जैन या बौद्ध धर्म के प्रभाव में आकर सेना की ओर से उदासीन होने लगे थे। ब्राह्मणों ने देश रक्षा के लिए शास्त्रों का अध्ययन छोड़ शस्त्र उठाना आवश्यक समझा। फलतः मगध के अगले तीन राजवंश ब्राह्मण जाति के हुए। इनमें सबसे अधिक प्रतापी राजवंश आंध्र सातवाहनों का था, जिसका विस्तार उत्तर भारत से लेकर दक्षिण तक था। तथापि अशोक की मृत्यु और कनिष्क के राज्याभिषेक के बीच के समय में भारतवर्ष में बहुत राजनीतिक उथल-पुथल हुई।

यूनानी तथा शक राजवंश—भारत की पश्चिमी सीमा पर भी बड़ी अशांति फैल रही थी। सेल्यूकस ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी वह टूट रहा था। अस्तु वहाँ भी नये राजवंश बनने बिगड़ने लगे। कुछ यूनानी भारत पर चढ़ आते थे। बौद्ध-साहित्य में प्रसिद्ध यूनानी शासक मिलिन्द इन्हीं में से एक था।

भारत की पश्चिमी सीमा के उत्तर-पूर्व की ओर मध्य एशिया में जातियों की उथल-पुथल मची हुई थी। वहाँ की स्थिति के कारण पहले शकों ने प्रस्थान किया और कई स्थानों पर रुकते हुए वे अन्त में भारत में आकर बस गये। उनके शासकों को क्षत्रप तथा महाक्षत्रप कहते थे। शकों का प्रभाव एक समय सारे पश्चिम भारत पर फैल गया था और मध्यदेश में मथुरा पर भी उनका अधिकार हो गया था। यहाँ बसने के उपरान्त शकों ने भारतीय धर्म स्वीकार कर लिया और भारतीय जनता के अंग हो गये।

यूची कुशान—शकों को आगे ढकेलनेवाले यूची जाति के लोग थे। हूणों के दबाव के कारण यूची अपना घर छोड़ कर बैक्ट्रिया में बस गये। यहीं पर उनके पाँच टुकड़े हो गये जिनमें से एक का नाम कुशान था। कुशान जाति के

नेता ने दूसरे भागों पर भी अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार यूची जाति की शक्ति कुशानों की अधीनता में फिर संगठित हो गई।

कनिष्क—कुशान शासकों में सबसे प्रभावशाली सम्राट् कनिष्क हुआ है। उसका राज्याभिषेक ७८ ई० में हुआ। उसने उसी समय एक नया संवत् भी चलाया। इस संवत् का प्रचार आगे चलकर मालव, गुजरात तथा सौराष्ट्र में बहुत अधिक हुआ। वहाँ पर शकों का राज्य था। इसलिए इसी संवत् को आगे चलकर शक संवत् भी कहने लगे।

कनिष्क का साम्राज्य—कनिष्क ने अपने साम्राज्य को बढ़ाने के लिए चीन तथा भारत पर आक्रमण किये। चीन के सम्राट से उसने कई बार युद्ध किया। पहले तो उसकी हार हुई, लेकिन बाद में वह विजयी हुआ। चीन के राजकुमार उसके यहाँ बंधक की तरह रहने लगे और यारकन्द, काशगर तथा खोतन उसके साम्राज्य में शामिल हो गये। भारतवर्ष में उसने पंजाब तथा उत्तरप्रदेश के अतिरिक्त कश्मीर, सिंध तथा बिहार का कुछ भाग अवश्य जीत लिया था। पूरब में शायद पाटलिपुत्र उसके राज्य की सीमा से ठीक बाहर था। राजस्थान तथा मध्यभारत का भाग उसके अधीन था या नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। इस विशाल साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर) थी।

कनिष्क और बौद्ध धर्म—कनिष्क को हमारे देश के इतिहास में इस कारण महत्त्व मिल गया है, क्योंकि उसका बौद्ध धर्म से सम्बन्ध है। उन अनेक विदेशी शासकों की तरह, जो भारत भूमि पर विजय करने के बाद यहीं की सभ्यता के रंग में रँग गये थे, कनिष्क भी भारतीय दर्शन तथा धर्म का विशेष आदर करता था। उसने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया और उसके प्रचार के लिए काफी प्रयत्न किया। इस बात में कनिष्क अशोक के समान है। लेकिन उसमें और अशोक में एक महान् अन्तर है। अशोक ने बौद्ध धर्म मानने के बाद एक भी युद्ध नहीं किया और अपनी सारी शक्ति बौद्ध धर्म के प्रचार में ही लगा दी। कनिष्क बौद्ध होने के बाद भी युद्ध करता रहा। कहते हैं कि उसकी मृत्यु एक आक्रमण के समय ही हुई थी। दूसरे, कनिष्क बुद्धजी के अतिरिक्त सूर्य तथा यूनानी देवताओं का भी आदर करता था। इतना अन्तर होते हुए भी कनिष्क ने बौद्ध धर्म की जो सेवायें की वे प्रशंसा के योग्य हैं।

उसकी प्रेरणा से कश्मीर देश में कुण्डलवन नामक स्थान पर ५०० बौद्ध भिक्षुओं की एक सभा की गई। उसके प्रधान संचालक वसुमित्र और अश्वघोष थे। इस सभा ने हीनयानी तथा महायानी बौद्धों के झगड़ों का निपटारा करके बौद्धों को एक संघ में मिलना चाहा, लेकिन इस प्रयत्न में सफलता नहीं मिली। फिर भी सभा ने तीन मुख्य काम किये। इसने महायान विचारवाले सभी बौद्धों का एक सगठन तैयार कर दिया। उनकी सहायता के लिए सभा ने बुद्धजी की शिक्षाओं की टीकाएँ तैयार की और उनको ताँबे के पत्रों पर खुदवा कर वहीं गड़वा दिया। तीसरे, इसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए दूर-दूर देशों में भिक्षु भेजे। कनिष्क ने उनके खर्च के लिए काश्मीर प्रान्त की आय सभा को दे दी। उसकी सहायता से मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का प्रभाव काफी बढ़ गया। कनिष्क ने भारत में कई विहार तथा स्तूप बनवाए। इस प्रकार कनिष्क के उद्योग से बौद्ध धर्म की उन्नति में बहुत सहायता मिली। ब्राह्मण सम्राटों की उपेक्षा से बौद्ध धर्म की जो हानि हुई थी वह कनिष्क की सहायता से पूरी हो गई और उसका प्रचार विदेशों में पहले से अधिक हो गया।

कुशानवंश का पतन—कनिष्क के बाद जो सम्राट हुए उनमें हुविष्क काफी शक्तिशाली था। उसने अपने पिता के साम्राज्य की भरसक रक्षा की लेकिन सिंध तथा मालवा उसके राज्य से निकल गये। उसके बाद जो शासक हुए वे साम्राज्य के पतन को रोक न सके। सौराष्ट्र तथा मालवा के शकों का विरोध, मध्यदेश में नागवंशी तथा दक्षिण-पूर्वी पंजाब और उत्तरी राजस्थान में यौधेय राजाओं की उन्नति और कुशान सम्राटों की अयोग्यता ही कुशान साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण हैं।

इस काल में ब्राह्मणों ने धीरे-धीरे फिर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। शुंग, काण्व तथा सातवाहन सभी ब्राह्मण-वंश थे। क्षत्रियों का तो इस काल में जैसे लोप ही हो गया था। राजघराने या तो ब्राह्मणों के थे या विदेशियों के। ब्राह्मणों ने अपने आचरण तथा अपने धर्म में आवश्यक परिवर्तन द्वारा साधारण जनता का विश्वास और सम्मान फिर प्राप्त कर लिया। इसी समय वर्णाश्रम धर्म की रक्षा तथा समाज में व्यवस्था रखने के लिए 'मानवधर्म-शास्त्र' या 'मनु-स्मृति' की रचना हुई। मनु-स्मृति से हमें उस समय के सामाजिक जीवन का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। जाति के नियम कड़े होने लगे थे। अब जाति का निर्णय कर्म से नहीं वरन् जन्म से होता था। लेकिन अभी आजकल जैसी छुआछूत और खान-पान, विवाह आदि पर रोक नहीं

थी। ब्राह्मण राजा पुलुमावि सातवाहन ने अपना विवाह रुद्रदामा की कन्या से किया था और रुद्रदामा हाल में ही हिन्दू बनाया गया था। शको, यूनानियो तथा कुशानों के नामो, सिक्को, लेखों आदि से हमें यह भी मालूम होता है कि उस समय के हिन्दू धर्म में विदेशियो को पचाने की शक्ति काफी मात्रा में विद्यमान थी। उन्होंने विदेशी विजेताओ को अपनी सभ्यता से इस प्रकार ओतप्रोत किया कि वे शीघ्र ही देशी हो गये और उनका आचरण दूसरे भारतीय नरेशो के अनुरूप हो गया। उस समय के धार्मिक नेताओ (बौद्ध, ब्राह्मणों) की बुद्धिमत्ता का यह ज्वलत प्रमाण है।

सामाजिक रीति रिवाजो में भी काफी परिवर्तन हो गया था। विधवा विवाह अब बुरा समझा जाता था और उसकी मनाही थी। बहु विवाह तथा बाल विवाह की प्रथा चली आती थी। पुराने आर्य संस्कारो में से बहुत से अब भी होते थे। बहुतेरे बौद्ध और जैन भी उन सस्कारो को वैदिक रीति के अनुसार मानते थे। स्त्रियो की दशा पहले से खराब थी। उनको अब साधारण रूप से अन्त पुर में (मकानो के भीतर) ही रहना पडता था। इस प्रकार पर्दा प्रथा का आगमन हुआ। स्त्रियो के कतव्य ऐसे बनाये गये जिससे व पुरुषो की सेविकाएँ बन गईं। पर कहा-कहीं यह लेख भी मिलता है कि जिस प्रकार स्त्री का धर्म है पति की सेवा करना उसी प्रकार पति का कर्तव्य है स्त्री का आदर करना, क्योंकि जहाँ स्त्रियो का आदर होता है वहाँ देवता निवास करते हैं।

आर्थिक दशा—समाज धन-धान्य से पूर्ण था। राजा प्रजा के सुख का उचित ध्यान रखते थे। किसानो की सुविधा के लिए सिंचाई का विशेष प्रबन्ध था। दक्षिण में पाण्ड्य, चोल आदि राजाओं ने और उत्तर भारत में मौर्यों, शुङ्गो तथा शको ने नदियों में बाँध बनाकर बडी बडी झीलें बनाई थी जिससे खेती सींचने का प्रबन्ध किया जाता था। कहीं-कहीं पर वर्षा का पानी इकट्ठा करने के लिए बड़े-बड़े तालाब बनवा दिये गये थे। इन झीलों तथा तालाबों से खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए नहरें और नालियाँ बनाई गयी थीं। किसान से उपज का ⅙ या ⅛ कर के रूप में लिया जाता था। अकाल के समय प्रजा की सहायता करने के लिए विदेशी शासक भी स्थान-स्थान पर अन्न इकट्ठा रखते थे। फलत कृषि उन्नत दशा में थी और प्रजा सुखी तथा समृद्ध थी।

कृषि के अतिरिक्त इस काल में व्यापार भी बहुत उन्नत दशा में था। देश के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान ले जाने के लिए पर्याप्त साधन थे। चुङ्गी कम ली जाती थी। प्राय सभी राजे देश विदेश के व्यापारियों की सुविधा का उचित ध्यान रखते थे। उस समय भारतवर्ष का व्यापार प्राय समस्त ज्ञात संसार से होता था और भारत ही उस व्यापार का केन्द्र था। हमारे देश के व्यापारी थल तथा जल के मार्ग से मध्य एशिया, फारस, मेसोपोटामिया, सीरिया, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, यूनान और यूरोप से तथा पूरब में ब्रह्मा, अनाम, स्याम, हिन्दचीन, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो आदि से व्यापार करते थे। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का सोना सा रोम से ही इस देश में आता था। प्राय सभी देशों को इसी प्रकार भारत की बनी चीजों को प्राप्त करने के लिए अपने देश का सोना-चाँदी या बदले का सामान देना पड़ता था। हमारे देश के कारीगर उस समय सूत ऊन तथा रेशम के सुन्दर कपड़े, सोने चाँदी के सुन्दर बर्तन और आभूषण, हाथीदाँत, पत्थर और धातुओं की अनेक चीजें बनाने में बहुत दक्ष थे। मसाले, मोती तथा शृंगार की विविध सामग्री भी विदेशों में भेजी जाती थी।

व्यापार ने इतनी उन्नति की थी कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में बड़े-बड़े नगर बन गये थे। नगरों में व्यापारियों ने अपने गण बना लिये थे। इनसे उनके आर्थिक हितों की रक्षा होती थी। कारीगरों ने भी अपने गण बना रखे थे। यह गण बैंकों का भी काम करते थे। उनका ६ प्रतिशत या १० प्रतिशत सूद भी मिलता था। सिक्कों का काफी चलन था। यूनानियों के सम्पर्क से हमारे देश के सिक्के अधिक सुन्दर और अच्छे बनने लगे थे। सिक्के सोने, चाँदी तथा ताँबे के होते थे। सिक्कों के होने से व्यापार में बड़ी सुविधा होती थी।

उस समय भारत में कई बड़े बन्दरगाह थे जहाँ भारतीय जहाजी बेड़ा को विश्राम मिलता था और देश विदेश के जहाजों का आना जाना लगा रहता था। इन बन्दरगाहों में भड़ौच, सोपारा, कावेरीपट्टन आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। भारतीय नरेश सामुद्रिक डाकुओं का दमन करके जल-मार्गों को निष्कंटक बनाए रखने का उचित प्रबन्ध करते थे। भारतीय व्यापारियों ने सुदूर देशों में जाकर अपनी अपनी बस्तियाँ बना ली थीं और धीरे धीरे न केवल वहाँ के व्यापार पर ही अपना अधिकार कर लिया था, वरन् उन देशों में अपनी सभ्यता, कला तथा राजसत्ता का भी प्रभाव डाला था। इस प्रकार भारतीयों के अनेक उपनिवेश

बन गये थे। उन उपनिवेशों में से मुख्य जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, अनाम तथा काम्बोडिया पूरब में थे और मिश्र, सीरिया, यूनान, खोतन तथा काशगर पश्चिम में थे। कुछ स्थानों पर भारतीयों के ही हाथ में शासन का अधिकार भी आ गया था। शेष स्थानों में केवल व्यापार उनके हाथ में था। इन व्यापारियों के द्वारा भारतीय सभ्यता का प्रचार सारे ज्ञात जगत् में हो गया था।

धार्मिक-दशा—मौर्यकाल की भाँति इस समय भी देश के मुख्य धर्म तीन थे—(१) ब्राह्मण धर्म, (२) बौद्ध धर्म और (३) जैन धर्म। लेकिन इन तीनों ही धर्मों के अन्तर्गत नए सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे और उनका स्वरूप बदलता जा रहा था। राजाओं का झुकाव ब्राह्मण धर्म की ओर अधिक हो रहा था। लेकिन वे जैनियों तथा बौद्धों को भी दान देते थे और उनके धार्मिक स्थानों की रक्षा के लिए जागीरें देते थे। ब्राह्मणों ने शिव तथा विष्णु की पूजा को बहुत आकर्षक बनाया। बौद्धों में महायान और हीनयान दो मुख्य सम्प्रदाय हो गये। सभी धर्मों में मूर्तिपूजा और कथाओं का प्रचार बढ़ा। बौद्धों और ब्राह्मणों ने अपने धर्मों के प्रचार के लिए बहुत प्रयत्न किये। वे देश के बाहर भी जाकर अपने धर्म का प्रचार करते थे। उनके प्रयत्न के कारण विदेशों में भारतीय धर्म, साहित्य तथा सभ्यता का खूब प्रचार हुआ।

कला—धार्मिक जोश तथा धार्मिक प्रचार के कारण कला की भी उन्नति हुई। बहुत से मन्दिरों, विहारों, चैत्यों, स्तूपों तथा स्तम्भों का निर्माण किया गया। पत्थर की मूर्तियाँ बनाने और पत्थर पर खुदाई करने में भी बहुत उन्नति हुई। मकानों, मन्दिरों विहारों आदि में अब सजावट का काम अधिक अच्छा होने लगा। भारहुत और अमरावती में जो स्तूप बने थे उनके चारों ओर पत्थर के घेरे बनाये गये। पुराने जमाने में जो यात्री तीर्थ करने जाते थे वे पवित्र स्थानों की परिक्रमा भी करते थे। इस कारण इन घेरों का काफी महत्त्व है। इस काल में जो पत्थर का घेरा स्तूपों के चारों ओर बनाया गया उसमें बुद्धजी के जीवन की घटनाओं को चित्रित करनेवाले दृश्य भी खोद गये। धार्मिक दृष्टि से यह खुदाई प्रचार-कार्य में सहायक होती थी। कला की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है। चित्रों को खोदने में बड़ी कुशलता दिखाई गई है। ये न केवल कथानकों का ठीक-ठीक व्यक्त करते हैं, वरन् मुख्यतया जानवरों के अंग प्रत्यंग बनाने में भी दक्षता प्रकट करते हैं। कनिष्क ने इसी काल में

एक लकड़ी का स्तूप बनवाया था, जो बाद में नष्ट हो गया। कुछ राजाओं और धनी व्यक्तियों ने विशाल लाटें बनवाईं और उन पर अपने इष्ट देवता के सम्बन्ध के चित्र खुदवाए। नासिक और कार्ले के प्रसिद्ध चैत्य इसी काल में बने। इस समय के लोगों ने साधुओं के रहने के लिए कुछ एकांत पहाड़ी स्थानों में गुफाएँ बनवा दीं। इन गुफाओं को बनाने में भी बहुत दक्षता दिखाई गई है। पहाड़ को काट कर उसी के पत्थर में खम्भे, दरवाजे, तोरण, छतें आदि बना ली गई हैं। अनावश्यक पत्थर काट कर निकाल दिये गये हैं। दीवालों और छतों को खूब चिकना कर दिया गया है और उन पर सुन्दर पालिश की गई है जिसके कारण वे शीशे की भाँति चमकती हैं। *यह गुफा निर्माणकला मौर्यों के ही* समय से आरम्भ हो गई थी। इस काल में उसमें एक विशेष उन्नति की गई। उसमें ऐसे रंगों का प्रयोग किया गया है कि इतनी शताब्दियों के बाद भी वे धूमिल नहीं पड़े हैं। ऐसे चित्रोंवाली गुफाएं कुछ तो निजाम राज्य में अजन्ता में है और कुछ उड़ीसा के सरगुजा राज्य में। जो चित्र खींचे गये हैं वे बहुत ही भावपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त इस समय में मूर्तिकला में भी बहुत उन्नति की गई। मथुरा, सारनाथ, तक्षशिला और अमरावती में अच्छी मूर्तियाँ बनती थीं। तक्षशिला और मथुरा की मूर्तिकला पर यूनानियों का प्रभाव मालूम होता है। इस काल के पहले की जितनी मूर्तियां हैं वे भद्दी और अप्राकृतिक हैं। शरीर की सुडौलता और भावपूर्णता की दृष्टि से इस समय की मूर्तियां अधिक अच्छी हैं। जिन मूर्तियों को कपड़ा उढ़ाया गया है वे बहुत ही सुन्दर हैं। कनिष्क की शिरहीन एक ऐसी ही मूर्ति मथुरा के निकट मिली है।

पत्थर के कारीगरों के अलावा सोने, चाँदी तथा हाथीदाँत की कारीगरी में भी बहुत उन्नति की गई थी और भारतीय कारीगरों का नाम पूर्वी तथा पश्चिमी देशों में दूर-दूर तक विख्यात था।

साहित्य—धर्म की प्रेरणा से जिस प्रकार कला की उन्नति हुई उसी प्रकार साहित्य को भी प्रोत्साहन मिला। बौद्धों की कुछ जातक कथाएँ इसी समय रची गईं। कनिष्क का समकालीन अश्वघोष संस्कृत भाषा का सुन्दर कवि था। अश्वघोष, नागार्जुन और वसुमित्र ने बौद्ध-साहित्य का भण्डार बढ़ाया। कलिंग के सम्राट खारवेल के कारण जैन-साहित्य का भी विस्तार हुआ। ब्राह्मणों ने मनुस्मृति की रचना की। महाभारत तथा रामायण को नये सिरे

रामेश्वरम् के मंदिर का सभा भवन

गुप्तवंश की स्थापना—इस समय मगध में गुप्त नाम का एक छोटा सरदार था, जो अपने को महाराज कहता था। उस समय स्वाधीन राजे कम से-कम अपने को महाराजाधिराज कहते थे। इसलिए मालूम होता है कि गुप्त किसी दूसरे राजा का सामन्त रहा होगा। गुप्त के वंश में चन्द्रगुप्त नामी प्रथम प्रभावशाली व्यक्ति हुआ। उसने लिच्छवि वंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह किया और लिच्छवियों की सहायता से धीरे-धीरे उसने सारा मगध, तिरहुत और अवध अपने वश में कर लिया। प्रयाग उसके राज्य की पश्चिमी सीमा पर था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण की और अपने राज्याभिषेक की तिथि सन् ३१६ – ३२० ई० से एक नया संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से बहुत दिनों तक चलता रहा। सन् ३३० ई० के लग भग चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु हो गई।

समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क—उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र समुद्रगुप्त हुआ। गुप्त वंश का यही सबसे बड़ा सम्राट है। प्रयाग के किले में जो अशोक की लाट है उस पर इस पराक्रमी राजा के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है। यह लेख समुद्रगुप्त के दरबारी कवि हरिषेण ने कविता के रूप में रचा था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने उसी को अपना युवराज बनाया था। इसलिए समुद्रगुप्त ने अपने पिता के सामने ही शासन सँभालना आरम्भ कर दिया था। समुद्रगुप्त ने अपने पराक्रम से शीघ्र ही सारे भारतवर्ष पर अपनी धाक जमा ली और लगभग ४५ वर्ष के शासनकाल में ऐसी राजव्यवस्था की नींव डाली जिससे गुप्त राजाओं का शासनकाल सदा भारतीय इतिहास में गौरव के साथ स्मरण किया जायगा।

समुद्रगुप्त की दिग्विजय—समुद्रगुप्त ने पहले आर्यावर्त के ९ राजाओं को हराया। उनके राज्यों की पश्चिमी सीमा यमुना तथा चंबल नदियाँ थी और दक्षिण में नर्मदा और विन्ध्य-पर्वतमाला। ये समुद्रगुप्त के पड़ोसी शासक थे। उनका देश बहुत धनी था और उस पर अधिकार जमाए रखना कठिन नहीं था। इन राजाओं में से कई नागवंशी क्षत्रिय थे। समुद्रगुप्त ने उनको पूर्णरूप से नाश कर दिया और उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इसके बाद वह दक्षिण की ओर मुड़ा। पहले उसे कई जंगली राज्यों का सामना करना पड़ा। यह राज्य विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं थे। समुद्रगुप्त ने उनको अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया, लेकिन उनको अपने पुराने

राजाओं के अधीन रहने दिया। इन राजाओं ने समुद्रगुप्त की सेवा करने का वचन दिया।

उत्तरी भारत के राज्यों को वश में करके समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ में पूर्वी समुद्रतट की ओर से प्रवेश किया। वहाँ एक-एक करके उसने बारह राजाओं को पराजित किया और उनको बन्दी बना लिया। बाद में उन पर अनुग्रह करके उसने उनके राज्य उन्हें लौटा दिये और केवल कर लेकर ही सन्तुष्ट हो गया। इन राज्यों की स्थिति या सीमा हमें ठीक-ठीक मालूम नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पूरबी समुद्रतट का अधिकांश भाग उनके अधीन रहा होगा। समुद्रगुप्त कावेरी नदी के दक्षिण नहीं गया, क्योंकि हरिषेण ने पाण्ड्या, चोलों का उल्लेख नहीं किया।

समुद्रगुप्त की विजयों से भारतवर्ष के दूसरे राज्य बहुत डर गये। उन्होंने अपनी रक्षा के लिए अपने आप ही कर देना स्वीकार कर लिया। उन्होंने स्वयं आकर भेंटें दीं और उसकी आज्ञा मानने का वचन दिया। इन राज्यों में पूरब की ओर समतट, दवाक और कामरूप थे और उत्तर में नेपाल तथा कर्तृपुर। पंजाब, मालवा और राजस्थान के बहुत से गण राज्यों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इन गण राज्यों में मालव, अर्जुनायन, यौधेय तथा माद्रक मुख्य थे।

अश्वमेध यज्ञ—लंका के राजा मेघवर्ण, काबुल के कुषाण-सम्राट तथा बहुत से द्वीपों के शासकों ने भी उससे मित्रता का व्यवहार रखा और उसके पास भेंटें भेजीं। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण भारत पर अपनी धाक जमाने के बाद समुद्रगुप्त ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उस समय उसने ब्राह्मणों को खूब दान दिया और एक सोने का सिक्का चलाया जिसके एक ओर बलि दिये जाने वाले घोड़े का चित्र है और दूसरी ओर रानी के चित्र के साथ 'अश्वमेध पराक्रम' लिखा है।

समुद्रगुप्त की महत्ता—समुद्रगुप्त की विजयों से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने उसे भारतीय नेपोलियन कहा है, लेकिन नेपोलियन और समुद्रगुप्त में एक महान् अन्तर है। समुद्रगुप्त कभी किसी लड़ाई में हारा नहीं और अपने शासन तथा व्यवहार से उसने सबको इतना संतुष्ट रखा कि उसका बनाया हुआ साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद कई पीढ़ियों तक फलता-फूलता रहा। इसके विपरीत नेपोलियन ने थोड़े दिन के लिए तो खूब शक्ति प्राप्त कर ली, लेकिन

गुप्त साम्राज्य का प्रसार
अरब
सागर
बंगाल
की
खाड़ी

मानी नीति से लोगों को इतना असन्तुष्ट कर दिया कि फ्रान्स के भी लोग उसके विरोधी हो गये और उसे अपने जीवन के अन्तिम ६ वर्ष पराजित तथा अपमानित होकर सुनसान द्वीप पर बन्दी की भाँति बिताने पड़े। इसलिए नेपोलियन विजेता की दृष्टि से भले ही समुद्रगुप्त के समान हो, लेकिन शासन की दृष्टि से वह बहुत नीचे रह जाता है। इस कारण यदि नेपोलियन को 'यूरोप का समुद्रगुप्त' कहा जाय तो अधिक उचित होगा। समुद्रगुप्त केवल एक सफल शासक और विजेता ही नहीं था, वह एक सुन्दर कवि, संगीतज्ञ और उच्च कोटि का विद्वान् भी था। एक सिक्के पर उसका वीणा बजाता हुआ चित्र है। वह स्वयं वैष्णवधर्म को मानता था। लेकिन उसने दूसरे धर्मवालों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया। हरिषेण ने अपने लेख में उसके गुणों की खूब प्रशंसा की है। गुप्त-साम्राज्य की नींव दृढ़ करनेवाला शासक यही था। उसकी मृत्यु लगभग ३७५ ई० के आस-पास हुई।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य—समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय शासक हुआ। वह अपने पिता की भाँति पराक्रमी वीर तथा योग्य था। उसके समय में गुप्त-साम्राज्य ने और उन्नति की। उसने विजित देशों को वश में रखा और नये राज्य जीतकर साम्राज्य का अधिक बढ़ाया। आर्यावर्त के नाग राजाओं का अन्त पहले ही हो चुका था। उनके प्रति प्रजा में अभी कुछ सहानुभूति शेष थी। इसके कारण उपद्रव हो सकते थे। चन्द्रगुप्त ने नागों के मित्रों को अपनी ओर करने के लिए नागवंशी कन्या कुबेरनागा से विवाह किया।

दक्षिण पश्चिम की ओर शक-क्षत्रपों का अभी काफी जोर था। उनको नष्ट करने के लिए चन्द्रगुप्त ने एक विशाल सेना तैयार की। शकों के पड़ोसी और शत्रु वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय से चन्द्रगुप्त ने सन्धि कर ली। इस सन्धि को दृढ़ करने के लिए उसने अपनी कन्या प्रभावती का विवाह रुद्रसेन द्वितीय से कर दिया। इस प्रकार उसने एक स्थानीय सहायक भी प्राप्त कर लिया। रुद्रसेन द्वितीय 'महाराज' कहा जाता था। और वह गुप्त राजाओं की अधीनता में आ गया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय और साम्राज्य विस्तार—चन्द्रगुप्त को शकों से काफी युद्ध करना पड़ा। अन्त में उनकी पूरी तौर से पराजय हो गई। मालवा, काठियावाड़, सौराष्ट्र तथा राजस्थान का कुछ भाग गुप्त सा[illegible]

लिया गया। पूरब में उसने सम्पूर्ण बंगाल को अपने अधीन कर लिया और वहाँ के शासन के लिए अपने अफसर नियुक्त किये। पंजाब का कुछ भाग भी उसने अपने राज्य में मिला लिया था।

विजयों का महत्त्व—चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी विजयों के उपलक्ष में विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की। शकों का नाश करने के कारण उसे शकारि भी कहते हैं। वाकाटकों और शकों की शक्ति का नाश करके उसने उत्तरी भारत में गुप्त साम्राज्य को और भी दृढ़ कर दिया। सौराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ तथा कोंकण के कुछ भाग के मिलने से पश्चिमी देशों का सारा व्यापार उसके हाथ में आ गया और उसकी आय बहुत बढ़ गयी। उसके साम्राज्य के भीतरी व्यापार को भी अनेक सुविधायें हो गईं और व्यापारी दिन प्रतिदिन धनी होते गए। पश्चिमी भाग पाटलिपुत्र से बहुत दूर पड़ता था, इसलिए उसने पहले अयोध्या को फिर उज्जैन को दूसरी राजधानी बनाया। उज्जैन के राजा विक्रम के विषय में जो अनेक कथाएँ प्रचलित हैं उनमें से बहुतों का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से ही है।

कालिदास—चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में गुप्त-साम्राज्य उन्नति की अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। उसके दरबार में अनेक विद्वान् रहते थे। उनमें कालिदास सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसने शकुन्तला, मेघदूत कुमारसंभव आदि अनेक सुन्दर ग्रन्थ रचे। चन्द्रगुप्त विद्वानों को आश्रय देता था और पुरस्कार देकर उनको प्रोत्साहित करता था।

फाह्यान ३६६–४१४ ई०—चन्द्रगुप्त के समय में एक चीनी यात्री फाह्यान आया था। उसने अपनी पुस्तक में भारत की दशा का वर्णन किया है। उससे हमें प्रजा की दशा का ज्ञान प्राप्त होता है। जब बौद्धधर्म का प्रचार चीन में हो गया तब भारतवर्ष चीनियों के लिए एक धर्म-यात्रा का स्थान बन गया। फाह्यान पवित्र स्थानों का दर्शन करने और बौद्ध-ग्रन्थों को चीन ले जाने के लिए यहाँ आया था। वह ३६६ ई० में अपने देश से चला था। गोबी रेगिस्तान, पामीर पठार, हिन्दूकुश पर्वत को लाँघता हुआ ४०१ ई० में वह पंजाब में आया। अपनी यात्रा में वह उत्तरी भारत के प्रसिद्ध नगरों में गया और वहाँ बौद्ध धर्म सम्बन्धी जो बातें मालूम हुई उनको अपनी पुस्तक में लिखता गया। इस प्रकार वह मथुरा, कन्नौज, काशी, पाटलिपुत्र, वैशाली आदि नगरों में गया था। पाटलिपुत्र में तो वह ३ वर्ष केवल संस्कृत पढ़ने के हा

लिए रहा था। उसने पाटलिपुत्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह एक विशाल नगरी थी। अशोक का महल उस समय तक था। वह मनुष्यो का बनाया नही मालूम होता था। फाह्यान समझता था कि उसे दैत्यो ने अशोक के लिए बनाया होगा। उस समय पाटलिपुत्र में दो विहार थे। एक हीनयान भिक्षुओ का था और दूसरा महायान भिक्षुओ का।

उसने प्रजा की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रजा सुखी तथा धनी है। लोगों का आचरण अच्छा है। धनी लोग गरीबो की सहायता के लिए अस्पताल, धर्मशालाएँ और छत्र बनवाते थे। छत्रों में गरीबो को मुफ्त भोजन मिलता था। लोग मास नही खाते थे। शराब, प्याज या लहसुन का प्रचार नहीं था। केवल चाण्डाल इनका प्रयोग करते थे। चोरी का नाम तक सुनाई नहीं पडता। लोग अपने घरों को खुला छोडकर चले जाते हैं। प्रजा को सब जगह आने-जाने की आज्ञा है। राजा का व्यवहार अच्छा है। कर हल्के हैं। सजाएँ बहुत ही साधारण हैं। मृत्युदण्ड किसी को भी नहीं दिया जाता। राजद्रोही को भी केवल हाथ काटने की सजा दी जाती है। साधारण रूप से जुर्माने की सजा दी जाती थी। बार-बार अपराध करने पर ही अग-भग की सजा मिलती थी। कोड़े लगाने की प्रथा नही थी। पजाब और बगाल में बौद्धो के बहुत से विहार थे। लेकिन मध्य देश में मन्दिरो की सख्या बढती जा रही थी। इससे पता चलता है कि यद्यपि बौद्ध धर्म का प्रचार अब भी काफी था, लेकिन उसकी अवनति आरम्भ हो गई थी और ब्राह्मण धर्म उसका स्थान ले रहा था। फाह्यान ने प्रजा की दशा का जो चित्र खींचा है यदि वह सत्य है तो यह नि सकोच कहा जा सकता है कि शायद गुप्त-काल के पहले या पीछे कभी भी भारतीय इतने सुखी या सतुष्ट नही रहे।

चन्द्रगुप्त के राज्य में लगभग छ वर्ष भ्रमण करके ४१० ई० में फाह्यान ताम्रलिप्ति बन्दरगाह से समुद्र के रास्ते लका और जावा होता हुआ अपने देश लौट गया। सारी यात्रा में उसे १५ वर्ष लगे और ४१४ ई० में वह चीन वापस पहुँच गया।

कुमारगुप्त ४१३–४५५ ई०—इसी समय ४१३ ई० के लगभग चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने ४५५ ई० तक राज्य किया। कुमारगुप्त ने अपने पिता और पितामह के राज्य को बराबर रक्षा की। उसके सिक्के और शिलालेख साम्राज्य के विभिन्न

भागों में मिले हैं। उसने एक अश्वमेघ यज्ञ भी किया था। इससे मालूम होता है कि उसने कुछ युद्धों में विजय प्राप्त की थी। सम्भव है उसने दक्षिण का कुछ भाग जीता हो या उसके गद्दी पर बैठने के समय शायद कुछ विद्रोह हुए हों और उसने उन्हीं को दबाया हो।

कुमारगुप्त के राज्य के अन्तिम वर्षों में साम्राज्य पर आपत्ति आने लगी। पुष्यमित्रों ने मालवा में विद्रोह किया। कुमारगुप्त ने अपने पुत्र स्कन्दगुप्त को उनका दमन करने के लिए भेजा। वह इस कार्य में सफल हुआ ही था कि उत्तर-पश्चिम की ओर से हूणों ने आक्रमण कर दिया।

हूणों का आक्रमण—हूणों का जिक्र हम पहले कर चुके हैं। यह जंगली लोग थे, जो बड़े निर्दयी और वीर थे। ये अपने पड़ोसियों को लूटने-खसोटते रहते थे और सदा ही शान्ति भंग करते रहते थे। चीन के सम्राटों ने इनसे बहुत युद्ध किये थे। बाद में उन्होंने इनको रोकने के लिए एक विशाल दीवाल बनवाई। तब हूण पश्चिम की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने यूचियों और शकों को ठेलकर भारत की ओर भेजा था। इस समय वे स्वयं भारत पर आक्रमण करने लगे। स्कन्दगुप्त ने उनको भी हराकर भगा दिया।

गुप्त साम्राज्य का पतन—कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद स्कन्दगुप्त राजा हुआ। उसने १२ वर्ष राज्य किया। उसके राज्य-काल में हूणों और पुष्यमित्रों के कारण बहुत अशान्ति रही। लेकिन जब तक वह जीवित रहा उसने उनकी दाल न गलने दी। उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य का पतन होने लगा और उत्तरी भारत में कई छोटे-छोटे राज्य फिर स्थापित हो गये। कुछ समय के लिए बुद्ध-गुप्त (४७६-४९५ ई०) साम्राज्य को सँभाले रहा, लेकिन कालान्तर में विशाल गुप्त-साम्राज्य के स्थान पर अब गुप्तवंशी शासकों का अधिकार केवल मगध के कुछ भाग और मालवा पर ही रह गया। साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण थे :—

(१) हूणों का आक्रमण
(२) पुष्यमित्रों तथा अधीनस्थ राजाओं के विद्रोह, और
(३) स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता।

शासन प्रबन्ध—गुप्त राजाओं के शासन-काल में भारतीय सभ्यता ने बहुत उन्नति की। इस कारण गुप्त-काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कहते हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर स्कन्दगुप्त तक के राजाओं में लगभग डेढ़

फाह्यान का यात्रामार्ग
अरब
सागर
बंगाल
की
खाड़ी

सौ वर्ष शासन किया। इस काल में उत्तरी भारत में पूर्ण शान्ति रही। गुप्त सम्राटों ने अपने विरुद बहुत आकर्षक रखे। वे अपने को 'महाराजाधिराज', विक्रमादित्य, महेन्द्रादित्य, पराक्रमाङ्क, विक्रमाङ्क, परम भट्टारक, परम देवता और परमेश्वर तक कहते थे। लेकिन उन्होंने अपनी शक्ति का कभी दुरुपयोग नहीं किया। फाह्यान के वर्णन से पता चलता है कि देश धन-धान्य से भरा था, व्यापार उन्नत दशा में था, कर हलके थे और दण्ड कठोर नहीं थे। शासन प्रबन्ध के विषय में यद्यपि बहुत बातें मालूम नहीं हैं, पर इतना निश्चय है कि राजा और उसके मातहत कर्मचारी प्रजा के हित का सदा ध्यान रखते थे। सम्राट एक मन्त्रिपरिषद की सलाह से शासन करता था। मन्त्रियों के पद मौरूसी थे। इस कारण उनकी सलाह राजा को माननी ही पड़ती होगी। सूबे के अफसरों का 'उपरिक' और 'गोप्ता' कहते थे। उनको सलाह देने के लिए भी प्रजा के सदस्य रहते थे। इससे मालूम होता है कि गुप्त-शासन मौर्यों का सा निरंकुश नहीं था, वरन् प्रजा का उसमें भाग लेने का कुछ अधिकार प्राप्त था।

धार्मिक दशा—गुप्त सम्राट वैष्णव धर्म को मानते थे। उन्होंने कई अश्वमेध यज्ञ भी किये, लेकिन उन्होंने किसी प्रकार का धार्मिक पक्षपात नहीं किया। शैवों और बौद्धों को ऊँचे-से ऊँचे पद दिये जाते थे और राजा सभी धर्मवालों को आर्थिक सहायता करता था। फाह्यान ने धार्मिक अत्याचार का कहीं जिक्र तक नहीं किया। उसके वर्णन से पता चलता है कि सभी धर्मों के लोग मेल जोल से रहते थे। ब्राह्मणों का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। बौद्धों की शक्ति घट रही थी। ब्राह्मणों ने बुद्धजी को भी विष्णु का एक अवतार मान लिया और उनकी कुछ सुन्दर शिक्षाओं को अपने धर्म में मिला लिया। विदेशियों को उन्होंने अपने धर्म में स्थान दिया और उनके कर्म के अनुसार उनको क्षत्रिय या वैश्य जातियों में मिला दिया। इस कारण ब्राह्मण-धर्म बौद्धों की शक्ति घटने का मुख्य कारण हो गया। कपिलवस्तु, कुशीनगर, श्रावस्ती—जो बौद्धों के केन्द्र थे सब उजड़ गये थे। उत्तरी भारत में शिव, सूर्य, और विष्णु की पूजा अधिक होती थी। बौद्ध-धर्म का प्रभाव भी काफी था, लेकिन उत्तरी भारत में महायान बौद्ध ही अधिक थे और वे बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की पूजा करते थे। सभी धर्मवालों के कुछ धार्मिक उत्सव होते थे, जिनमें लोग खूब आनन्द मनाते थे और बड़ी धूम-धाम से अपने देवता की पूजा करते थे। जैनों का प्रभाव उत्तरी भारत में कम था।

साहित्य—ब्राह्मण-धर्म की उन्नति के साथ-साथ संस्कृत ने भी उन्नति की। यह उन्नति सातवाहन युग से ही आरम्भ हो गई थी। संस्कृत ने इतना सम्मान प्राप्त कर लिया था कि बौद्ध विद्वान् भी अब अपनी रचनाएँ पाली के स्थान पर संस्कृत ही में करते थे। इस काल के लेखकों में सबसे प्रसिद्ध कालिदास हैं। कालिदास के शकुन्तला नाटक की संसार के सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है। शकुन्तला के अतिरिक्त उन्होंने विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नाटक भी लिखे हैं। कालिदास के दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ मेघदूत, कुमारसम्भव और रघुवंश हैं। इसी काल में दूसरा प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस भी रचा गया। उसके लेखक विशाखदत्त थे। अमरसिंह ने अमरकोष बनाया और धन्वन्तरि ने वैद्यक शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे। धार्मिक साहित्य में भी बहुत काम हुआ। इस काल में पुराणों तथा स्मृतियों को उनका वर्तमान स्वरूप दिया गया। इसी काल में विज्ञान तथा ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् हुए। आर्यभट्ट और वराहमिहिर उनमें मुख्य हैं।

कला—साहित्य के साथ-साथ कला में भी काफी उन्नति हुई। गुप्त-काल की अधिक इमारतें इस समय नहीं मिलतीं। झाँसी में देवगढ़ का मन्दिर और कानपुर जिले में ईंट का बना हुआ भीतरगाँव का मन्दिर उल्लेखनीय हैं। पत्थर का काम इस काल में शुङ्ग-सातवाहन काल से भी अच्छा हुआ। इस काल की मूर्तियाँ अधिक सुन्दर और स्वाभाविक हैं। इतनी सुन्दर पत्थर की मूर्तियाँ पहले कभी नहीं बनी थीं। मन्दिरों या गुफाओं की दीवारों पर भी सुन्दर मूर्तियाँ खोदी गई हैं। ऐसी खुदी हुई मूर्तियाँ ग्वालियर राज्य में, उदयगिरि में और देवगढ़ में देखी जा सकती हैं। पत्थर की खुदाई के अतिरिक्त चित्रकला में भी उन्नति की गई। शुङ्ग-सातवाहन काल में भी कुछ गुफाएँ बनी थीं और उनके अन्दर चित्र बनाये गये थे, लेकिन अजन्ता में जो चित्र इस काल के हैं वे बहुत ही सुन्दर हैं।

धातुओं के प्रयोग में इस काल के लोगों ने बहुत ही कुशलता दिखलाई है। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास का लोहे का स्तंभ इसी काल का है। उसके बनाने और खड़ा करने में बड़ी कारीगरी की आवश्यकता पड़ी होगी। इस काल में पीतल काँसे आदि की भी सुन्दर मूर्तियाँ बनाई गई थीं। चाँदी-सोने के आभूषणों के अतिरिक्त इस काल के सिक्के भी बड़े महत्त्व के हैं। वे सिक्के कई प्रकार के हैं। उनके गढ़ने में बड़ी कुशलता दिखाई गई है। सिक्के

शिव—नृत्य की मुद्रा में

सथा सुडौल हैं। उनके द्वारा मुख्य घटनाओं और राजाओं के रूप तथा चरित्र का पता चलता है।

इन सब बातो से प्रकट होता है कि गुप्तकाल में भारतीय जनता ने सभ्यता के सभी पहलुओं में उन्नति की। भारत की सभ्यता का प्रभाव विदेशों में अब भी खूब रहा। उपनिवेशों में भारतीय जनता की सख्या बढती गई।

मुख्य तिथियाँ

चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक और गुप्त सवत् का आरम्भ	३१९—३२० ई०
समुद्रगुप्त का गद्दी पर बैठना	३३० ई०
समुद्रगुप्त की दिग्विजय	३३०–३६० ई०
चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्याभिषेक	३७५ ई०
शको की पराजय	४०० ई० के लगभग
कुमारगुप्त का राजा होना	४१३ ई०
स्कन्दगुप्त का शासन-काल	४५५–४६७ ई०
बुद्धगुप्त का राज्यकाल	४७६–४९५ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) गुप्त साम्राज्य का सस्थापक कौन था ? उसके समय की मुख्य घटनाओं का वर्णन करो।

(२) समुद्रगुप्त की नेपोलियन से तुलना क्या की जाती है ? समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय में तुम किसे बडा समझते हो और क्यो ?

(३) गुप्त-साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे ?

(४) फाह्यान कौन था ? उसने गुप्त-काल का क्या हाल लिखा है।

(५) गुप्त-काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग क्यो कहते हैं ?

अध्याय १०

हूणों के आक्रमण और हर्ष का साम्राज्य

भारत में हूण—हूणों के आक्रमण ने ही गुप्त साम्राज्य को ऐसा धक्का पहुँचाया कि वह टूट-फूट गया और उसके स्थान पर दूसरे राज्य बन गये। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् हूणों में तोरमाण नामक एक वीर नेता हुआ। उसने ४८३ ई० के लगभग भारत पर फिर आक्रमण किया और पंजाब, राजस्थान तथा मालवा पर अपना अधिकार जमा लिया। उसके बाद उसका बेटा मिहिरकुल राजा हुआ। वह बड़ा घमण्डी था। उसने शैव धर्म स्वीकार कर लिया था और कहा करता था कि मैं शिव के अतिरिक्त किसी के भी सामने सिर नहीं झुकाऊँगा। यही नहीं, उसने बौद्धों के ऊपर अत्याचार भी किये। उनके सैकड़ों स्तूप और विहार गिरवा दिये गये और सहस्रों भिक्षु मार डाले गये। धर्म के नाम पर अत्याचार करने की प्रथा हूणों ने ही पहले पहल इस देश में चलाई। मिहिरकुल ने गुप्त राजाओं को मगध से भी निकालना चाहा। इस प्रयत्न में वह असफल रहा और गुप्त सम्राट बालादित्य ने उसे कैद कर लिया। बाद में उसने उसे छोड़ दिया। जब मिहिरकुल मगध से वापस आ रहा था उस समय उसे मध्यभारत में एक दूसरे शत्रु का सामना करना पड़ा। यह यशोधर्मन् था। यशोधर्मन् ने उसे हराकर मालवा, राजस्थान के बाहर खदेड़ दिया और उसने काश्मीर के राजा के यहाँ जाकर शरण ली। मिहिरकुल के बाद हूणों की शक्ति नष्ट हो गई और धीरे-धीरे वे हिन्दू समाज में मिला लिये गये। अब उनका कोई अलग अस्तित्व न रहा।

यशोधर्मन्—मिहिरकुल को हराकर उत्तरी भारत से निकालनेवाला यशोधर्मन् कौन था? उसके शिलालेख मन्दसौर में मिले हैं। उनसे पता चलता है कि वह बड़ा पराक्रमी था और गुप्त राजाओं से भी बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था। लेकिन उसकी मृत्यु कब हुई, उसने कितने दिन राज्य किया, उसके मरने पर उसके वंश में कोई रहा या नहीं? कुछ भी मालूम नहीं है।

यशोधर्मन् की मृत्यु के बाद मालवा पर पुनः गुप्तों का अधिकार हो गया। ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में उत्तरी भारत में ४ मुख्य राज्य थे—(१)

काश्मीर, (२) थानेश्वर के वर्धन, (३) कन्नौज के मौखरि, (४) मालवा के गुप्त शासक, तथा (५) मगध और बंगाल के गुप्त शासक। इनमें से मालवा तथा बंगाल के शासक एक ही वंश के होने के कारण बहुधा एक दूसरे की सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। मौखरियों की उन्नति से उन दोनों का ही शंकित रहना पड़ता था। मौखरियों ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए थानेश्वर के वर्धनों से सन्धि कर ली थी। वर्धनों को हूणों से सदा भय लगा रहता था और उनका सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ता था। हूणों के विरुद्ध लड़ते रहने से वर्धनों की शक्ति काफी बढ़ गई और धीरे धीरे उन्होंने गुप्त साम्राज्य का बहुत-सा भाग अपने अधीन करके उत्तरी भारत को एक शासन-सूत्र में बाँध दिया। यह कार्य प्रभाकरवर्धन ने आरम्भ किया और उसके पुत्र हर्षवर्धन ने समाप्त किया।

वर्धन वंश—प्रभाकरवर्धन थानेश्वर के वर्धन-वंश का पहला प्रतापी राजा था। उसने 'परमभट्टारक' की उपाधि ग्रहण की। उसने एक छोटा-सा साम्राज्य स्थापित कर लिया, जिसमें पूरबी पंजाब, सिंध का कुछ भाग तथा उत्तरी राजस्थान शामिल थे। उसने ५८० से ६०५ ई० तक शासन किया। ६०५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय उसका बड़ा लड़का राज्यवर्धन हूणों के विरुद्ध लड़ने गया था। हूणों को हराकर राज्यवर्धन राजधानी आया, लेकिन उसे शीघ्र ही समाचार मिला कि उसके बहनोई मौखरि सम्राट गृहवर्मन् को मालवा के राजा देवगुप्त ने मार डाला है और वर्धन राजकुमारी राज्यश्री को कैद कर लिया है। राज्यवर्धन तुरन्त इसका बदला लेने के लिए मालवा पर चढ़ गया। उसने देवगुप्त को हरा दिया। वह राज्यश्री के साथ वापस आ रहा था कि बंगाल के शासक शशांक ने राज्यवर्धन को धोखे से मार डाला। राज्यश्री किसी प्रकार अपनी जान लेकर भाग निकली और जंगलों-जंगलों मारी मारी फिरती रही।

हर्षवर्धन ६०६-६४७ ई०—यह समाचार जब थानेश्वर पहुँचा तो हर्ष को बहुत दुःख हुआ। उसकी रुचि धर्म तथा पठन-पाठन में अधिक थी। वह राज्य-कार्य से अलग रहना चाहता था, लेकिन अपने परिवार पर ऐसी विपत्तियों को आया देख उसे शासन भार सँभालना पड़ा। उसने पहले अपनी बहिन का पता लगाना आरम्भ किया। विन्ध्य-पर्वत के जंगल में राज्यश्री जलती हुई चिता में कूदने ही वाली थी कि हर्ष पहुँच गया और उसने उसे असामयिक मृत्यु से बचा लिया। राज्यश्री के कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए हर्ष ही उसकी ओर से मौखरि राज्य पर शासन करने लगा।

अरब
सागर
बंगाल
की
खाड़ी

हर्ष के युद्ध—इस प्रकार सहज ही में हर्ष को मौखरियों का सारा राज्य मिल गया। कुछ दिनों के बाद उसने थानेश्वर के स्थान पर कान्यकुब्ज (वर्तमान कन्नौज) को ही अपनी राजधानी बनाया। हर्ष ने कई युद्ध किये, लेकिन उनका ठीक-ठीक वर्णन हमें प्राप्त नहीं है। बंगाल के राजा शशांक को दबाने के लिए उसने आसाम के शासक भास्करवर्मन् से संधि कर ली और फिर उस पर पूरब तथा पश्चिम से हमला किया। इसका फल यह हुआ कि ६२० ई० के लगभग शशांक का राज्य हर्ष के अधिकार में आ गया। कुछ दिन बाद उसने उड़ीसा पर भी अधिकार कर लिया। मालवा का कुछ भाग भी उसने अवश्य जीत लिया होगा, क्योंकि मालवा के सम्राट् ने गृहवर्मन् को मारा था। गुजरात में उस समय मैत्रिक वंश का राज्य था। इस वंश के राजा को अपने वश में करने के लिए हर्ष ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। यह वैवाहिक सन्धि मालवा और दक्षिण को जीतने के लिए की गई होगी। लेकिन इस ओर हर्ष को अधिक सफलता नहीं मिली। ६३० ई० के लगभग उसे दक्षिण के चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय ने हरा दिया और उसे दक्षिण भारत की ओर बढ़ने से सदा के लिए रोक दिया।

हर्ष का साम्राज्य—हर्ष के साम्राज्य में पूरबी पंजाब वर्तमान उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बंगाल, उड़ीसा और राजस्थान तथा मालवा के कुछ भाग शामिल थे। वल्लभी के सम्राटों ने उसकी अधीनता मान ली थी। नेपाल तथा आसाम के शासक भी शायद उसे अपना सम्राट मानते थे।

हर्ष का शासन प्रबन्ध—सम्राट् शासन का सर्वोच्च अधिकारी था। उसकी सहायता के लिए कई मन्त्री होते थे, जो एक या एक से अधिक महकमा के अध्यक्ष होते थे। राजा स्वयं सब महकमा के कामों की देख रेख करता था। मन्त्रियों को जागीरें दी जाती थीं। सारा साम्राज्य कई सूबों में बँटा था। सूबों को 'भुक्ति' कहते थे। भुक्तियों के अफसरों को भी जागीरें दी जाती थीं। जिले तथा ग्राम का शासन गुप्त-काल के समान था। सूबों के अफसरों की देख-भाल करने के लिए हर्ष दौरा करता था। बरसात को छोड़ शेष मासों में वह इधर-उधर दौरा किया करता था। राज-दण्ड कठोर था। लोगों को अंग-भंग की सजा साधारण अपराधों पर दे दी जाती थी। राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों को आजन्म कैद में रहना पड़ता था। इतनी सजाएँ होने पर भी अपराध काफी होते थे। ह्वेनसांग नामक एक चीनी यात्री, जो इस समय भारत में

आया था, अपनी यात्रा के वर्णन में लिखता है कि वह स्वयं कई बार लूट लिया गया था। सरकार की मुख्य आय जमीन का लगान, व्यापार के सामान की चुङ्गी और नदियों, घाटों आदि की चुङ्गी से थी। किसानों को उपज का ई राज्य को देना पड़ता था। व्यापार उन्नत दशा में था और राजा की आमदनी काफी अधिक थी, क्योंकि प्रत्येक पाँचवें वर्ष वह अतुल धन दान किया करता था। राज्य की आय का अधिकांश भाग सेना पर खर्च होता था। सेना में रथ, हाथी, पैदल और घुड़सवार थे। सैनिकों को नकद वेतन दिया जाता था और उनको अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रखने का विशेष ध्यान रखा जाता था। सैनिक सुसगठित और हथियार चलाने में कुशल थे। सेना में ६०,००० हाथी और १००,००० घुड़सवार थे। रथों और पैदलों की संख्या भी इन्हीं से मिलती जुलती रही होगी, पर मालूम होता है कि उस समय हाथियों और घुड़सवारों का ही विशेष महत्व था।

ह्वेनसांग ६२६-६४४ ई०—हर्ष के समय का ज्ञान हमें मुख्यतः दो साधनों से प्राप्त होता है बाण कवि के हर्ष चरित से और ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री की यात्रा-पुस्तक से। ह्वेनसांग भी फाह्यान की तरह धर्म-ग्रन्थों की खोज में यहाँ आया था। उसने उस समय के शासन प्रबन्ध, प्रजा की दशा तथा धार्मिक स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। हर्ष के शासन प्रबन्ध का बहुतेरा हाल हमें उसी की पुस्तक से मालूम हुआ है। ह्वेनसांग ६२६ ई० में चीन से चला था और ताशकन्द, समरकन्द, काबुल होता हुआ ६३० ई० में भारत आया। ६४३ ई० तक भारत में रह कर उसने सारे देश का भ्रमण किया और मुख्य स्थानों को देखकर स्थल-मार्ग से ही लौट गया। ६४५ ई० में वह चीन वापस पहुँचा और १९ वर्ष बाद ६६४ ई० में उसका देहान्त हो गया।

प्रजा की दशा—ह्वेनसांग प्रजा की दशा का वर्णन करते हुए लिखता है कि शिक्षा का प्रचार काफी था। वल्लभी, नालन्दा तथा नदिया में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय थे। इनमें नालन्दा का विश्वविद्यालय सबसे बढ़कर था। उसमें १०,००० विद्यार्थी पढ़ते थे। दूर-दूर देशों से लोग नालन्दा में पढ़ने के लिए आते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के पहले एक मौखिक परीक्षा देनी पड़ती थी। जो इस परीक्षा में फेल हो जाता था उसे अन्दर जाने की आज्ञा नहीं मिलती थी। ह्वेनसांग ने भी नालन्दा में रहकर बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। देश में अनेक विहार और मन्दिर थे। वे भी पाठशालाओं

का काम करते थे। उनके अतिरिक्त दूसरी पाठशालायें भी थीं, जिनके लिए राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। लोगों का आचरण अच्छा था। लोग सत्यवादी थे और सादगी से जीवन बिताते थे। कर हल्के होने के कारण प्रजा में धन-धान्य की कमी नहीं थी और लोग संतुष्ट तथा सुखी थे। स्त्रियों की दशा पहले से खराब थी। बाल विवाह की प्रथा बढ़ रही थी। सती होने की प्रथा थी और विधवा विवाह मना था। पर्दे की प्रथा बढ़ रही थी, लेकिन अब भी स्त्रियाँ सभा आदि में बैठ सकती थीं। जाति-व्यवस्था दृढ़ होती जा रही थी। अन्तर्जातीय विवाह अब अनुचित समझे जाते थे। उत्तरी भारत के मुख्य धर्म दो थे—बौद्ध धर्म तथा पौराणिक धर्म। बौद्ध धर्म दिन प्रति दिन घट रहा था। लेकिन धार्मिक अत्याचार न होता था। साधारण रीति से सब धर्मों के लोग मिल जुलकर रहते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि हर्ष ने एक आज्ञा निकाली थी कि माँस खानेवालों और जीवों की हत्या करनेवालों को मृत्युदण्ड दिया जायगा। संभव है यात्री ने इसे अपनी ओर से लिख दिया हो, लेकिन यदि ऐसी आज्ञा सचमुच निकाली गई होगी तो बहुत से लोग असंतुष्ट हो गये होंगे।

हर्ष का चरित्र—ह्वेनसांग के वर्णन से हर्ष के चरित्र तथा धर्म के विषय में भी हमें बहुत सी बातें मालूम होती हैं। बाण की पुस्तक से भी हर्ष के गुण मालूम होते है। वह एक विद्वान् शासक था जो कि विद्वानों का उचित आदर करना जानता था। उसने नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नामक ग्रन्थ लिखे थे। इनके अतिरिक्त उसने कुछ और ग्रन्थ भी लिखे थे जो अब नष्ट हो गये हैं। हर्ष बड़ा उदार और प्रजा हितचिंतक शासक था। वह प्रजा के सुख का सदा ध्यान रखता था। इसी कारण वह दौरे करता था। अत्याचारी अफसरों को कड़ी सजायें दी जाती थीं। हर्ष का धन बटोरने का लालच नहीं था। इसके विपरीत वह प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग जाता था। पाँच वर्षों में जो कुछ बचत होती थी उसे वह गंगा-यमुना के संगम पर ब्राह्मणों, बौद्धों तथा दीन दुखियों को दान कर देता था। ह्वेनसांग ने ऐसी एक यात्रा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हर्ष तीन महीने तक प्रयाग रहता था। पहले दिन वह बुद्ध की मूर्ति की पूजा करता था, दूसरे दिन सूर्य की और तीसरे दिन शिव की। इसके बाद २१ दिन तक बौद्धों और ब्राह्मणों को दान देता था। दान में कपड़े गहने, रुपये, सुगंधित पदार्थ आदि दिये जाते थे। उसके बाद १० दिन [illegible] को दान दिया जाता था जो दूर-दूर से आये होते थे। उसके [illegible]

गरीबों को दान दिया जाता था। इस प्रकार वह राज्य का सारा धन दे डालता था। तब वह अपने आभूषण और कपड़े भी दान कर देता था। अधीन राजे उनको मोल लेकर फिर राजा को भेंट कर देते थे और राजा उनको बार-बार फिर दान कर देता था। इस प्रकार अधीनस्थ राजाओं की पाँच वर्ष की बचाई हुई रकम भी गरीबों को मिल जाती थी। उसके बाद राजा कन्नौज लौट जाता था।

ह्वेनसांग ने यह भी लिखा है कि हर्ष प्रतिवर्ष बौद्ध विद्वानों की एक सभा करता था और जो सबसे अधिक योग्य ठहरता था उसे पारितोषिक देता था। ६४३ ई० में उसने ह्वेनसांग के सामने भी एक ऐसी सभा कन्नौज में की थी। इसमें २० कर देने वाले राजे, ४००० बौद्ध-भिक्षु और ३००० ब्राह्मण तथा जैन विद्वान् सम्मिलित हुए थे। उस समय एक स्तम्भ बनवाया गया था और उसमें बुद्धजी की एक सोने की मूर्ति स्थापित की गई थी। गंगा के किनारे इस सभा का आयोजन किया गया था। प्रातःकाल एक दूसरी सोने की बुद्ध-प्रतिमा का शानदार जुलूस निकाला जाता था। हर्ष स्वयं उसके ऊपर चँवर डुलाता चलता था। उसके बाद हजारों हाथी, नाना भाँति के गहने पहिने चलते थे और १० हाथियों पर बाजे चलते थे। दिन में सभा होती थी। ह्वेनसांग सभापति बनाया गया था। यह क्रम लगभग १ मास चला। उसके बाद कुछ लोगों ने हर्ष को मार डालने का प्रयत्न किया और स्तूप जला दिया। इसलिए सभा भंग कर दी गई। इससे मालूम होता है कि हर्ष की धार्मिक नीति से अन्तिम वर्षों में कुछ लोग उससे असंतुष्ट हो गये।

हर्ष की मृत्यु ६४७ ई० में हो गई। वह उत्तरी भारत का अन्तिम प्रतापी राजा है। उसकी मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य टूट गया और उत्तरी भारत में फिर छोटे-छोटे नये राज्य बनने लगे। शायद उसके कोई पुत्र नहीं था।

मुख्य तिथियाँ

प्रभाकरवर्धन का गद्दी पर बैठना	५८० ई०
प्रभाकरवर्धन की मृत्यु	६०५ ई०
ग्रहवर्मन् का वध और राज्यवर्धन की मृत्यु	६०६ ई०
हर्ष की मृत्यु	६४७ ई०
ह्वेनसांग की भारत-यात्रा	६३०-६४३ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) हूण कौन थे ? उनका हमारे इतिहास से क्या सम्बन्ध है ?
(२) हर्षवर्धन के साम्राज्य तथा शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो।
(३) ह्वेनसांग ने हर्ष के समय की भारत की दशा का जो वर्णन किया है उसे समझा कर लिखो।
(४) ह्वेनसांग और फाह्यान के वर्णन मे क्या अन्तर है ? किसकी यात्रापुस्तक हमारे इतिहास के लिए अधिक उपयोगी है ?

अध्याय १०

पूर्व मध्यकालीन भारत के राजवंश—राजपूतों का उत्कर्ष

(६५० ई० से १२००)

उत्तरी भारत की दशा—हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तरी भारत में अराजकता फैल गई। कुछ दिन बाद मौखमन् कन्नौज का शासक हुआ। यह शायद मौखरियों का वंशज था। उसके बाद यशोवर्मन् एक प्रतापी राजा हुआ। उसने मगध के गुप्त राजाओं को हराया और मध्यदेश पर अपना अधिकार स्थापित किया। इसी समय कश्मीर में ललितादित्य नामक एक प्रतापी राजा हुआ, उसने यशोवर्मन् पर चढ़ाई कर दी और उसे हराकर कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित किया। ललितादित्य ने एक ओर मगध तथा बंगाल पर आक्रमण किया और दूसरी ओर अफगानिस्तान में तुर्कों को परास्त किया। ललितादित्य के बादवाले शासक अयोग्य निकले। इसलिए कश्मीर राज्य का प्रभाव भी शीघ्र ही घट गया। मगध तथा बंगाल के लोग जब बहुत परेशान हो गये तो

उन्होंने गोपाल नामक सरदार को अपना शासक चुना। इस प्रकार बंगाल में पाल वंश की स्थापना हो गई। इस वंश के शासक कई शताब्दियों तक बंगाल में शासन करते रहे। कालान्तर में सेन वंश की स्थापना के कारण इसका प्रभाव घट गया। इस वंश का प्रथम प्रतापी राजा धर्मपाल हुआ। वह भी कन्नौज को अपने वश में करना चाहता था। उधर पश्चिम की ओर राजस्थान में गुर्जर प्रतीहारों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। उनकी राजधानी भिनमाल थी। वे विदेशी थे, लेकिन उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया और ब्राह्मणों ने उनको क्षत्रिय बना लिया था। गुर्जर प्रतीहारों ने धीरे-धीरे एक शक्तिशाली राज्य बना लिया। उन्होंने सिंध के अरबों से कई युद्ध किये और उनको दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ने से रोका। दक्षिण की ओर उन्होंने गुजरात पर आक्रमण किया। इस कारण उनकी राष्ट्रकूटों से मुठभेड़ हो गई। पूरब की ओर वे मध्यदेश को अपने अधीन करना चाहते थे।

इस प्रकार ८वीं सदी ईस्वी के अन्त के लगभग कन्नौज पर अधिकार जमाने के लिए तीन राजवंशों में होड़ चलने लगी। वे थे बिहार-बंगाल के पाल, राजस्थान के गुर्जर प्रतीहार और महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट। इन युद्धों में क्रमशः राष्ट्रकूटों पालों और प्रतीहारों को सफलता मिली। ८४० ई० में प्रतीहार वंश में एक बहुत प्रतापी राजा भोज हुआ। उसने कन्नौज पर आक्रमण करके न केवल उसे जीत लिया, वरन् उसे अपनी राजधानी भी बना लिया। इस समय से लगभग ९१७ ई० तक प्रतीहारों का सारे उत्तरी भारत पर अधिकार रहा। ९१७ में राष्ट्रकूटों का अन्तिम हमला हुआ। इससे यद्यपि राष्ट्रकूट साम्राज्य की सीमा नहीं बढ़ी, किन्तु प्रतीहारों की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा और उनके अधीनस्थ नरेश स्वतन्त्र या अर्द्ध स्वतन्त्र हो गये। कुछ समय के पश्चात् गहड़वार अथवा राठौर वंश के लोगों ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया और उन्होंने प्रतीहारों के साम्राज्य को फिर से जोड़ने की चेष्टा की, परन्तु इसमें वे अधिक सफल नहीं हुए।

इस अवनति के समय उत्तरी भारत में कई छोटे-छोटे राज्य बन गए। उनमें पाँच मुख्य हैं —(१) शाकम्भरी के चौहान (२) धार के परमार, (३) जेजाक भुक्ति के चन्देल, (४) चेदि के कलचुरी और (५) गुजरात के चालुक्य। इन सभी वंशों के राजे अपने को राजपूत कहते थे। वे दुर्दान्त थे और अपना राज्य बढ़ाने के लिए एक दूसरे से युद्ध करते थे। उनका शासन

मुसलमानों के आक्रमण के कारण टूट गई और अन्त में उनके स्थान पर मुसलमान शासक उत्तरी भारत पर राज्य करने लगे।

चौहान—चौहानों का राज्य राजस्थान में अजमेर के आसपास था और शाकम्भरी उनकी राजधानी थी। उसकी नींव सामन्तदेव ने आठवीं सदी के अन्तिम भाग में डाली थी। इस वंश का पहला प्रतापी राजा विग्रहराज चतुर्थ था। उसने दिल्ली के तोमरों को हराकर उनके राज्य को जीत लिया। इस प्रकार बारहवीं सदी में चौहानों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। इस वंश का अन्तिम स्वतन्त्र सम्राट पृथ्वीराज था जिसकी वीरता की कहानियाँ आज तक प्रचलित हैं। वह गोर के सम्राट मुहम्मद गोरी के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया और इस प्रकार ११९२ ई० में इस वंश का अन्त हो गया।

परमार—अजमेर के दक्षिण में परमार राजपूतों का राज्य था। पहले ये भी कन्नौज के प्रतीहारों को कर देते थे, लेकिन १० वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में वे स्वतन्त्र हो गए। उनकी राजधानी धार थी। इस वंश की नींव डालने वाला कृष्णराज था। राजा भोज (१०१८-१०६०) इस वंश का सबसे प्रतापी शासक था। उसने साहित्य तथा कला को भी बहुत प्रोत्साहन दिया। इस वंश का अन्त खिलजी सम्राट अलाउद्दीन के समय में हुआ।

चन्देल—चन्देल वंशी राजपूत भी पहले प्रतीहारों को कर देते थे। जिस भाग में उनका शासन था उसे बुन्देलखण्ड भी कहते हैं। इस वंश की नींव ९ वीं शताब्दी में पड़ी थी। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा धंग था। चन्देलों के पास कालिंजर का बड़ा प्रसिद्ध किला था। उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध किये लेकिन उनमें उनकी पराजय हुई। १३ वीं शताब्दी में उनकी स्वतन्त्रता का नाश हो गया और १२०३ में उनके राज्य का अधिकांश भाग मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

चेदि के कलचुरि—उत्तरी भारत के दूसरे राजाओं की भाँति कलचुरि भी पहले प्रतीहारों के अधीन थे। १० वीं शताब्दी में व भी स्वतन्त्र हो गये थे। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा गंगेयदेव विक्रमादित्य (१०१०-१०४०) था। इस वंश के लोग चेदि संवत् का प्रयोग करते थे, जिसका प्रारम्भ २४८ ई० से होता है। इनका राज्य मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले के आस-पास था।

सोलंकी—गुजरात के सोलंकी वातापि के चालुक्यों से सम्बन्धी थे। इनकी राजधानी अन्हिलवाड़ा थी। इस वंश के लोग भी प्रतीहारों की अधीनता से मुक्त

होकर १० वीं शताब्दी से उन्नत होने लगे थे। इस वंश के राजा भीम ने मुहम्मद गोरी को एक बार हराया था। इस वंश की शक्ति इतनी अधिक थी कि मुसलमानों का भारत पर अधिकार जमने के १०० वर्ष बाद तक यह स्वतंत्र बना रहा और अलाउद्दीन खिलजी के समय में इसके अन्तिम राजा कर्ण की हार के बाद इस वंश का नाश हुआ।

सामाजिक जीवन—हर्ष की मृत्यु से लेकर मुसलमानी राज्य की स्थापना तक हमारे देश में अनेक उथल-पुथल हुए। हमारे समाज, धर्म, राजनीतिक संगठन प्रायः सभी में एक महान् परिवर्तन हुआ और अधिकतर यह परिवर्तन पतन की ओर ही हुआ। पहले की तरह इस समय भी समाज में चार वर्ण थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। लेकिन पहले की अपेक्षा अब कुछ विशेष बुराइयाँ पैदा हो गई थीं। प्रत्येक वर्ण में कई उपभेद, जिनको जातियाँ कहते थे, पैदा हो गए थे और धीरे-धीरे एक वर्णवाली जातियों में भी ऊँच-नीच का भेद भाव पैदा होने लगा था। इस भेद भाव का कारण प्रायः खान-पान का अन्तर था। लेकिन धीरे धीरे यह भेद-भाव दृढ़ होने लगा और एक ही वर्ण के लोग अपने को एक दूसरे से पृथक् और ऊँचा-नीचा समझने लगे, जिससे भोजन, विवाह आदि में भी रुकावटें पड़ने लगीं। दूसरे द्रविड़ों तथा वैदिक आर्यों के अतिरिक्त हिन्दू समाज में शक, मंगोल यूची, आभीर, हूण, गुर्जर आदि विदेशी जातियाँ भी शामिल हो गईं। ब्राह्मणों ने उनके अवगुण का ध्यान रखकर उनको किसी-न-किसी वर्ण में स्थान दे दिया था। बहुतेरे लोग इन विदेशियों के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं करते थे और उनको अपने से नीचा समझते थे। इसी प्रकार भार, गोंड आदि जातियों में से जो लोग उन्नति कर गये और हिन्दू-समाज में मिला लिये गये उनको भी किसी-न-किसी वर्ण में स्थान दे दिया गया था, लेकिन उनको वह आदर से नहीं मिलता था जो कि पुराने हिन्दुओं को प्राप्त था। इस प्रकार हिन्दू समाज की संख्यावृद्धि अवश्य हुई, लेकिन ऊँच नीच के भेद-भाव ने उसे कमजोर करना आरम्भ कर दिया। पहले एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण में विवाह कर सकता था, किन्तु पूर्व मध्यकाल के समाप्त होते-होते संकीर्णता यहाँ तक बढ़ी कि एक ही वर्ण के अन्दर भी विवाह-सम्बन्ध होने में कुछ रुकावटें पड़ने लगीं। उत्तरी भारत में ब्राह्मणों की पाँच मुख्य शाखायें मानी गईं। उनको 'पंच गौड़' कहते थे। प्रायः यह भेद स्थानीय था, जैसे—सरस्वती नदी के पास रहनेवालों को सारस्वत, कान्यकुब्ज प्रान्त (गंगा यमुना के दोआब) में रहनेवालों को कान्यकुब्ज और मिथिला में रहनेवालों को

मथिल कहने लगे। इसी प्रकार दक्षिण भारत में 'पंच द्राविड' के नाम से ब्राह्मणों की पाँच शाखायें थीं। पहले इन दसों जातियों में विवाह, भोजन आदि का कोई बंधन नहीं था, लेकिन धीरे धीरे उत्तरी भारत के ब्राह्मण ही आपस में अपने को एक दूसरे से ऊँच-नीच समझने लगे।

राजपूतों की उत्पत्ति—ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रियों में भी कई शाखायें उत्पन्न हो गई थीं। आजकल क्षत्रिय अपने को सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी ही बताते हैं। इस काल में एक तीसरा वंश अग्निवंश भी प्रचलित हो गया था। इन तीन वंशों के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे वर्ग थे। चन्द्र बरदाई ने ३६ जातियों के नाम दिये हैं। इस काल की एक विशेष बात यह है कि अधिकतर क्षत्रिय राजघराने के अपने को राजपूत कहने लगे। इस शब्द का एकाएक इतना अधिक प्रचार हो जाने के कारण बहुधा लोग यह पूछते हैं कि यह राजपूत कौन थे? वे प्राचीन आर्यों की ही सन्तान थे या उनमें से अधिकांश विदेशी थे? यद्यपि विद्वानों में अभी इस विषय में मतभेद है, तो भी इसमें शक नहीं कि अन्य जातियों की भाँति विदेशियों और भारत के आदिम निवासियों में से कुछ लोग क्षत्रिय जाति में सम्मिलित किये गये और व सब 'राजपुत्र' कहे जाने लगे। इस प्रकार जिन लोगों को हम राजपूत कहते हैं उनमें तीन श्रेणियों के लोग सम्मिलित हैं—(१) प्राचीन आर्य क्षत्रियों की सन्तान, (२) गोंड, भार, अभीर आदि प्राचीन जातियों के वे लोग जो हिन्दू-समाज में मिल गये और जिनका कार्य शासन करना या युद्ध करना था, (३) शक, यूची, मंगोल, हूण, गुजर आदि विदेशी जातियों के अधिकतर लोग जो हिन्दू हो गये और क्षत्रियों का-सा काम करते रहे।

राजपूतों का सामाजिक जीवन—राजपूतों में से कुछ या अधिक हिन्दू होने के पहले भले ही विदेशी रहे हों, लेकिन यहाँ बस जाने और यहाँ का धर्म स्वीकार कर लेने के बाद वे सोलहों आने स्वदेशी हो गये। उन्होंने प्राचीन क्षत्रिय आदर्शों को अपनाया और स्वदेश रक्षा के लिए जी-जान तोड़कर कोशिश की। प्राय. राजपूत बड़े साहसी, वीर, निडर, सत्यवादी तथा बात के धनी होते थे। अपनी आन पर मर मिटना उनके बाएँ हाथ का खेल था। वे स्त्रियों का आदर करते थे और राजपूत स्त्रियाँ अपना पति स्वयंवर द्वारा चुनती थीं, पर्दा नहीं रखती थीं और हथियार चलाने तथा संगीत और कला में निपुण होती थीं। स्त्रियाँ अपनी मानरक्षा के लिए कभी-कभी सैकड़ों की संख्या में एक

शिव-मन्दिर (चिदम्बरम्)

साथ जल मरती थी। इसी प्रथा का नाम जौहर है। राजपूत सैनिक युद्ध में धोखा देना अनुचित समझते थे। उनकी वीरता की कहानी विश्व इतिहास में अनोखी है। लेकिन जहाँ उनमें इतने गुण थे वहाँ कुछ ऐसे दोष भी थे जिनके कारण आगे चलकर उन्हें मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पडी। व अफीम, शराब तथा दूसरी नशीली चीजों का व्यवहार करते थे। मान-अपमान का उन्हें इतना ख्याल था कि वे जरा-जरा-सी बात पर मरने-मारने पर तुल जाते थे और स्नेहपूर्वक मिल जुलकर काम नही कर सकते थे।

वैश्य—इस काल के वैश्य खेती करना अपमान समझते थे और व्यापार द्वारा ही रोटी कमाते थे। व्यापारियों के संघ इस काल में थे और वे देश तथा विदेश से व्यापार करते थे। वैश्यो में बौद्ध तथा जैन मत का प्रचार काफी था। वे मास नहीं खाते थे, दीन-दुखियो को दान देते थे और मन्दिर, मठ कुआँ, तालाब, धर्मशाला तथा अस्पताल आदि बनवाने में काफी व्यय करते थे।

शूद्र तथा अछूत—सबसे नीचे वर्ण के लोग शूद्र थे। उनमें भी अनेक जातियाँ थीं। शूद्रों का काम पहले तीन वर्णों की सेवा करना था। इसके अतिरिक्त इस काल में उनके अनेक स्वतन्त्र उद्यम भी थे। प्राय शूद्र वर्ण के ही लोग खेती करते थे। इसी वर्ण के लोग सूत, रेशम तथा ऊन कातते-बुनते थे और सुन्दर वस्त्र तैयार करते थे। कुछ मिट्टी, पत्थर या धातु के विविध सामान बनाते थे। इस वर्ण के कुछ लोग व्यापार भी करते थे और सेना में भी भरती हो जाते थे। शूद्रों के अतिरिक्त कुछ अछूत थे। उनको बहुधा नगर अथवा ग्राम के बाहर रहना पड़ता था। ये सूअर पालते थे, शराब पीते थे, मरे हुए जानवरों का मांस खाते थे और काफी गन्दे रहते थे। इस वर्ग के लोगों को उन्नत बनाने का कोई प्रबन्ध नही किया गया। उनको बहुधा अछूत समझ कर अलग ही रखना उचित समझा जाता था।

कुछ मुख्य रीतियाँ—हिन्दू समाज में जाति प्रथा के विकास के अतिरिक्त अनेक दूसरे नये रिवाज भी चलन पा गये थे। अब बाल विवाह होने लगे थे। अमीरों में बहुविवाह की प्रथा काफी प्रचलित थी। विधवा-विवाह बन्द हो चुका था। उच्च वर्ण की विधवाएँ बहुधा अपने पति के साथ जल जाती थीं। इसे सहमरण या सती प्रथा कहते हैं। उनका विश्वास था कि सहमरण से पति-पत्नी सदा साथ-साथ गोलोक में आनन्द-पूर्वक रहते हैं और उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। क्षत्रियों में इस समय तक स्वयंवर की

थी। स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती थीं और संगीत तथा कला में विशेष रुचि रखती थीं। नाचने-गाने का रिवाज राजकुमारियों तक में था। विद्याभ्यास इस कोटि तक पहुँचा हुआ था कि मण्डनमिश्र की स्त्री ने एक बार शङ्कराचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। कर्ज लेने के नियम कठोर थे। महाजन ऋणी को बेच भी सकते थे। उस समय दास प्रथा का प्रचार था, लेकिन उनके साथ घर के लोगों का-सा व्यवहार किया जाता था और उनको स्वतन्त्र होने की सुविधा प्राप्त थी।

आर्थिक जीवन—लोगों का मुख्य उद्यम खेती था। राज-कर बहुधा १/६ होता था। राज्य की ओर से खेतों की सिंचाई का भी प्रबन्ध किया जाता था। विशेषकर दक्षिणी भारत तथा गुजरात में नदियों में बाँध बना कर अनेक बड़ी बड़ी झीलें बना ली गई थीं, जिनसे सिंचाई होती थी। इन झीलों के अतिरिक्त वर्षा का पानी इकट्ठा करने के लिए भी स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े तालाब खुदवा दिये गये थे। इन सबका फल यह होता था कि कृषकों की दशा बहुत अच्छी होती थी। देश में धन धान्य की प्रचुरता थी। विदेशों से इस समय भी व्यापार होता था। दक्षिण भारत के चोल राजाओं ने अनेक पूर्वी द्वीपों पर अपना अधिकार करके भारतीय व्यापार को बढ़ाया था। दूसरे दक्षिणी नरेशों की प्रजा भी विदेशों से समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार करती थी। गुजरात और बंगाल के बन्दरगाहों से भी खूब व्यापार होता था। सारे देश में एक शासन न होने के कारण आन्तरिक व्यापार में कुछ अड़चनें पड़ती थीं। लेकिन साधारण रूप से सभी राज्यों के शासक व्यापारियों के उचित हितों का ध्यान रखते थे और उनके आने-जाने में बाधा नहीं डालते थे। सूत, रेशम तथा ऊन के कपड़े, पत्थर तथा धातु की मूर्तियाँ, हाथीदाँत की कीमती चीजें, सोने चाँदी के आभूषण, मसाले और मोती विदेशों को भेजे जाते थे। विदेशों से घोड़े, लड़ाई के कुछ हथियार, शराब, मेवे आदि वस्तुएँ खरीदनी पड़ती थीं। इस कारण दिन प्रति दिन देश धनी होता जा रहा था। इस काल में असंख्य मन्दिरों, बावड़ियों, धर्मशालाओं का निर्माण हुआ। इससे पता चलता है कि इस काल के लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी।

राजपूत शासन प्रबन्ध—इस काल में अधिकतर राज्य छोटे-छोटे थे। लेकिन कभी-कभी इन राज्यों के प्रतापी राजा अपने पड़ोसियों को हराकर एक विशाल राज्य भी बना लेते थे। प्रायः सभी क्षत्रियों का उद्देश्य चक्रवर्ती राजा

बनने का रहता था। इसलिए वे अपने पड़ोसियों से युद्ध करने के लिए सदा उद्यत रहते थे। संधि द्वारा मैत्री स्थापित करना जैसे वे जानते ही नहीं थे। इसका फल यह हुआ कि प्राय सभी राज्यों का शासन मुख्यत सैनिक शासन हो गया। प्रत्येक शासक सबसे अधिक ध्यान अपनी सैनिक-शक्ति के बढ़ाने में लगता था। इसी कारण इस काल में सामन्तशाही प्रथा का भी खूब प्रचार हो गया। राजा सारे राज्य का स्वामी होता था। वह आवश्यक नियम बनाता था और देश में शान्ति रखता था। उसके पास प्रजा अपनी फरियाद भी ले जा सकती थी। इस प्रकार वह एक प्रधान जज का भी काम करता था। युद्ध के समय वह प्राय सदा ही सेनापति का पद ग्रहण करता था। जो व्यक्ति सैनिक योग्यता न रखता हो, उसका अधिक दिन तक राजा रह सकना असम्भव था। राजा अपने वंशवालों तथा उच्च पदाधिकारियों से सलाह लेता था। प्रायः सभी राज्यों में ब्राह्मण मन्त्री होते थे। कभी-कभी व सेनापति भी होते थे। शेष प्राय सभी उच्च पद क्षत्रियों को ही मिलते थे। प्रत्येक क्षत्रिय सामन्त को राज्य का कुछ भाग स्थायी जागीर के रूप में दिया जाता था। उसका शासन वही करता था। वहाँ की प्रजा के जान-माल का रक्षक वही था। वह एक प्रकार से छोटा-सा राजा ही था। अपने स्वामी को वह एक निश्चित वार्षिक कर देता था और प्रत्येक समय उसकी सहायता के लिए सैनिकों की एक निश्चित संख्या तैयार रखता था। लड़ाई के समय उसे राजा के साथ जाना पड़ता था। सामन्त भी समय आने पर सम्राट होने का स्वप्न देखा करते थे। इसलिए वे भी सेना की ओर ही विशेष ध्यान देते थे। उनका प्रजा से केवल इतना सम्बन्ध रहता था कि उनको वार्षिक कर मिल जाय और कोई विशेष उपद्रव न हो। प्रजा की उन्नति या सुख-शान्ति का उन्हें कोई विशेष ध्यान नहीं रहता था। इस कारण प्रजा में राजा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रहती थी। वे अपना कर्तव्य केवल कर देना समझते थे। ग्रामों का प्रबन्ध प्रायः गुप्त-काल की ही भाँति होता था। ग्रामवासी जनता अपने सुख-दुख की देख-रेख स्वयं ही करती थी। राजा या सामन्त के पास बहुत कम मुकदमे जाते थे, क्योंकि न्याय का सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं था। यद्यपि कुछ न्यायाधीश अवश्य रहते थे। इस काल में कड़ी सजाएँ दी जाती थीं। राज-कर प्राय हल्के थे और युद्ध के समय भी राजा खेती की रक्षा का ध्यान रखते थे। दक्षिण-भारत के राज्यों के शासन प्रबन्ध में दो विशेषताएँ थीं। पल्लवों और चोलों के विषय में यह दोनों

बातें खास तौर से लागू है। यहाँ पर स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ अधिक उन्नत थीं। ग्राम पंचायतों के अतिरिक्त विषयों और भुक्तियों के शासकों की सहायता के लिए भी प्रजा द्वारा निर्वाचित सभायें रहती थीं। दूसरी विशेष बात यह है कि दक्षिणी राजाओं ने सिंचाई की सुविधा के लिए नहरें, झीलें, तालाब बहुत अधिक संख्या में बनवाये थे। इस काल में दक्षिण भारत की जनता भी खूब धनी थी।

साहित्य तथा कला की उन्नति—यद्यपि देश में स्थायी शांति का अभाव था फिर भी साहित्य तथा कला की खूब उन्नति हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रायः सभी राजा विद्वानों और कलाविदों की सहायता करने में अपना गौरव समझते थे और अपनी कीर्ति को स्थायी करने के लिए इमारतें बनवाना पसन्द करते थे। इस काल में मन्दिरों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हुआ। मन्दिर बनवाने की कई शैलियाँ प्रचलित हो गई थीं। लेकिन सभी मन्दिरों में सजावट और पत्थर की खुदाई तथा कटाव का बहुत काम रहता था। मूर्ति पूजा का प्रचार होने के कारण स्थान-स्थान पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनी रहती थीं। इस काल की मूर्तियाँ बहुधा गहनों से लदी हैं। इस काल में अनेक सुन्दर मन्दिर बने, जिनमें कुछ आज तक प्रसिद्ध हैं। उनमें से मुख्य एलोरा का कैलाश मन्दिर, बुन्देलखण्ड में खजुराहो का मन्दिर, आबू का जैन मन्दिर और तंजोर तथा कान्ची के मन्दिर हैं। एलोरा की गुफाओं में अजन्ता की भाँति चित्रकारी भी की गई है। अन्तर इतना ही है कि यह गुफायें चित्र आदि पौराणिक धर्म से सम्बन्ध रखते हैं न कि बौद्ध या जैन धर्म से। भारतीय कला का प्रभाव जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया और भारतीय उपनिवेशों पर भी काफी पड़ा।

संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इतिहास ग्रन्थों में कल्हण की राजतरंगिणी (कश्मीर देश का इतिहास) विल्हण का विक्रमांक चरित और जयानक का पृथ्वीराजविजय मुख्य हैं। जयदेव का गीतगोविन्द, भवभूति के मालती-माधव, उत्तररामचरित और महावीर चरित संस्कृत-साहित्य की सुन्दर रचनाएँ हैं। इसी काल में विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा नामी टीका लिखी। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य की भगवद्गीता और वेदान्त सूत्रों की टीकायें भारतीय दर्शन की उत्तम रचनाओं में गिनी जाती हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न विषयों पर सैंकड़ों और ग्रन्थ रचे गए, जिनका प्रचार इतना अधिक नहीं हुआ।

इनके अतिरिक्त पल्लवों और पूर्वी चालुक्यों के प्रभाव से तमिल तथा तेलुगू साहित्य की भी उन्नति हुई। अलवारों और आचार्यों ने दक्षिणी भारत में अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना की, जिनका मान वेदों के ही समान था। उत्तरी भारत में हिन्दी भाषा के साहित्य का भी इसी काल से प्रारम्भ हुआ है।

धार्मिक अवस्था—इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक घटना भारत में बौद्ध धर्म का लोप है। हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि शुङ्ग सातवाहनों तथा गुप्त राजाओं के काल से ही बौद्ध धर्म की अवनति प्रारम्भ हो गई थी, लेकिन उसका विनाश इसी काल में हुआ। यह सच है कि हर्ष और कनिष्क की सहायता मिलने के कारण उनमें थोड़े दिनों के लिए कुछ नई शक्ति आ गई थी, लेकिन वह स्थायी न हो सकी। बौद्ध धर्म के पतन के अनेक कारण हैं। महात्मा बुद्ध के मरने के बाद ही बौद्ध धर्म में फूट होने लगी थी। अशोक ने फूट को नष्ट करने का बहुत प्रयत्न किया। उसके काल में आपसी झगड़े कुछ समय के लिए शान्त हो गए थे, लेकिन उसके मरने के बाद वे फिर उग्र रूप धारण करने लगे। फल यह हुआ कि कनिष्क के समय में हीनयान और महायान दो अलग अलग मत पैदा हो गए जिनको मिला सकना असम्भव हो गया। हीनयान मतवाले महायान बौद्धों के दोष दिखाने में लग गए और महायानवाले हीनयानों के। इस झगड़े का फल यह हुआ कि दूसरे धर्मों के आक्रमण को रोकने की शक्ति बौद्धों में न रही। अशोक और कनिष्क के काल में बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में भी बहुत हो गया था। वहाँ की जनता पर प्रभाव डालने के लिए बौद्ध भिक्षुओं ने कुछ विदेशी अन्ध विश्वासों को भी धर्म का अंग बना दिया था। इस प्रकार एक तीसरे प्रकार के बौद्ध मत की सृष्टि हुई। उसे वज्रयान कहते हैं। वज्रयानी बौद्ध मन्त्र-यन्त्र में बहुत विश्वास करते थे और उनकी कुछ क्रियायें बहुत आपत्ति जनक मालूम होती थीं। इन परिवर्तनों के कारण बौद्ध धर्म की सरलता और पवित्रता नष्ट हो गई। दूसरे, बौद्ध-मत का प्रचार भिक्षु तथा भिक्षुणियों के परिश्रम और उज्ज्वल चरित्र के कारण बहुत शीघ्रता से हुआ था। अब वे आलसी तथा चरित्रहीन हो गये थे। बौद्ध विहार जो पहले धर्म और विद्या के केन्द्र थे अब व्यभिचार के अड्डे हो गये थे। इसका भी जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। तीसरे, इस काल के राजाओं ने बौद्ध धर्म को नहीं अपनाया। राजाओं की कृपा न मिलने के कारण भी इसकी अवनति हो गई। चौथे, वैदिक-धर्म का प्रभाव कभी भी भारतवर्ष में नष्ट नहीं

बातें खास तौर से लागू है। यहाँ पर स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ अधिक उन्नत थी। ग्राम-पंचायतों के अतिरिक्त विषयों और भुक्तियों के शासकों की सहायता के लिए भी प्रजा द्वारा निर्वाचित सभायें रहती थीं। दूसरी विशेष बात यह है कि दक्षिणी राजाओं ने सिंचाई की सुविधा के लिए नहरें, झीलें, तालाब बहुत अधिक संख्या में बनवाये थे। इस काल में दक्षिण भारत की जनता भी खूब धनी थी।

साहित्य तथा कला की उन्नति—यद्यपि देश में स्थायी शान्ति का अभाव था फिर भी साहित्य तथा कला की खूब उन्नति हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रायः सभी राजा विद्वानों और कलाविदों की सहायता करने में अपना गौरव समझते थे और अपनी कीर्ति को स्थायी करने के लिए इमारतें बनवाना पसन्द करते थे। इस काल में मन्दिरों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हुआ। मन्दिर बनवाने की कई शैलियाँ प्रचलित हो गई था। लेकिन सभी मन्दिरों में सजावट और पत्थर की खुदाई तथा कटाई का बहुत काम रहता था। मूर्ति पूजा का प्रचार होने के कारण स्थान-स्थान पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनी रहती था। इस काल की मूर्तियाँ बहुधा गहनों से लदी हैं। इस काल में अनेक सुन्दर मन्दिर बने, जिनमें कुछ आज तक प्रसिद्ध हैं। उनमें से मुख्य एलोरा का कैलाश मन्दिर, बुन्देलखण्ड में खजुराहो का मन्दिर, आबू का जैन मन्दिर और तंजोर तथा काञ्ची के मन्दिर है। एलोरा की गुफाओं में अजन्ता की भाँति चित्रकारी भी की गई है। अन्तर इतना ही है कि यह सभी चित्र नये पौराणिक धर्म से सम्बन्ध रखते है, न कि बौद्ध या जैन धर्म से। भारतीय कला का प्रभाव जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया और भारतीय उपनिवेशों पर भी काफी पड़ा।

संस्कृत, प्राकृत तथा नई प्रान्तीय भाषाओं में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इतिहास ग्रन्थों में कल्हण की राजतरंगिणी (कश्मीर देश का इतिहास), विल्हण का विक्रमांकचरित्र और जयानक का पृथ्वीराज विजय मुख्य हैं। जयदेव का गीतगोविंद, भवभूति के मालती-माधव, उत्तर रामचरित और महावीर चरित संस्कृत-साहित्य की सुन्दर रचनाएँ हैं। इसी काल में विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा नामी की टीका लिखी। शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्य की भगवद्‌गीता और वेदान्त सूत्रों की टीकायें आजतक भारतीय दर्शन की उत्तम रचनाओं में गिनी जाती हैं। इसी प्रकार भिन्न भिन्न विषयों पर सैकड़ों और ग्रन्थ रचे गए, जिनका प्रचार इतना अधिक नहीं हुआ।

इनके अतिरिक्त पल्लवों और पूर्वी चालुक्यों के प्रभाव से तमिल तथा तेलुगू साहित्य की भी उन्नति हुई। अलवारों और आचार्यों ने दक्षिणी भारत में अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना की, जिनका मान वेदों के ही समान था। उत्तरी भारत में हिन्दी भाषा के साहित्य का भी इसी काल से प्रारम्भ हुआ है।

धार्मिक अवस्था—इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक घटना भारत में बौद्ध धर्म का लोप है। हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि शुङ्ग, सातवाहनों तथा गुप्त राजाओं के काल से ही बौद्ध धर्म की अवनति प्रारम्भ हो गई थी, लेकिन उसका विनाश इसी काल में हुआ। यह सच है कि हर्ष और कनिष्क की सहायता मिलने के कारण उनमें थोड़े दिनों के लिए कुछ नई शक्ति आ गई थी, लेकिन वह स्थायी न हो सकी। बौद्ध धर्म के पतन के अनेक कारण हैं। महात्मा बुद्ध के मरने के बाद ही बौद्ध धर्म में फूट होने लगी थी। अशोक ने फूट को नष्ट करने का बहुत प्रयत्न किया। उसके काल में आपसी झगड़े कुछ समय के लिए शान्त हो गए थे, लेकिन उसके मरने के बाद वे फिर उग्र रूप धारण करने लगे। फल यह हुआ कि कनिष्क के समय में हीनयान और महायान दो अलग-अलग मत पैदा हो गए जिनको मिला सकना असम्भव हो गया। हीनयान मतवाले महायान बौद्धों के दोष दिखाने में लग गए और महायानवाले हीनयानों के। इस झगड़े का फल यह हुआ कि दूसरे धर्मों के आक्रमण को रोकने की शक्ति बौद्धों में न रही। अशोक और कनिष्क के काल में बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में भी बहुत हो गया था। वहाँ की जनता पर प्रभाव डालने के लिए बौद्ध भिक्षुओं ने कुछ विदेशी धर्म विश्वासों को भी धर्म का अंग बना दिया था। इस प्रकार एक तीसरे प्रकार के बौद्ध मत की सृष्टि हुई। उसे वज्रयान कहते हैं। वज्रयानी बौद्ध मन्त्र-यंत्र में बहुत विश्वास करते थे और उनकी कुछ क्रियायें बहुत आपत्तिजनक मालूम होती थीं। इन परिवर्तनों के कारण बौद्ध धर्म की सरलता और पवित्रता नष्ट हो गई। दूसरे, बौद्ध-मत का प्रचार भिक्षु तथा भिक्षुणियों के परिश्रम और उज्ज्वल चरित्र के कारण बहुत शीघ्रता से हुआ था। अब वे आलसी तथा चरित्रहीन हो गये थे। बौद्ध विहार जो पहले धर्म और विद्या के केन्द्र थे अब व्यभिचार के अड्डे हो गये थे। इसका भी जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। तीसरे, इस काल के राजाओं ने बौद्ध धर्म को नहीं अपनाया। राजाओं की कृपा न मिलने के कारण भी इसकी अवनति हो गई। चौथे, वैदिक-धर्म का प्रभाव कभी भी भारतवर्ष में नष्ट नहीं

हुआ था। ब्राह्मणों ने अपने धर्म में आवश्यक परिवर्तन कर दिये, बौद्ध धर्म की अच्छी शिक्षाओं को अपने धर्म में मिला लिया और बुद्ध को विष्णु का नवाँ अवतार मानकर उन्हें भी एक हिन्दू-देवता बना दिया। बौद्ध जातक कथाओं की भाँति उन्होंने पुराणों की रचना की, जिनमें उन्होंने अनेक शिक्षाप्रद कहानियाँ मिला दीं। इन कहानियों तथा आख्यानों द्वारा भी उन्होंने बौद्ध धर्म का खण्डन किया और अपने मत को अधिक सरल और आकर्षक बना दिया। ब्राह्मणों ने शास्त्रार्थ द्वारा बौद्ध धर्म का खण्डन किया और अपना प्रभाव फिर बढ़ा लिया। इन विद्वानों में कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य सबसे प्रसिद्ध हैं। पाँचवाँ कारण यह था कि कुछ राजाओं ने बौद्ध धर्म को शक्तिपूर्वक नष्ट करने का प्रयत्न किया। हूणों के राजा मिहिरकुल ने हजारों भिक्षुओं की हत्या की थी और उनके सैकड़ों विहार तथा मठ नष्ट कर दिये थे। १२ वीं सदी में इख्तियारुद्दीन खिलजी ने जब बिहार प्रान्त पर आक्रमण किया तो उसने बौद्धों के बचे खुचे विहार भी नष्ट कर दिये और उसके डर से बौद्धभिक्षु नेपाल तथा तिब्बत भाग गये। इस प्रकार विदेशी शासकों के अत्याचार ने बौद्ध धर्म को बिलकुल ही नष्ट कर दिया।

पौराणिक हिन्दू धर्म—इस काल में पौराणिक हिन्दू-धर्म का प्रचार बहुत बढ़ा। जहाँ जहाँ बौद्धों का प्रभाव घटता गया, वहाँ-वहाँ यह धर्म उसका स्थान लेता गया। इस की उन्नति के कई कारण थे। ब्राह्मणों ने अपने धर्म में प्रचलित रीति रिवाजों को स्थान देकर मोक्षप्राप्ति सबके लिए सुलभ कर दी। वे कहते थे कि भगवान् सभी को मिल सकते हैं। यही नहीं यदि कोई श्रद्धा के साथ भूतों, नदियों, पहाड़ों की पूजा करेगा तो वह भी भगवान् की ही पूजा है, क्योंकि उन सबमें भगवान् की ही सत्ता है। इस प्रकार उन्होंने सभी लोगों पर अपना प्रभाव जमा लिया। दूसरे, इस समय में उन्हें राजाओं की भी सहायता प्राप्त हो गई। जो विदेशी भारत आकर बस गए उनको ब्राह्मणों ने सहर्ष हिन्दू बना लिया और शासकों को उच्च श्रेणी में स्थान देने के साथ साथ उनके कल्पित वंश भी रच दिये। उन्होंने मूर्ति-पूजा भी आरम्भ कर दी। मूर्ति-पूजा द्वारा लोगों को भगवान् के दर्शन सहज ही हो जाते थे। इसके अतिरिक्त पौराणिक कथाओं का समाज में खूब प्रचार हुआ। भागवत पुराण की कथाओं द्वारा वैष्णव-धर्म के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई। इसी प्रकार देवी-पुराण में दुर्गा की शक्ति और कृपा की कहानियाँ थीं। उनका प्रचार भी

देश के विभिन्न भागों में हुआ, लेकिन बंगाल में 'शक्ति' अर्थात् 'दुर्गा' के उपासकों की संख्या बहुत थी। शाक्तों में वज्रयानी तान्त्रिकता भी घुसने लगी। विष्णु और दुर्गा की पूजा के अतिरिक्त शिव की पूजा का भी बहुत प्रचार हुआ। शिवपुराण तथा लिंगपुराण में शिव की महिमा का वर्णन किया गया है। इस काल में शैवों के कई मत चले। इस मत को मानने वाले वसे तो सारे देश में ही थे, लेकिन कश्मीर और दक्षिण में उनकी संख्या बहुत अधिक थी। शिव बहुत शीघ्र प्रसन्न होने वाले देवता हैं। वे प्रसन्न होने पर भक्त को सभी कुछ दे सकते हैं। वे स्वयं एक महान् योगी हैं और उनमें इतनी शक्ति है कि वे अपना नेत्र खोलकर ताक दें तो समस्त संसार भस्म हो जाय। इतनी शक्ति के होते हुए भी वे बड़े दयालु हैं। इन सब कथाओं का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा और शिव के उपासकों की संख्या आज तक बहुत अधिक है।

इन सब परिवर्तनों का फल यह हुआ कि पौराणिक हिन्दू-धर्म के अन्दर विभिन्नता आ गई। उसमें एक ओर शंकराचार्य ऐसे वेदान्ती थे जो केवल ब्रह्मज्ञान को ही सत्य मानते थे और शेष सारे जगत् को माया-जाल समझते थे और दूसरी ओर वे अर्द्ध सभ्य जातियाँ थीं जो रास्तों, नदियों, पेड़ों को ही पूजकर संतुष्ट हो जाती थीं और समझती थीं कि उन्होंने जीवन का उद्देश्य पूरा कर लिया। बहुत से लोगों की राय है कि इससे धर्म को आगे चलकर बहुत हानि हुई।

अन्य धर्म—भारत का तीसरा प्रमुख धर्म जैन धर्म था। उसका प्रचार न कभी विदेशों में हुआ और न वह कभी भारत से ही मिटा। इसको मानने वालों की संख्या कम अवश्य हो गई, लेकिन वे अब भी हमारे समाज में मौजूद हैं। जैनी धीरे-धीरे हिन्दू धर्म में अन्तर्गत आ गये। केवल अंतर इतना रह गया है कि वे विष्णु या शिव के स्थान पर महावीर स्वामी तथा दूसरे तीर्थङ्करों की पूजा करते हैं और अहिंसा पर बहुत बल देते हैं। बहुत से हिन्दू देवी-देवताओं ने भी जैन धर्म में स्थान पा लिया है और जाति-व्यवस्था उनमें भी पूर्ण तथा मौजूद है। उनके विरासत आदि के नियम भी हिन्दू स्मृतियों के ही अनुकूल हैं। जैनियों के अतिरिक्त इस काल में कुछ मुसलमान भी थे। उनके धर्म का नाम इस्लाम है। इस धर्म का प्रचार ७ वीं शताब्दी में अरब के निवासी मुहम्मद साहब ने किया था। मुसलमानों के भारत में आने का हाल हम आगे पढ़ेंगे।

आबू के पार्श्वनाथ मन्दिर का भीतरी दृश्य
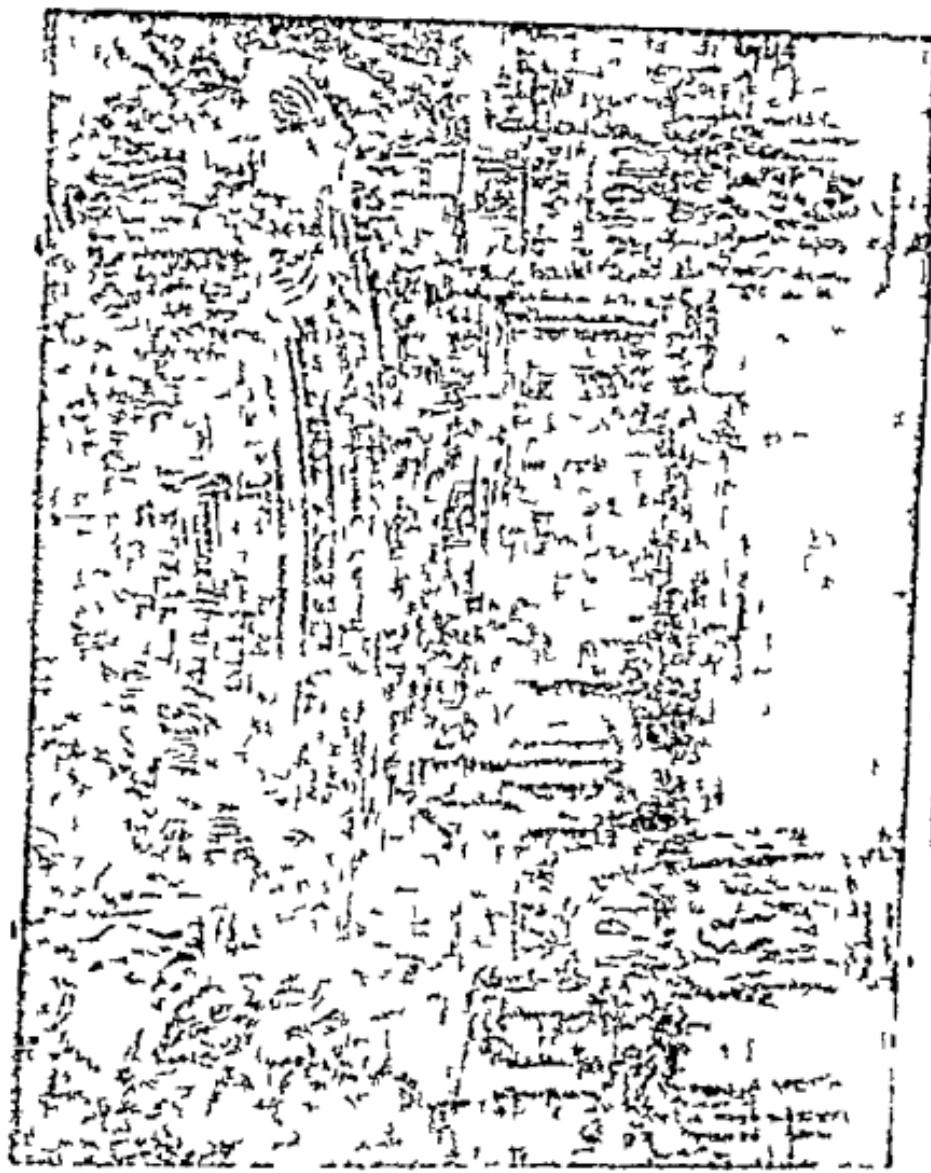
मुख्य तिथियाँ

पालवंश की स्थापना	लगभग	७५० ई०
प्रतिहारो, पालो, राष्ट्रकूटों में कन्नौज के लिए युद्ध	,,	८००-८४० ई०
प्रतिहारों का कन्नौज पर स्थायी अधिकार	,,	८४० ई०
राजा भोज परमार	,,	१०१८-१०६० ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) ९वीं शताब्दी ईस्वी की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना क्या है ?
(२) प्रतिहारों के पतन के बाद उत्तर भारत मे किन रियासतो ने उन्नति की ? उनका संक्षिप्त वर्णन करो ।
(३) जाति-व्यवस्था के बढ़ने के क्या कारण थे ? जाति से क्या हानि या लाभ है ?
(४) राजपूत कौन थे ? उनकी क्या मुख्य विशेषताएँ हैं ?
(५) राजपूत शासको के शासनप्रबन्ध मे क्या दोष थे ।
(६) साहित्य तथा कला की उन्नति के क्या कारण थे ? यदि तुमने इस कला की बनी हुई किसी इमारत को देखा हो तो उसका संक्षिप्त वर्णन करो।
(७) बौद्ध-धर्म के पतन के क्या कारण थे ?
(८) नये हिन्दू धर्म की क्या विशेषताएं थी ? उसकी अभूतपूर्व लोकप्रियता के क्या कारण थे ?

अध्याय १२

भारत की प्राचीन संस्कृति तथा कला का सिंहावलोकन

सिंधुघाटी की सभ्यता के उदय होने के पश्चात् राजपूत-काल तक लगभग ५००० वर्ष बीत चुके थे। इस दीर्घ काल में हमारे इतिहास की शृंखला बराबर सुदृढ़ बनी रही। कई दृष्टियों से हमारे देश के इतिहास में यह ५००० वर्ष परवर्ती १००० वर्ष से अधिक महत्त्व के हैं। इसी काल में समाज, धर्म, नीति

आदि के सिद्धान्त विकसित होकर परिपक्व हुए और उनका वह स्वरूप स्थिर हुआ जो मूलतः अब भी हमें मान्य है। इसी युग में साहित्य, कला तथा शासन के सिद्धान्तों पर सूक्ष्म मनन करके उनका स्वरूप स्थिर किया गया और अनेक सुन्दर कृतियों से भारतीय आत्मा को अलंकृत किया गया। यही समय था जब भारत सभ्य जगत् का पथप्रदर्शक बना और उसने सभ्यता तथा शांति का संदेश दूर-दूर तक पहुँचाकर मानवीय उन्नति और सुख का मार्ग प्रशस्त किया। इस अध्याय में हम अपने अतीत गौरव की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए प्राचीन संस्कृति तथा कला का सिंहावलोकन करेंगे।

भारतीय धर्म—इस काल में भारतीय तत्त्ववेत्ताओं तथा महात्माओं ने धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों पर विचार किया। भारतीय प्रवृत्ति संग्रहात्मक और उदार रही। प्राचीन वैदिक धर्म ने द्रविड़ धर्म से योग, शिव-पूजा आदि सिद्धान्तों को लेकर एक ऐसा समन्वय किया जिसे प्रायः सभी द्रविड़ तथा आर्य एक समान स्वीकार कर सकते थे। परन्तु यदि कोई ऋषि अथवा उपनिषत्कार वैदिक क्रियाओं की हँसी उड़ाता था तो उसका मुख बन्द करने की चेष्टा नहीं की जाती थी। उसके तर्कों को समझने और उनका मूल्य आँकने की भावना सदा बनी रहती थी। अस्तु बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा उनके अनेक संप्रदायों के उत्पन्न होने से किसी को किसी भयावह स्थिति की आशंका नहीं प्रतीत हुई। यहाँ के प्रायः सभी चोटी के महात्माओं ने यही उपदेश दिया कि धर्म एक है, परन्तु मार्ग अनेक हैं और जिसे जो मार्ग रुचे उसके लिए वही ठीक है। महत्त्व की वस्तु मार्ग नहीं वरन् अभीष्ट स्थान है। उसमें या तो कोई अन्तर नहीं है अथवा केवल भाव और अनुभूति की विविधता का प्रकार अन्तर है। अस्तु, बाहर से आने वाले ईसाई, पारसी, मुसलमान आदि यहाँ खुले दिल से स्वीकार किये गये। उनसे धर्म चर्चा करके उनका मर्म जानने की चेष्टा होती रही, न कि उनको बाहर खदेड़ने की अथवा उनको निर्मूल करने की। यह उदार समन्वयवादिता हमारे धार्मिक जीवन का विशेषता रही है। यह प्रवृत्ति मध्यकालीन तथा बहुत कुछ आधुनिक हिन्दू में भी वर्तमान है।

मत-मतान्तरों की वृद्धि—इस मौलिक एकता के आधार को बिना भूले हुए अनेक मत-मतान्तरों का उदय हुआ। बौद्ध, जैनी, शैव, वैष्णव, शाक्त, तांत्रिक, आजीविका आदि तथा उनके भी भेद-उपभेद बनते-बिगड़ते रहे। इन सभी संप्रदायों में लौकिक सुख की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति पर विशेष बल

दिया गया। जीव की अमरता, संस्कार का बंधन, जीवन-मरण से मुक्ति की आकांक्षा आदि सिद्धान्त प्राय सभी सम्प्रदायों में मान्य थे। फिर भी उद्देश्य की प्राप्ति के साधन में, उद्देश्य के स्पष्ट निरूपण में तथा किसी देवता विशेष की आराधना पर विशेष महत्त्व देने में उनमें अन्तर रहता था। सभी संप्रदायों के लोग अपने मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। अस्तु, दार्शनिक साहित्य का अपार भण्डार एकत्रित हो गया। जनसाधारण के लिए एक सुगम मार्ग की उपादेयता प्राय सभी ने स्वीकार की। इसलिए रोचक कथाएँ, आकर्षक पूजाविधियों, सुन्दर मंदिरों का निर्माण हुआ। जनसाधारण में प्रायः यह भावना रही कि सभी धार्मिक व्यक्ति पूजा और श्रद्धा के पात्र हैं। वे सभी देवालयों को पवित्र स्थान समझते थे और उनकी रक्षा, जीर्णोद्धार आदि के लिए सहर्ष आर्थिक सहायता देते थे। भारतीय नरेशों में मिहिरकुल, शशांक ऐसे कुछ संकीर्ण विचार वाले शासकों को छोडकर शेष सभी ने अपने निजी धर्म का न तो प्रजा पर लादने की चेष्टा की और न किसी धर्म विशेष के मानने वालों को राजकृपा से वञ्चित किया। यही कारण है कि इतने अधिक धार्मिक सम्प्रदायों के होते हुए भी भारतीय शांति भंग नहीं हुई और न यूरप तथा पश्चिमी और मध्य एशिया की भाँति यहाँ पर धर्म के नाम का क्रूर अत्याचारों से कलंकित किया गया।

परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोगों में साम्प्रदायिक ईर्ष्या थी ही नहीं। प्राय सभी सम्प्रदाय राजशक्ति के सहारे अपना महत्त्व बढ़ाने की चेष्टा करने की इच्छा रखते थे। इस आधार पर कभी-कभी भयानक राजनीतिक कुचक्र होते थे। कभी-कभी विदेशी आक्रमणकारियों को असंतुष्ट सम्प्रदाय वालों की अमूल्य सहायता मिल जाती थी और धार्मिक शास्त्रार्थ में भी कभी-कभी कटुता आ जाती थी।

साहित्य —इस दीर्घ-काल में भारतीय वाङमय के सभी अंगों को सजाने का प्रयत्न हुआ। परन्तु धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य का ही विशेष प्रधानता रही। विश्व-साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद इसी काल में रचा गया। उसके बाद उस विशाल वैदिक साहित्य की सृष्टि हुई जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है। द्रविड़ों के धार्मिक विचार और पूजा-परिपाटी की स्मृति मौखिक परम्परा द्वारा सुरक्षित रह कर तमिल साहित्य में स्थायी हुई। उत्तर भारत में शास्त्रीय ढंग से आत्मा, विश्व, सृष्टि आदि विषयों पर मनन किया गया।

इसी के फलस्वरूप षड्दर्शन, उपनिषद्, आगम आदि रचे गये। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध तथा जैन धर्म काफी प्रभावशाली हो गये। उनके दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण और विश्लेषण करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की गई। साधारण जनता को आकर्षित करने के लिए इसी समय बौद्धों ने जातक-कथाओं और ब्राह्मणों ने पुराणों की रचना की। इनमें अनेक आख्यानों द्वारा बड़ी रोचक शैली में नीति, शील तथा धर्म की शिक्षा दी गई है। इनके अतिरिक्त प्रधान ग्रन्थों के अनेक प्रामाणिक भाष्य अथवा टीकाएं लिखी गईं। इन भाष्यकारों में सायणाचार्य तथा शंकराचार्य बहुत प्रसिद्ध हैं। भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों में इन विभिन्न धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पण्डित रहते थे जो अपने शास्त्रार्थों द्वारा अपने तथा अपने प्रतिपक्षियों के विचारों का आदान प्रदान किया करते थे। प्राचीन सम्राट इन शास्त्रार्थों में बहुत अभिरुचि रखते थे और उनमें सम्मिलित होने वाले विद्वानों को दान तथा पदवियाँ देकर सम्मानित करते थे।

धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त ज्योतिष, गणित, वैद्यक, गृह निर्माण-कला, चित्रकारी, स्थापत्य आदि विज्ञानों से सबंध रखने वाले ग्रंथ भी रचे गये। इनका वर्णन यथास्थान पिछले अध्यायों में आ चुका है। नाटक, व्याकरण, काव्य, उपन्यास, नीति, इतिहास, शासन आदि विषयों पर भी अनेक रचनाएँ रची गई। परन्तु इस विस्तृत साहित्यिक सामग्री में आजकल के विद्वानों को तीन अभाव विशेष रूप से खटकते हैं।

(१) अनेक ग्रन्थों में समय-समय पर जोड़ जाड़ और काट छाँट की गई है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि किस समय किस व्यक्ति अथवा वर्ग ने यह संशोधन किया। अस्तु इनमें से किसी भी ग्रन्थ के निर्माणकाल अथवा रचयिता के विषय में हम ठीक-ठीक कुछ नहीं कह सकते। प्राय किसी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को ही इन ग्रन्थों का निर्माता माना गया है। इस भाँति वेदव्यास को महाभारत तथा अठारह पुराणों का, कौटिल्य को अर्थशास्त्र का और मनु को मनुस्मृति का रचयिता माना जाता है।

(२) अशोक के स्तम्भों पर की पालिश, राजा चंद्र की लोहे की लाट अशोक का लकड़ी का महल आदि ऐसी कारीगरी के नमूने हैं जिनसे रसायन तथा भौतिक विज्ञान का उच्च श्रेणी का क्रियात्मक ज्ञान प्रकट होता है। परन्तु इन विषयों पर कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

(३) मानवीय इतिहास को और विशेषकर उसके राजनीतिक इतिहास को बहुत कम महत्त्व दिया गया है। इतिहास को नीति और धर्म का सहायक मानकर उसकी चर्चा की गई है। दो चार शुद्ध ऐतिहासिक रचनाएँ भी हैं परन्तु उनके सहारे हमारे सम्पूर्ण अतीत का उचित वर्णन संभव नहीं है। फल यह हुआ है कि इस काल का इतिहास लिखने में बड़ी कठिनाई होती है और सिक्कों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, साहित्यिक रचनाओं, यात्रा विवरणों, धार्मिक चर्चाओं आदि को छान कर ऐतिहासिक वृत्त के टुकड़े एकत्रित करने पड़ते हैं।

यह तमाम साहित्य किसी एक ही भाषा अथवा लिपि में प्राप्त नहीं है। वैदिक संस्कृत, बाद की संस्कृत, प्राकृत, पालि, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं तथा अनेक प्रकार की लिपियों का प्रयोग किया गया था। परन्तु प्राय बराबर ही संस्कृत की प्रधानता रही और उत्तर भारत में धीरे धीरे देवनागरी लिपि का विकास हुआ जिसे सभी भाषाविज्ञान-वेत्ता संसार की सर्वोत्कृष्ट लिपि स्वीकार करते हैं।

कला—इस युग में ललित कलाओं ने भी बड़ी उन्नति की पाषाण कला की रेखा चित्रावली, सिंध युगीन सभ्यता के समय तक काफी सुन्दर और कला त्मक हो चुकी थी। आगे चलकर अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में उच्च कोटि की चित्रकारी की गई। स्त्रियों को चित्रकारी की विशेष शिक्षा दी जाती थी और आशा की जाती थी कि अनेक संस्कारों अथवा त्योहारों में समय वे अपने घरों को सुन्दर चित्रों से सजायेंगी। पत्थर, हाथीदाँत तथा धातु की मूर्तियाँ बनाने में भी बड़ी उन्नति की गई। भारतीय अजायबघरों में इस काल की सुन्दर कृतियों के कुछ नमूने अभी तक विद्यमान हैं परन्तु बहुत बहुमूल्य सामग्री हमारी असावधानी अथवा राजनीतिक दासता के कारण विदेशों में चली गई है। प्राचीन काल का कोई भी समूचा दुर्ग अब विद्यमान नहीं है। परन्तु मन्दिरों, गुफाओं, चैत्यों, विहारों, स्तूपों आदि के अनेक नमूने काल और विध्वंसक प्रवृत्तियों का सामना करके बच रहे हैं। उनको देखने से पता चलता है कि उनके बनाने में केवल कौशल और अथक परिश्रम की ही नहीं वरन् संयम तथा समृद्धि की भी अचूक छाप है। इनकी अनेक शैलियाँ हैं जो अपने-अपने स्थान पर एक विशिष्ट ढंग रखती हैं।

भारतीय कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें मानव-भावनाओं को बड़ी सफलता से व्यक्त किया गया है। कलाओं के पीछे एक विशिष्ट भावना

और दार्शनिक सिद्धान्त है। इनको समझने पर ही उसका ठीक स्वरूप समझ में आता है।

भारतीय समाज—हमारे समाज के विकास में भी अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हुई। आर्यों की ग्रामीण सभ्यता पर सिंधु घाटी की नागरीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा और थोड़े ही समय में अनेक विशाल नगर बन गये। नगर निर्माण का शास्त्रीय विवेचन करके जन हित की सुविधा और आरोग्यता का ध्यान रखकर नगर तथा नये ग्राम बसाये गये। यह परम्परा थोड़े दिन बाद ढीली पड़ने लगी। आबादी के बढ़ने पर शास्त्रीय नियमों का अक्षरश पालन करना सदा सभव नहीं रहता था। फिर भी सफाई सुन्दरता तथा व्यवस्था का प्राय बराबर ध्यान रखा गया।

हमारे समाज में न केवल विदेशी विचारों वरन् विदेशी जातियों को भी पचाने की बराबर शक्ति बनी रही। केवल हूण के बाद भारतीय समाज में कुछ कट्टरता आने लगी और उस पर अपनी सर्वश्रेष्ठता का भूत सवार होने लगा। इस कारण जहाँ पहले भारतीय प्रचारक, व्यापारी तथा विद्वान् देश विदेश की यात्रा करते और विदेशी विचारों का नाप-तौलकर उन्हें भारतीय रूप प्रदान कर अपनी विचारधारा में स्थान देते थे अब समुद्र यात्रा करना धर्म विरुद्ध ठहराया गया। समाज के पतनोन्मुख होने का यह एक प्रधान लक्षण है।

दूसरे, हमारे समाज में स्त्रियों का स्थान बराबर गिरता गया। पहले कन्या तथा कुमार दोनों की ही शिक्षा पर बराबर बल दिया जाता था। स्त्री पुरुष स्वेच्छा से अपना विवाह करते थे। स्त्री का घर में बड़ा आदर होता था और वह पुरुष के साथ बैठकर यज्ञ करती थी। विवाह आदि के सम्बन्ध में उसके अधिकार पुरुषों के समान थे। उस समय न विधवा-विवाह वर्जित था और न सती अथवा बाल विवाह की प्रथा थी। प्राय लोग एक समय एक ही स्त्री से विवाह करते थे। परन्तु कालान्तर में दशा काफी बदल गई। विधवा विवाह निषिद्ध ठहराया गया, सती का प्रचार बढ़ा बाल [illegible] हो गये और उच्च वर्गों से बहुविवा[illegible] [illegible] की शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं [illegible] उनमें [illegible] मात्रा घटती गई और वे पिता, [illegible] ने लगीं। [illegible] में [illegible]

तीसरे, जाति-व्यवस्था दिन पर दिन जटिल होती गई। पहले वर्ण-व्यवस्था का आधार कार्य विभाजन था और बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार जाति-परिवर्तन अर्थात् काय परिवर्तन सम्भव और प्रचलित था। परन्तु बाद में ४ वर्णों के स्थान पर सैकड़ो जातियाँ बन गई। पहले खान पान तथा विवाह में कोई भेद भाव नहीं था। खाना बनाने का काय प्राय शूद्र ही करते थे और सभी लोग नि सकोच भोजन करते थे। परन्तु बाद में छूआछूत और ऊँच-नीच की भावना इतनी बढ गई कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का बनाया भोजन खाने में आपत्ति करने लगा और विवाह सबध में भी ऐसी ही प्रवृत्ति आ गई। पहले कोई भी किसी से विवाह कर सकता था, फिर यह प्रथा हुई कि पुरुष निम्नतर अथवा समान वर्ण की स्त्री से ही विवाह कर सकता है अपने ऊँचे वर्ण की स्त्री से नहीं। १२ वी शताब्दी के समाप्त होने के पूव यह प्रथा भी बन्द हो गई और एक ही वर्ण के लोग भी अनेक छोटी छोटी जातियो में बँट गये और इन जातियों के भीतर ही रोटी-बेटी का व्यवहार सीमित कर दिया गया। इस प्रकार समाज की एकता और सुदृढता को बड़ा धक्का लगा। आपस की ईर्ष्या तथा जातिगत अहकार के कारण देश का बडी हानि उठानी पडी और हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता के विनाश में भी इसका काफी हाथ रहा।

जिस समय वर्णाश्रम धर्म का बोलबाला था उस समय सभी वर्ण के लोगों को शिक्षा देनेवाला के अनेक आश्रम सहज ही बन जाते थे। परन्तु जब इस व्यवस्था में ढीलापन आने लगा तब मंदिरो, विहारों चत्यो में ही शिक्षा के केन्द्र बनने लगे। इनके अतिरिक्त कुछ बड़े-बड़े विश्वविद्यालय भी थे। परन्तु सवसाधारण को शिक्षा की समान सुविधा नहीं रही। यह संस्थाएँ प्राय राजाओ के दान के बूते पर चलती थी। परन्तु जब अराजकता फलती थी तब इनकी व्यवस्था बिगड जाती थी। राजपूत-काल में शासक विद्या तथा साहित्य की उन्नति के लिए सचेष्ट रहने पर भी निरन्तर युद्ध के भारी व्यय म बाधा के कारण इन संस्थाओं को समुचित सहायता नही दे पाते थे। सौभाग्य स भारतीय सेठ-साहूकार तथा दूसरे धनी-मानी व्यक्ति भी इन सस्थाओं को सहायता करना अपना कतव्य समझते थे। इस कारण प्राय भारत में शिक्षा का काफी प्रचार रहा यद्यपि राजपूत काल में इसमें कुछ रुकावटें पडने लगीं और जन साधारण की शिक्षा का स्तर गिरने लगा।

प्राय सदा ही भारतीय जनता धनी, सुखी तथा आनन्द रही। उसे पर लोक और आध्यात्मिक उन्नति का ध्यान रहने पर भी उसने लौकिक सुख को

और दार्शनिक सिद्धान्त हैं। इनको समझने पर ही उसका ठीक स्वरूप समझ में आता है।

भारतीय समाज— हमारे समाज के विकास में भी अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं। आर्यों की ग्रामीण सभ्यता पर सिंधु घाटी की नागरीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा और थोड़े ही समय में अनेक विशाल नगर बन गये। नगर-निर्माण का शास्त्रीय विवेचन करके जन-हित की सुविधा और आरोग्यता का ध्यान रखकर नगर तथा नये ग्राम बसाये गये। यह परम्परा थोड़े दिन बाद ढीली पड़ने लगी। आबादी के बढ़ने पर शास्त्रीय नियमों का अक्षरशः पालन करना सदा संभव नहीं रहता था। फिर भी सफाई, सुन्दरता तथा व्यवस्था का प्रायः बराबर ध्यान रखा गया।

हमारे समाज में न केवल विदेशी विचारों वरन् विदेशी जातियों को भी पचाने की बराबर शक्ति बनी रही। केवल हूणों के बाद भारतीय समाज में कुछ कट्टरता आने लगी और उस पर अपनी सर्वश्रेष्ठता का भूत सवार होने लगा। इस कारण जहाँ पहले भारतीय प्रचारक, व्यापारी तथा विद्वान् दूर विदेश की यात्रा करते और विदेशी विचारों का नाप-तौलकर उन्हें भारतीय रूप प्रदान कर अपनी विचारधारा में स्थान देते थे अब समुद्र यात्रा करना धर्म विरुद्ध ठहराया गया। समाज के पतनोन्मुख होने का यह एक प्रधान लक्षण है।

दूसरे, हमारे समाज में स्त्रियों का स्थान बराबर गिरता गया। पहले कन्या तथा कुमार दोनों की ही शिक्षा पर बराबर बल दिया जाता था। स्त्री-पुरुष स्वेच्छा से अपना विवाह करते थे। स्त्री का घर में बड़ा आदर होता था और वह पुरुष के साथ बैठकर यज्ञ करती थी। विवाह आदि के सम्बन्ध में उसके अधिकार पुरुषों के समान थे। उस समय न विधवा विवाह वर्जित था और न सती अथवा बाल विवाह की प्रथा थी। प्रायः लोग एक समय एक ही स्त्री से विवाह करते थे। परन्तु कालान्तर में दशा काफी बदल गई। विधवा विवाह निषिद्ध ठहराया गया, सती का प्रचार बढ़ा, बाल विवाह भी प्रारम्भ हो गये और उच्च वर्गों में बहुविवाह की प्रथा तेजी से बढ़ने लगी। स्त्रियों की शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था। उनमें स्वावलम्बन की भावना घटती गई और वे पिता, पुत्र अथवा पति की आश्रित होकर जीवन बिताने लगीं। राजपूत-समाज में अपेक्षाकृत स्त्रियों की दशा अच्छी थी।

तीसरे, जाति-व्यवस्था दिन पर दिन जटिल होती गई। पहले वर्ण व्यवस्था का आधार कार्य विभाजन था और बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार जाति-परिवर्तन अर्थात् कार्य-परिवर्तन सम्भव और प्रचलित था। परन्तु बाद में ४ वर्णों के स्थान पर सैकड़ो जातियाँ बन गई। पहले खान पान तथा विवाह में कोई भेद भाव नही था। खाना बनाने का कार्य प्राय शूद्र ही करते थे और सभी लोग नि सकोच भोजन करते थे। परन्तु बाद में छूआछूत और ऊँच-नीच की भावना इतनी बढ गई कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का बनाया भोजन खाने में आपत्ति करने लगा और विवाह सबंध में भी ऐसी ही प्रवृत्ति आ गई। पहले कोई भी किसी से विवाह कर सकता था, फिर यह प्रथा हुई कि पुरुष निम्नतर अथवा समान वर्ण की स्त्री से ही विवाह कर सकता है अपने ऊँचे वर्ण की स्त्री से नही। १२ वी शताब्दी के समाप्त होने के पूर्व यह प्रथा भी बन्द हो गई और एक ही वर्ण के लोग भी अनेक छोटी-छोटी जातियो में बँट गये और इन जातियो के भीतर ही रोटी-बेटी का व्यवहार सीमित कर दिया गया। इस प्रकार समाज की एकता और सुदृढता को बडा धक्का लगा। आपस की ईर्ष्या तथा जातिगत अहकार के कारण देश को बडी हानि उठानी पडी और हमारी राजनीतिक स्वतत्रता के विनाश में भी इसका काफी हाथ रहा।

जिस समय वर्णाश्रम धर्म का बोलबाला था उस समय सभी वर्ण के लोगों को शिक्षा देनेवालो मे अनेक आश्रम सहज ही बन जाते थे। परन्तु जब इस व्यवस्था में ढीलापन आने लगा तब मदिरा, विहारा मठों में ही शिक्षा के केन्द्र बनने लगे। इनके अतिरिक्त कुछ बड़े-बड़े विश्वविद्यालय भी थे। परन्तु सर्वसाधारण को शिक्षा की समान सुविधा नहीं रही। यह सस्थाए प्राय राजाओ के दान के बूते पर चलती थीं। परन्तु जब अराजकता फैलती थी तब इनकी व्यवस्था बिगड जाती थी। राजपूत-काल में शासक विद्या तथा साहित्य की उन्नति के लिए सचेष्ट रहने पर भी निरन्तर युद्ध के भारी व्यय व भार के कारण इन संस्थाओं को समुचित सहायता नहीं दे पाते थे। सौभाग्य से भारतीय सेठ-साहूकार तथा दूसरे धनी-मानी व्यक्ति भी इन सस्थाओं को सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। इस कारण प्राय भारत में शिक्षा का काफी प्रचार रहा यद्यपि राजपूत काल में इसमें कुछ रुकावटें पडने लगी और जन साधारण की शिक्षा का स्तर गिरने लगा।

प्राय सदा ही भारतीय जनता धनी, सुखी तथा जागरूक रहा। उसे परलोक और आध्यात्मिक उन्नति का ध्यान रहने पर भी उसने लौकिक सुख को

उपेक्षा नहीं की। हाँ, कुछ लोग अवश्य तपस्या और वैराग्य को सांसारिक सुखों से बढ़कर मानते थे। शेष लोग उनका अनुसरण न कर सकने पर भी उनका बड़ा आदर करते थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) प्राचीन भारतीय धर्मों की क्या प्रमुख विशिष्टताएँ थीं? भारत में धार्मिक अत्याचार न होने के क्या कारण थे?

(२) प्राचीन भारतीय साहित्य में किस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता है? प्राचीन साहित्य को इतिहास के लिए उपयोग करने में क्या कठिनाइयाँ हैं?

(३) भारतीय समाज के विकास पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखिए।

अध्याय १२

अरब और भारत का सबंध

मुहम्मद साहब की जीवनी और उनकी शिक्षायें

मुहम्मद साहब की जीवनी—जिस समय गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने पर भारतवर्ष में एकता का विनाश होकर छोटी-छोटी रियासतों का उदय हो रहा था उसी समय एशिया महाद्वीप के एक दूसरे देश अरब में एक ऐसे महात्मा का जन्म हुआ जिन्होंने वहाँ के लोगों को धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँध दिया। उनका नाम था मुहम्मद। वह अरब के प्रधान नगर मक्का के सबप्रतिष्ठित कुरैश वंश में पैदा हुए थे। उनके दादा अब्दुल मुत्तलिब कुरैश परिवार के सरदार थे। मुहम्मद साहब के पिता का नाम अब्दुल्ला था और उनका जन्म ५७० ई० में हुआ।

अपने वंश के अन्य लोगों की भाँति मुहम्मद साहब ने भी व्यापार करना आरम्भ किया। उस समय उनका परिचय एक धनी विधवा खदीजा से हुआ

जिसने इनकी ईमानदारी से प्रभावित होकर इनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। यद्यपि इनकी आयु खदीजा से १७ वर्ष कम थी तो भी उन्होंने विवाह कर लिया और उसके जीते-जी कोई अन्य विवाह नहीं किया। मुहम्मद साहब के जितने बच्चे हुए वे खदीजा से ही हुए। वे अपनी बेटी फातिमा को सबसे अधिक चाहते थे। इसका विवाह अली से हुआ था जो मुहम्मद साहब के बाद चौथे खलीफा हुए।

मुहम्मद साहब अरब वालों के दोषों को हटाने की प्रायः फिक्र में रहते थे। विचार और मनन करते-करते उन्हें सुधार का मार्ग दिखाई पड़ा और उन्होंने उसका प्रचार प्रारम्भ किया। वह कहते थे कि ईश्वर एक है और मैं उसका दूत हूँ। कभी-कभी वह अर्द्ध चेतन अवस्था में कुछ कहने लगते थे। उनका विश्वास था कि उस समय वे वही बातें कहते थे जो अल्लाह उनसे कहलाता था। उन्हीं बातों का संग्रह कुरान है।

मुहम्मद साहब के प्रचार से जहाँ कुछ लोग उनके शिष्य हो गये वहाँ दूसरे लोगों ने चिढ़कर उनका वध करना चाहा और ६२२ ई० में उन्हें मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा। इसी समय हिजरी (प्रयाण) संवत् का प्रारम्भ हुआ। ६३२ ई० तक धर्म प्रचार करके और मक्का तथा प्रायः सम्पूर्ण अरब को अपना अनुयायी बनाकर उन्होंने शरीर त्याग किया।

मुहम्मद साहब की शिक्षा—उनकी शिक्षाएँ बहुत ही सरल थीं। उनका मुख्य उद्देश्य अरब के लोगों में एकता और भाईचारा स्थापित करना था। वे कहते थे कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसका दूत है (कलमा)। जो इसे मान लेता है और मुहम्मद के बताये हुए मार्ग पर चलता है वह मुसलमान है। कुरान में कही हुई बातें खुदा की आज्ञायें हैं। उनको सभी को मानना चाहिये। इस्लाम पर ईमान लानेवाले सब लोग बराबर हैं। उनमें न कोई छोटा है, न बड़ा।

प्रत्येक मुसलमान के कुछ अनिवार्य कर्त्तव्य हैं कलमा, नमाज, रोजा, जकात, और हज। इनके अतिरिक्त उसे नित्यप्रति के जीवन में उन सभी बातों को मानना चाहिए जिनकी मुहम्मद साहब ने शिक्षा दी है। मुसलमान मुहम्मद साहब को अन्तिम पैगम्बर मानते हैं और अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ।

अरब के खलीफा और साम्राज्य विस्तार—मुहम्मद साहब के मरने के बाद मुसलमानों के नेता का खलीफा अर्थात् मुहम्मद साहब का प्रतिनि-

कहते थे। खलीफा राजा और धर्म-गुरु दोनों ही होता था। अबूबक्र, उमर, उस्मान और अली पहिले चार खलीफा थे। मुसलमानों में इन चार खलीफाओं की बहुत प्रतिष्ठा है। इनके बाद जो खलीफा हुए वे तो केवल बादशाह थे और उनको खलीफा कहना बहुत उचित नहीं है। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि सभी खलीफाओं ने अपना राज्य बढ़ाने की कोशिश की और जहाँ उनका राज्य स्थापित हो जाता था वहाँ इस्लाम का भी प्रचार अवश्य होता था। इसके अतिरिक्त इन लोगों ने अरब-साहित्य की उन्नति में भी सहायता पहुँचायी। उनकी यह दो सेवायें इस्लाम के इतिहास में अवश्य याद रखी जायेंगी।

अरब और भारत—भारतवर्ष के पश्चिमी समुद्रतट से अरबों का व्यापार इस्लाम के उदय के पहले से होता था। खलीफा उमर के समय में कुछ व्यापारियों ने उनको भारत पर आक्रमण करने की सलाह दी। इस आक्रमण को पुलकेशिन द्वितीय की जल-सेना ने विफल कर दिया। इस आक्रमण के पश्चात् खलीफाओं की सेना ने जब फारस जीतने के बाद काबुल और मध्य एशिया की ओर बढ़ना आरम्भ किया तो वे स्थल के मार्ग से भारतीय सीमा के बहुत निकट आ गये। उन्होंने भारत में प्रवेश करने के कुछ प्रयत्न भी किए लेकिन वे सफल नहीं हुए।

मुहम्मद इब्नकासिम का आक्रमण ७१२ ई० अरबों का पहला सफल आक्रमण सन् ७१२ ई० में हुआ। उस समय खलीफा की ओर से हज्जाज सीरिया का सूबेदार नियुक्त किया गया था। वह बहुत योग्य और पराक्रमी था। वह मकरान तथा सिंध पर इस्लाम का अधिकार स्थापित करना चाहता था। मकरान को जीतने में उसे विशेष कठिनाई भी नहीं हुई। इस कारण उसका साहस और भी बढ़ गया। इसी समय सिंध पर आक्रमण करने के दो और कारण उत्पन्न हो गये। सिंध में उस समय दाहिर राज्य करता था। वह ब्राह्मण था। उसके राज्य के मल्लाहों ने सीरिया जाने वाले कुछ जहाजों को लूट लिया था। दाहिर ने उनको कोई सजा नहीं दी। हज्जाज के शिकायत करने पर भी उसने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। दूसरे, अरब व्यापारियों ने यह शिकायत की कि अरब सागर में भारतीय समुद्रतट के पास उनके जहाज बहुधा लूट लिये जाते हैं और उनकी फरियाद कोई नहीं सुनता। हज्जाज ने अपने भतीजे मुहम्मद इब्नकासिम को ११००० सैनिक

देकर सिंध पर हमला करने के लिए रवाना किया। यह सेना मकरान के समुद्रतट के पास से आयी और राजा दाहिर के राज्य पर टूट पड़ी। दाहिर ने ने सिंध का पश्चिमी भाग अरक्षित छोड़ दिया और पूरबी किनारे से मुसल मानों का विरोध करना चाहा। कहते हैं कि अरबों को पश्चिमी भाग पर अधिकार करने में तो कठिनाई हुई नहीं, पूरब की ओर बढ़ने में भी उनको बौद्धों और जाटों से कुछ सहायता मिली क्योंकि ये लोग ब्राह्मणों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। मुहम्मद इब्नकासिम ने पहले सिंध नदी के मुहाने पर बसे हुए नगर देवल पर अधिकार किया और उसके बाद वह उत्तर की ओर बढ़ा। दाहिर स्वयं पराजित हुआ और मारा गया। उसके बाद उसकी स्त्री ने युद्ध किया लेकिन वह भी अरबों को रोकने में सफल न हुई। शीघ्र ही सारे प्रांत पर अरबों का अधिकार स्थापित हो गया। मुल्तान, ब्राह्मणाबाद और देवल सभी मुख्य नगरों में अरब सैनिकों का अधिकार जम गया।

अरब शासन व्यवस्था—हज्जाज के पास जब इस विजय की सूचना भेजी गई तो वह बहुत सन्तुष्ट हुआ। हज्जाज ने स्पष्ट आज्ञा भेजी कि "चूंकि उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली है और खलीफा को कर देने का वचन दिया है इस लिए अब न्याय की दृष्टि से उनसे और किसी बात की मांग नहीं की जा सकती। वे हमारे संरक्षण में हैं और हम किसी भांति उनके धन या तन पर दृष्टि डाल नहीं सकते। उनको अपने देवताओं की पूजा करने की आज्ञा दी जाती है। किसी को अपना धर्म, मानने से रोका न जाय। वे अपने घरों में जिस प्रकार चाहें रह सकते हैं।"

सारा प्रांत कई भागों में बांट दिया गया। प्रत्येक भाग एक सैनिक सरदार के शासन में दे दिया गया। सैनिकों को छोटी छोटी जागीरें या नकद वेतन दिया जाता था। कर वसूल करने के लिए अफसर नियुक्त किये गये। उनको आज्ञा थी कि वे किसी प्रकार का अन्याय अथवा अत्याचार न करें। कर मुख्यतः दो थे। भूमिकर जिसको 'खराज' कहते थे, उपज का १।३ लिया जाता था। दूसरा कर जजिया था। यह प्रत्येक गैरमुसलिम से लिया जाता था। जजिया अमीरों से ४८ दिरहम (एक चांदी का सिक्का), मध्यम श्रेणी के लोगों से २४ दिरहम और साधारण लोगों से १२ दिरहम लिया जाता था। मुसलमान होने पर जजिया माफ कर दिया जाता था। ब्राह्मणों से भी जजिया न लिया जाता था और उनको अपने मन्दिर बनाने तथा अपना धर्म फैलाने की स्वतन्त्रता

थी। छोटी सरकारी नौकरियाँ अधिकतर हिन्दुओं के ही हाथ में रहीं। न्याय करने के लिए काजी नियुक्त किये गये। हिन्दुओं को अपने आपसी झगड़े अपनी पंचायतों में तय करने की आज्ञा थी, लेकिन यदि किसी मुसलमान और हिन्दू का कोई मुकदमा होता था तो उसकी सुनवाई काजी के ही यहाँ होती थी। चोरी के अपराध पर बहुत कड़ी सजा दी जाती थी।

आक्रमण का प्रभाव—सिन्ध में अरबों का शासन बहुत दिन तक न रहा क्योंकि खलीफाओं ने उचित सहायता नहीं भेजी। दूसरे, सिन्ध के उत्तर पूरब तथा दक्षिण की ओर सशक्त राजपूत रियासतें थीं जो सदा उनसे लड़ने के लिए तैयार रहती थीं। तीसरे, सिन्ध प्रांत की आय इतनी नहीं थी कि उससे शासन का खर्च अच्छी तरह चल सके और एक बड़ी सेना भी रखी जा सके। इसलिए इस विजय का भारत के राजनीतिक जीवन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। लेकिन इसका अरब सभ्यता पर बहुत प्रभाव पड़ा। अरबों ने भारतीय दर्शन, ज्योतिष तथा साहित्य का अध्ययन करने के लिए भारतीय विद्वानों को सम्मानपूर्वक बुलाया और उनसे संस्कृत ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद कराये। भारतीय वैद्य भी खलीफाओं का इलाज करने के लिए बुलाये जाते थे। उनसे अरबों ने वैद्यक सम्बन्धी बहुत-सी बातें सीखीं। यह सम्बन्ध कई सदियों तक कायम रहा।

मुख्य तिथियाँ

मुहम्मद साहब का जन्म	५७० ई०
हिजरी संवत् का आरम्भ	६२२ ई०
मुहम्मद साहब की मृत्यु	६३२ ई०
भारत पर पहला आक्रमण	६४३ ई०
अरबों द्वारा सिन्ध की विजय	७१२ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) मुहम्मद साहब के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन करो।

(२) मुहम्मद साहब की शिक्षायें क्या थीं? उनका क्या प्रभाव हुआ?

(३) मुहम्मद इब्नकासिम ने सिन्ध पर क्यो आक्रमण किया ? उसकी सफलता के क्या कारण थे ?
(४) भारत के राजनितिक सगठन पर अरबों का कोई स्थायी प्रभाव क्यो नही पडा ?
(५) अरबवालो को सिन्ध विजय से क्या लाभ हुआ ?

अध्याय ११

मुस्लिम-साम्राज्य की स्थापना

तुर्क और इस्लाम—अरबो के बाद दूसरा प्रधान आक्रमण तुर्क मुसलमानो ने किया। तुर्क मध्य एशिया में रहते थे। इनके पूर्वज हूण थे लेकिन इनमें शकों और ईरानियो का रक्त भी मिल गया था। तुर्क पहले बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। नवी शताब्दी से उनमें इस्लाम का प्रचार होने लगा और १० वीं शताब्दी के अन्त तक प्राय सभी तुर्क मुसलमान हो गये। नवीं-दसवीं शताब्दी के खलीफाओ के जमाने में अरबों का प्रभाव दिन प्रति दिन घटता गया और उनका स्थान तुर्क लेने लगे। इन्ही तुर्क सरदारों में एक का नाम सुबुक्तगीन था। वह गजनी का शासक था और उसी ने पजाब तथा पूर्वी अफगानिस्तान के राजा जयपाल को हराकर लमगान तथा पेशावर पर अधिकार कर लिया था।

महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०)—सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा महमूद गजनी और खुरासान का शासक हुआ। खलीफा ने उसको सुलतान की पदवी दी। इससे महमूद का हौसला और भी बढ़ गया। महमूद बडा साहसी सनिक और योग्य सेनापति था। उसने भारतीय राजाओं की शक्ति का अन्दाजा लगा लिया था। उसने यह भी सुना था कि भारतवर्ष में अपार धन है। महमूद बडा लोभी था और चाहता था कि मेरा खजाना सोने, चाँदी तथा बहुमूल्य रत्नो से भरा रहे। इस काम में उसे अपने धर्म से भी सहायता मिली। भारतवर्ष में उस समय भी मूर्ति-पूजा काफी होती थी। महमूद

ने घोषणा की कि मैं भारत में जाकर मूर्ति-पूजा का नाश करूँगा और इस्लाम का प्रचार करूँगा। जो लोग इस 'जेहाद' अर्थात् धर्म-युद्ध में भाग लेंगे व विजयी होने पर अतुल धन तथा यश प्राप्त करेंगे और मरने पर स्वर्ग का सुख भोगेंगे। उनके अनुयायियों को उसकी योग्यता पर पहले से ही विश्वास था। धार्मिक जोश बढ़ाकर उसने उनको बिलकुल ही अपने वश में कर लिया और उसके सैनिकों की संख्या बढ़ने लगी।

महमूद के आक्रमण—महमूद ने सन १००० और १०२६ के बीच १७ बार भारत पर हमला किया। उसने इन हमलों में पंजाब के शाहियों, मुल्तान के शियाओं, कन्नौज के प्रतिहारों, महोबा के चन्देलों तथा अन्य राजाओं को परास्त किया। उसने प्रत्येक हमले में मन्दिर तोड़े और उनका धन लूटा। इन मन्दिरों में नगरकोट, मथुरा, थानेश्वर, कन्नौज और सोमनाथ के मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। शाहियों ने उसे बराबर तंग किया। इसलिए सन् १०२२ में उसने पंजाब को अपने राज्य में मिला लिया। महमूद अपने साथ भारत की बिर-संचित संपत्ति तथा अनेक भारतीय कलाकार ले गया। इन्होंने गजनी की सुन्दर इमारतें बनाईं। महमूद ने भारतीय मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ने में बड़ी बर्बरता दिखाई। मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि मथुरा के मन्दिरों की सुन्दरता देखकर महमूद ने कहा था कि उनका निर्माण देवों ने किया होगा। लेकिन उसने उनको नष्ट करके ही सन्तोष किया। इस प्रकार भारत का न केवल बहुत-सा धन बाहर चला गया, वरन् भारतीय कला के अनेक सुन्दर नमूने भी नष्ट हो गये। महमूद के हमलों का राजनैतिक प्रभाव यह पड़ा कि पंजाब में तुर्कों का शासन स्थापित हो गया और उत्तरी भारत में राजपूतों की शक्ति और उनके राज्यों की सीमाओं में बहुत परिवर्तन हो गया। भारतीय सभ्यता का प्रभाव तुर्कों पर भी पड़ा क्योंकि महमूद के साथ कुछ अलबरूनी ऐसे विद्वान् भी आये जिन्होंने भारतीय दर्शन, साहित्य तथा इतिहास का पढ़ा और उसके आधार पर अपनी स्वतन्त्र पुस्तक भी लिखी जिसमें उन्होंने भारतीय जीवन पर विचार प्रकट किये हैं। अलबरूनी के हो शब्दों में महमूद के हमलों का सबसे बुरा प्रभाव यह पड़ा कि उनके कार्यों ने इस्लाम को बहुत बदनाम कर दिया। प्रोफेसर हबीब ने लिखा है कि महमूद तो केवल एक साहसी लुटेरा था जिसने भारत तथा इस्लाम दोनों को ही हानि पहुँचाई। पर सभी लोग इस मत को स्वीकार नहीं करते। व कहते हैं कि महमूद के

आक्रमणों के कारण इस्लाम का प्रवेश उत्तरी भारत में भी हो गया। बहुत से मुसलमान साधु और धर्म प्रचारक यहाँ बस गये और धीरे धीरे इस्लाम का प्रचार हमारे समाज में बढ़ने लगा।

गजनी राज्य का पतन—यद्यपि महमूद गजनवी का एक बड़ा प्रतापी शासक था जिसकी धाक मध्य एशिया के सभी भागों में जमी हुई थी तो भी उसका साम्राज्य स्थायी न हो सका। प्रान्तीय हाकिम मनमानी करने लगे और प्रजा उनके अत्याचारों से ऊब गई। इसी समय गजनी के उत्तर में एक दूसरे तुर्क राज्य ने उन्नति करनी आरम्भ की। वह गोर राज्य था और उसकी राजधानी गोर थी।

गोर वंश की उन्नति—गोर राज्य के राजाओं को 'गोरी' अर्थात् गोर वाले कहते हैं। इस वंश के राजाओं में प्रथम प्रतापी व्यक्ति अलाउद्दीन था। उसने ११५० ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया। महमूद गजनवी के वंशज अफगानिस्तान छोड़कर पंजाब में आ बसे और अपने सूबेदार के स्थान पर स्वयं वहाँ का शासन करने लगे। इस प्रकार सन् ११५० ई० के बाद गजनी राज्य में भारत के बाहर कुछ भी न रहा।

मुहम्मद गोरी के प्रारम्भिक हमले—गोर वंश में एक व्यक्ति शहाबुद्दीन हुआ। शहाबुद्दीन हमारे देश के इतिहास में मुहम्मद गोरी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। उसने भारत पर हमला करने की बात सोची। उसकी इच्छा केवल भारतीय सम्पत्ति लूटने की नहीं थी वरन् वह भारत में मुसलमानों के स्थायी साम्राज्य की नींव डालना चाहता था। उसने ११७५ और ११८६ के बीच कई आक्रमण किये और मुलतान, पेशावर तथा पंजाब पर अधिकार कर लिया।

मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज—मुहम्मद गोरी के अधिकार में अब सिंध नदी की पूरी घाटी आ गई थी। उसके लिए उत्तरी भारत का मार्ग अब बिलकुल खुला था। इसलिए उसने आगे बढ़ने का निश्चय किया। इस समय दिल्ली और अजमेर में चौहान राज्य कर रहे थे। उनका राजा पृथ्वीराज अपने साहस तथा योग्य सेनापतित्व के लिए भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध था। उत्तरी भारत के काफ़ी बड़े भाग में उसकी धाक जमी हुई थी। आजकल भी उसकी वीरता की कहानियाँ प्रचलित हैं। चन्द बरदाई का बनाया हुआ पृथ्वीराजरासो उसकी वीरता की कथाओं से भरा है। सन् ११९१ ई० में

उत्तरी भारत में अब केवल एक प्रमुख राज्य बचा था, यह था चन्देलों का राज्य जिसकी राजधानी महोबा थी। उनका मजबूत किला कालिंजर उत्तरी भारत में सभी जगह प्रसिद्ध था। कुतुबुद्दीन ने १२०२ ई० में कालिंजर पर चढ़ाई की। चन्देल राजा परमर्दिन हार गया और उसने मुसलमानों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। परमर्दिन परमाल के नाम से भी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि १२ वीं शताब्दी में जगनिक ने एक आल्हा-खण्ड रची थी। आजकल भी एक आल्हा खण्ड नाम की हिन्दी पुस्तक का प्रचार बहुत अधिक है जिसमें परमाल के दो वीर सामन्तों आल्हा और ऊदल तथा उनके साथियों की वीरता का वर्णन है। इनकी वीर-कृतियों का अन्त पृथ्वीराज के जीवनकाल में हो गया था। परमर्दिन के वंशज कमजोर हो गये और उनके बाद भी वह कई शताब्दियों तक एक छोटे राज्य के अधिकारी रहे। लेकिन कालिंजर पर मुसलमानों ने अपना अधिकार कर लिया।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु—१२०५ ई० में पंजाब के खोखरों ने विद्रोह कर दिया। खोखर पंजाब की एक लड़ाकू जाति थी। वे अधिकतर लूट-मार करते रहते थे और कभी-कभी रुपया पाने पर पंजाब के राजाओं के साथ मिलकर लड़ते थे। उन्होंने महमूद गजनवी के विरुद्ध आनन्दपाल की ओर से युद्ध किया था। उनको दबाने के लिए मुहम्मद गोरी एक बार फिर भारत आया। वह विद्रोह दबाने में सफल तो हो गया लेकिन उसे बहुत सख्ती करनी पड़ी। सैकड़ों हजारों खोखर मार डाले गये और उनके सिरों के स्तम्भ बना दिए गए तथा उनके गाँव के गाँव जला दिए गये। उनके नेताओं को निर्दयतापूर्वक यातनाएं देकर मार डाला गया। खोखर नवयुवकों में से एक ने इसका बदला लेने की ठानी। अवसर पाकर वह मुहम्मद गोरी के खेमे में घुस गया और उसने उसका वध कर डाला। इस प्रकार सन् १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी की मृत्यु हो गई।

मुहम्मद गोरी के कार्य का महत्व—मुहम्मद गोरी पहला मुसलमान शासक था जिसने भारतवर्ष में स्थायी मुस्लिम-साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। मुहम्मद गोरी ने अपने हमले केवल साम्राज्य स्थापित करने के लिए किये थे। वह बराबर भारत पर ही हमला करता रहा और मध्य एशिया के दूसरे भागों के शासकों से कभी नहीं भिड़ा। उसके आक्रमणों में एक व्यवस्था भी दिखाई पड़ती है। उसने पहले सीमा प्रान्तों, पंजाब और सिंध को लिया और उनके मजबूत किलों लाहौर, पेशावर, मुलतान तथा उच्छ पर अपना

अधिकार किया। उसके बाद उसने वर्तमान उत्तर प्रदेश के राजाओं को हराया। इस पर अधिकार जमाने के बाद उसने पूरब में बंगाल, पश्चिम में गुजरात और दक्षिण में अजमेर तथा कालिञ्जर पर धावा किया। वह बराबर गजनी में ही रहना चाहता था। लेकिन वह भारतीय साम्राज्य के सुशासन की ओर सदा ध्यान देता रहता था। खोखरा के विद्रोह की खबर पाते ही पंजाब आ गया और उसने अपने चुने हुए गुलामों को स्थान-स्थान पर मुकर्रर कर दिया था। उनकी स्वामिभक्ति पर उसे इतना विश्वास था कि एक बार जब लोगो ने उससे पूछा कि आपके कोई पुत्र तो है ही नहा, फिर आपके साम्राज्य का आपके बाद क्या हाल होगा ? तो उसने तुरन्त कहा था कि मेरे पुत्रो से बढकर मेर योग्य गुलाम हैं। वे मेरे मरने पर भी साम्राज्य की रक्षा करेंगे और मेरा नाम जीवित रखेंगे। इन सब बातो से स्पष्ट है कि मुहम्मद गोरी ही पहला व्यक्ति है जो भारत में मुसलमानी साम्राज्य की नींव डालने वाला कहा जा सकता है।

मुहम्मद गोरी ने भी कई मन्दिरो को नष्ट किया। लेकिन मन्दिरों को तोडना या हिंदुओं पर धार्मिक अत्याचार करना उसकी नीति का अग नहीं था। उसने जजिया अवश्य लिया और युद्ध के समय उनके देवताओं क कुछ मन्दिरो का भी नाश किया। लेकिन साधारण रूप से उसने उनको पहले ही की भाँति रहने दिया। इस दृष्टि से मुहम्मद की नीति अरबो से अधिक मिलती-जुलती है, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि वह अरबो की भाँति उदार नहीं था।

राजपूतो की हार के कारण—राजपूत बहुत ही वीर तथा साहसी थे और व मृत्यु से तनिक भी नहीं डरत थे, युद्ध में मरना तो वे बहुत अच्छा समझते थे। शारीरिक बल में भी व मुसलमान सैनिको से किसी प्रकार कम नही थे। उनकी सख्या भी मुसलमान सैनिको से कम नहीं रहती थी। फिर भी उनकी हार हुई। इसके कुछ विशेष कारण है। पहली बात तो यह थी कि महमूद और मुहम्मद उच्च कोटि क सेनापति थे और व सनिक-संचालन का काफी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इसके विपरीत राजपूत केवल अपने देश में प्रचलित सनिक तरीकों को जानते थे। दूसरे राजपूत राजाओं का सनिक सगठन बहुत दोषपूर्ण था। उनकी सेना में हाथी अवश्य रहते थे परन्तु उनका वे ठीक उपयोग नही कर पाते थे। राजपूत सैनिक केवल उसी समय तक लड सकते थे जब तक उनका सेनापति रणक्षेत्र में मौजूद रहे। उसके मरने, घायल

होने या किसी कारण दिखाई न पड़ने पर वे मैदान छोड़कर भाग चलते थे क्योंकि उस सेनापति का स्थान लेने वाला कोई दूसरा व्यक्ति पहले से निश्चित नहीं रहता था। तीसरे, राजपूत सैनिक अपने नेता की विजय के लिए लड़ते थे। उनमें राष्ट्रीयता या धार्मिक जोश का अभाव था। जीतने पर इनको किसी विशेष लाभ की आशा नहीं रहती थी। इसके विपरीत मुसलमान सैनिक धार्मिक जोश और धन के लालच से लड़ते थे। वे समझते थे कि जीत होने पर उनको खूब धन मिलेगा और उनके धर्म का प्रचार बढ़ेगा। इस कारण विजय प्राप्ति के लिए जितना वो जान तोड़कर वे लड़-सकते थे उतना राजपूतों के लिए सम्भव नहीं था। चौथे, राजपूतों का शासन प्रबन्ध ऐसा नहीं था कि प्रजा उससे प्रसन्न रहती। साधारण जनता उनके लगातार युद्धों से तंग आ गई थी। उनकी राजाओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। इस कारण विदेशी आक्रमणकारियों को देश की जनता की ओर से किसी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। प्रजा की राजनीतिक उदासीनता ने भी मुसलमानों का काम आसान कर दिया। अन्तिम कारण यह था कि मुसलमानों की गुलाम प्रथा तथा शासक-निर्वाचन-पद्धति सभी मुसलमानों में अनुपम साहस भर देती थी। इन्हीं कारणों से राजपूत ऐसी वीर जाति मुसलमानों को रोकने में बिलकुल असमर्थ रही।

मुख्य तिथियाँ

महमूद का पहला आक्रमण	१००० ई०
पंजाब का गजनी साम्राज्य में मिलाया जाना	१०२२ ई०
महमूद का अन्तिम आक्रमण	१०२६ ई०
पंजाब के गजनवी राज्य का अन्त	११८६ ई०
तराइन की पहली लड़ाई	११९१ ई०
तराइन की दूसरी लड़ाई	११९२ ई०
जयचन्द्र की पराजय	११९४ ई०
बिहार और बंगाल पर अधिकार	११९७ ११९९ ई०
परमर्दिन की पराजय	१२०२ ई०
खोखरों का विद्रोह	१२०५ ई०
मुहम्मद गोरी की मृत्यु	१२०६ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) तुर्क कौन थे ? उनका भारतीय इतिहास मे क्या महत्त्व है ?
(२) महमूद गजनवी के आक्रमणों का इस्लाम, भारत तथा गजनवी साम्राज्य पर क्या प्रभाव पडा ?
(३) मुहम्मद गोरी की विजयो का सक्षिप्त वर्णन करो।
(४) मुहम्मद गोरी का भारत में मुसलमानी साम्राज्य की नीव डालने वाला क्यो कहते हैं ?
(५) राजपूतो की पराजय के क्या कारण थे ?

अध्याय १४

मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार

(१) गुलाम वंश

सन् १२०६ ई० मे भारतीय स्थिति—मुहम्मद गोरी की मृत्यु के समय मुस्लिम साम्राज्य की स्थिति डावाँडोल हो रही थी। हिन्दू शासक हार अवश्य गये थे, लेकिन उनमें स्वतंत्र होने की इच्छा शेष थी। उसके मरते ही ऐसी आशंका होने लगा कि भारतवर्ष के मुस्लिम शासक आपस में लडकर हिन्दुओं का स्वतंत्र हो सकना सुगम कर देंगे। गजनी और काबुल पर एल्दौज का अधिकार हो गया। वह स्वय भारतीय साम्राज्य पर आँख लगाये था। दिल्ली, अजमेर मध्यदेश पर कुतुबुद्दीन ऐबक का अधिकार था, मुलतान और सिंध में कुबाचा ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया, और पूरब में विहार तथा बगाल खिलजी तुर्कों के अधिकार में थे।

कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०)—इस स्थिति में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बहुत बुद्धिमत्ता और चतुराई से काम लिया। उसने गोरी-शासक से एक पत्र प्राप्त कर लिया जिसके द्वारा वह दिल्ली का सुलतान स्वीकार कर लिया गया।

कुतुबुद्दीन का प्रभाव भारतवर्ष में पहले भी काफी था, क्योंकि उसी के अधिकार में मुस्लिम-साम्राज्य का बहुतेरा भाग था और वह मुहम्मद गोरी का विशेष कृपापात्र था। उसने समस्त भारतीय मुस्लिम-साम्राज्य पर अपना एकाधिकार स्थापित करके विघ्न क्षमता को रोकने का सफल प्रयत्न किया। बंगाल का सूबेदार, इख्तियारुद्दीन इसी समय मर गया। उसके स्थान पर ऐबक ने अलीमर्दान को बंगाल का शासक नियुक्त किया और इस प्रकार दिल्ली का आधिपत्य पूरब प्रदेशों में स्थापित हो गया। एलदौज ने पंजाब पर आक्रमण किया, लेकिन ऐबक ने उसे हरा दिया और कुछ समय के लिए गजनी पर भी अधिकार कर लिया। कुबाचा ने भी ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार ऐबक ने दिल्ली-सुलतान की अध्यक्षता में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार स्थापित कर दी जिसकी आज्ञा पंजाब और सिंध से लेकर बंगाल तक सर्वत्र मानी जाती थी। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए उसने एलदौज, कुबाचा और एक होन हार गुलाम, इल्तुतमिश से विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये। ऐबक प्रथम व्यक्ति था जिसने भारत में रहकर समस्त भारतीय मुस्लिम-साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया और दिल्ली की सल्तनत का नींव डाली। सन् १२१० ई० में वह घोड़े से गिरकर मर गया।

इल्तुतमिश (१२११–१२३६)—ऐबक के मरने के बाद आरामशाह सुलतान घोषित कर दिया गया, लेकिन उसमें शासन करने की क्षमता नहीं थी। इसलिए बंगाल में अलीमर्दान, मुलतान सिंध में कुबाचा और राजस्थान में रणथम्भौर तथा ग्वालियर में हिन्दू शासक स्वतन्त्र हो गये। अन्य स्थानों में भी विद्रोह के लक्षण प्रकट होने लगे। इसलिए दिल्ली के कुछ अमीरों ने कुतुबुद्दीन के दामाद इल्तुतमिश को सुलतान बनाने के लिए आमन्त्रित किया। इल्तुतमिश एक बहुत ही सुन्दर, होनहार तथा बुद्धिमान् व्यक्ति था। ऐबक ने उसे खरीदा था और उसकी योग्यता से प्रभावित होकर उसे बदायूँ का हाकिम बना दिया था। मुहम्मद गोरी भी इल्तुतमिश से बहुत खुश था और उसी की कृपा से वह दासता से मुक्त कर दिया गया था। इल्तुतमिश ने तुरन्त दिल्ली पर अधिकार कर लिया और आरामशाह को हटाकर गद्दी पर बैठ गया।

इल्तुतमिश को प्रारम्भिक वर्षों में बहुत कठिनाइयाँ हुईं। कुछ अमीर उसे गुलाम का गुलाम होने के कारण सम्राट स्वीकार करने के लिए तयार नहीं थे। इन लोगों ने दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्रदेश में विद्रोह किये लेकिन

इल्तुतमिश का साम्राज्य
मि
स्र
का सा म्रा ज्य
बंगाल
की
खाड़ी
अरब
सागर

उत्तराधिकारी घोषित किया था। अपने २० वर्ष के शासन काल में बलबन ने सुलतान की प्रतिष्ठा पहले से बहुत बढ़ाई। उसने दरबार का ठाट-बाट बहुत बढ़ा दिया। वह स्वयं बहुत सज धज से रहता था और अपने अतिरिक्त किसी को भी बैठने नहीं देता था। वह किसी से भी हँसी-मजाक नहीं करता था और न दरबार में किसी को हँसने देता था। दूर-दूर देशों के शरणार्थी राजकुमार उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। वह छोटे लोगों को या नीच वंश वालों को कोई उच्च पद नहीं देता था और न उनसे बात करता था। शाही जुलूस भी बड़ी शान शौकत से निकाले जाते थे, जिससे उसकी शक्ति का प्रभाव सभी पर पड़ता रहे। दोआब, मेवात तथा रुहेलखण्ड में, जिसे उस समय कटेहर कहते थे, हिन्दुओं ने विद्रोह किया। उनको शान्त करने के लिए उसने वहाँ के जंगल कटवाकर सड़कें बनवाई, स्थान-स्थान पर किले बनवाये और चुने हुए सैनिक नियुक्त किये। विद्रोहियों में १२ वर्ष के ऊपर के सभी व्यक्ति मार डाले और बच्चे गुलाम बना लिए गये। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि उसके समय में हिन्दुओं ने विद्रोह करने का साहस नहीं किया। मुसलमान अमीरों को वश में रखने के लिए उसने जिसका तनिक भी झीला पाया उसी को निकाल दिया और उसके स्थान पर नये व्यक्ति रख दिए। बंगाल के हाकिम तुगरिल बेग ने १२७९ ई० में जब विद्रोह किया तो सुलतान ने न केवल विद्रोहियों को, वरन् उनके मित्रों और सम्बन्धियों को भी मौत के घाट उतार दिया और अपने बेटे बुगरा खाँ को वहाँ का शासक नियुक्त किया। इस प्रकार सभी उसके भय के मारे थरथर काँपने लगे और विद्रोह की भावना दब गई। मंगोलों ने कई बार आक्रमण किया, लेकिन उनका हर बार मुँह की खाना पड़ी, क्योंकि सुलतान ने सीमान्त प्रदेश में नये किले बनवाये और पुराने किलों की मरम्मत कराई और उनमें सुशिक्षित सैनिक रखे। वह स्वयं एक विशाल सेना के साथ सदा मंगोलों का आक्रमण रोकने के लिए तैयार रहता था।

सन् १२८५ में बलबन को खबर मिली कि उसका बेटा मुहम्मद मंगोलों के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया। इस समाचार से उसे बहुत वेदना हुई और बूढ़ा सुलतान सन् १२८६ ई० में मर गया। बलबन ने अपने शासनकाल में कोई नया राज्य नहीं जीता और मुस्लिम-साम्राज्य की सीमा वहीं बनी रही जो इल्तुतमिश के समय में थी। लेकिन उसने मंगोलों की बाढ़ को रोककर भारत तथा नव-स्थापित मुस्लिम-राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया।

कैकुबाद (१२८६–१२९० ई०)—बलबन के मरने के पश्चात् उसका पौत्र कैकुबाद गद्दी पर बैठा। वह बलबन के समय में बहुत नियंत्रण में रखा गया था। अब स्वतंत्रता और शक्ति मिलने पर उसका दिमाग खराब हो गया और वह सारा समय विलासिता में बिताने लगा। उसका फल यह हुआ कि अमीर आपस में झगड़ने लगे, विद्रोह प्रारम्भ हो गये और सुलतान का स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि उसे लकवा मार गया। अन्त में जलालुद्दीन खिलजी के एक नौकर ने उसे मार डाला और उसकी लाश यमुना नदी में फेंक दी। इस प्रकार सन् १२९० में एक नये वंश की स्थापना हुई।

ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन ने दिल्ली-सल्तनत की बड़ी सेवायें कीं। ऐबक ने दिल्ली-सल्तनत की नींव डाली और प्रांतीय हाकिमों को वश में रखा। इल्तुतमिश ने उस नींव को सुदृढ़ करने के लिए प्रांतीय हाकिमों के विद्रोह शान्त करके उनको पूर्णतया अधीनस्थ बनाया और हिंदू राजाओं को हराकर साम्राज्य के विस्तार को बढ़ाया। बलबन जिस समय शासक हुआ उस समय आन्तरिक विद्रोह और बाह्य आक्रमणों के कारण साम्राज्य छिन्न भिन्न होने वाला था, लेकिन उसने सुलतान की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर विद्रोहियों को दबाया और मंगोलों को हराकर साम्राज्य की रक्षा की।

(२) खिलजी वंश

जलालुद्दीन खिलजी (१२९० १२९६ ई०)—कैकुबाद की मृत्यु के पश्चात् जलालुद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा। वह पश्चिमोत्तर सीमा का संरक्षक रह चुका था, और योग्य सेनापति था, लेकिन जब वह दिल्ली का स्वामी हुआ तब उसकी आयु ७० वर्ष की थी और उसे सदा परलोक की ही चिंता लगी रहती थी। उसने उदारता के आधार पर शासन करना चाहा। जब बलबन के भतीजे और कड़ा के शासक मलिक छज्जू ने विद्रोह किया तब सुलतान ने उसे मृत्युदण्ड न देकर नजरबन्द रखा। इसी भाँति मेवाती ठाकुरों को भी प्राणदण्ड न देकर उसने बंगाल में देश निकाला कर दिया। इसी उदारता की नीति के आधार पर उसने मंगोल आक्रमणकारियों को परास्त करने के पश्चात् बर्बर यन्त्रणाएँ न देकर उनसे वैवाहिक संधि कर ली और बहुतों को दिल्ली के पास बसने की भी आज्ञा दे दी। लेकिन उस जमाने में एक उदार और रक्तपात से घबड़ाने वाले शासक का अधिक दिन तक टिक सकना संभव नहीं था।

अलाउद्दीन का विद्रोह और जलालुद्दीन की मृत्यु सुलतान का भतीजा अलाउद्दीन कड़ा का हाकिम था। उसके पास अनेक विद्रोही इकट्ठा हो गये थे, जो उसको दिल्ली पर अधिकार करने के लिए उसकाया करते थे। अन्त में अलाउद्दीन ने दक्षिण पर हमला करने की सोची। देवगिरि के राजा रामचन्द्र पर उसने एकाएक हमला कर दिया। राजा की असावधानी से अलाउद्दीन का काम आसान हो गया। उसने यह अफवाह भी फैला दी थी कि सुलतान २०,००० फौज लेकर आ रहा है। उसके साहस और उसकी प्रारंभिक विजय का ऐसा आतंक जमा कि राजा रामचन्द्र ने उसे एलिचपुर का नगर और अपार धनराशि देकर अपना पीछा छुड़ाया। इस आक्रमण का समाचार पाकर कुछ लोगों ने सुलतान को सलाह दी कि अलाउद्दीन को मार्ग में ही रोककर उससे लूट का माल ले लेना चाहिए। पर उसने यह बात नहीं मानी और वह अलाउद्दीन के भाई अलमास बेग की चिकनी चुपड़ी बातों में आकर अलाउद्दीन से मिलने के लिए चला गया और अपने साथ फौज भी न ले गया। अलाउद्दीन ने पैरों पड़कर अपने स्नेह और स्वामिभक्ति का परिचय दिया, लेकिन जैसे ही उसने उसको गले से लगाया, उसके संकेत पर सुलतान का सिर काट लिया गया और सारी फौज में घुमाया गया।

अलाउद्दीन का राज्याभिषेक (१२९६ ई०)—अलाउद्दीन ने झटपट सेना और धन एकत्रित करके दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। जलालुद्दीन के जो अमीर उसके पास आकर मिलते थे उनको वह धन देकर प्रसन्न कर लेता और उनके द्वारा दूसरों को भी मिलाने का प्रयत्न करता जाता था। मार्ग में स्थान स्थान पर वह सोने-चाँदी के टुकड़ों की वर्षा करवाता था, जिससे साधारण जनता भी उसकी ओर हो गई। दिल्ली पर जलालुद्दीन के लड़के ने अधिकार कर लिया था, लेकिन वह परास्त कर दिया गया और अलाउद्दीन दिल्ली के तख्त पर बैठ गया। अलाउद्दीन न केवल खिलजी वंश का, वरन् पूर्व-मुगलकालीन भारत का सर्वश्रेष्ठ मुस्लिम सम्राट् था। उसने मुस्लिम-सत्ता को और व्यापक बनाया, साम्राज्य की सीमा को बढ़ाया।

अलाउद्दीन और मङ्गोल—अलाउद्दीन के गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिन बाद मंगोलों ने फिर अपने आक्रमण शुरू किये, यद्यपि उनके पहले दो हमले बहुत कारगर नहीं थे। लेकिन सन् १२९९ ई० में जब कुतलुग ख्वाजा एक विशाल सेना के साथ दिल्ली तक आ गया तो एक बार अलाउद्दीन भी भयभीत

हो गया। बडी घमासान लडाई के बाद मंगोलों की हार हुई। हजारों मगोल सैनिक काल क ग्रास हुए। मलाउद्दीन ने मगोलो के माक्रमण को रोकने के लिए कइ उपाय किये। उसने ५०,००० सैनिकों की एक विशाल सेना तैयार की। इसके बाद उसने सीमान्त किला की मरम्मत कराई और नये किले बनवाये। इन किलो में चुने हुये सैनिक रखे जात थे। उनके सरदार भी बहुत योग्य सैनिक थे। पहले वहाँ का सबसे बड़ा हाकिम जफर खाँ था। उसके मर जाने के बाद दूसरा प्रभावशाली सरदार गाजी तुगलक हुआ। उसने दिपालपुर को अपना सदर मुकाम बनाया और मगोला क माने को प्रतीक्षा न करके वह स्वय उनके देश में घुसकर उनका तग करने लगा। इसका फल यह हुआ कि १३०७ ई० क बाद मगालों न अलाउद्दीन क समय में कोइ हमला नही किया।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक विजय और उसका होसला—अलाउद्दीन को थोडे हा समय में असाधारण सफलता मिल गई। सम्राट् होने क दो वप के भीतर उसने अपने शत्रुओ का अच्छी तरह स वश में कर लिया और मगोलों को भी मार भगाया। इसी बीच में सन् १२९७ ई० में उसने गुजरात पर चढाई की थी। उसके सेनापतियो ने वहाँ के राजा कर्ण बघेला को हरा दिया और गुजरात दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिया गया। इन विजयो का फल यह हुआ कि वह सोचने लगा कि वह सभी कुछ कर सकता है। वह विश्वविजय और नव-धर्मस्थापन के स्वप्न दखने लगा। लेकिन दिल्ली के कातवाल ने उसकी भूल बताई और उसने भारत विजय से ही सन्तोष करने का निश्चय किया। उसी की सलाह का मानकर उसने शराब पोना स्वय छोड दिया और नगर में शराब का सभी दुकानें बन्द करवा दी।

उत्तर भारत की विजय—इसके बाद उसने उत्तर भारत के बच हुए भागा को जीतने का निश्चय किया। सबसे पहले सन् १२९९ में उसने रणथम्भोर के चौहानो पर आक्रमण किया। रणथम्भोर पहले पहल इल्तुतमिश ने जीता था, लेकिन उसके मरने के थोड़े ही दिन बाद यह फिर स्वतन्त्र हा गया था। दिल्ली से मालवा और गुजरात के मार्ग पर पडने क कारण रणथम्भोर का किला बहुत महत्त्व का था। दूसरे राजा हम्मीर न मंगाल-शरणार्थियों का लौटाने स भी इन्कार किया था। इस पर अलाउद्दीन बहुत बिगडा और उसने किले को घेर लिया। साल भर से अधिक लडते रहने क बाद हम्मीर को हार माननी पडी और सन् १३०१ ई० में किला अलाउद्दीन के अधिकार में आ गया इसके

दक्षिण भारत
अरब
सागर
बंगाल
की
खाड़ी

बाद सन् १३०२ ई० में उसने मेवाड़ पर चढ़ाई की। उस समय मेवाड़ में राणा रत्नसिंह शासन करता था। कई महीनों की लड़ाई के बाद सन् १३०३ में चित्तौड़ का किला भी अलाउद्दीन के अधिकार में आ गया। इन नये प्रदेशों पर शासन करने के लिए अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्र खां को वहाँ का हाकिम नियुक्त किया।

रणथम्भौर और चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करने से अलाउद्दीन का रोब सारे राजस्थान पर छा गया और उसे मालवा तथा मारवाड़ के राजाओं को दबाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। धार, मांडू, उज्जैन, भिलसा, चन्देरी आदि के किलों पर उसका स्थायी अधिकार स्थापित हो गया और अब उत्तर भारत में ऐसा कोई भाग नहीं रहा जहाँ सुलतान का शासन न हो।

दक्षिण विजय—सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार करने के बाद अलाउद्दीन ने दक्षिण के राज्यों को जीतने का उपाय किया। जैसा कि पहले कह चुके हैं उस समय दक्षिण में चार मुख्य राज्य थे। देवगिरि के यादव, वारंगल के काकतीय, द्वारसमुद्र के होयसल और मदुरा के पाण्ड्य। पूरबी तथा पश्चिमी देशों से व्यापार करने के कारण इनमें बहुत धन इकट्ठा हो गया था और अभी तक किसी मुसलमान विजेता ने वहाँ का धन लूटा भी नहीं था। अलाउद्दीन ने यहाँ के धन का कुछ भाग प्राप्त करके ही दिल्ली का तख्त पाया था। वह यह भी देख चुका था कि दक्षिण के राज्य कमजोर हैं। इसलिए उसने उनका धन लेने के अभिप्राय से कई बार सेना भेजी। देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र देव ने कर भेजना बन्द कर दिया था और गुजरात के राजा करण बघेला को अपने यहाँ शरण दी थी। दक्षिण विजय के लिए जो सरदार भेजा गया वह इसी करण की प्रजा में से था। उसका नाम मलिक काफूर था। १२९७ ई० के हमले के समय वह एक हजार दीनार में खरीदा गया था और बाद में अपनी योग्यता तथा सुन्दरता के प्रभाव से ऊँचे पद पर पहुँचा गया। चूँकि वह एक हजार दीनार में खरीदा गया था, इसलिए उसे हजारदीनारी भी कहते हैं।

देवगिरि (१३०७ ई०)-पहली बार काफूर ने देवगिरि पर ही आक्रमण किया। राजा रामचन्द्र हार गया और पकड़ लिया गया। काफूर ने उससे बहुत सा धन लिया और उसे दिल्ली ले गया। अलाउद्दीन ने उसे बरख़ास्त नहीं किया, वरन् उसे रायरायान की उपाधि देकर अपनी ओर मिला लिया और वार्षिक कर देने का वादा करने पर उसे फिर देवगिरि जाने की आज्ञा दे दी।

वारंगल (१३०९ ई०)—दूसरा हमला वारंगल के काकतीय राजा प्रतापरुद्रदेव द्वितीय पर हुआ। प्रतापरुद्रदेव ने शक्ति भर विरोध किया लेकिन अन्त में उसे संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। उसने वार्षिक कर देने का वचन दिया। इस युद्ध में देवगिरि के राजा रामचन्द्र ने भी काफूर की सहायता की थी।

द्वारसमुद्र (१३११ ई०)—अगले वर्ष सन् १३१० ई० में काफूर फिर दक्षिण की ओर रवाना हुआ और सन् १३११ ई० में द्वारसमुद्र के सामने पहुँच गया। इस समय वहाँ पर वीर बल्लाल तृतीय राजा था। उसने भी युद्ध किया, लेकिन अन्त में दूसरे हिन्दू राजाओं की भाँति उसकी भी हार हुई और उसे तमाम सोना चाँदी, हीरे-जवाहरात और हाथी घोड़े भेंट करने पड़े। साथ ही उसे वार्षिक कर देना भी स्वीकार करना पड़ा। काफूर ने उसे दिल्ली भेजा और वहाँ उसे अलाउद्दीन के सामने कर देते रहने का वचन देना पड़ा। अलाउद्दीन दक्षिणी राजाओं का धन ही चाहता था, प्राण नहीं। इसलिए उसने वीर बल्लाल को भी दक्षिण लौट जाने की आज्ञा दे दी।

पाण्ड्य (१३११ ई०)—जिस समय काफूर उत्तरी भारत था रहा था उसी समय उसे सूचना मिली कि पाण्ड्य राज्य में वीर पाण्ड्य अपने भाई सुन्दर पाण्ड्य के विरुद्ध लड़ रहा है। उसने इस झगड़े से लाभ उठाकर पाण्ड्यों को भी हरा दिया और उनसे भी खूब धन लिया। इसके बाद उसने रामेश्वरम् तक धावा मारा। इस आक्रमण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सुदूर दक्षिण के दूसरे छोटे राज्य चोल और चेर भी दिल्ली के अधीन हो गये।

शंकरदेव यादव का विद्रोह (१३१२ ई०)—यद्यपि सारा दक्षिण भारत जीता जा चुका था तो भी काफूर को अगले वर्ष दक्षिण आना पड़ा। इसका कारण शंकरदेव का विद्रोह था। यादव राजा रामचन्द्र के मरने पर उसका बेटा शंकरदेव राजा हुआ। उसने द्वारसमुद्र पर हमले के समय काफूर की सहायता नहीं की थी और वार्षिक कर भेजना भी बन्द कर दिया था। अलाउद्दीन के पहले हमले के समय भी इसने संधि की शर्तों के विरुद्ध अलाउद्दीन से दो बार युद्ध किया था। इस कारण अलाउद्दीन को विश्वास हो गया कि वह विद्रोही हो रहेगा। इसलिए उसने काफूर को उसे नष्ट कर देने की आज्ञा दी। काफूर ने देवगिरि पर चढ़ाई की। शंकरदेव हार गया और मार डाला गया। उसके बाद हरपालदेव को देवगिरि का शासक बना दिया गया और उससे प्रति वर्ष कर भेजते रहने का वादा लिया।

अलाउद्दीन का शासन प्रबन्ध—अलाउद्दीन ने जितना बड़ा राज्य स्थापित किया था उतना उसके पहले कोई भी मुसलमान भारतीय नरेश नहीं कर पाया था। इसका एक कारण तो उस समय के हिन्दुओं की कमजोरी और फूट थी। लेकिन दूसरा और मुख्य कारण अलाउद्दीन का सुन्दर सैनिक संगठन था। अलाउद्दीन जितना महत्त्वाकांक्षी था उतना ही शासन करने में निपुण भी था। यद्यपि वह कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं था, तो भी उसने उस समय की दशा को देखते हुए काफी अच्छी शासन व्यवस्था का निर्माण किया था। उसके दो मुख्य उद्देश्य थे —(१) आंतरिक विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों को रोकना और (२) राजा की शक्ति को बढ़ाना।

सैनिक संगठन—इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक विशाल सेना की बहुत आवश्यकता थी। अलाउद्दीन ने सेना में कई सुधार किये। उसने प्रत्येक सैनिक को सरकारी खजाने से वेतन देने का नियम बनाया। सेना के अफसर सुलतान के मातहत होते थे और वे उन्हीं सैनिकों से काम लेते थे जो सुलतान की ओर से उनको दिये जाते थे। उनके अपने निजी कोई सैनिक नहीं होते थे। अलाउद्दीन ने बलबन की चलाई हुई घोड़ों को दगवाने की प्रथा जारी रखी। इसके अतिरिक्त वह स्वयं दौरा करके सैनिकों का निरीक्षण करता था और उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता रहता था, जिससे व विद्रोही न हो सकें। उसने पत्थर फेंकनेवाली तोपें भी तैयार करवाई थीं। इन तोपों को मजनिक कहते थे। सेना का बहुत बड़ा भाग दिल्ली में ही रहता था। शेष सेना आवश्यकतानुसार साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों के किलों में रहती थी। पश्चिमोत्तर प्रान्त के किलों में अधिक सेना रहती थी, क्योंकि उस ओर से मंगोलों के हमले का भय रहता था।

बाजार का प्रबन्ध—अलाउद्दीन ने सैनिकों का वेतन काफी कम रखा था। लेकिन वह यह नहीं चाहता था कि उनको किसी प्रकार का कष्ट हो। इसलिए उसने छावनियों और बड़े-बड़े नगरों के लिए चीजों के भाव नियत कर दिये। सभी चीजें बहुत सस्ती कर दी गईं जिससे थोड़े ही धन से सैनिकों का निर्वाह हो जाय। गरीब जनता को भी इससे कुछ लाभ अवश्य हुआ होगा। सरकार की ओर से कई अफसर नियुक्त थे, जिनका कर्तव्य बाजार का निरीक्षण करना था। वे व्यापारियों के बाँटों की जाँच करते थे और देखते थे कि कोई व्यापारी भाव से अधिक तो दाम नहीं लेता, या कम तो नहीं तोलता। यदि कोई व्यक्ति

पद प्राप्त कर सकते थे। इस प्रकार उसने धनबल की नीति का परित्याग किया और भारतीयों का सहयोग अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त किया। उसने दक्षिणी रियासतों को साम्राज्य में न मिलाने में बड़ी बुद्धिमत्ता दिखाई और उसके सैनिक संगठन तथा बाजार के प्रबन्ध से उसकी योग्यता प्रकट होती है। इन सब गुणों के होते हुए भी उसमें चरित्र के कई दोष थे। वह बहुत ही स्वार्थी था और अपने स्वार्थ की रक्षा करने के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता था। जलालुद्दीन के साथ उसने जो व्यवहार किया वह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। जिन जलाली सरदारों ने उसका पक्ष ग्रहण कर लिया था। उनको उसने बाद में निकाल दिया और उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली। पहले वह शराब भी बहुत पीता था और उसका व्यक्तिगत चरित्र भी दोष रहित नहीं था। उसकी शासन प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह था कि वह केवल भय की ही भित्ति पर साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उसने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे प्रजा उसकी कृतज्ञ होती और उससे कुछ स्नेह भी कर सकती। उसने काफूर को बहुत बढ़ा दिया और अपने लड़कों में से किसी को भी अपने बाद शासन करने के योग्य बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसी कारण उसकी मृत्यु के चार वर्ष बाद ही खिलजी वंश का अन्त हो गया।

कुतुबुद्दीन मुबारक शाह (सन् १३१६-२० ई०)—अलाउद्दीन के मरने पर ३५ दिन काफूर ही राज्य का स्वामी रहा। उसने एक ६ वर्ष के बच्चे उमर खाँ को गद्दी पर बिठा लिया और अलाउद्दीन के सभी संबंधियों को मरवा डाला या अंधा करवा दिया। केवल उसका एक लड़का मुबारक खाँ किसी प्रकार बच गया था। काफूर के व्यवहार से बहुत से अमीर असंतुष्ट हो गए और उन्होंने मुबारक खाँ की सहायता देकर गद्दी पर बिठा दिया। काफूर मार डाला गया। मुबारक ने अब कुतुबुद्दीन मुबारक शाह की उपाधि ग्रहण की। उसने पहले दो वर्षों में बड़ी योग्यता से शासन किया, कैदियों को छोड़ दिया और कर हल्के कर दिये। देवगिरि के राजा हरपालदेव का विद्रोह दबा दिया गया और उसका राज्य दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिया गया। तैलंगाना के राजा को दूसरी संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार उसका वार्षिक कर बढ़ा दिया गया और उसके राज्य का कुछ भाग छीन लिया गया। इन विजयों में सुलतान के एक गुलाम खुसरो ने बहुत योग्यता दिखाई थी। वह गुजरात की परवारी जाति का हिन्दू था। उसका नाम पहले हसन था। सुलतान ने उसे

खुसरो खाँ की उपाधि दी तब से वह खुसरो के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसका प्रभाव दरबार में बहुत बढ गया। उसने भी काफूर की भाँति राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया उसके षडयन्त्रों का फल यह हुआ कि परवारियों को दरबार और महल में कई पद प्राप्त हो गये और उन्होंने एक दिन सुलतान को मार डाला, खजाना लूट लिया और खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से गद्दी पर बैठ गया।

नासिरुद्दीन खुसरो (१३२० ई०)—खुसरो ने फिर हिन्दू सत्ता को जीवित करने का प्रयत्न किया। वह मुसलमान अमीरों को निकाल कर उनके स्थान पर अपने साथियों को रखने लगा। उसने कुरान को जलवा दिया और बहुत सी मसजिदें तुड़वा दीं। वह इस प्रकार मुसलमानों से बदला लेना चाहता था और सोचता था कि हिन्दू जनता की सहायता से वह अपना शासन दृढ़ कर लेगा। लेकिन उसकी मनोकामना पूरी न हुई। हिन्दुओं से उसे कोई सहायता न मिली। वे उसे नीच समझते थे क्योंकि वह परवारी जाति का था और मुसलमान हो गया था। इसके विपरीत मुसलमान अमीरों ने इस्लाम और अपने हितों की रक्षा के लिए एक संघ बनाया। उसका नेता दिपालपुर का हाकिम गाजी तुगलक था। इस संयुक्त सेना ने दिल्ली पर आक्रमण किया। खुसरो तथा उसके साथी हार गये और मार डाले गये। गाजी तुगलक ने दिल्ली में प्रवेश किया और सब लोगों की इच्छा से उसने सुलतान बनना स्वीकार कर लिया क्योंकि उस समय अलाउद्दीन के वंश में कोई नहीं था। इस प्रकार मुस्लिम साम्राज्य नष्ट होने से बच गया।

(३) तुगलक वंश

गयासुद्दीन तुगलक—मुबारकशाह की लापरवाही और खुसरो के राजद्रोह के कारण साम्राज्य को बहुत क्षति पहुँच चुकी थी। दक्षिण में वारंगल राजस्थान में मेवाड़ और पूरब में बंगाल स्वतन्त्र हो चुके थे। अन्य क्षेत्रों में भी विद्रोह की भावना बढ़ रही थी। इधर केन्द्रीय सरकार शक्तिहीन होती जा रही थी। सैनिक-संगठन ढीला पड़ गया था और सारा खजाना लुटा दिया गया था। ऐसी परिस्थिति में गयासुद्दीन तुगलक ने बड़ी योग्यता से काम किया और सल्तनत के विनाश को रोक दिया।

शासन प्रबन्ध—उसने उन लोगों का पता लगाया जिनको खुसरो ने रुपया दिया था और उनसे रुपया वापस करने को कहा। प्राय सभी लोगों ने उसकी

आशा मान ली। इसका फल यह हुआ कि प्रजा पर बिना कर लगाये ही राज कोष में फिर काफी धन आ गया। गयासुद्दीन ने प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिए भूमि-कर कम रखा। प्रजा के झगड़ों को तै करने के लिए उसने न्यायालय खोले। सेना का सगठन फिर से किया गया और साम्राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की गई। गयासुद्दीन ने न तो अलाउद्दीन और बलबन की भाँति प्रजा पर बहुत सख्ती की और न उनको मनमानी करने का ही अवसर दिया।

विद्रोह का दमन—दिल्ली के आसपास शान्ति स्थापित करने के बाद गयासुद्दीन ने दूरस्थ प्रान्तो के विद्रोह दबाने का प्रयत्न किया। दक्षिण भारत की विजय अभी थोड़े दिन पहले ही हुई थी। वहाँ के हिन्दू शासक अवसर मिलते ही विद्रोह कर देते थे। इस समय वारगल के काकतीयो ने फिर विद्रोह किया और उनकी देखा-देखी यादवो में भी असतोष फैलने लगा। सुलतान ने अपने बड़े बेटे जूना खाँ को इस विद्रोह को शान्त करने के लिए रवाना किया। जूना खाँ का पहला आक्रमण सफल नही हुआ। लेकिन दिल्ली से सहायता मिलने पर सन् १३२३ ई० में उसने वारंगल पर अधिक कर लिया। काकतीयो का कुछ राज्य खुसरो ने ही दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिया था। शेष भाग में से अधिकाश पर अब मुसलमान हाकिम शासन करने लगे और काकतीय वंश की शक्ति का नाश हो गया।

सन् १३२४ में बंगाल में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हो गया। बगाल में उस समय बहादुर राज्य कर रहा था। उसके भाई नासिरुद्दीन ने सुलतान से प्राथना की कि बगाल का शासन उसे मिलना चाहिए। इसी प्रश्न को तै करने के लिए वह बंगाल गया और दिल्ली का प्रबन्ध जूना खाँ को सौंप दिया। बहादुर ने सुलतान की आज्ञा मानने से इनकार किया। इस कारण युद्ध हुआ जिसमें बहादुर की हार हुई। उसने बगाल प्रान्त का आधा भाग नासिरुद्दीन को देना स्वीकार कर लिया। इस प्रबन्ध से सुलतान का प्रभाव भी बढ़ गया और बंगाल के हाकिमों की शक्ति घट गई।

सुलतान की मृत्यु (१३२५ ई०)—जिस समय सुलतान बगाल में था उस समय दिल्ली षड्यन्त्रकारियों का केन्द्र बन गया। ये लोग उसको गद्दी से हटाकर जूना खाँ को सुलतान बनाना चाहते थे। जब सुलतान बंगाल से लौट रहा था तब उसको एक नये महल में ठहराया गया। नमाज का वक्त होने प दूसरे सभी लोग उसके बाहर निकल आये। सुलतान स्वयं उसके अन्दर ही थ

कि महल एकाएक गिर पड़ा। सुलतान उसी के नीचे दबकर मर गया। जूनाखाँ ने जान बूझ कर उसे खुदवाकर निकलवाने में देर की जिससे वह जिन्दा न निकल सके। इस प्रकार सन् १३२५ ई० इस योग्य शासक की मृत्यु हो गई।

मुहम्मद तुगलक (१३२५ १३५१ ई०)—गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा जून खाँ गद्दी पर बैठा और उसने मुहम्मद तुगलक की उपाधि ग्रहण की। मुहम्मद तुगलक ने अपने पिता की मृत्यु का कारण दवी प्रकोप बताया और कई दिन तक शोकाकुल रहने का ढोंग रचा। इसके बाद उसने अपनी योग्यता प्रमाणित करने के लिए शासन सुधार की ओर ध्यान दिया। दक्षिणी भारत के बहुत बड़े भाग पर दिल्ली का सीधा अधिकार स्थापित करने वाला पहला व्यक्ति वही था। उसका साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया। उसमें पश्चिम में लाहौर और मुलतान से लेकर पूरब में बगाल तक और उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में मावर तक सारा भारतवप शामिल था। यह साम्राज्य २३ सूबों में विभक्त था।

शासन प्रबन्ध—इस विशाल साम्राज्य में शान्ति और सुख स्थापित करने के लिए उसने उचित प्रबन्ध किया। उसने अलाउद्दीन की भाँति एक विशाल सेना तैयार की, जिसको वह नकद वतन देता था। यह सेना साम्राज्य के विभिन्न भागा में बँटी हुई थी और सुलतान स्वय उसका प्रधान सेनापति था। प्रान्तीय हाकिमो तथा केन्द्रीय विभागों के काम को वह स्वय देख रेख करता था। उसने गुप्तचर नियुक्त किये थे जो उसे सरकारी अफसरों और प्रजा के विषय में सूचना देते थे। लेकिन उसका गुप्तचर विभाग बहुत योग्य नहीं था। वह हिन्दू-मुसलमानो अमीरों गरीबों को समान रूप से नियमा को पालन करने के लिए बाध्य करता था और जो उनके विरुद्ध चलते थे उनको वह समान रूप से कड़ा दण्ड देता था। उसने हिन्दुओं की सती प्रथा रोकने का प्रयत्न किया व्यापार तथा कला को बढाने के लिए उचित नियम बनाये।

मुहम्मद तुगलक के समय में दिल्ली सल्तनत उन्नति के शिखर पर पहुँच गई और उसी के समय से इसका पतन भी प्रारम्भ हो गया जिसे रोक सकने की क्षमता किसी बाद के सुलतान में प्रकट नहीं हुई। सुल्तान के पतन में जिन बातों ने योग दिया, उसमें सुलतान के सुधार भी एक विशेष स्थान रखते हैं। साधारणत उनसे राजा को लाभ होना चाहिए था लेकिन सुलतान की अव्यावहारिकता और परिस्थिति की प्रतिकूलता के कारण उनसे केवल सुलतान के प्रति असतोष हो

फैला। इनमें सर्वप्रथम दोआब में कर वृद्धि है। दोआब की भूमि की उर्वरा शक्ति का ध्यान रखते हुए सुलतान ने सन् १३२६ ई० में अलाउद्दीन की भाँति उपज का ½ राज-कर नियत किया। सुलतान के भय से कर्मचारियों ने लगान वसूल करने में कोई रियात नहीं की, यद्यपि उस समय अकाल पड़ रहा था। कृषक लाचार होकर खेत छोड़कर भागने लगे और अन्न की कमी के कारण मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। ऐसी दशा में सुलतान ने कुएँ खुदाने, अन्न बँटवाने और रुपया उधार देकर खेती प्रारम्भ करने का सराहनीय प्रयत्न किया। लेकिन कर्मचारियों की निर्दयता से ऊबकर कुछ कृषक अब भी भागने लगे। इस पर सम्राट ने उनको कड़ी सजायें दीं। इस प्रकार इस सुधार से लाभ होने के स्थान पर राजा प्रजा दोनों को ही हानि पहुँची और असंतोष बढ़ने लगा।

राजधानी बलदना—ठीक इसी सुधार के बाद सन् १३२७ में सुलतान ने दक्षिणी भारत पर उचित नियन्त्रण रख सकने की दृष्टि से दिल्ली के स्थान पर देवगिरि को राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रखा। दिल्ली के प्रमुख व्यक्तियों को वहाँ जाने के लिए कहा गया और सुलतान ने मार्ग में सभी सुविधाओं का प्रबन्ध किया, पर लोगों को बहुत कष्ट हुआ। अन्त में सुलतान को दिल्लीवासियों को वापस जाने की आज्ञा देनी पड़ी। इस प्रकार इस सुधार में काफी आर्थिक हानि हुई और साम्राज्य को लाभ तो कुछ न हुआ उलटे प्रजा में असंतोष बढ़ गया।

सिक्कों मे सुधार—मुहम्मद का तीसरा सुधार सिक्कों से सम्बन्ध रखता है। उसके समय में सबसे छोटा सिक्का जीतल होता था जो १½ पैसे के बराबर होता था। सुलतान ने आजकल की एकन्नी, दुअन्नी, चौअन्नी आदि से मिलते जुलते नये सिक्के चलवाये। इनसे व्यापार में बड़ी सुविधा हो गई। लेकिन उसका एक अन्य सुधार इतना असफल हुआ कि उसके कारण बहुत से इतिहासकारों ने उपर्युक्त लाभदायक सुधारों का उल्लेख भी नहीं किया। उसने चाँदी की कमी के कारण ताँबे के टंक चलाये और आज्ञा दी कि ये चाँदी के टंकों के समान समझे जायँ। लोगों ने इसका अनुचित लाभ उठाया और चूँकि सुलतान ने जाली सिक्के पकड़ने की उचित व्यवस्था नहीं की अत करोड़ों जाली सिक्के बन गये और लोग उनके बदले सामान बेचने में आनाकानी करने लगे। अपनी असफलता को देखकर सुलतान ने सब ताँबे के सिक्के वापस ले लिये और उनकी बजाय सोने के सिक्के दिलवा दिये। इस भाँति यह सुधार बिलकुल

असफल हो गया। टका का अभाव पहले से अधिक हो गया। सरकारी कोष का बहुत धन व्यय चला गया और जनता सुलतान को झक्की समझने लगी। इस भाँति इस सुधार से भी सुलतान की प्रतिष्ठा घटी।

खुरासान और हिमाचल की चढ़ाइयाँ—मुहम्मद तुगलक को दोआब की कर वृद्धि राजधानी परिवर्तन और तांबे के सिक्के को चलाने के कारण बहुत बदनाम किया गया है। कुछ लोगों ने इन कार्यों का महत्त्व इतना गलत समझा है कि उन्होंने उसे पागल कहने की भूल की है। इन कार्यों से उसका पागलपन नहीं वरन् उसकी बुद्धि की विलक्षणता प्रकट होती है। लोगों ने मुहम्मद तुगलक की वैदेशिक नीति की भी कड़ी आलोचना की है। सबसे पहले उसे मंगोलों के सरदार तरमशीरी का सामना करना पड़ा। इन दोनों में युद्ध नहीं हुआ, मुहम्मद तुगलक ने उसे कुछ धन दिया और वह वापस चला गया। इस मिलन के बाद इन दोनों व्यक्तियों ने खुरासान विजय करने की संयुक्त योजना बनाई। मुहम्मद तुगलक ने एक विशाल सेना तैयार की जिसमें पौने चार लाख सैनिक थे। उसने उसे एक वर्ष का पेशगी वेतन भी दे दिया। बाद में सूचना मिली कि तरमशीरी की मृत्यु हो गई है और खुरासान की आन्तरिक स्थिति सुधर गई है। इस कारण उसने हमला करने का विचार त्याग दिया। उसने हिमालय के तराई प्रदेश के एक राजा पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में शाही पलटन की बहुत हानि हुई, क्योंकि उसके सैनिकों को पहाड़ी प्रदेश में लड़ने का अनुभव नहीं था। जब वे लोग अपनी असफलता की कथा सुनने के लिए सुलतान के पास गये, तब वह इतना अप्रसन्न हुआ कि उसने उन सबका मरवा डाला।

विद्रोह—सुलतान ने अपने शासनकाल में अनेक भूलें कीं। उसकी जल्द बाजी, कठोर सजायें, विदेशियों की अत्यधिक आवभगत और नये कामों के करने की लालसा कुछ ऐसे दुर्गुण थे, जिसके कारण वह सफल शासक नहीं हो सकता था। फिर शायद उसके भाग्य में कठिनाइयों का झेलना ही बदा था। इसी कारण उस समय अकाल भी बार-बार पड़े। साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था, आने-जाने के साधन बहुत ही साधारण थे और सुलतान के पास अलाउद्दीन की भाँति काफूर, जफर खाँ, गाजी तुगलक या नसरत खाँ ऐसे योग्य सेनापति भी नहीं थे। इसलिए यदि कहीं विद्रोह होता था तो उसी को भाग भागकर जाना पड़ता था। इन सब बातों का फल यह हुआ

कि मुहम्मद के शासन-काल में अनेक विद्रोह हुए जिनके कारण साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। पहला मुख्य विद्रोह सन् १३३४-३५ ई० में हुआ। इनका नेता मावर का हाकिम जलालुद्दीन महसन शाह था। सुलतान उसे दबाने के लिए दक्षिण आया लेकिन मार्ग में ही महामारी फैलने के कारण उसे वापस चला जाना पड़ा और मावर स्वतंत्र हो गया। उसके एक वर्ष बाद सन् १३३६ ई० में विजयनगर राज्य की नींव पड़ी। सन् १३३७ ई० में बंगाल में भी विद्रोह हो गया। सुलतान उधर भी जाने में असमर्थ रहा। इस कारण दूसरे प्रान्तों में भी विद्रोह की आग भड़कने लगी। दक्षिण में कृष्णनायक ने हिन्दुओं का एक संघ बनाया। वह स्वयं काकतीय वंश का था। उसके प्रयत्नों का यह फल हुआ कि वारंगल, द्वारसमुद्र और काम्पिल स्वतंत्र हो गये। इन लोगों की स्वतन्त्रता की सूचना पाकर मालवा, दक्षिण और गुजरात के विदेशी अमरों ने भी षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ किया। उन्होंने सन् १३४७ ई० में सरकारी अफसरों को हटा दिया और हसन काँगू नामी एक व्यक्ति को अपना राजा बनाया। हसन काँगू ने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और एक नये वंश की स्थापना की जो बहमनी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद तुगलक इन कृतघ्नों को सजा देने के लिए दक्षिण आया। पर उसी समय गुजरात में विद्रोह हुआ। सुलतान ज्यों ही गुजरात की ओर गया वैसे ही देवगिरि स्वतन्त्र हो गया। सुलतान गुजरात के विद्रोही सरदार तगी का पीछा करता हुआ सिंध प्रान्त में पहुँच गया और वहीं सन् १३५१ ई० में ठट्टा नामक नगर में मर गया। उसकी मृत्यु के समय दिल्ली सल्तनत की सीमा १३२७ ई० की अपेक्षा अत्यधिक संकुचित हो गई थी।

मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारण—इस प्रकार इस विद्वान् परन्तु अभागे बादशाह का अन्त हुआ। यह उसका दुर्भाग्य था कि वह अपने समय से पहले पैदा हुआ था और उसके समय में बराबर अकाल पड़े। उसका भाषा, साहित्य, इतिहास, तर्कशास्त्र आदि का ज्ञान और शासन का अनुभव किसी काम न आया। कुछ लोग कहते हैं कि जिस प्रकार अपने चचा का वध करने के कारण अलाउद्दीन का अन्तिम समय बहुत कष्ट में बीता था, उसी प्रकार मुहम्मद तुगलक को भी अपने पिता के वध का फल भोगना पड़ा और वह कभी सुख से न रह सका।

तुगलक़ साम्राज्य
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी

फिरोज तुगलक—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के समय उसका चचेरा भाई फीरोज तुगलक उसी के साथ था। सेना के सरदारों ने उससे दिल्ली का राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की। पहले तो उसने कुछ मानाकानी की लेकिन जब लोगों ने बहुत आग्रह किया तो उसने उनकी बात मान ली। वह ठट्टा से चलकर दिल्ली आया और यहीं उसका राज्याभिषेक हुआ। फीरोज के गद्दी पर बैठते ही शासन का स्वरूप बदल गया। फीरोज अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था और वह राजशक्ति को इस्लाम के प्रचार में लगाना अपना कर्तव्य समझता था। इस कारण उसके राज्यकाल में कुछ धार्मिक अत्याचार भी हुए। वह अच्छा सैनिक नहीं था और बहुधा मुसलमानों का रक्त बहाने से डरता था। इस कारण विद्रोह प्रान्त दुबारा जीते न जा सके। लेकिन उसमें शासन करने की पर्याप्तयोग्यता थी और उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि राज्य कम होते हुए भी सरकार की आय बढ़ गयी।

फिरोज के प्रारम्भिक कार्य—उसने अपने भाई मुहम्मद की आत्मा की शान्ति के लिए उन सब लोगों से क्षमा पत्र लिखवा लिये जो उससे असंतुष्ट थे और उन क्षमा पत्रों को उसकी लाश के साथ गड़वा दिया। फिर उसने यह आज्ञा निकाली कि जो कर कुरान में नहीं लिखे हैं वे बन्द कर दिये जायँ। इससे प्रजा का बोझ हल्का हो गया। लेकिन साथ ही उसने यह भी आज्ञा दी कि जजिया सभी हिन्दुओं को देना पड़ेगा। इस आज्ञा से ब्राह्मण असंतुष्ट हो गये और उन्होंने राजमहल के सामने अनशन आरम्भ कर दिया। अन्त में अन्य हिन्दुओं ने सुलतान से प्रार्थना की कि ब्राह्मणों से जितना रुपया लेना है वह हम से ले लिया जाय और उनको इस कर से मुक्त कर दिया जाय। पहले फीरोज इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था लेकिन बाद में वह इस बात पर राजी हो गया। तब ब्राह्मणों ने अनशन बन्द कर दिया।

फीरोज के समय तक अङ्ग भङ्ग की सजा बहुत अधिक दी जाती थी। उसने कहा कि खुदा के बंदों को कुरूप करने का हमें कोई अधिकार नहीं है और उसने इस अमानुषिक प्रथा को बन्द कर दिया। इससे सुलतान की स्वाभाविक उदारता का परिचय मिलता है।

सैनिक अयोग्यता—फीरोज के समय में बहुत कम युद्ध हुए और जो हुए भी उनसे सुलतान की पूर्ण अयोग्यता सिद्ध होती है। वह राज्य-विस्तार करने का इच्छुक नहीं था फिर भी उसने बंगाल पर चढ़ाई की उसका अनुमान था

कि बगाल पर सहज में ही अधिकार हो जायगा और इस सफलता से लोग समझेंगे कि सुलतान योग्य सेनापति भी है। लेकिन परिणाम बिलकुल उलटा हुआ। बगाल के शासक ने किले अन्दर से सुलतान का विरोध जारी रखा। जब किला हाथ आनेवाला था उस समय स्त्रियों और बच्चों ने डर के मारे रोना-पीटना आरम्भ कर दिया। इसकी सूचना मिलने पर सुलतान दिल्ली लौट गया और बगाल पूर्ववत् स्वतन्त्र बना रहा।

इसी भाँति जब उसने सिंध पर हमला किया तो सुलतान की सेना रास्ता ही भूल गई। बाद में जब ठट्टा पहुँची भी तो उसने किले का घेरा डालकर ही उसे जीतना चाहा जिसमें बहुत समय नष्ट हुआ। इस आक्रमण से भी राज्य को कोई लाभ नही हुआ।

फीरोज के पास बहमनी राज्य के सरदार ने आक्रमण करने के लिए पत्र भेजा था लेकिन उसने उससे कोई लाभ उठाने का प्रयत्न नही किया। फीरोज को केवल दो स्थानो में कुछ सफलता मिली। उसने बगाल से लौटते समय जाजनगर (उडीसा) पर अधिकार कर लिया था और नगरकोट के राय को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया था।

सैनिक सगठन—सुलतान न केवल एक अयोग्य सेनापति था, उसने सैनिक सगठन को भी बहुत खराब कर दिया। उसने बूढ़े-बूढ़े व्यक्तियों को भी सेना में बने रहने की आज्ञा दे दी। उनके मरने या नौकरी छोडने पर वह उनके रिश्तेदारो को सेना में रख लेता था। चाहे वे सैनिक होने के योग्य हो या न हो। तीसरे, सेना में भी जागीर प्रथा का चलन कर दिया गया जिसे अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक ने बन्द कर दिया था। इस प्रथा के चल जाने से राजा का सैनिकों पर प्रभाव कम हो गया और बूढ़े तथा अयोग्य सैनिकों के होने कारण सेना बहुत कमजोर हो गई।

सरकार की आय मे वृद्धि—सुलतान ने सरकार की आय बढ़ाने के अनेक उपाय किये। उसने यमुना तथा सतलज से नहरें निकलवाई जिनके कारण बहुत सी बंजर जमीन खेती के काम में आने लगी। उससे कर से सरकारी आय बढ़ने लगी। दूसरे-सिंचाई का अलग कर देना पडता था जो कि उपज का दसमांश होता था इस योजना से राजा तथा प्रजा दोनों को ही लाभ हुआ फीरोज ने कई सरकारी कारखाने भी खोले और उनमें बनी चीजों की बिक्री से बहुत लाभ उठाया। इन कारखानों में काम करने के लिए वह उन लोगों को

रखता था जो रोजी कमाने में असमर्थ हों और सुलतान के दास बनने को तैयार हों। इस प्रकार उसने एक लाख अस्सी हजार दासों के भरण पोषण का प्रबन्ध कर दिया और साथ ही राज्य की आय भी बढ़ा ली। उसने १२०० बड़े-बड़े बाग लगवाये जिनकी पैदावार से भी सरकार को लाभ होता था।

फीरोज के अन्य कार्य—फीरोज शान्तिप्रिय शासक था। वह चाहता था कि प्रजा सुखी रहे और देश में कृषि तथा व्यापार उन्नत दशा में रहें। जो धन उसने इकट्ठा किया उसमें से बहुत-सा उसने गरीबों और फकीरों की सहायता में खर्च किया। उसमें यही एक दोष था कि वह अपने को मुसलमान प्रजा का ही प्रधान रक्षक समझता था। इस कारण उसने गरीब हिन्दुओं को तभी सहायता दी जब वे मुसलमान बनने को तैयार हुए। यह उस समय का दोष है। धार्मिक उदारता उस समय बहुत ही कम देशों में थी। उसके समय में साधारण तौर से प्रजा सुखी थी। लेकिन जागीर प्रथा को चलाकर, धार्मिक पक्षपात को अपनाकर और सैनिक संगठन को ढीला करके उसने साम्राज्य का पतन और भी निश्चित कर दिया।

फीरोज के उत्तराधिकारी—फीरोज की मृत्यु सन् १३८८ ई० में हुई। उसके बाद भी २५ वर्ष तक तुगलक वंश के शासक दिल्ली के स्वामी बने रहे। लेकिन उनमें शासन की योग्यता नहीं थी। इस कारण प्रान्तीय राज्यों की शक्ति बढ़ती गई और नये स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्य बनने लगे। इसी बीच में सन् १३९८ ई० में समरकन्द के शासक तैमूरलंग ने भारत पर आक्रमण किया।

तैमूर का आक्रमण—तैमूर ने पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया से एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी इच्छा भारत पर आक्रमण करने की भी थी। उसके सैनिक इतनी दूर आने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उसने भी धर्म की आड़ ली। उसने कहा कि भारत में इस्लाम की अवनति हो रही है। उसे रोकने और इस्लाम का प्रभाव फिर से स्थापित करने के लिए भारत पर आक्रमण करना आवश्यक है। सैनिकों को यह भी लालच दिया गया कि भारतवर्ष बहुत धनी देश है, इसलिए वहाँ लूट का सामान भी खूब मिलेगा।

तैमूर का पहला वार मुलतान पर हुआ। उसे अधिकार में करने के बाद उसने प्रायः सारा पंजाब अपने वश में कर लिया। अब तैमूर की सेना ने दिल्ली की ओर कूच किया। वहाँ ५०,००० सैनिकों ने उसका विरोध किया लेकिन

युद्ध में तैमूर विजयी हुआ और तुगलक सुलतान महमूद हारकर गुजरात की ओर भाग गया।

तैमूर ने अब दिल्ली नगर में प्रवेश किया। अधिक-से अधिक धन बटोरने के लिए उसने यह धमकी दी कि दिल्ली के सभी लोगों को कत्ल कर दिया जायगा क्योंकि उन्होंने उसका विरोध किया है। बहुत से मुसलमान फकीरों और नगर के धनी लोगों ने उसे समझा बुझाकर स्वतः उसके पास खूब धन भिजवाने का वादा किया। जब वह रुपया मिल गया तब तैमूर की सेना ने नगर लूटना आरम्भ किया। इस लूट मार में हजारों व्यक्ति मार डाले गए, सैकड़ों सुन्दर इमारतें ढहा दी गईं और नगर की सारी सम्पत्ति विदेशी आक्रमणकारियों के हाथ लगी।

तैमूर का वापस जाना— दिल्ली की लूट के बाद तैमूर मेरठ, हरद्वार होता हुआ और मार्ग के स्थानों को लूटता, जलाता, नष्ट करता हुआ अपने देश को वापस चला गया। उसने खिज्र खाँ को अपना सूबेदार नियुक्त किया और पंजाब को अपने राज्य में मिला लिया। खिज्र खाँ लाहौर में रहकर पंजाब पर शासन करने लगा। तैमूर अपने साथ भारतीय कारीगरों को भी ले गया जिन्होंने समरकन्द में उसके लिए अनेक छोटी बड़ी इमारतें बनाईं। उनमें से एक विशाल मस्जिद अभी तक विद्यमान है।

तुगलक वंश के पतन के कारण—तैमूर के आक्रमण के बाद तुगलक-साम्राज्य की रही-सही शक्ति और प्रतिष्ठा भी नष्ट हो गई। गुजरात, मालवा और जौनपुर में नए स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए और राजस्थान के हिन्दू शासक भी स्वतन्त्र हो गए। सन् १४१२ ई० में जब महमूद तुगलक की मृत्यु हो गई तो इस वंश का सदा के लिए अन्त हो गया।

वास्तव में इस वंश का पतन मुहम्मद तुगलक के समय से ही आरम्भ हो गया था। १३२७ ई० में तुगलक-साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर था। लेकिन मुहम्मद की नई योजनाओं, कड़ी सजाओं, अनेक अकालों और साम्राज्य के सुदूर प्रान्तों में विदेशी अमीरों के षड्यन्त्रों के कारण सम्राट का अधिकार शिथिल पड़ने लगा। सन् १३३८ और सन् १३५१ के बीच में मावर, बंगाल, विजयनगर, द्वारसमुद्र, वारंगल काम्पिल देवगिरि और सिंध में स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे। इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिणी भारत और उत्तरी भारत के एक छोर पर बंगाल और दूसरे छोर सिंध तुगलक-साम्राज्य से अलग हो चुके थे।

फीरोज में इतनी सैनिक योग्यता नहीं कि वह खोए हुए प्रान्तों को फिर जीत सकता। उसने धार्मिक पक्षपात की नीति को अपनाकर और जागीर प्रथा तथा गुलाम प्रथा को बढ़ाकर साम्राज्य की नींव को और भी खोखला कर दिया। फिरोज के उत्तराधिकारी बिलकुल निकम्मे और अयोग्य थे। उनके समय में अमीरों के गुट बनने लगे जिनके कारण दिल्ली में भी अराजकता फैलने लगी। इसी अवस्था में तैमूर का आक्रमण हुआ जिसने तुगलकों की सेना और सम्पत्ति दोनों का ही सफाया कर दिया और इसके विनाश का समय निकट पहुँचा दिया। हिन्दू राजाओं और मुसलमान अमीरों ने अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार स्थान-स्थान पर स्वतन्त्र राज्य बना लिये और उनको रोकनेवाला कोई न रहा। इस प्रकार जिस पतन का आरम्भ मुहम्मद तुगलक के समय में हुआ था वह महमूद तुगलक की मृत्यु के साथ पूरा हुआ और दिल्ली पर एक नए वंश का शासन स्थापित हो गया।

मुख्य तिथियाँ

कुतुबुद्दीन ऐबक का सुलतान होना	१२०६ ई०
इल्तुतमिश का गद्दी पर बैठना	१२११ ई०
एलदौज की पराजय	१२१५ ई०
बंगाल विजय	१२२५ व १२३० ई०
कुबाचा की मृत्यु	१२२७ ई०
खलीफा का पत्र	१२२८ ई०
ग्वालियर-विजय	१२३२ ई०
मालवा विजय	१२३४ ई०
रजिया बेगम का राज्याभिषेक	१२३६ ई०
नासिरुद्दीन का सुलतान होना	१२४६ ई०
बलबन का राज्याभिषेक	१२६६ ई०
तुगरिल बेग का विद्रोह	१२७६ ई०
मंगोलों का आक्रमण और मुहम्मद की मृत्यु	१२८५ ई०
कैकुबाद का गद्दी पर बैठना	१२८६ ई०
जलालुद्दीन खिलजी का राज्याभिषेक	१२९० ई०
अलाउद्दीन का राज्याभिषेक	१२९६ ई०

गुजरात विजय	१२६७ ई०
कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण	१२९९ ई०
रणथम्भोर की विजय	१३०१ ई०
मेवाड़-विजय	१३०३ ई०
देवगिरि पर दूसरा आक्रमण	१३०७ ई०
काफूर की वारगल पर चढ़ाई	१३०९ ई०
द्वारसमुद्र और मदुरा की विजय	१३११ ई०
शंकरदेव का विद्रोह	१३१२ ई०
अलाउद्दीन की मृत्यु	१३१६ ई०
हरपालदेव यादव का विद्रोह	१३१८ ई०
गयासुद्दीन तुगलक का गद्दी पर बैठना	१३२० ई०
दक्षिण विजय	१३२३ ई०
बंगाल का विद्रोह	१३२४ ई०
मुहम्मद तुगलक का राज्यभिषेक	१३२५ ई०
दोआब म कर वृद्धि	१३२६ ई०
राजधानी बदलना	१३२७ ई०
ताँबे का सिक्का चलाना	१३३० ई०
विद्रोह	१३३४ १३५१ ई०
फीरोज का राज्य प्राप्त करना	१३५१ ई०
फीरोज की मृत्यु	१३८८ ई०
तैमूर का आक्रमण	१३९८ ई०
महमूद तुगलक की मृत्यु	१४१२ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) मगोल कौन थे ? उनके हमलो का सुलतानो की नीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(२) ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन मे तुम किसको सबसे बड़ा शासक समझते हो और क्यो ?

(३) जलालुद्दीन के शासन प्रबन्ध मे क्या दोष थे ? उनका क्या प्रभाव हुआ ?

(४) अलाउद्दीन के समय में क्या मुख्य कठिनाइयाँ थी ? उसने उनको किस प्रकार दूर किया ?

(५) अलाउद्दीन को एक महान शासक क्यो कहते हैं ? उसके शासन प्रबन्ध की क्या विशेषतायें थी ?

(६) अलाउद्दीन की दक्षिण नीति क्या थी ? उसकी आलोचना करो और यह भी बताओ कि दक्षिणी रियासतो की हार क्यों हुई ?

(७) खिलजी वश के पतन के क्या कारण थे ?

(८) गयासुद्दीन ने क्या शासन सुधार किए ?

(९) मुहम्मद तुगलक ने कौन सी नई योजनायें चलायीं ? उनसे प्रजा को क्या हानि अथवा लाभ हुआ ? राज्य पर उनका क्या प्रभाव पडा ?

(१०) मुहम्मद तुगलक के समय मे इतने अधिक विद्रोह क्यो हुए ? वह उनको दबाने मे सफल क्यो नही हुआ ?

(११) फीरोज तुगलक ने प्रजा-हित के क्या काय किए ?

(१२) फीरोज के शासन प्रबन्ध म क्या दोप थे ?

(१३) तमूर के आक्रमण के क्या कारण थे ? उसके आक्रमण का क्या प्रभाव हुआ ?

(१४) तुगलक वश के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए और बताइए कि इसका उत्तरदायित्व किन शासको पर अधिक है ?

अध्याय १५

सैयद और लोदी-वंश

अराजकता फलने के कारण—भारत में मुसलमानी सत्ता जमने क समय से ही हम लगातार देखते आये हैं कि तीन शक्तियाँ एक दूसरे के विरुद्ध भिड़ती रही है। सबसे महान् शक्ति दिल्ली सम्राटों की थी। वे सम्पूर्ण उत्तरी भारत को वश में रखने के परम इच्छुक थे और उनमें से कुछ ने थोड़े समय के लिए दक्षिणी भारत पर भी अधिकार कर लिया था। इन सुलतानो को बराबर हिन्दू राजाओं और सरदारो के विरोध का सामना करना पड़ता था। उत्तर में काँगड़ा, नेपाल और भूटान के राज्य प्राय बराबर स्वतन्त्र रहे। काँगड़ा की स्थिति बहुत मार्के की थी क्योंकि वहाँ क किले पर अधिकार कर लेने के बाद उत्तरी पजाब पर अधिकार रख सकना सुगम होता था। इसलिए उसे जीतने का कई सुलताना ने प्रयत्न किया लेकिन व अधिक दिन तक उसे अपने वश में रख नहीं सके। राजस्थान प्राय स्वतन्त्र रहा। अलाउद्दीन ने मेवाड़ पर अधिकार करके सम्पूर्ण राजस्थान अपने वश में कर लिया था। लेकिन १५ वप बाद ही मवाड़ फिर स्वतन्त्र हो गया और बाद में राणा कुम्भा तथा राणा साँगा के प्रयत्नों से शक्तिमान हाकर दिल्ली से होड करने लगा। अजमेर और उसके आस-पास का प्रदेश अधिकतर मुसलमानों के हाथ में रहा। उड़ीसा और गोंडवाना भी प्राय स्वतन्त्र रहे और उड़ीसा के राजाओं ने तो कई बार बगाल के शासकों पर आक्रमण करके उस प्रान्त का कुछ भाग भी अपने अधीन कर लिया था। दक्षिण भारत में मुस्लिम-सत्ता १३०७ ई० के बाद जमना आरम्भ हुई, परन्तु १३३४ ई० से उसकी शक्ति नष्ट होने लगी। फिर भी माबर और बहमनी दो मुस्लिम राज्य स्थापित हो गए जिनसे विजयनगर के हिन्दू राज्य को बराबर लड़ना पड़ा। इस त्रिमुखी युद्ध में विजयनगर ने माबर को तो हड़प लिया लेकिन आगे चलकर बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी मुस्लिम राज्यों ने उसका अन्त कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू रियासतें बराबर बनी रहीं और मुस्लिम-शासकों को परेशान करती रही। इन रियासतों के अतिरिक्त तोमर और मेवाती तथा कटेहर, कम्पिल, भालपी, इटावा आदि क हिंदू सरदार भी बराबर मुस्लिम-सरदारों को तंग करते रहे। हिन्दू विरोध के कारण

दिल्ली राज्य सशक्त नहीं रह पाता था और जैसे ही कोई अयोग्य शासक गद्दी पर बैठता था, वैसे ही हिन्दू अधिक शक्तिशाली होने लगते थे। लेकिन इन लोगों में कोई ऐसा नेता नहीं था जो सबकी शक्ति को संगठित करके मुसलमान शासकों का अन्त कर देता। इस भाँति इस काल में दूसरी शक्ति जो भारत में राज्य करना चाहती थी हिन्दू राज्यों और छोटे सरदारों की थी। तीसरी शक्ति थी तुर्की अमीरों की। प्रायः सभी अमीर अपने को सुलतान होने के योग्य समझते थे और सदा इसी ताक में रहते थे कि हमारा दिल्ली पर अधिकार हो जाय या कम-से-कम किसी दूसरे स्थान पर ही हमारा स्वतन्त्र राज्य बन जाय।

प्रान्तीय राज्यों का उदय—इन शक्तियों के संघर्ष का फल यह हुआ कि दिल्ली साम्राज्य कभी स्थायी शान्ति का अनुभव न कर सका। तैमूर के आक्रमण ने प्रान्तीय हाकिमों के स्वतन्त्र होने में बहुत योग दिया और तीन चार वर्ष के भीतर ही जौनपुर (१३६६), मालवा (१४०१) और गुजरात (१४०१) के नये स्वतन्त्र राज्य बन गये। इन राज्यों को हराकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत को एक शासन-सूत्र में बाँधने की शक्ति किसी दिल्ली-सम्राट में नहीं हुई और यह राज्य लगभग १५० वर्ष तक स्वाधीन बने रहे। सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हिन्दुओं की शक्ति बढ़ रही थी और विजयनगर का कृष्णदेवराय तथा मेवाड़ का राणा साँगा यदि उड़ीसा के गर्गों से मिलकर काम करते तो भारतवर्ष का इतिहास कुछ और होता। लेकिन इस काल में प्रत्येक राज-वंश-क्या हिन्दू क्या मुसलमान—अपने स्वार्थ की दृष्टि से अपने पड़ोसियों से लड़ रहा था। इसलिए आगे चलकर बाबर के वंशजों ने इन सबकी स्वतन्त्रता का अन्त किया और सम्पूर्ण भारत को एक राज्य के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किया।

प्रान्तीय राज्यों का प्रभाव—इन नये राज्यों के बन जाने से एक बड़ी खराबी यह हुई कि आपसी लड़ाइयाँ बहुत होने लगीं जिनके कारण प्रजा को बहुत हानि हुई। बाबर को भारत में अपना राज्य स्थापित करने में भी इसी कारण काफी सुविधा हुई। लेकिन इनके बन जाने से इस्लाम का प्रचार बढ़ गया और कला तथा साहित्य की काफी उन्नति हुई। जितने मुसलमानी राज्य थे वे इस्लाम के प्रचार में कुछ-न-कुछ योग अवश्य देते थे और उनमें कुछ ऐसे सुलतान भी हुए जिन्होंने जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और इन्कार करने पर उनका कत्ल करा दिया। प्रायः सभी सुलतान और राजे अपनी राजधानी

को सुन्दर इमारतों से अलंकृत करने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार प्रत्येक राज्य में एक नवीन शैली का चलन हो गया और कला की उन्नति हुई। प्राय सभी राजदरबारों में विद्वानो का आदर-सत्कार होता था। इस कारण साहित्य की उन्नति हुई। कई राजवंशों ने प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया उनमें सुन्दर ग्रंथों की रचना होने लगी।

खिज्र खाँ सयद—तुगलक-वंश के पतन के बाद दिल्ली का राज्य भी एक प्रान्तीय राज्य के समान रह गया। लेकिन दिल्ली से सम्बन्ध होने के कारण इस राज्य के इतिहास का प्रभाव भारत के भावी जीवन पर अधिक पड़ा है। इसलिए हम प्रान्तीय राज्यों का राजनीतिक इतिहास वर्णन न करने पर भी दिल्ली की सल्तनत के इतिहास को मुगलों के आने के समय तक पढ़ेंगे। महमूद तुगलक की मृत्यु के बाद दिल्ली में गड़बड़ी मच गयी। उससे लाभ उठाकर दौलत खाँ ने अपने को दिल्ली का शासक घोषित कर दिया। उसके विरुद्ध स्थान-स्थान पर विद्रोह होने लगे। खिज्र खाँ सैयद ने तुरंत दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और सन् १४१४ में उसने दौलत खाँ को हटाकर स्वयं दिल्ली पर अधिकार कर लिया। खिज्र खाँ अपने को सुलतान नहीं कहता था और तैमूर के पुत्र को अपना स्वामी समझता था। खिज्र खाँ दिल्ली का शासक तो हो गया लेकिन उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। मृत्यु पर्यन्त उसे बराबर दोआब, कटेहर और राजस्थान के अनेक हिन्दू-सरदारों के विरुद्ध लड़ना पड़ा। वे बार-बार विद्रोह करते थे और कर देना बन्द कर देते थे। इतना होते हुए भी खिज्र खाँ ने कभी किसी को अकारण कष्ट नहीं दिया।

मुबारकशाह (१४२१-१४३४ ई०)—खिज्र खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुबारकशाह गद्दी पर बैठा। उसने अपने को सुलतान माना और खाँ के स्थान पर अपने नाम के अन्त में 'शाह' शब्द का प्रयोग किया। उसका राज्यकाल भी अशान्तिपूर्ण था। दोआब, मेवात और पूरबी राजस्थान में तो विद्रोह हो ही रहे थे, पंजाब और मुलतान में भी विद्रोह होने लगे। सुलतान की सारी शक्ति इन विद्रोहों के दमन में ही लग गई। उसने विद्रोही सरदारों को हटाकर दूसरे व्यक्तियों को नियुक्त किया। मुबारकशाह ने जिन लोगों को ऊँचे पदों से हटा दिया था वे असंतुष्ट हो गये और उन्होंने १४३४ ई० में एक षड्यन्त्र करके सुलतान को मार डाला।

आलमशाह—मुबारक के बाद के दोनों शासक अयोग्य थे और उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि विद्रोहों को दबा सकें। अन्तिम सुलतान का नाम आलमशाह था। उसने पहले दिल्ली पर अपना अधिकार बनाए रखने की चेष्टा की। लेकिन जब वह इसमें सफल नहीं हुआ तो वह वहाँ से बदायूँ चला गया और वहीं रहने लगा। इस अवसर से लाभ उठाकर बहलोल लोदी ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और सन् १४५१ में एक नए राजवंश की स्थापना की। आलमशाह शान्तिपूर्वक बदायूँ में रहता रहा और १४७८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

बहलोल लोदी (१४५१ १४८८ ई०)—दिल्ली पर अधिकार करने के पश्चात् बहलोल लोदी ने एक नये राजवंश की स्थापना की। वह अफगान था। लोदियों के पहले जितने मुसलमान शासक हुए उनमें प्रायः सभी तुर्क थे। बहलोल लोदी पहला अफगान-शासक था। अफगान काफी लड़ाकू और स्वतन्त्रताप्रिय थे। तुर्क उनसे बहुत चिढ़ते थे और उनकी अधीनता में रहना पसन्द नहीं करते थे। इस कारण बहलोल का कार्य और भी कठिन हो गया। उसके सामने चार मुख्य प्रश्न थे—

(१) अफगानों को वश में रखना।
(२) तुर्क विद्रोहियों का दमन करना।
(३) हिंदू राजाओं को परास्त करना और
(४ एक ऐसी शासन-व्यवस्था की नींव डालना जिससे अफगान असंतुष्ट न हों और दिल्ली राज्य की सीमा बढ़े।

विद्रोहियों का दमन—बहलोल ने सभी पुराने तुर्क अमीरों को अपनी जागीरों में रहने दिया और अफगानों को केवल पंजाब और मुलतान तथा सेना में पद देकर संतुष्ट किया। लेकिन उसने देखा कि तुर्क अमीर जौनपुर के शर्की सुलतान की सहायता से लोदी राज्य का अन्त करना चाहते हैं। इसलिए उसने एक-एक करके उन सब का दमन किया। कुछ को उसने निकाल दिया और कुछ की जागीर कम कर दी। इस प्रकार अधिकतर तुर्क अमीर शान्त हो गए। दूसरे जौनपुर, के शासक ने जब दिल्ली का घेरा डाला और बहलोल ने उसे हरा दिया तो तुर्कों पर उसकी धाक जम गई और उन्होंने विद्रोह करना बन्द कर दिया। दोआब और राजस्थान के कुछ हिन्दू राजाओं ने भी बहलोल की अधीनता स्वीकार कर ली और यदि उन्होंने कभी फिर विद्रोह किया तो बहलोल

ने उनको दबा दिया। इस प्रकार बहलोल ने हिन्दू राजाओं के विद्रोह भी शांत किये और सारे दोआब तथा मेवात पर भी अधिकार कर लिया।

जौनपुर की विजय—बहलोल के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना जौनपुर का लोदी राज्य में मिलाया जाना है। जौनपुर के सुलतानों और सैयद राजाओं में अनेक विवाह सम्बन्ध हो चुके थे। आलमशाह सैयद अभी जीवित था। इस कारण जौनपुर के सुलतान महमूद और हुसेनशाह ने कई बार बहलोल से युद्ध किये। अन्त में बहलोल की ही विजय हुई। उसने हुसेनशाह को हराकर बंगाल की ओर भगा दिया और जौनपुर का शासन अपने बेटे बारबकशाह को सौंप दिया।

बहलोल की शासन नीति—बहलोल बड़ा चतुर पुरुष था। वह अफगानों को धमकता भी था और कभी कभी उनकी चापलूसी भी करता था। उसने दरबार के लिए एक बड़ा तख्त बनवाया था। वह उस पर दूसरे अफगान सरदारों के साथ बैठा करता था और उनसे कहता था कि सचमुच सुलतान तो आप ही लोग हैं, मैं स्वयं तो केवल आपकी कृपा से सुलतान बना हुआ हूँ। इस विनम्रता के पाखण्ड द्वारा वह उन सभी सरदारों को प्रसन्न कर लेता था। इसके बाद यदि वे विद्रोह करते थे तो वह उनको सख्ती के साथ दबा देता था। उसने धीरे धीरे सभी स्थानों पर अफगान हाकिम नियुक्त कर दिये और अपनी योग्यता तथा व्यवहार कुशलता द्वारा उनको अपने वश में रखा। इस भाँति बहलोल ने न केवल एक नये राजवंश की नींव डाली, वरन् उसके अधिकार को सुदृढ़ भी किया।

सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१७ ई०)—बहलोल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र बारबकशाह ने जौनपुर में अपने को सुलतान घोषित कर दिया। उसका दूसरा पुत्र निजाम खाँ अधिक योग्य और पराक्रमी था। वह सिकन्दर शाह के नाम से गद्दी पर बैठ गया। बारबकशाह ने विद्रोह किया जो दबा दिया गया। बारबक जौनपुर को अपने अधीन न रख सका तो सिकन्दर ने उसे हटाकर दूसरे अफसर नियुक्त कर दिये और उन्होंने शीघ्र ही जौनपुर के विद्रोही जमीदारों को वश में कर लिया।

सिकन्दर ने ग्वालियर, धौलपुर और दोआब के हिन्दुओं के विद्रोहों का दमन किया और शर्कियों को बिहार से भी हाथ धोना पड़ा। इस भाँति दिल्ली का राज्य पहले से अधिक विस्तृत हो गया।

उसने कुछ बड़े अफगान सरदारों के हिसाब की जाँच की और गलती मिलने पर उनको डाँटा-फटकारा। इस पर उन लोगों ने एक षड्यन्त्र रचा लेकिन सुलतान को उसका पता चल गया और उसने विद्रोहियों का नाश कर दिया। इटावा, ग्वालियर, कालपी आदि स्थानों में बहुत विद्रोह होते थे। उनको रोकने के लिए उसने दिल्ली की बजाय वर्तमान आगरा के निकट एक नये नगर की नींव डाली और उसे सुन्दर इमारतों से सुशोभित किया। वह स्वयं वहीं रहने लगा और वहीं सेना की छावनी भी बनाई।

वह अपनी शासन-नीति में धार्मिक कट्टरता का बहुत दिखावा करता था। वह प्रायः सभी खास बातों में पतन भोगी मुल्लाओं की सलाह से काम करता था। उसने अपनी संकीर्णता के प्रभाव में आकर हिन्दुओं को बहुत सताया। इस दोष के अतिरिक्त सिकन्दर का शासन प्रबन्ध काफी अच्छा था। वह प्रान्तीय हाकिमों की कड़ी जाँच करता था, जिससे वे विद्रोह करने का साहस नहीं करते थे। उसने कृषि की उन्नति का प्रबन्ध किया। न्याय करने में वह कठोर था और अपराधियों के साथ कोई रियायत नहीं करता था। उसका गुप्तचर विभाग इतना अच्छा था कि लोग समझते थे कि उसे देवता द्वारा सब सूचना मिल जाती है।

इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६ ई०) सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा इब्राहीम गद्दी पर बैठा। वह बड़ा घमण्डी और क्रोधी था। उसने अफगानों को वश में रखने के लिए विद्रोहियों को कड़ी सजायें देना आरम्भ कर दिया। उसकी नीति का प्रभाव यह हुआ कि अफगान सरदार उससे असंतुष्ट होने लगे। उनमें से दो सरदारों ने, जिनका नाम अलाउद्दीन और दौलत खाँ था, काबुल के बादशाह बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया। उसी समय मेवाड़ का राणा संग्रामसिंह भी इब्राहीम को हराकर स्वयं दिल्ली का शासक बनना चाहता था। इस स्थिति से लाभ उठाकर बाबर ने भारत पर आक्रमण किया और सन् १५२६ ई० में इब्राहीम को हराकर लोदी वंश का अन्त कर दिया।

उपसंहार—लोदी सुलतानों ने दिल्ली की खोई हुई शक्ति को कुछ हद तक फिर प्राप्त कर लिया था, लेकिन अफगानों में अनुशासन की इतनी कमी थी कि वे नियमों की पाबंदी करना ही नहीं चाहते थे। उधर इब्राहीम उन पर कठोरता से शासन करना चाहता था। उसी समय एक विदेशी आक्रमणकारी भी आ

गया जिसे अफगानों से ही सहायता मिल गई। ऐसी दशा में इस वंश का अंत होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मुख्य तिथियाँ

खिज्र खाँ सैयद का दिल्ली पर अधिकार	१४१४ ई०
मुबारक शाह का राज्याभिषेक	१४२१ ई०
आलमशाह का गद्दी से हटाया जाना	१४५१ ई०
आलमशाह की मृत्यु	१४७८ ई०
बहलोल का गद्दी पर बैठना	१४५१ ई०
जौनपुर का दिल्ली राज्य में मिलना	१४८६ ई०
सिकन्दर शाह का राज्याभिषेक	१४८८ ई०
सिकन्दर की मृत्यु	१५१७ ई०
इब्राहीम लोदी की पराजय और मृत्यु	१५२६ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) खिज्र खाँ ने सुलतान की उपाधि क्यों नहीं ग्रहण की ? उसने दिल्ली राज्य की शक्ति बढ़ाने के लिए क्या उपाय किए ?

(२) सैयद-वंश के पतन के क्या कारण थे ?

(३) बहलोल लोदी के सामने मुख्य कठिनाइयाँ क्या थी ? उसने उनको किस प्रकार दूर किया ?

(४) लोदी-वंश का सबसे प्रभावशाली शासक कौन था ? उसके राज्यकाल की मुख्य घटनाओं का वर्णन करो।

(५) लोदी वंश के पतन के क्या कारण थे ?

अध्याय १६

मुगल-वंश की स्थापना—बादशाह बाबर

मुगल कौन थे ?—इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर ने जिस वंश की नींव डाली वह हमारे देश के इतिहास में मुगल वंश के नाम से प्रसिद्ध है। मुगल और मंगोल एक ही अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं। मध्य एशिया के तुर्क चंगेज खां और उसके वंशजों को मंगोल न कहकर मुगल कहते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में मंगोलों का प्रभाव कम होने लगा था और मध्य एशिया में उनका बहुत सा साम्राज्य तुर्कों के हाथ में आ गया था। समरकन्द, बोखारा, बल्ख आदि प्रान्त चंगेज के पुत्र चगताई के अधीन रह थे। इसलिए कालान्तर में वहां बसने वाले तुर्क अपने को चगताई तुर्क कहने लगे। इन तुर्कों में तैमूर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। बाबर तैमूर से पाँचवी पीढ़ी में था। इस कारण बाबर और उसके वंशजों को चगताई तुर्क या तैमूर वंशी कहना चाहिए। तब ये हमारे देश में मुगल नाम से कैसे प्रसिद्ध हो गये ? तेरहवीं शताब्दी से ही भारत की पश्चिमोत्तर सीमा से विदेशी हमले होने लगे थे। वे हमले १४वीं शताब्दी तक चलते रहे। इन सभी आक्रमणों के नेता मंगोल सरदार ही रहते थे। इस कारण यहाँ के लोगों ने पश्चिमोत्तर से हमला करनेवाले सभी लोगों को मंगोल या मुगल समझ लिया। तुर्क खुद भी बड़े निर्दयी होते थे, लेकिन मंगोलों की की बर्बरता के सामने वे बड़े रहमदिल मालूम होते थे। सन् १३९८ ई० में जब तैमूर ने आक्रमण किया तो उसने लूट-मार और विध्वंस कार्य में मुगलों को भी पछाड़ दिया। इस कारण यहां के लोगों ने उसे भी मुगल ही समझने की स्वाभाविक भूल की। बाबर इसी तैमूर के वंश का था। इस कारण वह मुगल कहा गया। धीरे धीरे यही नाम प्रचलित हो गया और लोग भूल-सा गये कि बाबर ने अपने जीवन चरित्र में अपने को तुर्क लिखा है और मुगलों की बहुत बुराई की है।

दूसरी एक बात और भी है। यद्यपि बाबर अपने को मुगल कहना पसन्द नहीं करता था लेकिन उसकी नसों में मुगलों का रक्त भी मौजूद था। उसका पिता उमर शेख मिर्जा अवश्य तैमूर के वंश का था और इस कारण तुर्क था,

लेकिन उसकी माता मुगल सरदार यूनुस खाँ की पुत्री थी। अस्तु, यह स्पष्ट है कि बाबर आधा तुर्क और आधा मुगल था, परन्तु चूंकि मध्य एशिया में भी नस्ल या जाति बाप के अनुसार ही मानी जाती है इस कारण बाबर को तुर्क कहना अधिक ठीक होगा।

बाबर की बाल्यावस्था—बाबर का पिता उमर शेख मिर्जा फरगाना का शासक था। फरगाना चीनी तुर्किस्तान का एक प्रान्त है। यह उस समय भी एक छोटी-सी रियासत थी। सन् १४८३ ई० में उमर शेख के एक पुत्र हुआ जो आगे चलकर बादशाह जहीरुद्दीन बाबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाबर की शिक्षा का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध किया गया था। उसने अल्पावस्था में ही तुर्की और फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और वह इन दोनों भाषाओं को आसानी से लिख-पढ़ लेता था।

बाबर के पिता की मृत्यु—बाबर अभी ११ वर्ष का ही था कि उसके पिता का देहान्त हो गया। वही फरगाना का स्वामी हुआ, लेकिन उसका कार्य बहुत कठिन था। उसके चाचा और मामा उसकी सहायता करने के स्थान पर उसका राज्य हड़पने की फिक्र में लग गये। बालक बाबर घबराया नहीं वरन् उसने आक्रमणकारियों का दृढ़ता से मुकाबला किया। उसने न केवल फरगाना की रक्षा की वरन् समरकन्द पर भी अधिकार कर लिया और अपने प्रतापी पूर्वज तैमूर के तख्त पर बैठ गया। तैमूर के वंशजों के इस आपसी झगड़े से मंगोलों की एक शाखा ने, जिसे उज्बेग कहते थे, बहुत लाभ उठाया। १५०३ ई० तक उज्बेगों ने तैमूरियों का अन्त करके उनके सभी राज्यों पर अधिकार कर लिया और बाबर को जान बचाकर काबुल की ओर भागना पड़ा।

बाबर का काबुल पर अधिकार—बाबर ने काबुल के अरगुन सरदारों को हराकर सन् १५०४ ई० में अपना अधिकार जमा लिया, लेकिन १५०४ से १५११ तक उसकी स्थिति काफी खराब रही क्योंकि उसे सदा ही उज्बेगों और अरगुनों का डर लगा रहता था। सन् १५२२ में उसने अरगुनों को कन्दहार से भी निकाल दिया और फारस के शाह ने उज्बेगों की शक्ति रोक दी। इसलिए बाबर ने अब भारत की ओर ध्यान दिया।

बाबर के प्रारंभिक हमले—इब्राहीम से असंतुष्ट होकर दौलत खाँ लोदी ने, जो पंजाब का हाकिम था, बाबर को आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। बाबर ने पहले बजौर की घाटी के निवासियों पर प्रभुत्व स्थापित किया

और फिर भीरा पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने इब्राहीम लोदी के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उसने तैमूर द्वारा जीते हुए प्रान्त की माँग पेश की।

पंजाब पर अधिकार—उसी समय उसे राणा साँगा का पत्र मिला। बाबर ने समझ लिया कि भारत विजय का समय आ गया है और सन् १५२४ ई० में उसने पंजाब पर आक्रमण किया। पंजाब पर अधिकार करके उसने दौलत खाँ को एक जागीर दे दी और शेष भाग पर अन्य हाकिम नियुक्त किये। इस पर उसने षडयन्त्र किया जिसका भेद उसी के पुत्र दिलावर खाँ ने खोल दिया। दौलत खाँ अपमानित और लज्जित हुआ और उसके सभी हौसलों पर सदा के लिए पानी फिर गया।

पानीपत का युद्ध—पंजाब के शासन का प्रबन्ध करके बाबर काबुल लौट गया और १२००० चुने हुए सिपाहियों की सेना लेकर लाहौर के आगे बढ़ा। इब्राहीम ने उसे रोकने के लिए दो छोटी फौजें भेजी, लेकिन वे दोनों ही असफल हुईं। अब बाबर आगे बढ़ता हुआ दिल्ली के निकट पानीपत नगर आ गया और डेरा डालकर इब्राहीम के सेना के आने की राह देखने लगा। इब्राहीम एक लाख सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए आया लेकिन अन्त में पराजय उसी की हुई और वह वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

बाबर की विजय के कारण—इस युद्ध में बाबर की विजय का कारण यह नहीं था कि अफगान सैनिक उसके सिपाहियों से कम बलवान् या साहसी थे। बाबर की सफलता के चार मुख्य कारण थे। उसके पास तोपखाना था जिसके जवाब में अफगानों के पास कोई वैसा घातक अस्त्र नहीं था। दूसरे, बाबर बहुत ही योग्य और अनुभवी सेनापति था। उसका सैनिक-संगठन और सैन्य-संचालन भी उसकी विजय का एक कारण था। तीसरे, इब्राहीम लोदी को युद्ध का बहुत कम अनुभव था और जैसा कि बाबर ने स्वयं लिखा है उसके आगे बढ़ने और पीछे हटने या रुकने में कोई व्यवस्था नहीं थी। चौथे, बाबर को कुछ विद्रोहियों और राजद्रोहियों की सहायता मिल गई थी जिससे उसे इब्राहीम की सेना के विषय में सभी बातें मालूम हो गई थी।

मुगल राज्य की स्थापना—इब्राहीम की मृत्यु और पराजय के बाद अफगान पूरब की ओर भाग गए और बाबर को दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार

करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। उसने अपने को दिल्ली का सम्राट् घोषित कर दिया और वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की योजना बनाने लगा। उसने अपने सैनिको को संतुष्ट करने के लिए उन्हें खूब इनाम दिया और लोदी साम्राज्य के जीते हुए भाग में उनको जागीरें प्रदान की। फिर कुछ सनिक काबुल लौट जाना चाहते थे। उसने उनको एकत्रित करके एक भाषण दिया और कहा कि भारतवर्ष का साम्राज्य हमारे हाथ में आना ही चाहता है। ऐसे समय पर वापस जाना निरी मूर्खता है। हमें साहस और बुद्धि से काम लेना चाहिए। उसके शब्दों का उचित प्रभाव पड़ा। उसके सैनिक उसके व्यवहार तथा सुजनता से सदा से संतुष्ट थे। इस कारण उन्होंने उसके साथ रहने की प्रतिज्ञा की। इन सैनिकों की सहायता से उसने ग्वालियर, बयाना धौलपुर तथा दूसरे निकटवर्ती प्रदेश शीघ्र जीत लिए। उसने अपने पुत्र हुमायूँ को पूरब की ओर भेजा और उसने अफगानों से जौनपुर, गाजीपुर और कालपी की जागीरें भी छीन लीं। इस प्रकार बाबर का अधिकार सारे पंजाब, उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग और राजस्थान के कुछ भाग पर हो गया।

बाबर और राणा साँगा—लेकिन बाबर की स्थिति अभी सन्तोषजनक नहीं थी। अफगान हार अवश्य गये थे, लेकिन वे अभी अपना साम्राज्य लौटाने की चेष्टा कर रहे थे। इब्राहीम की माता ने बाबर को विष देने का असफल प्रयत्न किया था और अफगान सरदार पूरब की ओर अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। बाबर को अफगानों से भी अधिक चिन्ता राजपूतों की थी। राणा साँगा ने पहले तो उसे पत्र लिखकर बुलाया था, लेकिन उसके भारत आने पर वह बिलकुल चुप बैठा तमाशा देखता रहा था। वास्तव में राणा साँगा अब अपनी मूर्खता पर अपने को ही कोस रहा था क्योंकि बाबर की साम्राज्यवादी नीति ने उसके मनसूबों को मिट्टी में मिला दिया। इसलिए वह शीघ्र-से-शीघ्र बाबर को बाहर निकालने की फिक्र में था। जब बाबर ने बयाना पर अधिकार कर लिया तो राणा साँगा ने समझ लिया कि वह राजस्थान के दूसरे भागों पर भी अधिकार करने का प्रयत्न करेगा। इस कारण उसने एक विशाल सेना बनाना आरम्भ किया और उसे लेकर बाबर से लड़ने के लिए चल दिया।

कनवाह का युद्ध १५२७ ई०—कनवाह नामक स्थान पर राणा साँगा के दो लाख सैनिकों और बाबरी फौज का युद्ध हुआ। राणा के घायल हो

जाने के कारण विजय बाबर के हाथ रही। कनवाह के युद्ध ने भारत में बाबर के वंश की नींव दृढ़ कर दी और राजपूत साम्राज्य के स्वप्न को स्वप्न ही रहने दिया। पराजित और क्षुब्ध राणा साँगा दो वर्ष बाद मर गया।

बाबर की अन्य विजयें—कनवाह के युद्ध के बाद बाबर ने चंदेरी पर भी अधिकार कर लिया। सन् १५२९ ई० में उसने घाघरा नदी के तट पर अफगानों को दूसरी बार हराया और उनकी शक्ति घट गई। उनके अनेक सरदारों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। बंगाल के शासक ने भी बाबर से संधि कर ली।

बाबर का शासन प्रबन्ध—अब बाबर की स्थिति बिलकुल सुरक्षित हो गई। वह आगरे वापस चला गया और वहाँ रहकर इस नये साम्राज्य के शासन की उचित व्यवस्था करने लगा। उसे शासन प्रबन्ध करने के लिए अधिक समय नहीं मिला फिर भी उसने कई महत्वपूर्ण बातें की। बाबर ने 'बादशाह' या बादशाह की उपाधि ग्रहण की। बाबर ने राजा की निरंकुश और सर्वोच शक्ति का गुन प्राप्त किया। और सबको उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दूसरी बात जो बाबर में शुरू की वह उदार धार्मिक नीति है। बाबर ने हिन्दुओं के ऊपर कोई धार्मिक अत्याचार नहीं किया। उसने अपने सैनिकों को वश में में रखा और यदि वे कोई ज्यादती करते थे तो वह उनको मृत्यु दण्ड तक देने के लिए तैयार रहता था। उसने राजपूतों से मेल करने का भी प्रयत्न किया। बाबर ने पहले-पहल स्नेह के आधार पर लोगों को वश में रखने का प्रयत्न किया। यद्यपि वह बड़े-से-बड़े अफसर को अपना सेवक ही मानता था तो भी वह उनके साथ मनुष्यता और उदारता का बर्ताव करता था। इस प्रकार उसने शक्ति और स्नेह को मिलाकर राजा का पद अधिक सम्मानित और सुदृढ़ बना दिया।

बाबर की मृत्यु—सन् १५३० ई० में बाबर बीमार पड़ा और मर गया। मरते वक्त उसने हुमायूँ और अपने सरदारों को बुलाया। उसने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और सरदारों ने प्रतिज्ञा की कि वे उसकी आज्ञा मानेंगे। इसके बाद बाबर ने हुमायूँ से कहा कि अब मैं परिवार के सभी लोगों को तुम्हें सौंपता हूँ। उनकी रक्षा करना। अपने भाइयों के विरुद्ध कभी कुछ न करना, चाहे वे वध योग्य काम भी करें। इसके बाद २६ दिसम्बर सन् १५३० ई० को आगरे में बाबर की मृत्यु हो गई। उसकी लाश पहले वहीं

१५२६ ई० का भारत
काश्मीर
पंजाब
गुजरात
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी

दफ्नाई गई, लेकिन थोड़े दिन बाद उसे बाबर की पूर्व इच्छा के अनुसार काबुल भेजा गया और वहीं मकबरा बनाया गया।

बाबर का चरित्र—बाबर एक महान् व्यक्ति था। वह केवल एक योग्य सेनापति, सफल शासक और लोकप्रिय नेता ही नहीं था। उसके चरित्र में अनेक सुन्दर गुण थे। वह एक सुशिक्षित विद्वान् था जिसे विद्वानों की संगति में सुख मिलता था। उसने अपनी जीवनी में जो बातें लिखी हैं उनसे उसके चरित्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। उसने अनेक व्यक्तियों का वर्णन किया है। यह वर्णन इतना सजीव है कि उससे बाबर की लेखनी की प्रतिभा और उसके अनुभव की गम्भीरता प्रकट होती है। बाबर बड़ा सहृदय व्यक्ति था। वह अपने परिवार के सभी लोगों से बड़ा स्नेह करता था। उसने अपने विद्रोही भाइयों के साथ भी अच्छा बर्ताव किया। अपने साथियों के साथ वह भाई चारे का व्यवहार करता था और उनके साथ सभी दुख सुख समान रूप से झेलने के लिए तैयार रहता था। उसे ईश्वर पर विश्वास था और वह कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी आत्मविश्वास का त्याग नहीं करता था। उसके इन्हीं सब गुणों के कारण उसके सैनिक उस पर मुग्ध थे और उसके साथ कष्ट सहने को तैयार रहते थे।

मुख्य तिथियाँ

बाबर का जन्म	१४८३ ई०
काबुल विजय	१५०४ ई०
बाबर का भारतवर्ष पर पहला आक्रमण	१५१९ ई०
कन्दहार विजय	१५२२ ई०
पंजाब पर बाबर का अधिकार होना	१५२४ ई०
पानीपत की लड़ाई और इब्राहीम की मृत्यु	१५२६ ई०
कनवाह के युद्ध में राणा साँगा की पराजय	१५२७ ई०
चंदेरी पर अधिकार	१५२८ ई०
घाघरा की लड़ाई और अफगानों की शक्ति का ह्रास	१५२९ ई०
बाबर की मृत्यु	१५३० ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) बाबर का भारत पर आक्रमण करने का साहस क्यों हुआ ?
(२) इब्राहीम लोदी की पराजय के क्या कारण थे ?
(३) राणा साँगा और बाबर में क्यो लडाई हुई ? इस युद्ध में राणा साँगा की पराजय के क्या मुख्य कारण थे ?

अध्याय १७

हुमायूँ और शेरशाह

हुमायूँ का राज्याभिषेक—बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा। वह न तो बाबर के समान योग्य सेनापति था और न उसमें बाबर की सी लगन ही थी। उसमें उदारता की मात्रा भी आवश्यकता से अधिक थी और वह प्राय प्रत्येक अपराधी को पश्चात्ताप करने पर क्षमा कर देता था। इसका फल यह हुआ कि उसके सभी सम्बन्धी और भाई अवसर मिलते ही विद्रोह कर देते थे। घर की फूट और चरित्र की दुर्बलता से लाभ उठाने के लिए उस समय भारत में दो मुख्य व्यक्ति थे—अफगानों का सरदार शेर खाँ और गुजरात का शासक बहादुरशाह। हुमायूँ जीवन-पर्यन्त कठिनाइयों का ही सामना करता रहा और यह केवल उसका सौभाग्य था कि वह भारतीय साम्राज्य का खो चुकने के बाद उसे एक बार फिर प्राप्त कर सका।

प्रारम्भिक सफलता—हुमायूँ ने अपने अनुयायियों को सन्तुष्ट करने के लिए सभी सरदारो को उचित जागीरें दी। अपने भाइयो का उसने विशेष ध्यान रखा। कामरान को उसने काबुल और कन्दहार दिया और जब वह इतने से सन्तुष्ट नही हुआ तो पजाब भी उसी के अधीन कर दिया। अस्करी को सम्भल और हिन्दाल को अलवर की जागीर मिली। इसके बाद उसने बिहार के अफगानों पर आक्रमण किया जो इब्राहीम लोदी के भाई महमूद की अध्यक्षता में

एकत्रित हो रहे थे और सन् १५३१ में उनको हराकर उसने चुनार के किले का घेरा डाला। उसी समय गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मलावा जीतकर और अहमदनगर, बरार तथा खानदेश के शासकों को अधीनस्थ बनाकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसकी शक्ति को रोकने के उद्देश्य से हुमायूँ ने चित्तौड़ की महारानी को सहायता का वचन दिया और चुनार का किला उसके स्वामी शेर खाँ के अधिकार में ही रहने दिया क्योंकि उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली।

हुमायूँ चित्तौड़ की ओर जा रहा था कि उसे मिर्जाओं (तैमूर वंश सरदारों) के विद्रोह की सूचना मिली। जब वह उनको दबाने के बाद दिल्ली आया तो उसे मालूम हुआ कि बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया है और उसके सैनिक ३ मार्गों से दिल्ली को धावा कर रहे हैं। हुमायूँ ने बहादुरशाह को मन्दसौर में हराकर १५३५ ई० के अन्त तक माल्वा तथा गुजरात पर अधिकार कर लिया और बहादुरशाह पुर्तगालियों की शरण में चला गया। हुमायूँ ने अस्करी को गुजरात का हाकिम नियुक्त किया और वह स्वयं मालवा के शासन की व्यवस्था करने लगा।

पतन का आरम्भ—सन् १५३६ ई० में हुमायूँ को सूचना मिली कि बहादुरशाह ने गुजरात पर आक्रमण किया है और अस्करी उसका विरोध करने के बजाय दिल्ली लेने के इरादे से जा रहा है। फलतः उसे मालवा को भी छोड़कर राजधानी की रक्षा के लिए भागना पड़ा। अस्करी के विश्वासघात के कारण गुजरात और मालवा हाथ से निकल गये और हुमायूँ की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा।

हुमायूँ की स्थिति का समाचार पाकर बिहार के अफगान सरदार शेर खाँ ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। शेर खाँ १६वीं शताब्दी के महान् व्यक्तियों में से था। उसका बचपन का नाम फरीद था और उसका पिता हसन सहसराम का जागीरदार था। फरीद की सौतेली माँ ने उसे घर छोड़ने के लिए बाध्य किया और वह कई स्थानों में घूम फिरकर बाबर की शरण में चला गया। बाबर ने उसकी योग्यता का तुरन्त परख लिया और अपने सरदारों को उस पर कड़ी दृष्टि रखने की ताकीद की। बाबर ने उसे बिहार में एक छोटी-सी जागीर दे दी थी। हुमायूँ जिस समय बहादुरशाह के युद्धों में फँसा था उसी समय फरीद ने, जिसको एक बार शेर मारने के कारण शेर खाँ की उपाधि मिली थी, सम्पूर्ण बिहार

पर अधिकार कर लिया। शेर खाँ की बढ़ती हुई शक्ति के कारण हुमायूँ गुजरात जीतने का दूसरा प्रयत्न नहीं कर सका। उसने अब शेर खाँ पर आक्रमण किया। पहला वार चुनार के किले पर किया गया। उसको जीतने में बहुत विलम्ब लगा। उस बीच में शेर खाँ ने युद्ध की सारी व्यवस्था ठीक कर ली। उसने खजाने और अपने परिवार को रोहतास के मजबूत गढ़ में भेज दिया और बंगाल की राजधानी गौड़ पर भी अधिकार कर लिया।

चुनार लेने के बाद हुमायूँ पूरब की ओर बढ़ा और उसने हिन्दाल को आगरा भेजा और आज्ञा दी कि वह सेना तथा रसद इकट्ठा करके उससे फिर आ मिले। शेर खाँ ने कहीं विरोध नहीं किया और हुमायूँ को बंगाल तक चला जाने दिया। हुमायूँ बंगाल के शासन की व्यवस्था करके वापस लौटना चाहता था और हिन्दाल के आने की प्रतीक्षा कर रहा था लेकिन हिन्दाल आगरा में तख्त पर बैठ गया और इधर बंगाल में वर्षा और बीमारी से उसके सैनिकों की संख्या घटने लगी। बाध्य होकर उसे उसी अवस्था में लौटना पड़ा। शेर खाँ ने सभी घाट रुकवा दिए और स्थान-स्थान पर छापा मार-मारकर उसे बहुत तंग किया। आखिरकार सन १५३९ में चौसा नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ हार गया और मरते-मरते बचा। किसी प्रकार आगरा पहुँचने पर उसने हिन्दाल के विद्रोह और कामरान के सेना सहित आने का दृश्य देखा। उसने सभी विद्रोहियों को क्षमा कर दिया और शेर खाँ से लड़ने के लिए फिर सेना इकट्ठी की। कामरान सहायता देने के स्थान पर वापस चला गया और सन १५४० में बिलग्राम नामक स्थान पर हुमायूँ फिर पराजित हुआ। अब उसे भारत छोड़कर विदेश जाना पड़ा। शेर खाँ की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। वह शेरशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठ गया था। उसके भय से राजस्थान, सिन्ध अथवा पंजाब में कहीं भी हुमायूँ को सहायता नहीं मिली। आखिरकार वह अपने भाइयों की ओर से भी निराश हुआ और विवश होकर फारस के शाह की शरण में चला गया।

शेरशाह सूरी १५४०–१५४५ ई०—हुमायूँ को भारत से निकालकर शेरशाह ने एक नये राजवंश की नींव डाली जो सूरी वंश के नाम से विख्यात है। शेरशाह ने अपनी शक्ति संगठित करने के लिए अथक प्रयत्न किया। उसने हुमायूँ का पीछा करने के सिलसिले में मुलतान और उत्तरी सिंध पर अधिकार कर लिया। मुगल साम्राज्य का शेष भारतीय भाग उसके अधिकार में था ही पूरा था। अब उसने साम्राज्य विस्तार का प्रयत्न किया। राणा साँगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ की अवनति और मारवाड़ की उन्नति होने लगी थी। अस्तु, शेरशाह

ने मारवाड़ के राजा मालदेव से युद्ध करने की तैयारी की। पहले उसने मारवाड़ पर अधिकार करके राजपूतों पर अपनी शक्ति का आतंक जमाना चाहा लेकिन मालदेव आसानी से पराजय स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं था। शेरशाह ने जाली पत्र द्वारा मालदेव और उसके प्रधान सेनापतियों में संदेह पैदा कर दिया जिसके कारण राजपूतों में फूट पड़ गई और शेरशाह की विजय हो गई, यद्यपि उनका एक हमला इतने जोर से हुआ कि शेरशाह को कहना पड़ा—"मैंने तो मुट्ठी भर बाजरे के लिए अपना साम्राज्य ही खो दिया था।" इस विजय से मालदेव की शक्ति घट गई और रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला भी शेरशाह के हाथ आ गया। इसके बाद उसने कालिञ्जर पर चढ़ाई की और यद्यपि बुन्देलों ने वीरता से सामना किया तथापि किला बादशाह के हाथ आ गया। इसी युद्ध में बारूद से जल जाने के कारण शेरशाह की मृत्यु हो गई।

शेरशाह के कार्य का महत्त्व—अफगानों की हार हो जाने के बाद उनको फिर से संगठित करके मुगलों को निकाल बाहर करने में शेरशाह ने बड़ी चतुराई का प्रदर्शन किया। एक साधारण जागीरदार के निर्वासित बच्चे की हैसियत से बढ़कर उत्तरी भारत का सम्राट बन जाना शेरशाह की प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमारे इतिहास में शेरशाह का नाम केवल विजेता और सेनापति होने के कारण ही नहीं है। उसकी ख्याति उसके शासन प्रबन्ध पर कहीं अधिक निर्भर करती है। उसी ने कई बातों में अकबर का पथ प्रदर्शन किया। वह स्वयं प्रातःकाल ४ बजे से रात तक बड़ा परिश्रम करके केन्द्रीय सरकार के सभी विभागों की देख-रेख करता था। उसने गाँवों का प्रबन्ध मुखियों के सुपुर्द कर दिया था और वहाँ की चोरी गई वस्तुओं का पता लगाना उन्हीं का दायित्व था। इस कारण चोरियाँ प्रायः बंद हो गईं। उसने किसानों के सुख का बड़ा ध्यान रखा और खेतों की नाप कराके उनकी पैदावार का ⅓ लगान कर नियत किया। वह अत्याचारी अथवा बेईमान हाकिमों को कड़ा दण्ड देकर उन्हें अन्याय करने से रोकता था। कई गाँवों के ऊपर एक परगना होता था जिसके हाकिम शिकदार, अमीन, खजान्ची और कानूनगो होते थे। परगनों के ऊपर सरकार होता था जिसमें प्रधान शिकदार और प्रधान मुंसिफ रहते थे। इसी प्रकार सूबों का भी प्रबन्ध था। शिकदार फौजी अफसर होता था और शांति रखता था। अमीन लगान वसूल करता था। यह दोनों अफसर एक ही दर्जे के होते थे और केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इसलिए इनका मिल जाना और विद्रोह करना कठिन था। फिर भी बादशाह को विद्रोह का भय सदा ही लगा रहता था। इसलिए उसने अन्य कई उपाय किए।

उसने हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार करके उनकी सहानुभूति प्राप्त की। उसने एक बड़ी सेना तयार की जिसको नगद वतन दिया जाता था और जिसकी देख रेख बादशाह स्वय करता था। इस सेना का प्रधान अंश सम्राट के साथ रहता था। शेष सैनिक सरदारों तथा प्रधान शिकदारो के पास रहते थे और स्थानीय शांति की रक्षा करते थे। पजाब और मालवा में क्रमश मुगलो और राजपूतों का भय होने के कारण ३०,००० और १२ ००० चुने हुए सनिक रक्खे गए थे। सेना के शीघ्रता के साथ आने-जाने की सुविधा के लिए उसने कई सड़कें बनवाई जिनमें चार मुख्य हैं—(१) सोनारगाँव से पजाब में रोहतासगढ तक (२) आगरे से बुरहानपुर तक (३) आगरा से बियाना होती हुई मारवाड की सीमा तक और (४) लाहौर से मुलतान तक। इन्हीं सड़कों के किनारे उसने सरायें बनवाकर सनिकों के ठहरने और डाक आने-जाने का प्रबन्ध किया। इस भाँति शेरशाह ने अपने साम्राज्य को भले प्रकार मजबूत बनाने का उद्योग किया। यदि वह ५ वर्ष बाद ही न मर जाता तो हुमायूँ का वापस आ सकना इतना सुगम न होता।

सूरीवंश का पतन—शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका बेटा इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने ९ वर्ष तक राज्य किया और इस काल में उसने साम्राज्य को सुरक्षित रखा। साथ ही उसने कुछ सुधार भी किये और केन्द्रीय सरकार की शक्ति को बढ़ाया लेकिन उसने अफगानों पर बहुत सख्ती की जिससे वे असंतुष्ट होने लगे और उसके मरने बाद ही अफगानों में फूट फल गई। अन्त में यह स्थिति हो गई कि दिल्ली में सिकन्दर शाह और पूरब की ओर मुहम्मद आदिल शाह स्वतन्त्र शासक हो गये। प्रांतीय हाकिम विद्रोह करने लगे।

ऐसे ही अवसर पर हुमायूँ ने भारत पर फिर आक्रमण किया। वह फारस के शाह के १२ ००० सनिकों की सहायता से सन् १५४५ में कन्दहार का मालिक हो गया था। बाद में उसने अपने सभी भाइयों को पराजित किया। सन् १५५५ ई० में उसने सिकन्दरशाह को हराकर दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार कर लिया। अभी आदिल शाह और उसका योग्य मन्त्री हेमू स्वतन्त्र ही थे कि सन् १५५६ ई० में सीढ़ियों से लुढ़क जाने के कारण हुमायूँ मर गया।

मुख्य तिथियाँ

महमूद लोदी की पराजय	१५३१ ई०
मालवा और गुजरात पर हुमायूँ का अधिकार	१५३५ ई०

अस्करी का विद्रोह	१५३६ ई०
शेर खाँ से युद्ध और हिन्दाल का विद्रोह	१५३८ ई०
चौसा के युद्ध में शेर खाँ की विजय	१५३९ ई०
शेरशाह का दिल्ली की गद्दी पर बैठना	१५४० ई०
शेरशाह की मृत्यु	१५४५ ई०
इस्लाम शाह की मृत्यु	१५५४ ई०
हुमायूँ का दिल्ली पर अधिकार	१५५५ ई०
हुमायूँ की मृत्यु	१५५६ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) हुमायूँ की असफलता के मुख्य कारण क्या थे ? उसको भारत लौटने में किन बातों से सहायता मिली ?

(२) 'शेरशाह सोलहवीं शताब्दी का एक प्रधान शासक और विजेता था' इस वाक्य का समर्थन करो।

अध्याय १८

मुगल-साम्राज्य का विस्तार और संगठन

(१५५६–१७०७)

अकबर और बैरम खाँ (१५५६-१५६० ई०)—हुमायूँ की मृत्यु के समय अकबर की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। उसके जीवन के प्रारम्भिक वर्ष बड़े संकटमय रहे थे। सन् १५४२ ई० में जब अमरकोट के किले में उसका जन्म हुआ था, उसके पिता के पास कोई धन-संपत्ति नहीं थी और न उसके रहने के लिए कोई सुरक्षित स्थान था। बचपन में ही वह अपने चाचा कामरान के हाथों में पड़ गया और बन्दियों की भाँति रहता रहा। हुमायूँ के भारत आने पर उसके भाग्य ने पलटा खाया ही था कि उसकी असामयिक मृत्यु ने अकबर को असहाय अवस्था में छोड़

दिल्ली के किले का दिल्ली दरवाजा
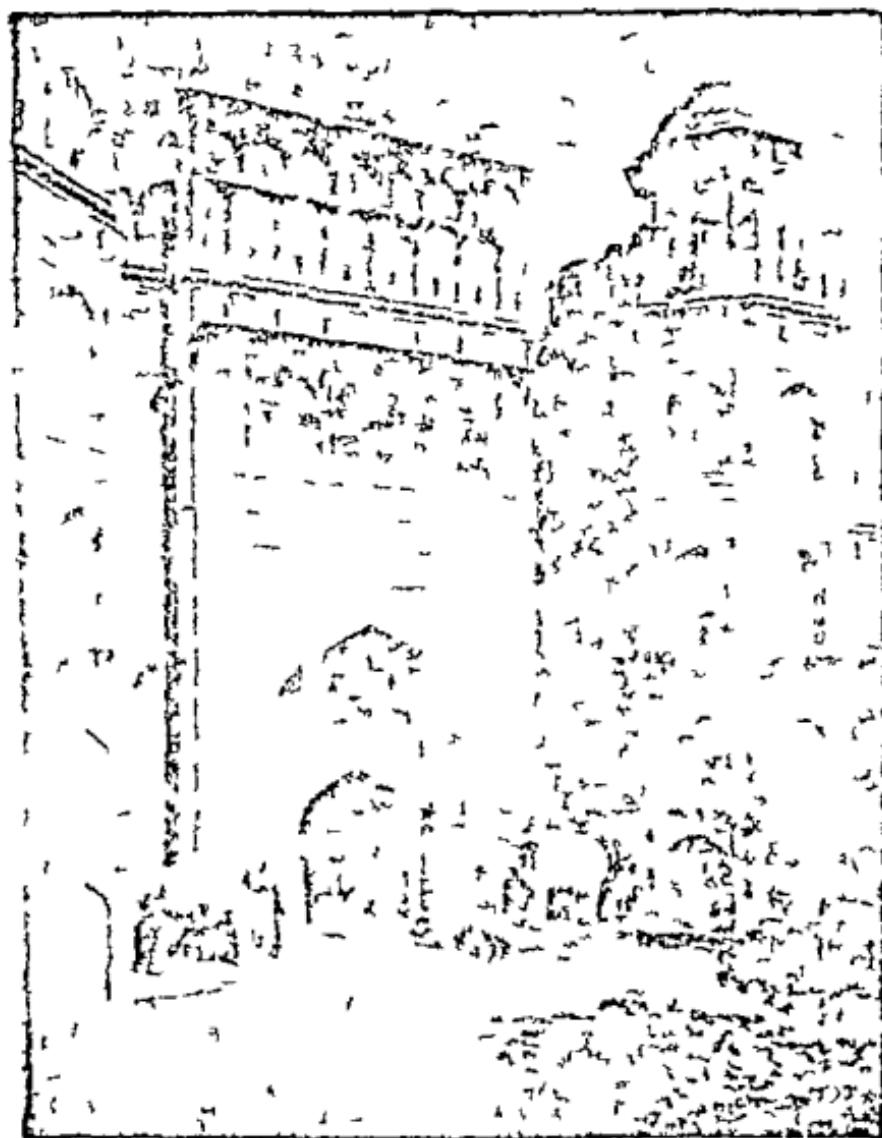
दिया। काबुल उसके छोटे भाई मिर्जा हकीम के अधिकार में था। फारस का शाह कन्दहार पर दाँत लगाये था और दिल्ली पर आदिलशाह सूर के मंत्री हेमू ने अधिकार कर लिया था। मुगलों का भारतीय साम्राज्य केवल पंजाब तक ही सीमित था। ऐसे गाढ़े समय में सम्राट के संरक्षक बैरम खाँ ने बड़ी स्वामिभक्ति और वीरता का परिचय दिया।

उसने मुगल सेना को प्रोत्साहित करके हेमू पर आक्रमण किया। पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में अफगानों और मुगलों में भारतीय साम्राज्य के लिए फिर युद्ध हुआ और हेमू को आँख में तीर लग जाने के कारण विजयश्री फिर मुगलों के ही हाथ लगी। दिल्ली, आगरा तथा जौनपुर तक का पूरा प्रदेश अकबर के अधिकार में आ गया। अब उसकी स्थिति सुरक्षित हो गई और बैरम खाँ साम्राज्य-विस्तार की योजनाएँ बनाने लगा लेकिन उसकी सफलता और शक्ति के कारण कुछ सरदार उसके विरोधी हो गये। अकबर भी अब बड़ा हो चला था और बैरम खाँ के कुछ कामों से असंतुष्ट था। इसलिए उसने १५६० ई० में शासनाधिकार अपने हाथ में ले लेने की घोषणा कर दी और बैरम खाँ को किसी सूबे की सूबेदारी स्वीकार करने के लिए कहा। बैरम खाँ भारत छोड़कर मक्का जाने पर राजी हो गया, लेकिन कुछ बातों से असंतुष्ट होकर उसने विद्रोह कर दिया जिसमें वह असफल हुआ। एक बार फिर वह मक्के के लिए रवाना हुआ परन्तु मार्ग में ही उसके एक पुराने शत्रु ने उसका वध कर डाला।

अकबर की साम्राज्य विस्तार की नई योजना—शासन-सूत्र सँभालने के बाद अकबर एक अखिल भारतीय साम्राज्य निर्माण करने की योजना बनाने लगा। उसको यह समझने में देर न लगी कि मुगलों का साम्राज्य राजपूतों की सहायता से ही टिकाऊ बनाया जा सकता है। राजपूतों और भारतीय मुसलमानों का स्वाभाविक वैर था। पूर्व मुगलकालीन सुलतानों ने राजपूतों को कुचल डालने का प्रयत्न किया था लेकिन इसमें उनको कभी स्थायी सफलता नहीं मिली। अकबर इन वीर सरदारों का प्रेम और विश्वास प्राप्त करके उन्हीं की सहायता से एक विशाल साम्राज्य बनाना चाहता था। वह हिन्दुओं को काफिर और नीच नहीं समझता था वरन् वह उनके साथ वही बर्ताव करना चाहता था जो मुसलमानों के प्रति किया जाता था। इस प्रकार वह अपने को धार्मिक पक्षपात से अलग रखकर राजपूतों की सहायता से अपना उद्देश्य पूरा करना चाहता था। उसकी राजपूत-नीति में निम्नांकित बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

१—विवाह सम्बन्ध—राजपूत घरानों से मुगल मैत्री को सुदृढ़ और स्थायी

अकबर का साम्राज्य
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी

बनाने के लिए उसने राजपूत कुमारियों से अपने और अपने बेटों के विवाह किये। विवाह के बाद भी राजपूत रानियाँ हिन्दू धर्म के अनुसार पूजा-पाठ कर सकती थीं और उनको रनवास में बहुत प्रतिष्ठित स्थान मिलता था। पहला विवाह-संबंध आमेर के राजघराने से हुआ। सन् १५६२ ई० में मेवात के मुस्लिम हाकिम से तंग आकर भारमल ने अकबर से सहायता माँगी। अकबर ने सहायता देकर राजा की रक्षा तो की लेकिन इसी शर्त पर कि वह अपनी बेटी का विवाह बादशाह के साथ कर दे। इसके बाद प्रायः सभी ऊँचे राजपूत घरानों की राजकुमारियों के मुगल सम्राट के परिवार में विवाह हो गये। केवल मेवाड़ के सीसोदियों और रणथम्भौर के हाड़ा ने विवाह-संबंध नहीं किये।

२—धार्मिक पक्षपात का अंत—अकबर ने राजपूतों तथा दूसरे हिन्दुओं पर कोई धार्मिक अत्याचार नहीं किये। उसने सन् १५६३ ई० में तीर्थों के लगनेवाला कर और १५६४ ई० में जजिया लेना बन्द कर दिया। उसने राजपूतों तथा बीरबल टोडरमल एवं अन्य हिन्दुओं को उनकी योग्यतानुसार ऊँचे से ऊँचे पद दिये। फलतः राजपूत तथा अन्य हिन्दू उससे प्रेम करने लगे और उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये।

३—प्रबल सैनिक शक्ति का प्रदर्शन—वह राजपूतों पर अपने व्यक्तिगत साहस और अपनी सेना की प्रबलता का आतङ्क जमाकर उन्हें अधीन करने के लिए बाध्य करता था। इस प्रकार सन् १५६७ में उसने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया और यद्यपि राणा उदयसिंह ने बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की अकबर ने राणा के वीर सरदार जयमल और पत्ता की मूर्तियाँ बनवाकर किले में रखवाईं और उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। इसी भाँति सन् १५६८ ई० में उसने सुर्जन हाड़ा से रणथम्भौर का किला और राजा रामचन्द्र से सन् १५६९ में कालिञ्जर का किला प्राप्त कर लिया। इन विजयों का परिणाम यह हुआ कि अन्य राजपूत सरदार स्वेच्छा से सम्राट के अधीन हो गये।

४—अधीनता स्वीकार करने पर उदारता का व्यवहार—वह अधीन राजाओं के साथ बहुत उदारता का व्यवहार करता था। उसने अक्सर उनके राज्यों के मुख्य गढ़ पर अधिकार करके शेष राज्य उन्हीं को सौंप दिया और यदि वे उसकी नौकरी करने को तैयार हो जाते थे तो वह उनको ऊँचा पद देने के साथ-साथ बड़ी-बड़ी जागीरें भी देता था। इस प्रकार सुर्जन हाड़ा को गोंडवाना का और मानसिंह को बंगाल तथा काबुल का गवर्नर बनाया गया था और राजा रामचन्द्र को बनारस के पास एक जागीर दी गई।

फतहपुर सिकरी

५—भेद-नीति का प्रयोग—कभी-कभी वह राजपूत राजघराने के लोगों में झगड़ा कराके या उनके सामन्त सरदारों को स्वतन्त्र शासक मानकर भी अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करता था। इस प्रकार उसने रणथम्भौर में सुर्जन हाड़ा को स्वतंत्र शासक मानकर एक नया राज्य स्थापित कर दिया और मारवाड़ के राव चन्द्रसेन के विरुद्ध उसने मोटा राजा उदयसिंह और बीकानेर के राव कल्याणमल को प्रोत्साहन दिया। आगे चलकर उदयसिंह को ही उसने मारवाड़ का शासक मान लिया। इसी प्रकार वह मेवाड़ में शक्ति सिंह का उपयोग करना चाहता था।

६—राजपूत विद्रोह को रोकने के उपाय—राजपूतों के प्रति स्नेह और मैत्री का भाव रखते हुए भी वह उनको विद्रोह करने का अवसर नहीं देना चाहता था। इसीलिए उसने राजस्थान के मुख्य दुर्गों पर अधिकार करके वहाँ अपने सैनिक रख दिये। दूसरे उसने अधीन राज्यों के नरेशों और उनके योग्य पुत्रों तथा सरदारों को मुगल सेना में ऊँचे पद देकर उनके राज्य से दूर कहीं अन्यत्र रख दिया।

अकबर की इस नीति से मुगल साम्राज्य को बहुत लाभ हुआ। प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान न केवल उसके अधीन हो गया वरन् वहाँ का प्रत्येक सैनिक मुगल साम्राज्य का सेवक और रक्षक बन गया। इन राजपूतों की सहायता से उसने भारतवर्ष के अन्य भागों पर अधिकार कर लिया।

अकबर और साम्राज्य विस्तार—अकबर ने राजस्थान के अतिरिक्त जिन भागों पर आक्रमण किया उनको साम्राज्य में मिला लिया और वहाँ के राजघराने को हटा दिया। इस भाँति सन् १५६१-६२ में उसने मालवा के शासक बाज-बहादुर को हराकर उस प्रान्त पर अधिकार कर लिया और बाजबहादुर के स्थान पर अपने सूबेदार नियुक्त किये। सन् १५६४ में उसने गोंडवाना पर आक्रमण किया और वहाँ की रानी दुर्गावती को हराकर गोंडवाना के काफी बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। गोंडवाने की विजय के बाद उसने चित्तौड़, रणथम्भौर, कालिञ्जर आदि पर अधिकार किया और राजस्थान के अन्य शासकों को अपनी अधीनता में ले लिया। इसके बाद गुजरात पर आक्रमण किया गया। वहाँ का शासक मुजफ्फर बिल्कुल अयोग्य था। दूसरे, गुजरात में कई विद्रोही सरदार उठ खड़े हुए थे। सन् १५७२ ई० में अकबर ने गुजरात पर अधिकार कर लिया और मुजफ्फर को पेंशन दे दी गई। गुजरात के बाद बंगाल का जीता जाना अनिवार्य था। इसी बीच में वहाँ के शासक दाऊद ने मुगल सीमान्त के जमानिया पर अधिकार कर लिया। उसके विरुद्ध एक सेना भेजी गई और

सन् १५७६ में दाऊद की पराजय और मृत्यु के बाद बंगाल पर भी मुगल सम्राट् का अधिकार हो गया।

इस भाँति १५७६ तक केवल काश्मीर और सिन्ध को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत अकबर के अधिकार में आ गया। राजपूताने में दो राजा उसकी अधीनता स्वीकार करने को तयार नहीं थे यद्यपि अकबर ने उनको समझा-बुझाकर अपनी ओर करने का बहुत प्रयत्न किया। वे थे मेवाड़ के राणा प्रताप और मारवाड़ के राव चन्द्रसेन। अकबर ने इनके राज्यों पर अधिकार कर लिया तो भी ये किसी भाँति अपनी रक्षा करते रहे और राणा प्रताप ने अपने मरने के पहले अपने राज्य का काफी भाग दोबारा जीत भी लिया।

सीमान्त-नीति और साम्राज्य विस्तार १५८१-१५९८ ई०—सम्पूर्ण उत्तरी भारत की विजय के पश्चात् अकबर ने अपने राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा की ओर विशेष ध्यान दिया। उस ओर से पहले भी कई आक्रमणकारी आ चुके थे। अकबर चाहता था कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि सहसा कोई विदेशी आक्रमणकारी भारत में घुस ही न सके। उसके समय में चार दिशाओं से विशेष भय रहता था—

(१) काबुल का शासक उसका छोटा भाई मिर्ज़ा हकीम था। उज्बेगों तथा दूसरे अमीरों के भड़काने से उसने सन् १५६६ तथा सन् १५८१ ई० में आक्रमण किये थे। इन आक्रमणों को बन्द करना था और काबुल के शासक को पूर्णतया अधीन बनाना था।

(२) सिन्ध नदी के पार भारतीय सीमा पर कुछ अफ़ग़ान जातियाँ रहती थीं जो सदा लूट-मार किया करती थीं। अकबर की धार्मिक नीति से असन्तुष्ट होकर कुछ कट्टर मुसलमानों ने उसे काफिर कहना शुरू कर दिया था और उसके विरुद्ध विद्रोह करना धर्म-संगत बताया था। इन लुटेरे अफगानों को अब भारतीय सीमा पर उत्पात मचाने के लिए एक दूसरा बहाना मिल गया। इन अफगानों को दबाकर पश्चिमोत्तर सीमा के निकट रहनेवाले लोगों के धन तथा प्राण की रक्षा करनी थी।

(३) फारस के शाह ने हुमायूँ की मृत्यु के बाद सन् १५५८ ई० में कन्हार पर अधिकार कर लिया था। कन्हार से आगे बढ़कर वह किसी समय भारत पर आक्रमण कर सकता था। इस भय का निवारण करना भी आवश्यक था।

(४) मध्य एशिया के उज़बग सरदार राज्य में अपने को तैमूरियों का शत्रु समझते थे। उनका राज्य बदख्शाँ तक फैला हुआ था। वहाँ का शासक अब्दुल्ला खाँ अफगानिस्तान को भी अपने अधिकार में करना चाहता था और उसके बाद भारत की ओर बढ़ना चाहता था। यह सबसे कठिन खतरा था।

काबुल पर अधिकार—उसने १५८१ ई० में मिर्ज़ा हकीम को काबुल तक खदेड़ा। वह चाहता तो उस प्रान्त को भी ले सकता था, लेकिन उसने कहा कि बादशाह हुमायूँ की यादगार में उसे उसको छोड़ देना ही ठीक होगा। परन्तु उसने हकीम को स्पष्ट चेतावनी दे दी कि उसने फिर कभी दिल्ली सम्राट के विरुद्ध कुछ भी काम किया तो काबुल का सूबा उससे सदा के लिए छीन लिया जायगा। इस चेतावनी का उचित प्रभाव पड़ा और हकीम शान्त बना रहा। सन् १५८५ ई० में उसकी मृत्यु होने के पश्चात् काबुल पर अधिकार कर लिया गया और महाराजा मानसिंह को वहाँ का शासक नियुक्त किया गया। इस प्रकार काबुल की ओर से अब कोई भय नहीं रहा।

युसुफजाइयों और रोशनियों का दमन—अकबर ने पंजाब और काबुल की सीमा के विद्रोही अफगान जातियों को रोष में दबाकर नष्ट करने का उपाय किया। उसने युसुफजाइयों के विरुद्ध अपने राजा बीरबल को भेजा। उसने उनकी शक्ति कम अवश्य की लेकिन संघर्ष में वह स्वयं मारा गया। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर बहुत दुःखी हुआ और उसने युसुफजाइयों का सर्वनाश करने का निश्चय किया। राजा टोडरमल को एक दूसरी सेना के साथ भेजा गया और उसने विद्रोहियों को पूर्ण रूप से वश में कर लिया।

इसी समय काबुल के निकट रोशनियों का विद्रोह हुआ। इनका नेता जलाल था। ये जलाल को महदी मानते थे। महदी के विषय में मुसलमानों का यह विश्वास है कि एक समय ऐसा आयगा जब एक व्यक्ति पैदा होगा जो सम्पूर्ण संसार से इस्लाम-विरोधी बातों को हटा देगा और संसार में इस्लाम स्थापित कर देगा। रोशनियों का विश्वास था कि जलाल वही महदी है और वे बड़ा उपद्रव मचाने लगे। कुछ लोग भारत में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये लेकिन इनका सबसे अधिक जोर काबुल में था। ये बड़े लड़ाके लोग थे। इनके कारण बहुत अशान्ति फैली। अकबर ने मानसिंह को आज्ञा दी कि इनका शीघ्र दमन किया जाय। सम्राट् के आज्ञानुसार उनका तिरस्कार किया गया। उनका नेता युद्ध में मारा गया। दूसरे व्यक्तियों को कठिन दण्ड दिये गये और उन लोगों का विद्रोह भी शान्त हो गया।

काश्मीर विजय—अफगान जातियों को हर ओर से घेरने और बदख्शाँ के उज्बेगा का रास्ता रोकने के लिए उसने काश्मीर पर भी अधिकार करना आवश्यक समझा। राजा भगवानदास के साथ एक सेना भेजी गई। उसने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार १५८६ ई० में काबुल और पंजाब की सीमा पहले से कहीं अधिक सुदृढ़ हो गई।

बिलोचिस्तान और कन्दहार—पश्चिमोत्तर सीमा का उत्तरी भाग दृढ़ करने के पश्चात अकबर ने दक्षिणी भाग की ओर ध्यान दिया। उसने १५९१ ई० में सिंध जीत लिया और १५९५ ई० तक बिलोचिस्तान और कन्दहार पर भी अधिकार कर लिया। अकबर ने फारस के शाह के पास दूत भेजकर मित्रता बनाये रखने का प्रयत्न किया और इसमें वह सफल भी हुआ। इस प्रकार सन् १५९५ ई० तक अकबर ने सिंध नदी के पूरबी तथा पश्चिमी किनारों के सभी प्रांतों पर अधिकार करके अपनी पश्चिमोत्तर सीमा को बहुत मजबूत बना लिया। सन् १५९८ ई० में अब्दुल्ला खाँ की मृत्यु हो गई और उस समय से उस पश्चिमोत्तर सीमा पर कोई भय नहीं रहा।

उड़ीसा विजय १५९२ ई०—पूर्व की ओर उड़ीसा अभी मुगल राज्य के बाहर था। अकबर ने सन् १५९२ में उस पर भी अधिकार कर लिया। उड़ीसा पर आक्रमण करने से दो लाभ हुए—एक तो बंगाल के विद्रोहियों को छिपने के लिए अब कोई स्थान नहीं रहा। दूसरे गोंडवाना के उस भाग पर जो अभी स्वतन्त्र था अधिकार करना आसान हो गया।

दक्षिण विजय १५९६-१६०१ ई०—उत्तरी भारत की विजय और पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा सुरक्षित बनाने के पश्चात् अकबर ने दक्षिण-विजय की ओर ध्यान दिया। उसने खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुलतानों के पास दूत भेजे और कहा कि दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर लो। उनमें से केवल खानदेश ने जो मुगल-साम्राज्य की सीमा के बहुत निकट था और जिसकी शक्ति भी कम था अधीनता स्वीकार कर ली। शेष सुलतानों ने कोई उत्तर नहीं दिया। सन् १५९६ ई० अहमदनगर में उत्तराधिकार का झगड़ा छिड़ गया। अकबर ने मुराद को सेना लेकर भेजा। उस समय अहमदनगर का प्रबन्ध चाँदबीबी नामक एक महिला के हाथ में था। उसने मुगलों का सामना न होने दिया और बरार का सूबा देकर उनको लौटा दिया। पुनः दिन बाद चाँदबीबी और दूसरे सरदारों में झगड़ा हो गया। इसका समाचार पाते ही सन् १ ई० में अकबर स्वयं दक्षिण के लिए । उसने बुरहानपुर

और राणा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसके साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया गया और उसकी सभी शर्तें स्वीकार कर ली गईं। इनमें तीन शर्तें उल्लेखनीय हैं—(१) राणा कभी मुगल दरबार में नहीं जायगे (२) राणा मुगलों की नौकरी नहीं करगे और (३) वह मुगलों से कोई विवाह-सम्बन्ध स्वीकार नहीं करेंगे। इस भाँति राजस्थान की एकमात्र स्वतन्त्र रियासत भी मुगलों के अधीन हो गई।

जहांगीर की अन्य विजयें (१६१७-१६२१)—जहाँगीर ने नगरकोट का प्रसिद्ध गढ़ जीतने के लिए १६२० ई० में खुरम को भेजा। शाहजादे ने उस पर अधिकार करके तराई क्षेत्र में मुगल-अधिकार को अधिक व्यापक बना दिया। इसके अतिरिक्त जहाँगीर के समय में अहमदनगर के राज्य से कई युद्ध हुए क्योंकि वहाँ मलिक अम्बर स्वतन्त्र होने की चेष्टा कर रहा था। यद्यपि इन युद्धों से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, तो भी अहमदनगर की शक्ति पहले से घट गई।

कन्दहार का हाथ से निकलना (१६२२)—जहाँगीर के अन्तिम ६ वर्ष सुख से नहीं बीते। नूरजहाँ का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और उसमें तथा शाहजहाँ में मनमुटाव हो गया था। इसकी सूचना पाकर फारस के शाह ने सन् १६२२ ई० में कन्हार पर अधिकार कर लिया। जहाँगीर ने शाहजहाँ को वहाँ जाने की आज्ञा दी लेकिन उसने विद्रोह कर दिया। सन् १६२५ तक यह विद्रोह दबा लिया गया लेकिन इसके दमन में शाहजादे पर्वेज और महाबत खाँ की शक्ति बहुत बढ़ गई। पर्वेज तो १६२६ में मर गया परन्तु महाबत खाँ ने विद्रोह कर दिया और सम्राट तथा सम्राज्ञी को कैद भी कर लिया। नूरजहाँ ने बड़ी चतुराई से काम लिया और न केवल अपने को तथा सम्राट को मुक्त कर लिया वरन् महाबत खाँ की शक्ति को भी नष्ट कर दिया। इसके थोड़े ही दिन बाद जहाँगीर फिर बीमार पड़ा और सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई।

शाहजहाँ और साम्राज्य विस्तार—जहाँगीर के बाद उसका बेटा खुरम शाहजहाँ के नाम से गद्दी पर बैठा। वह एक कुशल सेनापति और अनुभवी सैनिक था। उसने कई क्षेत्रों में सफल युद्ध किये थे। उसके विद्रोह के कारण ही कन्हार और दक्षिण का कुछ भाग मुगलों के हाथ से निकल गया था। इसलिए उसने कम-से-कम इस क्षति को पूरी करने का दृढ़ संकल्प किया। दक्षिण में हस्तक्षेप करने का अवसर उसे शीघ्र ही मिल गया। मुगल सरदार खानजहाँ लोदी ने विद्रोह कर दिया। उसे दक्षिण की मुसलमान रियासतों से भी सहायता मिली। शाहजहाँ ने खानजहाँ लोदी का दमन किया और सन् १६३३ में अहमदनगर के

दिल्ली की जामा मस्जिद (शाहजहाँ)
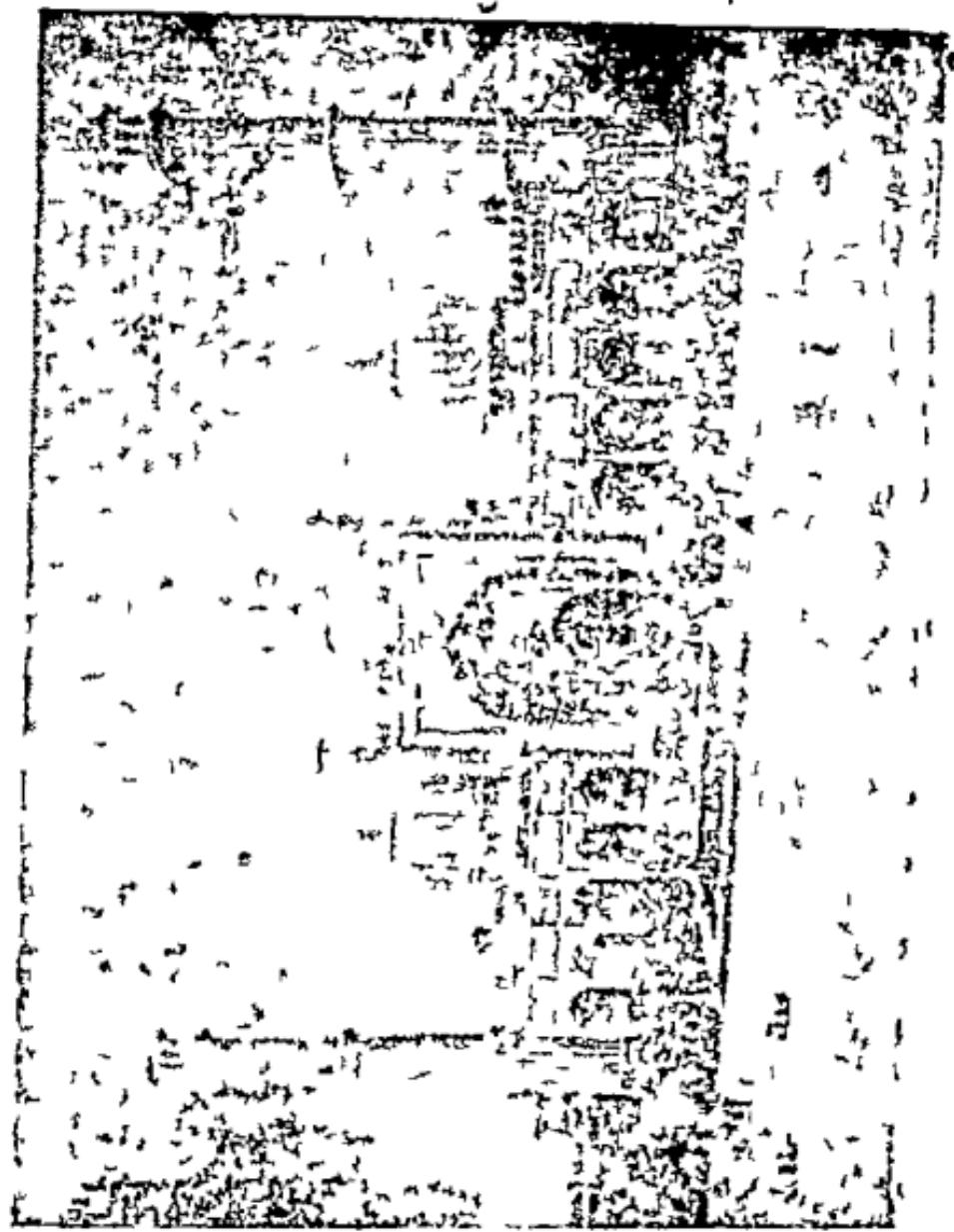
शेष भाग पर भी अधिकार कर लिया। एक मराठा सरदार शाहजी भोसला एक निजामशाही शाहजादे की ओर से ३ वर्ष तक और युद्ध करता रहा परन्तु १६३६ में उसे युद्ध बन्द कर देना पडा। इस प्रकार सम्पूर्ण अहमदनगर मुगलो के अधीन हो गया। दक्षिण की दूसरी दो रियासता (गोलकुण्डा और बीजापुर) ने भी इस युद्ध में मुगलों के विरुद्ध सहायता दी थी। इसलिए उनसे हर्जाना वसूल किया गया और उनको मुगल-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करनी पडी।

उसके दो वर्ष बाद सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने कन्दहार के हाकिम अलीमर्दान को रुपये का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया और कन्दहार पर मुगलो का फिर अधिकार हो गया। कन्दहार लेने के बाद शाहजहाँ ने बल्ख बदख्शाँ और समरकन्द पर अधिकार करने का स्वप्न देखना आरम्भ किया। सन् १६४५ में बदख्शाँ में विद्रोह आरम्भ हुआ। शाहजहाँ ने उससे लाभ उठाकर सन् १६४६ में उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु मुगलो और वहाँ के निवासियों से नहीं पटी। फलत सन् १६४७ ई० में काफी धन-जन की क्षति उठाने के बाद मुगल सेना को वापिस लौटना पडा। इस हार से मुगलो की प्रतिष्ठा को बडा धक्का लगा और सन् १६४८ में फारस के शाह ने फिर कन्दहार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने १६४९ १६५२ और १६५३ में भरसक प्रयत्न किया लेकिन फारस वालो के सामने उसकी एक नही चली। कन्दहार सदा के लिए मुगलो के हाथ से निकल गया।

पश्चिमोत्तर सीमा के युद्धोंमें सम्राट के तृतीय पुत्र औरगजेब ने सबसे अधिक भाग लिया था। सम्राट ने उसकी असफलताओ से अप्रसन्न होकर उसे दक्षिण का वाइसराय नियुक्त किया। औरङ्गजेब अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने के लिए दक्षिण में युद्ध आरम्भ करना चाहता था और १६५६ ई० में उसने बीजापुर और गोलकुण्डा पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी। सम्राट ने आज्ञा देकर बाद में लौटा ली फिर भी औरङ्गजेब ने उन रियासतो के कुछ दुर्ग छीन लिये और उनसे बहुत धन लिया।

औरगजेब और साम्राज्य का चरम उत्कर्ष—दक्षिणी रियासतो से प्राप्त धन और उनको दबाने के लिए संगठित की हुई सेना की सहायता से औरगजेब उत्तराधिकार-युद्ध में विजयी हुआ और उसने अपने पिता को बंदीगृह में डालकर तथा अपने भाइयो का वध करके दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर लिया। शाहजहाँ की भाँति औरङ्गजेब को भी रणक्षेत्र और युद्धनीति का व्यक्तिगत अनुभव था। उसने भी अपने पूर्वजो की भाँति साम्राज्य की सीमा बढ़ाने का प्रयत्न किया।

उसके समय में दक्षिण में मुसलमान रियासतों के अतिरिक्त महाराष्ट्र में एक नई शक्ति का जन्म हो रहा था। औरङ्गजेब को उत्तरी भारत में कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा इसलिए वह शिवाजी को दबाने में पूरी शक्ति नहीं लगा सका। उसने बीजापुर तथा गोलकुण्डा के मुसलमानों से मिलकर मराठा शक्ति का अन्त करना चाहा, परन्तु शिवाजी के जीवन-काल में वह इस उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। शिवाजी ने मुगलों की विलास-प्रियता और दक्षिणी रियासतों की निर्बलता से लाभ उठाकर एक स्वतन्त्र राज्य बना लिया जिसमें महाराष्ट्र का काफी भाग सम्मिलित था। उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा शम्भूजी गद्दी पर बैठा।

शम्भूजी ने औरङ्गजेब के विद्रोही पुत्र अकबर को शरण दी। इस समय तक औरङ्गजेब की स्थिति काफी सुधर गई थी। इसके अतिरिक्त मराठों को दबाना अब नितान्त आवश्यक हो गया था। इसलिए सन् १६८२ में सम्राट ने एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। चार वर्ष के युद्ध के बाद उसे मालूम हो गया कि बिना बीजापुर और गोलकुण्डा को दबाये मराठों को हराना असम्भव है। इसलिए उसने पहले उन्हीं का अन्त करने का निश्चय किया। सन् १६८६ में बीजापुर के आदिलशाही वंश का अन्त करके उसने सारा राज्य साम्राज्य में मिला लिया। इसी प्रकार सन् १६८७ में उसने गोलकुण्डा के कुतुबशाही वंश का अन्त कर दिया और उसे भी मुगल साम्राज्य में मिला लिया। इसके २ वर्ष बाद सन् १६८९ में उसने शम्भूजी को कैद कर लिया और उसे मरवा डाला, लेकिन मराठे लड़ते ही रहे। शम्भूजी के बाद राजाराम (१६८९-१७००) और उसके बाद उसकी स्त्री ताराबाई मराठा-युद्ध का संचालन करती रहीं। औरङ्गजेब ने तलवार और रुपये के बल से सभी मराठा किलों पर अधिकार कर लिया, परन्तु मराठे दबे नहीं। वे सामने आकर सम्राट् का सामना नहीं करते थे बल्कि जब सम्राट् की सेना आगे बढ़ जाती थी तो वे किसी की रसद काटकर उन पर फिर अधिकार कर लेते थे। फलतः सन् १७०७ में औरङ्गजेब की मृत्यु के समय स्थिति यह थी कि यद्यपि नाम के लिए सम्पूर्ण भारत मुगलों के अधीन हो गया था किन्तु उनकी वास्तविक शक्ति केवल उनकी छावनियों तक ही सीमित थी।

साम्राज्य का संगठन—अकबर और उसके उत्तराधिकारियों ने केवल साम्राज्य-विस्तार को ही अपना उद्देश्य नहीं समझा वरन् उन्होंने विजित प्रदेशों के संगठन और प्रजा की उन्नति की ओर भी ध्यान दिया। यही कारण है कि

अन्य मुसलमान राजवंशों की अपेक्षा मुगलों की शक्ति बहुत दिन तक रही और जनता में उनके प्रति वास्तविक स्नेह और श्रद्धा उत्पन्न हुई। जिस प्रकार बाबर और हुमायूँ के प्रारम्भिक प्रयत्नों के बाद साम्राज्य विस्तार का कार्य अकबर के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार संगठन और शासन-सुधार का सूत्र पात भी अकबर के ही समय से हुआ। अकबर की राजपूत-नीति का उल्लेख पहले किया जा चुका है। धार्मिक पक्षपात को हटाकर उसने साम्राज्य की नींव को बहुत सुदृढ़ कर दिया। शान्ति और सुव्यवस्था के लिए उसने शासन प्रबन्ध में कई सुधार किये।

अकबर का शासन प्रबन्ध—स्थानीय शासन में उसने कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया वरन् शेरशाह के समय की प्रणाली को ही चलने दिया। गाँवों परगनों और सरकारों का प्रबन्ध पहले जैसा ही रहा। केन्द्रीय शासन में अकबर ने कई सुधार किये। उसने सरकारी काम को कई विभागों में बाँट दिया और प्रत्येक विभाग के लिए एक प्रधान अफसर नियुक्त किया जो उस विभाग की सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी बना दिया गया। इन अधिकारियों में अर्थ विभाग का प्रधान दीवान सेना विभाग का प्रधान मीरबख्शी, रसद तथा सरकारी कारखानों का प्रधान खान-ए-सामान और न्याय तथा दान विभाग का प्रधान सद्र-ए-सुदूर मुख्य थे। इसी प्रकार तोपखाने गुप्तचरों कृषि आदि विभागों के अन्य छोटे-बड़े अफसर थे। इन सभी अधिकारियों के ऊपर एक वकील नियुक्त किया गया जो सम्राट् की ओर से इन सब विभागों की देख रेख करता रहा। सम्राट स्वयं इन पदाधिकारियों से अलग-अलग अथवा सामूहिक रूप से परामर्श करता था और उनके विभागों की नीति निर्धारित करता था। पहले के मुसलमान-शासकों को नये नियम बनाने में कुरान की शिक्षाओं का विशेष ध्यान रखना पड़ता था और मुल्ला-मौलवियों की सम्मति माननी पड़ती थी। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक ने इनकी विशेष परवाह नहीं की थी लेकिन इसके कारण उनका विरोध भी किया गया था। अकबर ने मुल्लाओं के प्रतिनिधियों से सन् १५७९ ई० में यह घोषणा करा ली कि सम्राट को देश-काल की स्थिति के अनुरूप नये नियम बनाने का और विवादों में मतभेद होने पर कोई मत ग्रहण करने का अधिकार है। इसलिए उसने स्वतन्त्रतापूर्वक आवश्यक सुधार के लिए नियम बनाये। प्रान्तीय हाकिमों की देख रेख के लिए सम्राट ने दीवान और नाज़िम का पद समान रखा और दोनों को एक दूसरे पर निगाह रखने के योग्य बना दिया।

औरंगजेब का साम्राज्य
अ र ब
सा ग र
ब ं गा ल
की
खा ड़ी

इसके अतिरिक्त वह गुप्तचरों, दौरों और स्थान-परिवर्तनों द्वारा भी उनको विद्रोही होने से रोके रहता था।

सैनिक सगठन—साम्राज्य की वृद्धि और सुरक्षा के लिए उसने सेना का उचित संगठन किया। अकबर की सेना में पैदल घुडसवार, हाथी, तोपखाना, और नावों का बेडा रहता था। पैदल सिपाही अधिक कुशल नहीं थे और उनको न तो अच्छा वेतन ही मिलता था और न उनकी ओर विशेष ध्यान ही दिया जाता था। घुडसवारों की संख्या बहुत अधिक थी और उनको ठीक रखने के लिए अनेक उपाय किये गये थे। सभी घोडा तथा घुडसवारों की जाँच करने के बाद उनको सेना में भरती किया जाता था। प्रत्येक घोड़े को दगवा दिया जाता था। घुड़सवार और घोड़े का वर्णन तथा वजन भी लिख लिया जाता था। वेतन देते समय देखा जाता था कि उक्त वर्णन मिलता है या नहीं। यदि किसी घोडे या घुडसवार का वजन कम हो जाता था तो उसे इसके लिए कारण बताना पडता था। अकबर का तोपखाना भारतीय नरेशों की अपेक्षा अच्छा था। अकबर ने स्वयं कई प्रकार की तोपें बनवाई लेकिन वे उतनी अच्छी नहीं थी जितनी की तुर्कों की या यूरोपवाले देशों की। हाथी अब भी बडे काम के समझे जाते थे और उनको ठीक रखने के लिए अनेक नियम बनाये गये थे। अकबर एक विशाल जहाजी बेडा बनाकर भारतीय समुद्र-तट को अपने अधिकार में करना चाहता था और पुर्तगालियों के अत्याचारों को रोकना चाहता था लेकिन इस उद्देश्य में वह सफल न हो सका। उसके पास केवल नावों और बजरों का एक बडा था जो नदियों के मार्ग में आक्रमण करने में काम आता था।

सैनिक प्रायः तीन प्रकार के थे। कुछ सैनिक सम्राट की व्यक्तिगत रक्षा के लिये थे। ये अहदी कहलाते थे। ये मुगल सेना में सबसे अधिक अच्छे सैनिक होते थे। उनको पाँच सौ रुपये मासिक तक वेतन मिलता था। ये प्रायः सम्राट के ही साथ युद्ध करने जाते थे। दूसरी श्रेणी में मनसबदारों के सैनिक होते थे। अकबर ने सरकारी अफसरों को ३३ श्रेणियों में बाँट रखा था। ये श्रेणियाँ मनसब कहलाती थीं। प्रत्येक अफसर मनसबदार कहलाता था। मनसबदार १० सैनिकों से लेकर १२,००० तक के होते थे लेकिन ७ ००० से ऊपर के मनसबदार केवल राजवंश के ही व्यक्ति हो सकते थे। दूसरे लोगों के लिए ऊँचे से ऊँचा मनसब ७ ००० का था। मानसिंह और अजीज कोका को (जो अकबर को दूध पिलाने वाली दाई का लड़का था और जिसे अकबर भाई के समान मानता था) ७ ००० का मनसब मिला था। ये मनसबदार सैनिक अफसर भी होते थे और दूसरे

महकमों में भी काम करते थे। उनका वेतन उनके मनसब के अनुसार ही निश्चित होता था। उन्हें नियत संख्या के अनुसार सैनिक रखने पड़ते थे। जो सैनिक इन अफसरों की मातहती में रहते थे वे मनसबदारी सैनिक कहलाते थे। उन्हें भी सम्राट द्वारा बनाये गये सभी नियमों का पालन करना पड़ता था। दागवाने, वर्णन तौल आदि के नियम उन पर भी लागू होते थे। सम्राट उनका किसी समय भी निरीक्षण कर सकते थे और उनको युद्ध के समय बुला सकते थे, लेकिन साधारण रूप से वे मनसबदार के ही नियन्त्रण में रहते थे, और वही उनकी नियुक्ति करता, उन्हें वेतन देता और उनको नीचे पद से ऊँचे पद पर भेजता था। इस कारण इस श्रेणी के सैनिक मनसबदारों को ही अपना स्वामी समझते थे। यह इस प्रथा में दोष था। दूसरा दोष यह था कि कभी-कभी मनसबदार नियत संख्या से कम सैनिक रखते थे या उनको कम समय के लिए रखते थे और इस प्रकार तमाम रुपया खा जाते थे और उनके सैनिक भी अच्छी दशा में नहीं रहते थे। इस कारण इस श्रेणी के सैनिक बहुत अच्छे नहीं होते थे। युद्ध के समय सम्राट अधीनस्थ हिन्दू-नरेशों से भी सहायता माँग सकता था और उनको सैनिक भेजने पड़ते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर ने सेना में अनेक सुधार किये और उसे पहले जमाने के सुलतानों की सेनाओं से बहुत अच्छा बना दिया, फिर भी उसमें कुछ दोष रह ही गये। आगे चलकर जब मनसबदारों को नगद वेतन के स्थान पर पिछले मुगल सम्राट् जागीरें देने लगे तब साम्राज्य को एक बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा क्योंकि वे विद्रोह करने लगे।

आर्थिक सुधार—अकबर ने प्रजा के सुख का ध्यान रखते हुए राजकर नियत किये। उसने करों के विषय में हिन्दू-मुसलमान का भेद भाव नहीं किया। उसने हिन्दुओं से जजिया लेना बन्द कर दिया। उनके तीर्थस्थानों पर लगनेवाले कर भी बन्द कर दिये गये। जमीन का लगान हिन्दू-मुसलमानों से बराबर-बराबर लिया जाता था। चुंगी भी सभी के लिए कम कर दी गई। इन नियमों से हिन्दू जनता तो सन्तुष्ट हुई लेकिन मुसलमानों में कुछ असन्तोष फैला। उन्होंने कुछ विद्रोह भी किये लेकिन वे दबा दिये गये। अकबर ने किसानों की दशा सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। उसका 'दहसाला' अर्थात् दसवार्षिक प्रबन्ध बहुत ही प्रसिद्ध है। देश की सब भूमि नाप ली गई। प्रत्येक खेत की १० वर्ष की औसत पैदावार निकाली गई और उस औसत पैदावार का एक तिहाई सरकारी लगान नियत किया गया। सरकारी लगान नगद रुपयों में ही लिया जाता था। उपज का दाम निश्चित करने के लिए भी पिछले १० वर्ष के दामों का औसत लिया

गया। इस प्रकार प्रजा से जो कर माँगा गया वह पहले की अपेक्षा अधिक उचित था। यही कर सदा के लिए नियत कर दिया गया। कर की बीघे के हिसाब से नियत किया गया था। यदि एक बीघे खेत में गेहूँ बोया जाता था तो उसका लगान मटर वाले एक बीघा खेत से अधिक लिया जाता था क्योंकि गेहूँ का दाम अधिक होता था। इस प्रकार क्या जिन्स बोई जाती है इसका ध्यान रखकर लगान वसूल किया जाता था। खेतो को नापने के लिए लोहे का जरीब का प्रयोग किया गया क्योकि सन, मूँज या ताँत की रस्सियाँ काफी घटती-बढती रहती हैं। अकबर ने लगान तै करने के लिए फसली संवत् चलाया जो सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के अनुसार गिना जाता था। फसल खराब हो जाने, अकाल पडने या चीजों का भाव बहुत सस्ता होने पर सरकारी लगान कम कर दिया जाता था या बिलकुल ही माफ कर दिया जाता था। इसके अलावा प्रजा को सरकार की ओर से सहायता भी दी जाती थी। सरकारी अफसरो को आज्ञा थी कि वे किसानो को किसी भाँति तग न करें।

सत्रहवी शताब्दी के परिवर्तन—अकबर के मरने के पश्चात् मुगल साम्राज्य के अन्त तक प्राय यही शासन-व्यवस्था चलती रही। उसके उत्तराधिकारियो ने कुछ बातो में थोडा हेर-फेर कर दिया। जहाँगीर ने यह नियम बनाया कि बडे राजकर्मचारियो के मरने पर उनकी सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होगा। इस आज्ञा के कारण उनमें फिजूलखर्ची बढ गई लेकिन राज्य की आय का एक नया साधन निकल आया। उसने प्रान्तीय तथा स्थानीय हाकिमों को यह आज्ञा भी दी कि ऐसा कोई कर न लिया जाय जिसकी स्वीकृति सम्राट ने न दी हो। उसके समय में बडे-से-बडे मनसब ४०,००० के होने लगे, यद्यपि यह केवल राजघराने के लोगो के ही लिए थे। उसने न्याय के लिए भी पहले से अधिक सुविधायें प्रदान की।

शाहजहाँ के समय में शासन में कई दोष उत्पन्न होने लगे जिनका उत्तरदायित्व उसी की परिवर्तित नीति पर है। उसने राजकर्मचारियों को ६००० तक के मनसब देना आरम्भ कर दिया और उनको नगद वेतन के स्थान पर जागीरें दी। उसने उनके सैनिको और घोडों की जाँच में ढिलाई करके उनको बेईमान और लापरवाह कर दिया। उसके समय में भूमिकर बढा दिया गया। सरकारी अफसर खूब घूस लेने लगे। सम्राट की धार्मिक नीति भी ठीक नही थी। उसने कई स्थानों पर उनके मन्दिर गिरवा दिये और पुराने मन्दिरों

की मरम्मत कराने की आज्ञा नहीं दी। इस पक्षपात की नीति के कारण असंतोष की लहर उठने लगी जो उसके पुत्र के समय में बहुत भयंकर सिद्ध हुई।

औरङ्गजेब अपने पिता से भी कट्टर था। उसने शियाओं और हिन्दुओं के मित्र दारा को परास्त करके राज्य प्राप्त किया था। इसलिए वह सुन्नियों को प्रसन्न करके उनकी पूरी सहायता प्राप्त करना चाहता था। फल यह हुआ कि सरकारी नौकरी योग्यता के अनुसार न मिलकर अब केवल धर्म के आधार पर मिलने लगी। अयोग्य कर्मचारियों के कारण शासन-प्रबन्ध धीरे धीरे बिगड़ने लगा। सम्राट की इस पक्षपातपूर्ण नीति से हिन्दू असन्तुष्ट हो गये। हिन्दुओं के साथ सम्राट का व्यवहार विशेष रूप से खराब था। उसने उनके ऊपर फिर से जजिया लगाया।

शासन-नीति में परिवर्तन—इस प्रकार औरङ्गजेब ने अकबर की राजपूत और धार्मिक नीति को बिल्कुल उलट दिया। इस परिवर्तन का एक कारण ऊपर बताया जा चुका है। दूसरा कारण औरंगजेब का व्यक्तिगत विश्वास था। वह बड़ा कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम का प्रचार करना वह अपना परम कर्त्तव्य समझता था। तीसरी बात यह भी है कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में अनेक कवि और महात्मा हुए जो हिन्दुओं में धर्म का प्रचार करने के साथ-साथ स्वतन्त्रता की आकांक्षा भर रहे थे। यही नहीं पर उनके प्रभाव में आकर कुछ मुसलमान भी हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट होने लगे थे। चैतन्य, वल्लभ, नानक के शिष्यों में मुसलमान भी शामिल थे। औरंगजेब ने धार्मिक आधारवाले स्वतन्त्रता आन्दोलन को दबाने के लिए धार्मिक आधारवाली साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। इस कारण बहुधा मन्दिर वहीं तोड़े गये जहाँ हिन्दुओं ने विद्रोह किया। यह भी उनके दण्ड का एक भाग बना लिया गया। इसका प्रारंभ शाहजहाँ के समय से ही हो गया था। अस्तु, यह प्रकट है कि यद्यपि औरंगजेब की धार्मिक पक्षपात की नीति से साम्राज्य को काफी क्षति पहुँची तो भी यह मानना पड़ेगा कि कुछ हद तक परिस्थितियों ने उसे इस नीति का अवलम्बन करने के लिए बाध्य कर दिया था और वह स्वयं इस नीति का आरम्भ करनेवाला नहीं था वरन् उसने केवल उसे अधिक व्यापक बना दिया।

औरंगजेब की नीति में एक दूसरी विशेष बात है—सब पर सन्देह। उसने अपने पिता को ही कैद कर लिया था और अपने भाइयों को तलवार के घाट उतार दिया था। इस कारण उसे सदा सन्देह रहता था कि राज्य का कोई कर्मचारी

था स्वयं उसके पुत्र ही अवसर पाकर उसका वध कर सकते है। इस सन्देह का फल यह हुआ कि राज-कर्मचारी कभी सम्राट के भक्त नहीं हो सके। वे भी सदा शंकित रहते थे कि पता नहीं सम्राट् किस बात से अप्रसन्न हो जायें। वह प्राय सभी बातों को स्वयं देखना चाहता था और उसने वकील के पद को तोड दिया। इससे भी शासन प्रबन्ध बिगडने लगा।

विद्रोह—औरंगजेब के गद्दी पर बैठते ही विद्रोह होने लगे। इस काल के विद्रोहों के विषय में वही बात देखी जाती है जो तेरहवीं सदी के हिन्दू विद्रोहों में। विद्रोही यह निश्चय-सा कर चुके थे कि वे सम्राट के अधीन नहीं रहेंगे। यदि सम्राट की शक्ति बहुत प्रबल पड़ती थी तो कुछ समय के लिए उनको दबना पड़ता था। उनके घर, मन्दिर खेत नष्ट कर दिये जाते थे और कभी उनके नेता बुरी तरह मार डाले जाते थे लेकिन सम्राट् की सेना हटते ही वे फिर विद्रोह करने लगते थे और पुराने नेताओं का स्थान नये व्यक्ति ले लेते थे। यह बात प्राय सभी हिन्दू विद्रोहों में पायी जाती है। यह भी एक मार्के की बात है कि इस समय जितने विद्रोह हुए उनके सभी नेता हिन्दू ही थे। इसका एकमात्र अपवाद अफगान जातियाँ हैं जो सदा लूट-मार की ताक में रहती थीं और जिनके ऊपर धन के सामने धर्म का विशेष महत्त्व नहीं था।

उपसंहार—अकबर और औरंगजेब का शासन-काल मुगल-साम्राज्य के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व रखता है। एक ने अपनी कूटनीतिज्ञता वीरता और बुद्धिमत्ता से साम्राज्य को बढ़ाया और उसकी जड़ें मजबूत कीं, दूसरे ने अपनी धर्मान्धता और हठवादिता से उसी साम्राज्य के विनाश का पथ प्रशस्त किया।

मुख्य तिथियाँ

बैरमखाँ का पतन	१५६० ई०
आमेर से विवाह-सम्बन्ध	१५६२ ई०
गोंडवाना विजय व जजिया का अन्त	१५६४ ई०
चित्तौड़-विजय	१५६८ ई०
रणथम्भौर विजय	१५६८ ई०
राजपूताने के विभिन्न नरेशों का वश में होना	१५६९ ई०
गुजरात-विजय	१५७२ ई०

बंगाल पर अधिकार	१५७६ ई०
दहसाला प्रथा का प्रारम्भ ..	१५८२ ई०
मिर्जा हकीम की मृत्यु ..	१५८५ ई०
काश्मीर विजय	१५८६ ई०
सिंध पर अधिकार	१५९१ ई०
उड़ीसा विजय	१५९२ ई०
बिलोचिस्तान पर अधिकार	१५९४ ई०
कन्दहार-विजय	१५९५ ई०
बरार का मुगल-साम्राज्य में मिलना	१५९६ ई०
अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार	१६०० ई०
खानदेश पर मुगलों का अधिकार	१६०१ ई०
मेवाड़ विजय	१६१४ ई०
कांगड़ा-विजय	१६२० ई०
कन्हार पर फारस का अधिकार	१६२२ ई०
खुर्रम का विद्रोह	१६२२ २५ ई०
महाबत खाँ का विद्रोह ..	१६२६ ई०
शाहजहाँ का राज्याभिषेक	१६२८ ई०
अहमदनगर के राजवंश का अन्त	१६३३ ई०
कन्दहार पर मुगलों का पुन अधिकार	१६३८ ई०
बल्ख-बदख्शाँ की लड़ाई	१६४५ ४७ ई०
कन्हार का हाथ से निकलना	१६४८ ई०
औरंगजेब का राज्याभिषेक	१६५८ ५९ ई०
शिवाजी की मृत्यु	१६८० ई०
शाहजादे अकबर का शम्भूजी से मिलना	१६८१ ई०
बीजापुर का मुगल साम्राज्य में मिलाया जाना	१६८६ ई०
गोलकुण्डा पर अधिकार	१६८७ ई०
शम्भूजी की मृत्यु	१६८९ ई०
राजाराम की मृत्यु	१७०० ई०
औरंगजेब की मृत्यु	१७०७ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) अकबर के राज्याभिषेक के समय मुगलो के सामने क्या कठिनाइयाँ थीं ? वैरम खाँ ने उनके निवारण के लिए क्या उपाय किये ?

(२) अकबर की राजपूत-नीति क्या थी ? उसका साम्राज्य पर क्या प्रभाव पडा ?

(३) अकबर ने पश्चिमोत्तर सीमा की समस्याओं को किस प्रकार हल किया ?

(४) अकबर की दक्षिण-नीति क्या थी ? उसका साम्राज्य पर क्या प्रभाव पडा ?

(५) औरंगजेब की दक्षिण-नीति का साम्राज्य पर क्या प्रभाव पडा ?

(६) मुगलों और मेवाड-नरेशों के सम्बन्ध पर एक लेख लिखो।

(७) फारस और मुगल साम्राज्य के सम्बन्ध का वर्णन करो।

(८) अकबर ने शासन प्रबन्ध में क्या सुधार किये ? उसने हिन्दुओं को वश में करने के लिये क्या उपाय किये ?

(९) शाहजहाँ के समय में शासन-नीति में क्या दोष उत्पन्न हो गये थे ? क्या औरंगजेब की नीति शाहजहाँ की ही नीति पर निर्भर थी ?

अध्याय १९

मुगल-साम्राज्य का पतन

शाहजहाँ की नीति—औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य बड़ी तेजी से टूटने लगा और ६० वर्ष के भीतर ही उसके उत्तराधिकारी केवल नाम धारी सम्राट रह गये। इस पतन का सारा दायित्व बहुधा औरंगजेब पर रखा जाता है, परन्तु इतिहास की दृष्टि से यह सत्य नहीं है। साम्राज्य के पतन में कई व्यक्तियों और कई परिस्थितियों ने योग दिया, यद्यपि औरंगजेब का व्यक्तित्व और उसकी नीति उनमें एक प्रमुख स्थान रखते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है शाहजहाँ के समय में ही पतन के लक्षण प्रकट होने लगे थे। कन्धार और बदख्शाँ की पराजय, धार्मिक पक्षपात का प्रारम्भ, मनसबदारी प्रथा का दूषित होना, घूसखोरी और उत्तराधिकार का भीषण युद्ध इस पतन के प्रतीक थे।

औरंगजेब की नीति का कुपरिणाम—औरंगजेब के समय में मुगल साम्राज्य का ऊपरी ढाँचा काफी वैभव-पूर्ण बना रहा, परन्तु उसकी शक्ति घट गई और उसकी नींव हिल गई। इसका कारण सम्राट की धार्मिक नीति तथा उसका अविश्वास था। उस नीति का वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर उसके कुछ कुपरिणामों का सार सक्षेप मात्र कर देना है। औरंगजेब की नीति से विभिन्न प्रदेशों के हिन्दू असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने अनेक विद्रोह किये। पहला विद्रोह मध्यभारत में चम्पतराय बुन्देला ने किया। वह पराजित होने पर कुछ दिन जंगलों, पहाड़ों में छुपता छिपता घूमता रहा। अन्त में उसे आत्महत्या करनी पड़ी। उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे छत्रसाल ने कई विद्रोह किये और अन्त में बुन्देलों का एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया। उनके कारण सम्राट को दक्षिण के युद्धों में बहुत क्षति उठानी पड़ी क्योंकि वे रसद लूट लेते थे।

मथुरा में एक मन्दिर के खंडहरों पर मस्जिद बनाई जाने के कारण हिन्दुओं में बहुत उत्तेजना फैली। बाद में केशवराय के मन्दिर का पत्थर का जंगला उखाड़ कर उसी में लगाया गया। इससे असन्तोष बहुत बढ़ गया। सन् १६६९ में

गोकुल जाट ने विद्रोह किया। वह मारा गया, लेकिन विद्रोह कभी शान्त नहीं हुआ। आगे चलकर चूरामन ने भरतपुर की जाट रियासत की नींव डाली और मुगल-साम्राज्य का प्रभाव घटा दिया।

सन् १६७८ ई० में महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने मारवाड का अधिकार उनके नवजात पुत्र अजीत और उनकी माता को देने से इन्कार किया और अजीत को मुगल दरबार में रखना चाहा। इस कारण दुर्गादास की अध्यक्षता में राजपूतों ने विद्रोह किया। इसमें मेवाड के राणा भी सम्मिलित हो गये। आमेर के राजा जयसिंह पहले ही मर चुके थे। लोगों को सन्देह था कि सम्राट ने उनको विष देकर मरवा डाला है। इसलिए राजस्थान की अन्य रियासतों में भी न्यूनाधिक असन्तोष था। यह विद्रोह चल ही रहा था कि दक्षिण में मराठों और पंजाब में सिक्खों ने विद्रोह किया। इनको दबाने के प्रयत्न में सम्राट ने साम्राज्य की शक्ति को बहुत हानि पहुँचाई। मराठा-युद्ध में हजारों कुशल सैनिक मारे गये, अपार धन व्यय हुआ और सम्राट की अनुपस्थिति के कारण उत्तर भारत के विद्रोह प्रबल हो गये, शासन प्रबन्ध खराब हो गया और साम्राज्य के विनाश का रास्ता साफ हो गया।

अयोग्य उत्तराधिकारी—औरंगजेब के उत्तराधिकारी प्रायः सभी अयोग्य थे। उनमें न तो साम्राज्य को सँभालने के लिए बुद्धि थी और न अमीरों को वश में रखने की क्षमता। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न होने के कारण राजवंश के प्रत्येक व्यक्ति की लालसा सिंहासन पर बैठने की रहती थी। इसका फल यह हुआ कि एक के बाद दूसरा व्यक्ति गद्दी पर बैठता रहा और सम्राट की शक्ति क्षीण से क्षीणतर होती गई।

औरंगजेब के तीन बेटे थे—आजम, मुअज्जम और कामबख्श। इनमें साम्राज्य के लिए युद्ध हुआ। उसमें मुअज्जम सफल हुआ और वह बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने केवल ५ वर्ष राज्य किया। उसने सिक्खों और राजपूतों से सन्धि करके उनका विद्रोह शान्त किया और शम्भूजी के पुत्र शाहू को कैद से छोड़कर मराठों में फूट फैलाने का प्रयत्न किया लेकिन वह अमीरों को अच्छी तरह वश में न रख सका।

उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटों में युद्ध हुआ और जहाँदारशाह सम्राट हुआ। अपनी दुश्चरित्रता, मूर्खता, निर्दयता और कायरता के कारण उसे शीघ्र ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा और सन् १७१३ ई० में उसका भतीजा फर्रुखसियर शासक हुआ।

फर्रुखसियर के समय में अब्दुल्ला और हुसेन अली नामक दो भाइयों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। वे ही वास्तविक शासक हो गये। फर्रुखसियर ने उनको हटाने का प्रयत्न किया। फल यह हुआ कि वह गद्दी से उतार दिया गया, उसकी आँखें फोड़ दी गईं और सन् १७१६ ई० में वह मार डाला गया।

उसकी मृत्यु के बाद सैयद भाइयों ने इच्छापूर्वक कई राजे बनाये और अंत में मुहम्मद को सम्राट बनाया। मुहम्मद शाह ने १७१६ से १७४८ तक राज्य किया। वह बहुत मूर्ख नहीं था, लेकिन उसे अपने ऊपर विश्वास नहीं था और वह बेहद आलसी था। उसने सैयद भाई अब्दुल्ला और हुसेन अली को अवश्य मरवा डाला लेकिन वह शासन सँभाल न सका। उसके समय में कई प्रान्त स्वतन्त्र हो गये और ईरान के बादशाह नादिरशाह ने आक्रमण किया। इस आक्रमण ने साम्राज्य को बहुत निःशक्त कर दिया।

अहमदशाह की मृत्यु के बाद अहमदशाह आलमगीर द्वितीय और शाह आलम शासक हुए लेकिन सब-के-सब केवल नाम मात्र के शासक थे। उनके अमीर जो चाहते थे वही करते थे। इसी समय दक्षिण में मराठों ने और पश्चिम से अहमदशाह अब्दाली ने कई हमले किये। प्रान्तीय विद्रोह होते ही जाते थे। फल यह हुआ कि मुगल सम्राट शाहआलम सन् १७६१ ई० में एक प्रकार से अहमदशाह अब्दाली का मातहत हो गया। बाद कब बाद ही वह ऐसी दीनावस्था में था कि उसने अंगरेजों से सन्धि कर ली और उनका आश्रित होकर इलाहाबाद में रहने लगा। स्वतन्त्रता की इच्छा से सन १७७१ ई० में यह मराठों से मिल गया। लेकिन उसका भाग्य न चेता। सन् १७८८ ई० में रुहेलों ने उसे अन्धा कर दिया और सन् १८०६ ई० में वह अंगरेजों का पेंशन खाता हुआ मरा।

शाहआलम के बाद अकबर द्वितीय (१८०६-१८३७ ई०) और बहादुरशाह द्वितीय (१८३७-१८५७ ई०) मुगल सम्राट के नाम से विभूषित रहे। १८५७ ई० में एक विद्रोह हुआ जो देशव्यापी हो गया। उसमें बहादुरशाह भी मिल गया था। इस कारण उसे रंगून भेज दिया गया और मुगलों के महलों पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। बहादुरशाह अन्तिम मुगल-सम्राट नामधारी व्यक्ति था। सन् १८६२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

अमीरों की गुटबन्दियाँ—औरंगजेब के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता से साम्राज्य की बहुत हानि हुई, लेकिन साम्राज्य के पतन का एक दूसरा मुख्य कारण अमीरों की पारस्परिक ईर्ष्या थी। उस समय दरबार में अमीरों के तीन दल थे—

हवा महल (जयपुर)
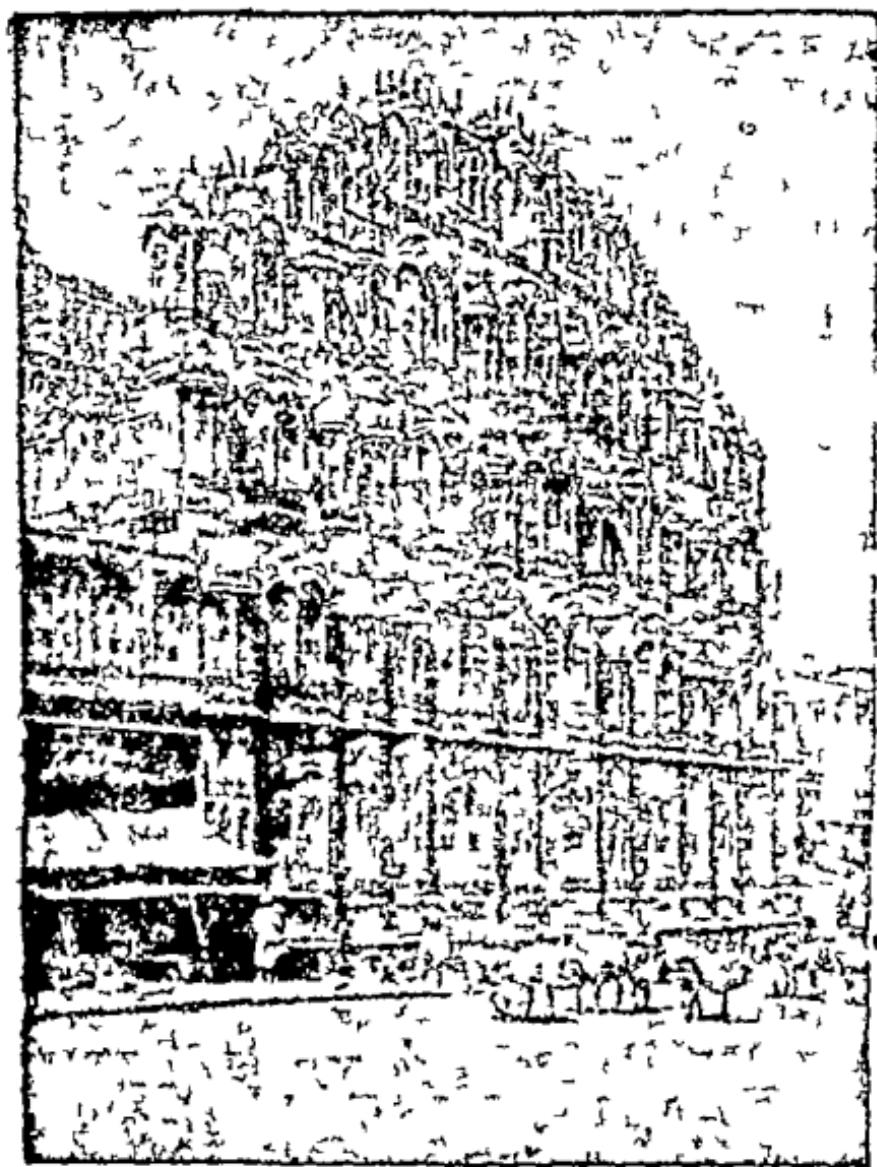
(१) हिन्दुस्तानी-दल—इसके नेता सय्यद भाई अब्दुल्ला और हुसेन अली थे। इसमें प्रायः वे सब मुसलमान अमीर शामिल थे जिनके पूर्व पुरुष बहुत दिन पहले भारत आये थे या जो हिन्दुओं से ही मुसलमान हुए थे। इनके साथ बहुत से हिन्दू सरदार भी थे।

(२) तूरानी दल—इसमें मध्य एशिया के लोग थे। ये विदेशी थे और सुन्नी धर्म के अनुयायी थे। ये अपने दलवालों को ही ऊँचे पद दिलाने के यत्न में रहते थे। इसके नेता मुहम्मद अमीन खाँ और निजामुल्मुल्क थे।

(३) ईरानी दल—इसमें अधिकतर शिया थे। ये ईरान के रहनेवाले थे। इसके नेता असद खाँ और जुल्फिकार खाँ थे।

ये तीनों ही दल दरबार के सभी ऊँचे पद अपने हाथ में ही रखना चाहते थे। यही झगड़े का मूल कारण था। इनके आपसी झगड़ों के कारण और भी अधिक षड्यन्त्र होने लगे और मुगल सम्राट और भी अधिक निर्बल होते गये। जहाँदार-शाह के समय तक ईरानी दल का प्रभाव रहा, लेकिन फर्रुखसियर के समय में हिन्दुस्तानी दल का प्रभाव बढ़ गया। ७ वर्ष तक उनका खूब प्रभाव रहा। ये इतिहास में राजा बनानेवालों के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपनी शक्ति पर इन्हें इतना गर्व हो गया कि ये कहने लगे कि हमारे जूते की छाया जिस पर पड़ जायगी वही मुगल सम्राट् हो जायगा। उनके इस गर्वपूर्ण दुर्व्यवहार से सभी ऊब गये और ईरानी तथा तूरानी दलों के षड्यन्त्र के कारण उनका अन्त हो गया।

सन् १७२० से १७६१ ई० तक तूरानी दल का प्रभाव रहा। निजामुल्मुल्क दक्षिण का सूबेदार रहा और उसके सम्बन्धी दिल्ली में प्रधान मन्त्री के पद पर आरूढ़ रहे। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद तूरानियों के प्रभाव का अन्त हो गया, लेकिन उसके बाद वास्तव में मुगल साम्राज्य ही नहीं रहा। इन दलबन्दियों ने विदेशी आक्रमणकारियों को भी बहुत सहायता पहुँचाई और साम्राज्य के विनाश को और भी निश्चित कर दिया।

विदेशी आक्रमण—१७०७ और १७६१ ई० के बीच में दो बड़े आक्रमण-कारी आये। पहले का नाम नादिरशाह था। वह १७३६ ई० में फारस का स्वामी हुआ था। सन् १७३९ ई० में मुहम्मदशाह के समय में उसने आक्रमण किया। वह पानीपत के पास पहुँच गया और उसको रोकने का कोई सफल प्रयत्न न हो सका। मुहम्मदशाह ने निजामुल्मुल्क को सेना का प्रधान बनाकर दिल्ली की रक्षा का प्रबन्ध किया। नादिरशाह ५० लाख रुपया लेकर वापस जाने को तैयार हो गया। मुगल सम्राट् ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उसी समय

अवध के हाकिम सआदत खाँ ने नादिर से चुगली की कि दिल्लीश्वर के पास बहुत धन है और यदि आप ५० लाख ही लेकर सन्तुष्ट हो गये तो आपके समान भोला और कोई न होगा। सआदत खाँ ईरानी दल का था और वह तूरानी दल के नेता निजामुल्मुल्क की नियुक्ति से विशेष चिढ़ गया था। नादिर ने मुहम्मद शाह को अपने डेरे पर बुलाया, उसे बन्दी बना लिया और दिल्ली पर धावा किया। दिल्ली की खूब लूट हुई। हजारों निर्दोष व्यक्ति तलवार के घाट उतारे गये। अन्त में नादिरशाह १५ करोड़ रुपये असंख्य हीरे-जवाहिर, जिनमें कोहनूर-हीरा भी था तख्तताऊस १०,००० घोड़े, १०,००० ऊँट और ३०० हाथी लेकर ईरान वापस गया। उसने सिंध नदी के पश्चिम का सारा देश छीन लिया और उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस आक्रमण ने सम्राट और साम्राज्य की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया, खजाना खाली हो गया और विद्रोहियों के हौसले बढ़ गये।

निजामुल्मुल्क दक्षिण भारत चला गया और वहाँ उसने हैदराबाद की स्वतन्त्र रियासत की नींव डाली। बंगाल में अलीवर्दी खाँ और अवध में सआदत खाँ भी प्रायः स्वतन्त्र-से हो गये।

जयपुर और जोधपुर के नेतृत्व में प्रायः सारा राजस्थान भी स्वतन्त्र हो गया। भरतपुर में जाट और मध्यभारत में कोटा तथा बूँदी के स्वतन्त्र राज्य बन गये।

दक्षिण में पेशवाओं की अधीनता में शक्ति संगठित करके मराठे उत्तरी भारत पर धावा करने लगे और उन्होंने दिल्ली पर छापा मारना शुरू कर दिया। उनके भय से सभी काँपने लगे। मालवा गुजरात और मध्य भारत का बहुत-सा भाग उनके अधिकार में आ गया और वे पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में पंजाब तक चौथ वसूल करने लगे।

इस अराजकता और निःशक्तता के समय में अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण करने आरम्भ किये। वह अफगानिस्तान का शासक था। उसे रुहेला अफगानों के नेता नजीबुद्दौला ने आमन्त्रित किया था। उसने १७४८-१७६१ ई० के बीच में ५ आक्रमण किये और मुगल-साम्राज्य की रही-सही शक्ति को भी नष्ट कर दिया। अब दिल्ली पर भी उनका सदा अधिकार नहीं रहता था। कभी उस पर रुहेले अधिकार कर लेते थे तो कभी मराठे। सन् १८०३ के बाद उस पर अंग्रेजों का अधिकार जम गया, यद्यपि नाम-मात्र के लिए वहाँ का मालिक मुगल सम्राट ही रहा। सन् १८५७ के बाद यह बात भी नहीं रही। मुगलों के स्थान पर अब दूर

देश के व्यापारी राज्य करने लगे और उन्होंने अंग्रेजी राज्य को भारत में दृढ़ता से जमा दिया।

साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण—जो मुगल-साम्राज्य १६ वीं सदी में भारत में जमाया गया और जिसकी जड़ों को अकबर ने अपनी सफल नीति उदार शासन प्रणाली और हिन्दू-मुसलमानों के सहयोग द्वारा मजबूत किया था वह १८वीं शताब्दी में नष्ट हो गया। इसके कारण हम ऊपर पढ़ चुके हैं। उनमें शाहजहाँ और औरंगजेब की धार्मिक नीति, दक्षिण में मराठों का उत्थान मुगलों का दोषपूर्ण सैनिक संगठन पिछले राजाओं की अयोग्यता, अमीरों की दलबन्दियाँ, प्रान्तीय शासकों के विद्रोह और विदेशियों के आक्रमण मुख्य हैं।

मुख्य तिथियाँ

बहादुरशाह का गद्दी पर बैठना	१७०७ ई०
सिक्खों से सन्धि	१७०८ ई०
राजपूतों से सन्धि	१७०६ ई०
फर्रुखसियर का राज्याभिषेक और सैयद भाइयों के प्रभुत्व का प्रारम्भ	१७१३ ई०
मुहम्मदशाह का गद्दी पर बैठना	१७१६ ई०
सैयद भाइयों का अन्त	१७२०-२१ ई०
नादिरशाह का आक्रमण	१७३६ ई०
मुहम्मदशाह की मृत्यु	१७४८ ई०
अहमदशाह अब्दाली का अंतिम आक्रमण	१७६१ ई०
बहादुरशाह की मृत्यु	१८६२ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) औरंगजेब की मृत्यु के समय साम्राज्य में पतन की सम्भावना क्यों बढ़ गई थी?

(२) सैयद भाई कौन थे? उनका मुगलों के इतिहास में क्या महत्त्व है? उनका पतन कब और कैसे हुआ?

(३) नादिरशाह के आक्रमण के क्या प्रभाव हुए?

(४) मुगल-साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों का संक्षिप्त वर्णन करो।

अध्याय २०

मराठों का उत्कर्ष

शिवाजी का जन्म १६२७ ई०—मुगल साम्राज्य के पतन से सबसे अधिक लाभ मराठा ने उठाया। मराठों के प्रभुत्व की नीव डालने वाले शिवाजी थे। उनका जन्म सन् १६२७ ई० में हुआ था और उनकी माता का नाम जीजाबाई था। शिवाजी के पिता शाहजी ने एक दूसरा विवाह कर लिया था और उसके बाद से उनका व्यवहार जीजाबाई के प्रति कुछ रूखा हो गया था। जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ उस समय उनकी माता और उनके पिता में मनोमालिन्य बढ़ रहा था। पति प्रेम से वंचिता माता ने अपना सारा स्नेह अपने नन्हे बच्चे पर उड़ेल दिया। वह शिवाजी को एक महान् व्यक्ति के रूप में देखना चाहती थी। वह अपने बेटे को प्राचीन भारतीय वीरों की कथायें सुनाया करती थी और बताती थी कि कुन्ती को अपने वीर पुत्रों पर कितना गर्व था और किस प्रकार उन्होंने अपने भुजबल और बुद्धिबल से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। माता की स्नेहमयी गोद में ही शिवाजी भी पाण्डवों के समान पराक्रमी बनकर अपनी माता को कुन्ती के समान सुखी और सन्तुष्ट करने का स्वप्न देखने लगे।

उनकी शिक्षा के लिए दादाजी कोण्डदेव नियुक्त किये गये। दादा बड़ा धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। उसने अपने शिष्य को न केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया वरन् उसे एक वीर सैनिक बनने के योग्य भी बनाया और धर्म में उसकी आस्था दृढ़ कर दी।

शिक्षा-दीक्षा—शिवाजी जब युवक हुआ तो वह लड़ाई के दाँव-पेंच, घोड़े की सवारी, हथियारों के प्रयोग आदि में पूर्णतया निपुण हो गया। अब उसकी इच्छा युद्ध पर दिखाई की हुई।

शिवाजी के समय मराठों की स्थिति—सौभाग्य से उसका जन्म ऐसे समय और स्थान पर हुआ था जहाँ एक प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए सफलता प्राप्त करना बहुत कठिन भी नहीं था। पंढरपुर महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ पर विठोबा (श्रीकृष्ण) का मन्दिर है। पंढरपुर के महन्तों में कई

अच्छे महात्मा हुए। इनके अतिरिक्त अन्य महात्मा भी हुए। इन सबमें एकनाथ, वामन पंडित, तुकाराम और रामदास बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भक्तिमार्ग की शिक्षा दी और कहा कि ईश्वर सभी पर समान कृपा करता है और सबकी उन्नति चाहता है। इन महात्माओं की शिक्षा का यह प्रभाव हुआ कि मराठों में एकता का भाव उत्पन्न होने लगा और उनमें आत्म-निर्भरता तथा आत्म-सम्मान की वृद्धि हुई।

शिवाजी के पिता शाहजी और उनके पूर्वज तुकाजी और मालोजी ने मराठों को सैनिक अनुभव भी प्राप्त करा दिया था। इनमें बहुत से व्यक्ति ऐसे थे जो हथियार चलाना जानते थे और सैनिक जीवन को अच्छा समझते थे। दूसरे, उनकी कृतियों ने भोंसला-परिवार की प्रतिष्ठा भी बढ़ा दी थी और दूसरे लोग इस वंश के लोगों को अपना नेता मानने के लिए तैयार थे।

महाराष्ट्र देश की स्थिति भी शिवाजी के आदर्श के अनुकूल थी। यहाँ पर जंगलों और पहाड़ियों में ऐसे अनेक सुरक्षित स्थान थे जहाँ बहुत अच्छे दुर्ग बनवाये जा सकते थे और जहाँ लुक-छिपकर बड़े पैमाने पर युद्ध करने के लिए बहुत सुविधा थी। दक्षिण की मुसलमान रियासतें विजयनगर के पतन के बाद क्षीण होती जा रही थीं और मुगलों की राजधानी दक्षिण से बहुत दूर थी। इस स्थिति ने शिवाजी के हौसले को और भी बढ़ा दिया। मुसलमानी रियासतों में मराठे सैनिक तथा असैनिक पदों पर नियुक्त थे और सैनिक सेवा ने उनको छापामार लड़ाई की अच्छी शिक्षा दी थी।

शिवाजी का उद्देश्य—उसने विदेशी और विधर्मी मुसलमानों को निकाल कर महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करने का संकल्प किया। अपने साथियों की संख्या बढ़ाने के लिए उसने घोषणा की कि जो लोग स्वराज्य और धर्म की रक्षा करने में अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हों वे मेरे साथ आ जायें। मैं उनको सफलता का मार्ग दिखा सकता हूँ। उसके आकर्षक व्यक्तित्व, न्यायपूर्ण व्यवहार और उच्च आदर्श के कारण उसके साथियों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गई। कुछ सफलता मिलने पर उसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में फिर से हिन्दू राज्य स्थापित करने का हो गया। कुछ इतिहासकारों ने शिवाजी को लुटेरा कहकर बदनाम किया है, लेकिन उसके कार्यों की निष्पक्ष विवेचना करने पर ऐसा कहने का कोई आधार नहीं मिलता और वह एक महान सेनानायक तथा शासक प्रतीत होता है।

शिवाजी का कार्य—शिवाजी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आरम्भ

साहसी मराठों की एक टोली तयार की। उनको उसने सनिक शिक्षा दी और उनकी सहायता से सहज ही में तोरण के किले पर अधिकार कर लिया। उसने अपने सनिकों में देश प्रेम और धम भक्ति के भाव कूट-कूटकर भर दिये। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर वे उसके पूर्ण भक्त हो गये और उसकी आज्ञा पर चलने के लिए सदा उद्यत रहते थे। शिवाजी ने पहले बीजापुर और गोलकुण्डा के सुलतानों के किलों पर अधिकार किया। धीरे धीरे उसकी शक्ति बढ़ने लगी। मुगलों ने पहले उसे एक साधारण विद्रोही समझकर उसकी उपेक्षा की। वे सोचते थे कि उसके कारण यदि बीजापुर की शक्ति क्षीण हो जायगी तो वे उस राज्य को भी हड़प लेंगे लेकिन जब १६५९ ई० में शिवाजी ने

भवानी का शिवाजी को आशीर्वाद
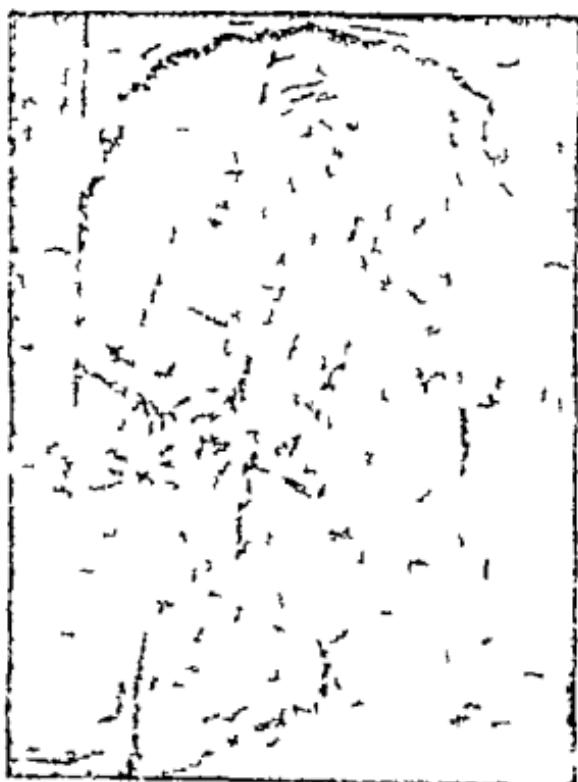
बीजापुर के प्रमुख सेनापति अफजल खाँ का वध कर डाला तो मुगलों में खलबली मचने लगी। उन्हें भय हुआ कि शिवाजी उनसे पहले ही बीजापुर और गोलकुण्डा

को वश में न कर से। इस कारण मुगलों से उनके युद्ध होते रहे। शाइस्ता खाँ, जयसिंह, जसवंतसिंह आदि सभी उनको दबाने में असफल रहे। सन् १६७४ ई० में उसने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और वह सन् १६८० ई० तक मुगलों और दक्षिणी रियासतों की आँख का काँटा बना रहा।

शिवाजी का शासन प्रबन्ध—शिवाजी ने केवल साम्राज्य-निर्माण ही नहीं किया वरन् उसके शासन की उचित व्यवस्था भी की। राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। वह सभा युद्ध में लड़ता था, लेकिन सब काम केन्द्रीय कर सकना किसी भी एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता। इसलिए उसने सरकार के ८ उच्च पदाधिकारियों की एक सभा बनाई था जिसे अष्टप्रधान कहते थे। राज्य का काम ३० विभागों में बँटा था और प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष नियुक्त था।

शिवाजी ने अपना साम्राज्य चार भागों में बाँट दिया था। प्रत्येक का शासन एक वाइसराय होता था। उसकी सहायता के लिए अष्टप्रधान होते थे। राजा इन वाइसरायों को अपनी इच्छानुसार बदल सकता था। प्रांत जिला, परगनों और मौजों में विभक्त थे और उनके शासन के लिए छोटे दर्जे के अफसर नियुक्त किये गये थे।

शिवाजी सभी सैनिकों को नगद वेतन देता था और नियुक्ति के समय केवल उनकी योग्यता और सच्चरित्रता का ही ध्यान रखा जाता था। उसने न तो जागीर प्रथा को ही अपनाया और न पद को मौरूसी होने दिया। किसानों के साथ वह बहुत अच्छा व्यवहार करता था। यद्यपि औरंगजेब उपज का ½ लगान के रूप में लेता था किन्तु शिवाजी ने केवल ⅖ ही लिया। पुराने हिन्दू राजाओं की अपेक्षा यह काफी अधिक था लेकिन उस समय के आदर्शों के अनुसार यह अधिक नहीं था। उसने शेरशाह की भाँति सैनिकों को चेतावनी दे रखी थी कि वे कृषि को कोई हानि न पहुँचावें। जो इस आज्ञा का उल्लंघन करता था उसे कठिन दण्ड दिया जाता था।

शिवाजी का राज्य चारों ओर से शत्रुओं से घिरा था जिनसे उसे बराबर लड़ना पड़ता था। इस कारण उसे काफी बड़ी सेना रखनी पड़ती थी। उसकी मृत्यु के समय उसकी सेना में ४०,००० घुड़सवार, १ लाख पैदल और १२६० हाथी थे। इस सेना का काफी बड़ा भाग शिवाजी के साथ रहता था। शेष साम्राज्य के २४० गढ़ों में बँटा रहता था। शिवाजी ने तोपखाना भी तैयार किया था लेकिन यह बहुत अच्छा नहीं था। इसी प्रकार उसका जहाजी बेड़ा भी मजबूत नहीं हो पाया था। सैनिकों में कड़ा अनुशासन रखा जाता था। सेना के साथ

शिवाजी का राज्य
बीजापुर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

पंजाब पर अधिकार	--	१७६० ई०
पानीपत में मराठों की हार		१७६१ ई०
बालाजी बाजीराव की मृत्यु		१७६१ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) शिवाजी के चरित्र पर उनकी माता का क्या प्रभाव पड़ा ?
(२) शिवाजी के शासन प्रबन्ध की विशेषताओं का उल्लेख करो।
(३) शिवाजी को मराठा राज्य का संस्थापक क्यों कहते हैं ?
(४) मराठों में अराजकता फैलने के क्या कारण थे ? बालाजी विश्वनाथ ने उसे बन्द करने के लिए क्या प्रयत्न किये ?
(५) बाजीराव प्रथम ने मराठा राज्य को क्या विशेष लाभ पहुँचाया ?
(६) बालाजी बाजीराव के समय में मराठों ने क्या उन्नति की ?
(७) पानीपत के युद्ध में मराठों की क्यों हार हुई ? उसके क्या परिणाम हुए ?

अध्याय २१

सिक्खों का इतिहास

गुरु नानक—सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु नानक थे। उन्होंने सिक्खों को पहले धार्मिक शिक्षा दी थी। उनका मुख्य उद्देश्य पंजाब के हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाकर वहाँ पर स्थायी शान्ति का प्रसार करना था। गुरु नानक की मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं का प्रचार किया। सिक्ख लोग गुरु नानक को ईश्वर का अवतार मानते हैं और उनका विश्वास है कि उनके बाद उनकी आत्मा दूसरे गुरु में समा गई थी। इस प्रकार क्रम से दूसरे से तीसरे में और तीसरे से चौथे गुरु में यही आत्मा प्रवेश करता रहा और सिक्खों को धर्म का उपदेश देता रहा।

गुरु अर्जुन और जहाँगीर—गुरु नानक के बाद पाँचवें गुरु अर्जुन हुए। उन्होंने १५८१ से १६०७ ई० तक गुरु की गद्दी धारण की। उन्होंने सिक्खों का ध्यान सांसारिक उन्नति की ओर भी आकर्षित किया। उन्होंने उनसे घोड़ों का व्यापार करने के लिए कहा। कुछ लोगों का कहना है कि गुरु ने इस लिए द्वारा

सिक्खो को घुडसवार बनाने का उपाय सोचा था। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि यह धारणा कहाँ तक सत्य है। गुरु अर्जुन साधारणतया धार्मिक प्रकृति के ही व्यक्ति थे। उन्होंने नानकजी का शिक्षाओं वाले पदो को एकत्रित किया। यही सग्रह आदिग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होने अमृतसर को सिक्खो का प्रधान केन्द्र बनाया और सिक्ख सम्प्रदाय के प्रबन्ध के लिए प्रजातन्त्रात्मक सगठन तयार किया। गुरु अर्जुन ने खुसरो को कुछ आर्थिक सहायता दी थी। उसी अपराध पर जहाँगीर ने उनका वध करा दिया था।

गुरु हरगोविन्द—इसी समय से सिक्ख मुगलो से अप्रसन्न हो गये। अर्जुन के उत्तराधिकारी गुरु हरगोविन्द ने सिक्खो में सनिक और राजनीतिक भावनायें भरीं। वह अपने को सच्चा पादशाह कहलाना बुरा नही समझते थे। वह स्वय हथियार बाँधते और राजाओं के से ठाट में रहते थे। उन्होने अपने शिष्यो को मास खान की आज्ञा दी और उनको सनिक शिक्षा देकर एक छोटी-सी सेना भी तयार कर ली। उन्होने अमृतसर में एक किला भी बनवाया और एक छोटे जागीरदार की भाँति रहने लगे। उनके समय से मुगलों और सिक्खों के बीच खुल्लमखुल्ला युद्ध का सूत्रपात हुआ। जहाँगीर उनकी गतिविधि से अप्रसन्न हो गया और उसने उनको कद कर लिया। शाहजहाँ के समय में मुक्त होने पर उन्होने विद्रोह करना आरम्भ किया। उनको अधिक सफलता नही मिली और सन् १६४४ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

गुरु तेगबहादुर—उनके बाद दूसरे प्रसिद्ध गुरु तेगबहादुर (१६६४-१६७५) हुए। पहले औरगजेब उनसे सतुष्ट था और वह उसकी ओर से कई लड़ाइयाँ भी लड़ चुके थे लेकिन बाद में उसे उन पर सन्देह होने लगा। उसने सन् १६७५ ई० में उनको राजधानी में पकड मँगाया और उनसे कहा कि या तो तुम सिद्ध करो कि तुममें ईश्वरीय शक्ति है अन्यथा तुमको प्राण-दण्ड दिया जायगा। गुरु ने कहा कि मैं एक यन्त्र तलवार की मूठ में बाँध देता हूँ। उसका प्रभाव यह होगा कि उस तलवार से आप मेरा वध नही कर सकेंगे। औरगजेब ने उनको वह यन्त्र बाँध देने की आज्ञा दे दी। तलवार का वार होते ही उनका सिर धड से अलग होकर गिर पडा। अब इस मन्त्र को खोलकर देखा गया। उसमें लिखा था सर दाद सिरं न दाद अर्थात् मैंने अपना सर कटवा दिया लेकिन मैंने अपना भेद नही बताया। उनके इस प्रकार मर जाने और बाजीगरों की भाँति अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके प्राण न बचाने का समाचार जब सिक्खो तक पहुँचा तो एक ओर उनको बहुत क्रोध आया और दूसरी ओर उनको अपने गुरुओं पर और भी अधिक विश्वास हो गया।

विशेष कृपापात्र) रखा गया। इस प्रकार सिक्ख को सैनिक जीवन द्वारा धर्म रक्षा की ओर प्रवृत्त किया गया।

मुगलों से युद्ध—गुरु गोविन्द सिंह ने अपने शिष्यों को सैनिक शिक्षा दी और उनकी एक छोटी-सी सेना तैयार की। उसकी संख्या बढ़ाने के लिए उन्होंने कुछ पठान भी रख लिये। उन्होंने कई किले बनवा लिये और फिर मुगलों पर छापा मारने लगे। औरंगजेब ने सरहिन्द के हाकिम को उनके विरुद्ध भेजा। उनकी हार हुई और उन्हें जगलों तथा पहाड़ों में छिपना पड़ा। उसी समय गुरु गोविन्द सिंह ने यह आज्ञा निकाली कि उनकी मृत्यु के बाद गुरु का पद टूट जायगा और जिस स्थान पर पाँच सिक्ख होंगे वहां उनका आत्मा रहेगी। उन पाँचों का निश्चय गुरु का निश्चय होगा। इस प्रकार सिक्खों का छिटफुट विद्रोह जारी रहा। औरंगजेब को मराठों के युद्धों में फँसे रहने के कारण सिक्खों से सन्धि करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कारण उसने गुरु गोविन्द सिंह को दक्षिण बुलाया लेकिन उनके पहुंचने के पहले ही उसका देहान्त हो गया। बहादुरशाह ने गुरु गोविन्द सिंह से संधि कर ली। सन् १७०८ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

१७०८-६४—उनके बाद बंदा बहादुर उनके शिष्यों में प्रधान हो गया। उसने मुगलों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया, लेकिन उसे अधिक सफलता न मिली। सन् १७५० के लगभग जस्सा सिंह प्रसिद्ध नेता हुआ लेकिन उसे भी स्थायी सफलता प्राप्त न हुई। बराबर लड़ाई होती रहने के कारण सिक्खों को तीन लाभ हुए। उनमें से अधिकांश को सैनिक अनुभव प्राप्त हो गया। उनमें कई छोटे बड़े सरदार पैदा हो गये और उनके अधिकार में कई किले आ गये। इन्हीं किलों से निकलकर ये पतनोन्मुख मुगल-साम्राज्य की लाहौर सरहिन्द आदि चौकियों पर आक्रमण किया करते थे। पंजाब पर इस काल में तीन शक्तियों की आँख लगी हुई थी। मुगल वहाँ पर अपना अधिकार बनाये रखने का बराबर प्रयत्न कर रहे थे। अफगानिस्तान का शासक अहमदशाह अब्दाली १७४८ से बराबर युद्ध करता रहता था और पंजाब पर अपना अधिकार जमा रहा था। उधर मराठे भी धावे कर रहे थे और मुगलों तथा अफगानों को निकालकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। ये तीनों ही शक्तियाँ आपस के युद्धों द्वारा कमजोर हो गईं और तब सन् १७६४ ई० में सिक्ख सरदारों ने सम्पूर्ण पंजाब को अपने वश में करने के लिए एक संयुक्त योजना तैयार की। उन्होंने खालसा की पुनः स्थापना की। उसमें सभी सरदारों के सैनिक सम्मिलित थे। खालसा ने गुरु का स्थान

से लिया और खालसा की ओर से एक नया सिक्का भी चलाया गया जिसके एक ओर जो लेख था उसका अर्थ है 'गुरु गोविंद सिंह ने गुरु नानक से देग (यश), तेग और फतह पाई थी'। खालसा एक प्रकार की पंचायत थी। इसका मुख्य उद्देश्य बाह्य शत्रुओं का मुकाबला करना था। खालसा के संगठन का फल यह हुआ कि झेलम नदी से लेकर सतलज और सतलज तथा यमुना के बीच का बहुत-सा भाग सिक्खों के अधिकार में आ गया। खालसा की ओर से इस राज्य के शासन के लिए कुछ सरदार नियुक्त कर लिये गये। ये सरदार उस समय १२ थे और उनमें से प्रत्येक १ मिस्ल का नेता था। इन मिस्लों के नाम निम्नलिखित थे—

(१) फुलकियाँ, (२) अहलूवालिया (३) भंगी (४) कन्हैया (५) रामगढ़िया (६) सिंहपुरिया (७) क्रोड़सिंहिया (८) निशानिया, (९) सुकरचकिया (१०) डल्लेवाल (११) नकाई और (१२) शहीद।

इस भाँति मुगलों की धार्मिक कट्टरता की नीति ने सिक्खों का एक धार्मिक सम्प्रदाय से सैनिक शक्ति में परिणत कर दिया और पंजाब में उनका अधिकार जम गया। अब केवल ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उनको मिलाकर उनकी शक्ति का उचित उपयोग करता।

मुख्य तिथियाँ

गुरु अर्जुन की मृत्यु	१६०६ ई०
गुरु हरगोविन्द की मृत्यु	१६४४ ई०
तेगबहादुर का गुरु होना	१६६४ ई०
औरंगजेब द्वारा तेगबहादुर को मृत्युदण्ड	१६७५ ई०
गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु	१७०८ ई०
जस्सा सिंह का प्रभुत्व	१७५० ई० के निकट
खालसा की स्थापना और पंजाब पर सिक्खों का अधिकार	१७६४ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) गुरु अर्जुन ने सिक्ख सम्प्रदाय की उन्नति के लिए क्या काम किये?
(२) मुगलों और सिक्खों में झगड़ा क्यों बढ़ता गया?
(३) गुरु तेगबहादुर की मृत्यु का सिक्खों पर क्या प्रभाव पड़ा?
(४) गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों में क्या सुधार किये?
(५) गुरु गोविन्द सिंह ने गुरु-परम्परा क्यों तोड़ दी?
(६) पंजाब में सिक्खों का राज्य स्थापित होने में किन बातों से सहायता मिली?

अध्याय २२

मध्यकालीन भारत की संस्कृति और कला

राजनीतिक दशा—मुहम्मद गोरी के हमले के बाद भारतीय शासन-व्यवस्था में एक नई संस्कृति की छाप लगी। दिल्ली के सुलतानों ने अधिकतर बातें मुस्लिम प्रदेशों के अनुसार चलाई यद्यपि कुछ बातें उन्हें यहाँ की भी माननी पड़ी। इस प्रकार जो शासन-व्यवस्था बना उसमें भारतीय तथा मुस्लिम-संस्कृति का सम्मिश्रण है। मुगलों के आने के पूर्व शासन का स्वरूप सैनिक था और सेना की शक्ति पर ही राजा का दबाव और अधिकार निर्भर करता था। मुसलमानों की संख्या कम होने और हिन्दुओं के विद्रोह करते रहने के कारण राजकर्मचारी नगरों तथा दुर्गों में ही रहकर प्रजा को वश में रखने का प्रयत्न करते थे और गाँवों में बहुत कम अफसर नियुक्त किये जाते थे। शासकों की धार्मिक नीति बहुधा संकीर्ण होती थी। हिन्दुओं को जजिया तथा अन्य धार्मिक कर देने पड़ते थे और यद्यपि मुहम्मद तुगलक के समय में कुछ हिन्दुओं को बड़े बड़े इलाकों का शासन भी सौंपा गया परन्तु साधारणतः हिन्दू किसी ऊँचे पद पर नहीं रखे जाते थे। बलबन ने नये मुस्लिमों को भी शासन से प्रायः अलग रखा लेकिन खिलजियों के समय से यह नीति बदल गई और धर्मपरिवर्तन करनेवाले हिन्दू काफूर और खुसरो की भाँति प्रधान सेनापति और सुलतान तथा फीरोज के समय में खानजहाँ मकबूल की तरह प्रधान मन्त्री तक हो सकते थे। इस धार्मिक पक्षपात की नीति के कारण हिन्दू जनता की सहानुभूति प्राप्त करना बहुत कठिन था। फीरोज और सिकन्दर की नीति से जनता में असन्तोष और भी बढ़ा। मुगलों के समय में इस स्थिति में परिवर्तन हो गया। जनता तथा सम्राट दोनों का ही दृष्टिकोण धार्मिक के स्थान पर राजनीतिक अधिक होने लगा। राणा साँगा के साथ मिलकर हसन खाँ मेवाती ने बाबर का विरोध किया, हुमायूँ ने बहादुरशाह के विरुद्ध मेवाड़ की सहायता का वचन दिया और अकबर के समय में तो सारा भेदभाव ही मिट गया और धर्म का ध्यान न रखकर योग्यता के अनुसार सभी को ऊँचे पद मिलने लगे। इस नीति का फल यह हुआ कि मुगल शासक राष्ट्रीय सम्राट समझा जाने लगा और जनता की श्रद्धा इतनी बढ़ गई कि राजधानी के लोग बिना उसका दर्शन किये कुछ खान-पीते नहीं थे। प्राचीन

योगिता थी यद्यपि उनके कारण यात्रियों और व्यापारियों की भी सुविधा बढ़ गई।

आर्थिक दशा—मुगलों के आने से पूर्व देश में प्रायः अशान्ति रही। राजवंशों का बनना बिगड़ना साम्राज्य का घटना-बढ़ना विद्रोहों का ज्वार भाटा, साधारण जनता और शासक-वर्ग को शान्ति का जीवन व्यतीत करने का अवसर नहीं देता था। इस कारण व्यापार में काफी रुकावट पड़ती थी। मार्ग में चोरी डकैती का भय भी कम नहीं था। राजकर्मचारी भी व्यापारियों का माल बिना दाम दिये अथवा कम दाम देकर छीन लेने में हिचकते नहीं थे। इस कारण व्यापारी वर्ग को १ वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी के आरम्भ तक काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और उनकी आर्थिक दशा उतनी अच्छी नहीं थी जितनी मुगलों के समय में हुई। मुगलों ने अराजकता का अन्त करके एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार स्थापित की और सारे साम्राज्य में गुप्तचरों का एक जाल बिछा दिया। इस कारण व्यापारियों की सुविधायें काफी बढ़ गईं। दूसरे दरबार के लोग और उनकी देखा-देखी छोटे पदों वाले अमीर और सरदार बड़े ठाट-बाट से रहते थे। ये सुन्दर सूती ऊनी और रेशमी कपड़ों का उपयोग करते थे और भाँति भाँति के गहने तथा जवाहिरात पहनते थे। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों से तमाम विलासिता की सामग्री आती थी जिसका मुँह-माँगा दाम मिलता था। यूरोप अफ्रीका के पूर्वी समुद्रतट, मिस्र, अरब, मध्य एशिया ब्रह्मा, लंका स्याम तथा पूर्वी-द्वीप-समूह से बहुत अधिक व्यापार होता था। सूरत, भड़ौंच कालीकट गोआ, मछलीपट्टम आदि प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। निर्यात के सामान में सूती, ऊनी रेशमी कपड़, सोने-चाँदी का सामान, अफीम नील, मिर्च लकड़ी और पत्थर की सुन्दर चीजें मुख्य थीं। बाहर से धातुएँ मोती शराब, मेवे घोड़े लड़ाई का सामान और जहाऊ चीजें अधिक आता था। इस व्यापार के कारण विदेशों का बहुत-सा धन भारत आता था। कुछ मठ बहुत धनी थे। १७ वीं सदी में सूरत का वीरजी वोरह्वा संसार में सबसे अधिक धनी समझा जाता था। जहाँगीर के समय के बाद विलासिता और सज-धज की मात्रा और भी बढ़ गई। उच्च वर्ग के मुट्ठी भर लोगों का जीवन बहुत सुखमय था। बहुत से कारीगरों की रोजी का एकमात्र साधन इन लोगों की फिजूल-खर्ची और तड़क भड़क ही थी। परन्तु साधारण जनता खेती से पालन पोषण करती था। लगान तथा अन्य करों के बोझ के कारण उसकी दशा प्रारम्भिक सदियों में बहुत खराब रही, यहाँ तक कि हिन्दुओं के घरों में सोना-चाँदी देखने को भी नहीं

शालीमार उद्यान लाहौर (काश्मीर)

रहता था। मुगलो के समय म स्थिति कुछ सुधर गई लेकिन अकाल पडने पर अब भी कृषक कुत्ते-बिल्ली की मौत मरते थे और कभी-कभी मनुष्य मनुष्य को खाने लगता था।

सामाजिक दशा—मुसलमाना के आगमन के बाद कुछ नये रीति-रिवाज भी चल पडे। हिन्दुआ में छुआछूत का प्रचार पहले से अधिक हो गया। स्त्रियों की दशा बराबर बिगडती गई। बाल-विवाह भी अब अधिक होने लगे और पर्दा प्रथा बढ़ गई। मुसलमानों में पर्दे की प्रथा अधिक प्रबल थी। अमीरों में बहु विवाह का चलन पहले से अधिक हो गया और हिन्दुओं में विधवा विवाह की प्रथा न होने के कारण सती प्रथा का रिवाज बना रहा, यद्यपि मुहम्मद तुगलक और अकबर ने इस रोकने का प्रयत्न किया। मुगल राजकुमारा की पत्नियां और दासियां की संख्या सैकडा-हजारों तक पहुँच जाती थी, परन्तु राजकुमारियां को बहुधा अविवाहित ही रहना पडता था। स्त्री-पुरुषा का क्रय विक्रय प्रत्येक नगर में होता था। गाँव भी इस दास प्रथा से अछूते नहीं थे। सभी धनी लोगा के पास गुलाम रहते थे और उच्च पदाधिकारियां तथा सुल ताना के यहाँ तो उनकी संख्या बहुत ही अधिक होती थी। फीरोज तुगलक के १ ८० ००० गुलामा का उल्लेख पहले किया जा चुका है। साधारणत गुलामों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था, उन्हें खाने-पहनने का कष्ट नही रहता था और वह घर के लोगों की ही भांति रख जाते थे। उनको उचित शिक्षा भी दी जाती थी और कुछ लोग अपने गुलामा को अपने बेटा से भी बढ़कर मानते थे जैसे अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद गोरी। गुलामा में स कुछ इतने योग्य निकले कि व सुलतान क प॰ तक पहुँच जाते थे। प्राय बडे आदमी का गुलाम होना कोई अपमान की बात नहीं समझी जाती थी। पर्दा प्रथा और बड रनिवासा के फलस्वरूप इस काल में हिजडो की संख्या भी बढ़न लगी। ये महला के अन्दर नियुक्त किये जाते थे और अन्य कामा के अतिरिक्त गाने-बजाने तथा मन बहलाने का काम करते थे। इस काल में संगीत और नृत्य भले घर की स्त्रियां के लिए अपमानजनक समझा जाने लगा और यह कलायें प्रधानत दास-दासियां और पेशेवर नर्तकियां के ऊपर आश्रित रह गइ। अमीरों में शराब, जुआ, अफीम, भाँग आदि का काफी प्रचार था और उनका नैतिक जीवन बहुधा गिरा हुआ होता था। उनमें से अधिकाश का उद्देश्य अधिक-से-अधिक आनंद उठाने का रहता था यद्यपि उनमें कुछ लोग बहुत सच्चरित्र धर्मात्मा और उदार भी होते थे। समाज में अन्ध-विश्वास बहुत था। तीर्थ-यात्रा साधु-सन्तों की पूजा, मन्त्रों,

दुर्गा विग्रह (पत्थर)

मुगल चित्रकला (ग्रकबर)

लेकिन सभी हिन्दू ऐसे कट्टर नहीं थे उनमें कुछ ऐसे सत और महात्मा भी हुए जिन्होने पराजित हिन्दू जनता में फिर उत्साह भरने का प्रयत्न किया और जो उनको नवागंतुक मुसलमान से मिलाकर भारतीय एकता की स्थापना करना चाहते थे। जिन सतो ने हिन्दुओ के ऊंच-नीच के भेदों को दूर करके उन्हें सगठित करने का प्रयत्न किया उनमें रामानुज माधवाचार्य रामानद, तुकाराम, चैतन्य, वल्लभाचार्य, दादू एकनाथ रामदास मुख्य हैं। इन सभी महात्माओ ने भगवान् की भक्ति पर विशेष जोर दिया और कहा कि भगवान् की दृष्टि में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं है। चाण्डाल भक्त पाखण्डी ब्राह्मण से कहीं श्रेष्ठ है। भगवान् केवल सच्ची भक्ति चाहते हैं। भक्त इस जीवन में शान्ति और परलोक में भगवान् का साहचर्य प्राप्त करेगा। इन महात्माओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी हुए जिन्होंने हिन्दुओ तथा मुसलमानों को मिलाने का प्रयत्न किया और उनके दोषो की ओर कटाक्ष किया। ऐसे सन्तो में कबीर और नानक मुख्य हैं, यद्यपि चैतन्य और वल्लभाचार्य ने भी इसमें योग दिया। इनके शिष्यो में हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ही थे। आत्मा की शुद्धि और भगवान् से सच्चा प्रेम वास्तविक शान्ति का साधन बताया गया। कबीर ने मुल्लाओ और पण्डितो दोनो की ही निन्दा की और कहा कि वे धर्म का मर्म नहीं समझते। भगवान्, राम, रहीम कृष्ण, कृष्ण अल्लाह सब एक ही सत्ता के अलग अलग नाम हैं। वह न मन्दिर में छिपकर बैठा है और न काबे में। न उसे चिल्लाकर पुकारने की जरूरत है और न उसका नाम को जपने के लिए माला की आवश्यकता है। इन महात्माओ की और सूफी सन्तों की शिक्षा का प्रभाव यह हुआ कि दोनो ही धर्मों के समझदार व्यक्ति एक दूसरे के बहुत निकट आ गये और आपसी विद्वेष तथा घृणा का अन्त हो गया। अकबर ऐसे शासको ने भी इस कार्य में सहयोग किया और 'दीन इलाही' चलाया तथा धार्मिक विचार विनिमय द्वारा एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया।

साहित्य की उन्नति—बहुत से साधुओ ने अपने मत का प्रचार भजनों, गीतों पद्यों आदि के द्वारा किया। प्रार्थना और पूजा के लिए भी साधारण बोलचाल की भाषा में अनेक रचनायें की गई। इस प्रकार धार्मिक विकास और सुधार के फलस्वरूप साहित्य का निर्माण हुआ। इसके अतिरिक्त राज-दरबार में भी साहित्यिकों का बहुधा मान होता था। इस कारण इस युग में भी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। हिन्दुओं के साधारण स्वभाव के प्रतिकूल मुस्लिम सम्राटों ने अपने राजवंशो का इतिहास लिखवाने का विशेष ध्यान रखा। राज-दरबार की

भूपण, लाल आदि ने अपनी कृतियों से हिन्दी-साहित्य को अलंकृत किया। सूर, तुलसी और जायसी की रचनायें धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत हैं। तुलसी का रामचरितमानस हिन्दुओं के लिए ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों की कुरान की तरह पवित्र बन गया है। केशव, बिहारी देव और मतिराम मुगलकाल के वैभव के प्रतीक हैं उनकी रचनायें शृंगार रस में सनी हैं और उनमें विलासिता की स्पष्ट छाप है। भूषण और लाल ने राष्ट्रीय जोश पैदा करने का प्रयत्न किया और वीर रस की कवितायें कीं।

अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी इसी प्रकार रचनायें हुईं। बंगला, गुजराती, मराठी राजस्थानी मैथिली तमिल तेलुगु आदि में धार्मिक तथा अन्य प्रकार के अनेक ग्रन्थ रचे गये। दक्षिण की मुसलमान रियासतों के प्रोत्साहन से उर्दू-साहित्य का भी प्रादुर्भाव हुआ। उर्दू के लेखकों में दक्षिण में वली और नुसरती और उत्तर भारत में सौदा और आतिश ने अच्छी रचनायें कीं।

कला में उन्नति (१) संगीत—साहित्य की उन्नति के साथ-साथ विभिन्न कलाओं में भी उन्नति हुई। धर्म और दरबार के प्रभाव से जिस प्रकार साहित्य की उन्नति हुई उसी प्रकार संगीत की उन्नति में भी इन दोनों का ही हाथ है। वैष्णव तथा अन्य भक्ति-प्रधान सम्प्रदायों में पद और भजन गान का बहुत प्रचार हुआ। गोविन्द स्वामी जो विट्ठलदास के शिष्यों में से थे बहुत उच्च कोटि के गायक थे। बैजू बावरा तानसेन तथा बाजबहादुर अन्य संगीतज्ञ थे। मुगलकाल में संगीत की भी बहुत उन्नति हुई यद्यपि औरंगजेब ने इसको पसन्द नहीं किया।

(२) शिल्पकला—इस काल में अनेक इमारतें भी बनी जिनमें से अधिकांश अभी तक मौजूद हैं। कुतुबमीनार अलाई दिन की बनवाई अलाई दरवाजा गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा और दिल्ली का पुराना किला दिल्ली के सुलतानों की इमारतों में मुख्य हैं। इन इमारतों में एक नई शैली के विकास का क्रम दिखाई पड़ता है और उस शैली पर इस्लाम धर्म की स्पष्ट छाप है। इनमें महराब और गुम्बद का प्रयोग अधिक है। सजावट नहीं के बराबर है। जो कुछ है भी वह या तो फूल-पत्तियों विभिन्न प्रकार से लिखी हुई अरबी या फारसी रेखागणित के मिश्रित चित्रों या सफेद और लाल पत्थर को साथ-साथ लगाने के द्वारा की गई है। मस्जिदें प्रायः बहुत बड़ी हैं ताकि अधिक-से अधिक व्यक्ति एक-साथ नमाज पढ़ सकें। १५वीं शताब्दी में प्रान्तीय रियासतों में विभिन्न शैलियों का विकास हुआ। जैसे गुजरात में जालीदार खिड़कियों और बावलियाँ बनाने में बहुत कुशलता दिखाई गई है बंगाल में रंगीन ईंटों और महराबदार छतों का प्रयोग

इस प्रवृत्ति का फल यह हुआ कि कुछ लेखकों ने स्वतन्त्र इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे। पूर्व-मुगलकालीन इतिहास-ग्रन्थों के रचयिताओं में हसन निजामी, मिनहाज-उस्सिराज जियाउद्दीन बरनी, शम्स सिराज अफीफ और अमीर खुसरो अधिक प्रसिद्ध हैं। इतिहास-ग्रन्थों में राजनीतिक वर्णनों की ही प्रधानता है। दूसरे, उनमें हिन्दुओं के प्रति घृणा की व आती है और सुल्तानों के कार्यों को आवश्य कता से अधिक धार्मिक रंग में रँगा गया है। मुगलकालीन इतिहास-ग्रन्थों के रचयिताओं में गुलबदन बेगम, अब्दुल कादिर बदायूँनी, अबुल फज्ल, अब्बास खाँ सरवानी, हिन्दू बेग फिरिश्ता, अब्दुल हमीद लाहौरी, खाफी खाँ आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई ग्रन्थों में जनता के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। इसलिए इनकी उपयोगिता पहले के ग्रन्थों से अधिक है। कुछ जीवन चरित्र और पत्रों के संग्रह भी हैं जो इतिहास के लिए बहुत उपयोगी हैं। फीरोज, बाबर और जहाँगीर की आत्मकथायें तथा औरंगजेब के पत्र इनमें विशेष महत्त्व के हैं। यह सभी ग्रन्थ फारसी में हैं, केवल बाबर की आत्मकथा तुर्की में है।

इतिहास-ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में अनेक संस्कृत ग्रन्थों का भी फारसी में अनुवाद किया गया। इस कार्य के लिए भी मुख्य प्रेरणा शासकों के ही ओर से मिली। फीरोज तुगलक, अकबर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब के समय में कई प्राचीन ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। महाभारत, रामायण, भगवद्गीता, लीलावती, अथर्ववेद और योगवाशिष्ठ उनमें मुख्य हैं। जौनपुर, बंगाल, गुजरात के शासकों की प्रेरणा से कुछ ग्रन्थों का प्रान्तीय भाषाओं में भी अनुवाद किया गया। इस भाँति प्राचीन भारतीयों का सञ्चित ज्ञान साधारण जनता के लिए उपलब्ध हो गया और मुसलमानों को हिन्दुओं के मनोभावों और विचारों को समझने में सुविधा हुई।

इनके अतिरिक्त इस काल में फारसी के कई कवि भी हुए जिन्होंने विभिन्न प्रकार की रचनायें कीं। अमीर खुसरो, मीरहसन देहलवी, बद्र चच, उर्फी, नजीरी, फैजी और गिजाली इन कवियों में अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने गजल अर्थात् मुक्तक छन्द भी लिखे और प्रबन्ध-काव्यों (मसनवी) की भी रचना की।

फारसी साहित्य के समान भारतीय भाषाओं में भी उच्च कोटि के साहित्य-कार उत्पन्न हुए। हिन्दी में अमीर खुसरो की पहेलियाँ, कबीर के दोहे और साखियाँ तथा दादू और रामानन्द के पद प्रारम्भिक रचनायें हैं। इनके बाद सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, केशवदास, विहारी, देव, मतिराम,

भूषण, लाल आदि ने अपनी कृतियों से हिन्दी-साहित्य को अलंकृत किया। सूर, तुलसी और जायसी की रचनायें धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत हैं। तुलसी का रामचरितमानस हिन्दुओं के लिए ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों की कुरान की तरह पवित्र बन गया है। केशव, बिहारी, देव और मतिराम मुगलकाल के वैभव के प्रतीक हैं उनकी रचनायें शृंगार रस में सनी हैं और उनमें विलासिता की स्पष्ट छाप है। भूषण और लाल ने राष्ट्रीय जोश पैदा करने का प्रयत्न किया और वीर रस की कवितायें की।

अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी इसी प्रकार रचनायें हुई। बंगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, मैथिली, तमिल, तेलुगु आदि में धार्मिक तथा अन्य प्रकार के अनेक ग्रन्थ रच गये। दक्षिण की मुसलमान रियासतों के प्रोत्साहन से उर्दू-साहित्य का भी प्रादुर्भाव हुआ। उर्दू के लेखकों में दक्षिण में वली और नुसरती और उत्तर भारत में सौदा और आतिश ने अच्छी रचनायें की।

कला में उन्नति (१) संगीत—साहित्य की उन्नति के साथ-साथ विभिन्न कलाओं में भी उन्नति हुई। धर्म और दरबार के प्रभाव से जिस प्रकार साहित्य की उन्नति हुई उसी प्रकार संगीत की उन्नति में भी इन दोनों का ही हाथ है। वैष्णव तथा अन्य भक्ति-प्रधान सम्प्रदायों में परकार भजन गान का बहुत प्रचार हुआ। गोविन्द स्वामी और विट्ठलदास के शिष्यों में से वे बहुत उच्च कोटि के गायक थे। बैजू बावरा, तानसेन तथा बाजबहादुर अन्य संगीतज्ञ थे। मुगलकाल में संगीत की भी बहुत उन्नति हुई यद्यपि औरंगजेब ने इसको पसन्द नहीं किया।

(२) शिल्पकला—इस काल में अनेक इमारतें भी बनी जिनमें से अधिकांश अभी तक मौजूद हैं। कुतुबमीनार अलाई मिनार का आपरा अलाई दरवाजा, गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा और दिल्ली का पुराना किला दिल्ली के सुलतानों की इमारतों में मुख्य हैं। इन इमारतों में एक नई शैली के विकास का क्रम दिखाई पड़ता है और उस शैली पर इस्लाम धर्म की स्पष्ट छाप है। इनमें महराब और गुम्बद का प्रयोग अधिक है। सजावट नहीं के बराबर है। जो कुछ है भी वह या तो फूल-पत्तियों, विभिन्न प्रकार से लिखी हुई अरबी या फारसी रेखागणित के मिश्रित चित्रों या सफेद और लाल पत्थर को साथ-साथ लगाने के द्वारा की गई है। मस्जिदें प्रायः बहुत बड़ी हैं ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्ति एक-साथ नमाज पढ़ सकें। १५वीं शताब्दी में प्रान्तीय रियासतों में विभिन्न शैलियों का विकास हुआ। जैसे गुजरात में जालीदार खिड़कियों और बावलियाँ बनाने में बहुत कुशलता दिखाई गई है। बंगाल में रंगीन ईंटों और महराबदार छतों का प्रयोग

ताजमहल (आगरा)

किया गया और जौनपुर में विशाल मस्जिदों के मुखद्वारा उन्हो के अनुरूप बड़े बनाये गये लेकिन उनमें नकली अथवा वास्तविक खिडकियाँ अथवा छोटे दरवाजा की कई पक्तियाँ बनाई गई। जिस प्रकार इन सभी रियासतो को मिलाकर एक विशाल मुगल-साम्राज्य बना उसी प्रकार इन विभिन्न शलियो के सम्मिश्रण से एक विशिष्ट मुगल-शैली की उत्पत्ति हुई। १६वी शताब्दी की प्रथम प्रसिद्ध इमारत शेरशाह का मकबरा है जो सहसराम में है। हुमायूँ का मकबरा भी शैली के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उसके महराब और उसका गुम्बद पहले वालो से अधिक सुन्दर लगते हैं। किनारो के मीनार संगमरमर के साथ रंगीन पत्थर का लगाना और आसपास एक बाग का होना फारस की शैली के अनुकरण प्रतीत होते है। अकबर की इमारतो में कई महत्त्वपूर्ण है। फतहपुर सीकरी के महल हिंदू-मुस्लिम शैली के सामञ्जस्य के सुन्दर नमूने हैं। जामा मस्जिद और बुलन्द दरवाजा बहुत बड़ी इमारतो में से हैं। इलाहाबाद का किला और सिकन्दर का मकबरा भी दर्शनीय है। जहाँगीर के समय में एतमादुद्दौला का मकबरा पच्चीकारी के काम के लिए प्रसिद्ध है इस पच्चीकारी के काम का सर्वोत्कृष्ट नमूना दिल्ली का दीवाने खास और आगरे का ताजमहल है। शाहजहाँ के कलाकारो ने पत्थर पर चित्रकारी का काम कर दिखाया है। ताजमहल की सुन्दरता और ख्याति उसकी पच्चीकारी पर ही नही वरन् उसकी सर्वाङ्ग कलात्मकता पर निर्भर है। उसके आसपास का बाग नहरें दूसरी छोटी इमारतें उसके गुम्बद और महराब उसके भीतर की जाली लिखावट का काम सभी कुछ उसको शिल्पकला का एक अनूठा रत्न बनाने में सहायक होते है। शाहजहाँ की जामा मस्जिद और मोती मस्जिद भी कला के सुन्दर नमूने है। मुगलो के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो ने भी अनेक सुन्दर इमारतें बनवाई। उनमें वृन्दावन, मथुरा, एलौरा के हिन्दू मन्दिर अमृतसर का सिक्ख-मन्दिर बीरसिंहदेव का महल ग्वालियर का दरबार भवन और बीजापुर ने आदिलशाह का मकबरा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(३) चित्रकारी—शिल्पकला के अतिरिक्त चित्रकारी में भी काफी उन्नति की गई। मुगलों से पहले के सुलतान चित्रकारी का विरोध करते थे, क्योंकि वह इसे इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध समझते थे। हिन्दुओं ने भी इस काल में विशेष चित्रकारी नहीं की। कुछ जैन-पुस्तकों में भोंडे चित्र्य के चित्र मिलते हैं। बाबर के ध्यान में आने से चित्रकारी की ओर ध्यान गया। फारस से लौटते समय हुमायूँ अपने साथ कुछ चित्रकार भी लाया था। मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस्समद उनमें बहुत श्रेष्ठ चित्रकार थे। अकबर ने उन्हीं से चित्रकारी सीखी और

मुगल पच्चीकारी (शाहजहाँ)

गोल गुम्बज (बीजापुर)

उसे ऐसी रुचि हो गई कि उसने इस कला की उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न किया। सैयद अली और अब्दुस्समद चित्रकला के अध्यक्ष बना दिये गये और उनके पास होनहार व्यक्ति चित्रकारी सीखने के लिए रख दिये गये। उन्होंने १०० से अधिक अच्छे चित्रकार तैयार कर दिये। सम्राट स्वयं उनका काम देखता था और उनकी कृतियों के अनुसार उनको पुरस्कार देता था। जल्दी और अच्छे से अच्छा काम कराने के लिए वह एक ही चित्र के विभिन्न अंग उन अंगों के सर्वोत्तम कलाकारों से बनवा लेता था। अकबर के चित्रकारों में फर्रुखबेग, दशवंत, बसावन, जगन्नाथ और सांवलदास ने बहुत अच्छे चित्र बनाये हैं। इन लोगों का अधिकांश काम चंगेजनामा, जफरनामा, रज्मनामा (महाभारत) रामायण, नलदमन, कालिया दमन को सचित्र बनाने में हुआ। अकबर के बाद उसके बेटे जहाँगीर के समय में चित्रकला ने अधिक उन्नति की। जहाँगीर को सुन्दर पक्षियों, सुन्दर दृश्यों, मुख्य व्यक्तियों और विशेष अवसरों के सजीव चित्र एकत्रित करने का बड़ा शौक था। उसके समय के प्रमुख चित्रकार फर्रुखबेग, मुहम्मद नादिर, आकारिजा, बिशनदास, मनोहर और तुलसी थे। इन चित्रकारों ने नये रंगों की ईजाद में आकृति ठीक बनाने में और सुन्दर दृश्यों को चित्र खींचने में विशेष सफलता प्राप्त की। शाहजहाँ के समय में सजावट का काम बढ़ गया। सुनहले रंग का काफी प्रयोग किया गया दूसरे रंग भी अधिक चटकीले बनाये गये और चित्रों के किनारे खूब सजाये गये। औरंगजेब ने चित्रकारी भी बन्द-सी करा दी लेकिन अन्य व्यक्तियों ने चित्रकारी को प्रोत्साहन दिया और अमीरों तथा शाहजादों के उद्योग से चित्रकला जीवित बनी रही।

(४) अन्य कलायें—इन बड़ी कलाओं के अतिरिक्त दूसरी छोटी कलायें भी थीं जिनकी काफी उन्नति हो गई थी। इस समय में बहुत बारीक और बढ़िया कपड़े बनते थे। सोने-चाँदी के तारों की कढ़ाई और रत्न आदि बनाने में भी बहुत दक्षता दिखाई गई। सोने-चाँदी के कलमी आभूषण, सुन्दर सिक्के, बरतन और अन्य वस्तुएँ भी खूब बनाते थीं। शाहजहाँ का तख्त-ए-ताऊस इस कला का अनुपम सुन्दर नमूना है। लकड़ी और पत्थर में नक्काशी, सुन्दर और पच्चीकारी का काम भी बहुत ऊँचे दर्जे का होता था।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि मध्यकालीन भारत का इतिहास केवल मुगल-साम्राज्य के विस्तार और वैभव के लिए ही नहीं वरन् एक नई संस्कृति और कला की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए भी प्रसिद्ध है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) दिल्ली के सुलतानो की शासन-नीति में क्या दोष थे ? मुगल सम्राट् उन दोषो को हटाने म कहाँ तक सफल हुए ?

(२) उपजाऊ मिट्टी और परिश्रमी खेतिहर होने पर भी भारतीय जनता की आर्थिक दशा खराब क्या थी ?

(३) खेती व अतिरिक्त जाविका कमाने के दूसरे क्या साधन थे ? इन वर्गो की आर्थिक दशा कैसी थी ?

(४) मध्यकालीन समाज की क्या मुख्य विशेषताएँ थी ?

(५) भक्तिमाग का क्या तात्पय है ? इस्लाम और हिन्दू धम क सम्पक का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पडा ?

(६) फारसी साहित्य म किस प्रकार की रचनाये हुई ? प्रत्येक क प्रतिनिधि लेखका क नाम बताओ।

(७) प्रान्तीय भाषाओ के साहित्य की उन्नति के क्या कारण थे ?

(८) मध्यकालान भारत की प्रसिद्ध इमारतो म से कुछ क नाम बताओ और समझाओ कि वे क्या प्रसिद्ध हैं।

(९) मुगल-काल के पहले के चित्र इतने कम और निम्न कोटि क क्या हैं ? मुगल-काल म चित्रकाल म क्या उन्नति हुई ?

(१०) औरगजेब की धार्मिकता का कलाओ पर क्या प्रभाव पडा ?

अध्याय २३

कर्नाटक के युद्ध और अंग्रेजों की विजय

पुराने मार्गों का बन्द होना—रोम, वेनिस और जेनोआ आदि के व्यापारी बहुत पुराने जमाने से हमारे देश से व्यापार किया करते थे और उनके कारण भारतवर्ष में बहुत धन आया करता था। इस्लाम की उन्नति होने पर अरबों ने यह सब व्यापार अपने हाथ में ले लिया और उनका पूरब की ओर आना बन्द कर दिया। ईसाइयों और मुसलमानों में सदियों तक धर्मयुद्ध चलते रहे। इनके कारण आपस का वैमनस्य और भी बढ़ गया। लूटना, कत्ल कर देना, दास बना लेना अथवा जबरदस्ती धर्म बदलवा लेना आये दिन की घटनायें हो गई। फलतः यूरोपवासियों के लिए रूम सागर तथा लाल सागर के मार्ग से अथवा स्थल के मार्ग से भारत आ सकना असंभव हो गया।

नये मार्गों की खोज—अस्तु, भारत के लिए नये मार्ग का खोजना आरम्भ हुआ। पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण की ओर से अनेक नाविकों ने भारत तक पहुँचना चाहा। इसमें सैकड़ों साहसी व्यक्तियों की जानें गईं किन्तु १५ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक लाभ कुछ न हुआ। आखिरकार पुर्तगाल निवासी वास्को-डि-गामा दक्षिण अफ्रीका के छोर को पा गया। अब भारत आने की आशा बढ़ गई। इसलिए उसका नाम उत्तमाशा अन्तरीप रक्खा। वह उत्तर-पूरब की ओर बढ़ा और सन् १४९८ ई० में उसका जहाज कालीकट के बन्दरगाह पर जा लगा। भारत आने के लिए नया मार्ग मिल गया। कालीकट के जमोरिन ने पुर्तगालियों को व्यापार करने की अनुमति दे दी।

पुर्तगाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी—इस आशा से पुर्तगालियों ने अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी नौ-सेना की शक्ति से अरबों का भारत आना बन्द कर दिया। पोप की आज्ञा द्वारा इंगलैण्ड तथा यूरोपीय व्यापारियों को भारत आने से रोक दिया। इस प्रकार उन्हें भारतीय व्यापार में एकाधिकार प्राप्त हो गया। उनकी अनेक कोठियाँ बन गयीं। स्थान-स्थान पर उनको आवभगत से बुलाया गया और वे मालामाल होने लगे। १५१० ई० में उन्होंने गोआ को राजधानी बनाया और वे भारतीय साम्राज्य स्थापित करने के

मनसूबे बाँधने लगे। उन्होंने तुलगक वंश के पतन के बाद की अराजकता से लाभ उठाया भारतीय नौ-सेनाओं को पनपने ही नहीं दिया और मुसलमानों पर अत्याचार करके हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त करनी चाही। लेकिन उनकी ज्यादतियों ने उनके विनाश के साधन उत्पन्न कर दिये। भारतीय मुस्लिम राज्य उनको निकालने पर उद्यत हो गये। यूरोप के प्रोटेस्टेंट राष्ट्र तथा इंगलैण्ड और हालैण्ड पोप की आज्ञा की परवाह न करके भारत आने लगे। सन् १५८० में स्पेन ने पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया और इस भाँति स्पेन के शत्रु उसके भी शत्रु हो गये। फलत पुर्तगाली व्यापार डच और अंग्रेजों के हाथ में चला गया। पुर्तगाल का अधिकार केवल गोआ डामन और ड्यू पर रह गया।

डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी—पुर्तगालियों की शक्ति नष्ट करने में हालैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बहुत हाथ था। उसने पूर्वी द्वीपसमूह के मसाले के टापुओं का व्यापार अपने अधिकार में कर लिया और मुगलों की शक्ति से प्रभावित होकर भारत की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। मसाले के टापुओं के व्यापार में उनको बहुत लाभ हुआ। १७ वीं तथा १८ वीं सदी में हालैण्ड को अनेक युद्ध करने पड़े। इस कारण से भी वह भारत में प्रभाव नहीं बढ़ा सका।

फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी—डच लोगों के अतिरिक्त फ्रांसीसी भी भारत में व्यापार करने आये। यद्यपि यह कम्पनी पहले ही बन चुकी थी परन्तु इसने सन् १६६४ के बाद भारतीय व्यापार की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके बाद भी इसे अपने देश के शासकों से उचित प्रोत्साहन नहीं मिला। इसके विपरीत उसे उनकी लड़ाइयों से क्षति उठानी पड़ी। इस कम्पनी का सबसे अधिक विरोध अंग्रेजों की ओर से हुआ जिसका वर्णन हम इस अध्याय में करेंगे। उसके पहले अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उन्नति पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उन्नति—अकबर की समकालीन महारानी एलिजाबेथ ने सन १६०० ई० में एक ईस्ट इण्डिया नाम की व्यापारी कम्पनी स्थापित की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत से व्यापार जहाँगीर के समय से आरम्भ हुआ। कम्पनी के अफसरों की कार्यकुशलता मुगल सम्राटों की कृपा और इंगलैण्ड के शासकों की सहानुभूति के कारण इसका व्यापार बहुत उन्नति कर गया था और उसने कलकत्ता मद्रास बम्बई सूरत पटना कासिमबाजार आदि स्थानों में अनेक व्यापारी कोठियाँ बना ली थी। आगे चलकर इंगलैण्ड में एक नई व्यापारी कम्पनी बनायी गयी। उसके कारण इसका व्यापार घटने

लगा लेकिन पार्लियामेंट में इसके संचालकों का काफी प्रभाव होने के कारण यह नई कम्पनी तोड़ दी गई और उसके हिस्सेदारों को भी पुरानी कम्पनी का हिस्सेदार बना दिया गया। इस भाँति सन् १७०८ में संयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई।

जिस समय कम्पनी की आन्तरिक स्थिति इस प्रकार सुधर रही थी, उसी समय भारत में भी उसके अनुकूल परिस्थिति बनने लगी। मुगल सम्राट औरंगजेब की १७०७ में मृत्यु हो जाने के बाद केन्द्रीय शासन बहुत निर्बल हो गया और प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र होने लगे। अंग्रेजी कम्पनी की अधिकांश कोठियाँ वर्तमान मद्रास, कलकत्ता या बम्बई के आसपास थी। ये सभी स्थान दिल्ली से बहुत दूर पड़ते थे। इस कारण मुगल सम्राट् के हस्तक्षेप की बहुत कम आशंका थी। प्रांतीय हाकिम इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे अंग्रेजी व्यापारी कोठियों को विशेष हानि पहुँचा सकते। मुगलों के विरुद्ध मराठे लड़ रहे थे। इस लड़ाई से भी कम्पनी को लाभ हुआ। कम्पनी के जहाजों ने मुगलों की ओर से लड़ते हुए मराठा-नौसेना को नष्ट कर दिया। इस प्रकार उनके एक भावी शत्रु की शक्ति कम हो गई।

मुगल सम्राट् की शक्ति घटने के बाद और मराठों की शक्ति संगठित होने के पहले भारतवर्ष में बड़ी अराजकता फैली हुई थी। उस अराजकता से जहाँ व्यापारियों को बहुत हानि हुई वहाँ दो-तीन बहुत बड़े लाभ भी हुए। कम्पनी के व्यापारियों ने बिना चुंगी दिये व्यापार करना आरम्भ किया। बहुधा वे स्थानीय अफसरों की अवहेलना करने में सफल हो जाते थे। लेकिन बंगाल के सूबेदार मुर्शिद कुली खाँ ने उनसे कड़ाई के साथ चुंगी वसूल करना आरम्भ किया और उनको आज्ञा दी कि वे अपनी कोठियों के बाहर की जमीन खाली कर दें। इस आज्ञा से उनको बहुत असुविधा होने लगी। कम्पनी ने तत्कालीन मुगल सम्राट बहादुरशाह के यहाँ अपने दो दूत भेजे। उनके साथ एक हैमिल्टन नामक डाक्टर भी था। जब ये लोग दिल्ली पहुँचे तो उन्हें पता चला कि बहादुरशाह मर चुका है और उसका उत्तराधिकारी जहाँदारशाह गद्दी से उतारा जा चुका है। उस समय फर्रुखसियर सम्राट था। संयोगवश वह बीमार पड़ गया और उसे अपने दरबार के वैद्य-हकीमों से लाभ नहीं हुआ। डाक्टर हैमिल्टन के उपचार से उसे लाभ हो गया। इस कारण उसने इन दूतों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उनको कलकत्ता और मद्रास के आस-पास ३८ गाँव दे दिये गये और उनका वार्षिक कर नियत कर दिया गया। सूरत की कोठी की सुविधा यह मिली कि वे

दक्षिण तथा बंगाल में बिना कर दिये व्यापार करने की आज्ञा पा गये। सम्राट के इस आज्ञापत्र (१७१५ ई०) से कम्पनी को बहुत लाभ हुआ। उसको एक छोटी-सी जागीर हो गई जहाँ का शासन उसी के हाथ में रहा। इस कारण यहाँ लड़ाई का सामान इकट्ठा करना युद्ध की तैयारी करना या षडयन्त्र रचना आसान हो गया। चुंगी माफ हो जाने के कारण वे दूसरे व्यापारियों की अपेक्षा अधिक सस्ता सामान बेच सकते थे। इस प्रकार उनके माल की खपत अधिक होने लगी।

कम्पनी की उन्नति का एक दूसरा कारण उसकी व्यापार-पद्धति भी है। कम्पनी के कर्मचारी कारीगरों को बहुधा रुपया पहले से बाँट देते थे। जब उनका सामान तैयार हो जाता था तो वे कुछ सस्ते दाम पर लेने का प्रयत्न करते थे। और यदि कारीगर राजी न हो तो उसे तुरत पुराना रुपया सूद समेत देने के लिए बाध्य करते थे। इस धींगा धींगी का फल यह होता था कि उन्हें सामान सस्ता मिल जाता था और कारीगर बँध जाने के कारण जिस प्रकार का सामान वे चाहते थे उसी प्रकार का सामान तैयार होता था।

इधर सन् १७३९ कम्पनी ने पेशवा से भी फर्रुखसियर की तरह आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया। इसके अनुसार उनको गुजरात में बिना चुंगी दिये व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। इन आज्ञापत्रों में एक बात बड़े मार्के की है। मुगल सम्राट और पेशवा दोनों ही ने ऐसे प्रदेशों में चुंगी माफ कर दी थी जहाँ पर कानूनी दृष्टि से तो उनका अधिकार अवश्य था लेकिन वस्तुतः वहाँ उनकी कुछ भी नहीं चलती थी। इन आज्ञापत्रों से कम्पनी को चुंगी न देने का एक बहाना हो गया। देना या न देना वास्तव में स्थानीय हाकिम की शक्ति पर निर्भर करता था। चूँकि कम्पनी की सैनिक शक्ति बढ़ती जा रही थी इस कारण स्थानीय शासक आसानी से उनको वश में नहीं कर पाते थे।

फ्रांसीसी कम्पनी की नीति—जिस समय अंग्रेजी कम्पनी इस प्रकार व्यापार में व्यस्त हो रही थी उसी समय डूप्ले फ्रांसीसी कम्पनी का गवर्नर नियुक्त हुआ। यह बड़ा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने दक्षिण की स्थिति को अच्छी तरह समझ लिया और देखा कि भारतीय राजाओं और नवाबों के झगड़ों में पड़कर काफी लाभ उठाया जा सकता है। डूप्ले जानता था कि व्यापार में अंग्रेज इतना आगे बढ़ गये हैं कि उनका मुकाबला करना असम्भव है। इसलिए उसने एक बड़ा बुद्धिमत्तापूर्ण योजना बनाई। पहले उसने भारतीय सैनिकों को भर्ती करके उन्हें फ्रांसीसी सैनिक अफसरों द्वारा सैनिक शिक्षा दिलवाई और एक मजबूत सेना

तैयार कर ली। इसके बाद उसने अवसर पाकर दक्षिणी राज्यों में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व जमाने के लिए नये षड्यन्त्र रच दिये। वह सोचता था कि इन राज्यों की शक्ति पर अधिकार प्राप्त होने पर अंग्रेजों को भारत से निकाल देना कठिन न होगा। उन्हें निकाल देने के पश्चात् फ्रांस के हाथ में न केवल भारतीय व्यापार वरन् भारतीय साम्राज्य भी आ जायगा।

अठारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत की दशा—जिस समय डूप्ले पाण्डीचेरी का गवर्नर था उस समय दक्षिण में सबसे प्रबल मराठे थे। उनका अधिकार सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर था और दक्षिण के पठार का काफी भाग भी उनके अधिकार में आ चुका था, लेकिन मराठों का ध्यान उत्तर भारत की ओर अधिक था और वे दक्षिण की ओर से कुछ उदासीन-से थे। दूसरा मुख्य राज्य हैदराबाद के निज़ाम का था। वह नाम-मात्र के लिए मुगल सम्राट् के अधीन था, लेकिन सचमुच वह स्वतन्त्र शासक था। उसे मराठों से सदा भय रहता था। उनसे प्राण बचाने के लिए वह उनको आपस में लड़ाते रहने का प्रयत्न करता रहता था। हैदराबाद का निज़ाम नाममात्र के लिए सम्पूर्ण दक्षिण भारत का शासक था, यद्यपि उसे स्वयं उल्टे मराठों को चौथ देनी पड़ती थी। वर्तमान मद्रास प्रान्त के अधिकांश भाग में उस समय एक दूसरा अर्द्ध-स्वतन्त्र राज्य था। उसके शासक को कर्नाटक का नवाब कहते थे। वह नाममात्र के लिए निज़ाम का मातहत था, यद्यपि वास्तव में वह भी स्वतन्त्र हो गया था। कर्नाटक के नवाब के अलावा मैसूर और तञ्जौर के छोटे छोटे हिन्दू राज्य थे जो अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए मराठों, निज़ाम और कर्नाटक के नवाब से लड़ते रहते थे।

कर्नाटक के युद्ध—सन् १७४६ और १७६३ के बीच अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में दक्षिण भारत में तीन युद्ध हुए। उनकी अधिकतर लड़ाइयाँ कर्नाटक में हुई थीं। इस कारण उनको कर्नाटक का युद्ध कहते हैं। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में युद्ध होने का कारण डूप्ले की नीति है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक युद्ध के कुछ विशेष कारण भी थे।

प्रथम युद्ध (१७४६-४८ ई०)—यूरोप में फ्रांस और इंग्लैण्ड में बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। सन् १७४० ई० में यूरोप में एक युद्ध प्रारम्भ हुआ जो 'आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। यह युद्ध १७४० ई० से १७४८ तक हुआ। इसमें इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी भाग लिया। डूप्ले ने इसी युद्ध से लाभ उठाकर अंग्रेजी बस्तियों पर अधिकार करना चाहा। उसने सन् १७४६ में मद्रास पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने युद्ध की पूरी तैयारी नहीं

का था क्योंकि कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन ने उनकी रक्षा का वचन देकर उन्हें सैनिक तयारी करने का निषेध कर दिया था। डूप्ले ने जब आक्रमण किया तो अंग्रेजों ने नवाब से सहायता माँगी। नवाब ने डूप्ले को आज्ञा दी कि लड़ाई बन्द कर दे। उसके न मानने पर उसने डूप्ले पर हमला किया। डूप्ले की सेना ने नवाब और अंग्रेज दोनों की ही सेना को हरा दिया और मद्रास पर अधिकार कर लिया। इस विजय से डूप्ले का हौसला बहुत बढ़ गया। दुर्भाग्यवश डूप्ले को इस सफलता से कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि जब सन् १७४८ में यूरोप में युद्ध बन्द हो गया तो फ्रांस की सरकार ने मद्रास वापस कर देने का वचन दिया।

द्वितीय युद्ध (१७४८-१७५४ ई०)—अंग्रेजों ने अपनी हार से काफी लाभ उठाया। उन्हें पता चल गया कि अपनी रक्षा के लिए उन्हें अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। इस कारण धीरे धीरे उन्होंने भी सैनिक तयारी आरम्भ कर दी। इसी समय भारतीय नरेशों में से दो प्रधान व्यक्ति सन् १७४८ में मर गये। वे थे दिल्ली के सम्राट् मुहम्मदशाह और हैदराबाद का निजाम आसफजाह निजामुलमुल्क। १७४९ में शाहू भी मर गया। डूप्ले ने इस अवसर से लाभ उठाने की सोची। उसने हैदराबाद की गद्दी के लिए एक ऐसे व्यक्ति का साथ देने का निश्चय किया जिसका अधिकार कमजोर हो क्योंकि उसके सफल होने पर उससे अधिक लाभ उठाया जा सकता था। आसफजाह के वंशजों में एक का नाम मुजफ्फरजंग था। वह आसफजाह का पोता था। डूप्ले ने उसे सहायता देने का वचन दिया। कर्नाटक का नवाब निजाम द्वारा नियुक्त किया जा सकता था। डूप्ले ने मुजफ्फरजंग को निजाम घोषित करके उससे कहा कि अनवरुद्दीन के स्थान पर चाँदा साहब को नवाब नियुक्त कर दो। चाँदा साहब बहुत दिन से डूप्ले के पास सहायता माँगने के लिए पड़ा हुआ था। उसका श्वसुर पहले कर्नाटक का नवाब रह चुका था। उसी नाते वह कर्नाटक पर अपना अधिकार जताता था। डूप्ले, मुजफ्फरजंग और चाँदा साहब ने अपनी सेनायें एकत्र करके कर्नाटक पर चढ़ाई की। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली और चाँदा साहब १७४९ में नवाब हो गया। अनवरुद्दीन की मृत्यु और पराजय के बाद उसका बेटा भागकर त्रिचनापल्ली में छिप रहा और उसने अंग्रेजों तथा निजाम के पास सहायता के लिए दूत भेजा।

हैदराबाद में नासिरजंग नवाब हो गया। वह अपने भतीजे के विद्रोह को दबाने के लिए कर्नाटक आया। चाँदासाहब तो भाग निकला लेकिन मुजफ्फरजंग

ने अधीनता स्वीकार कर ली और वह नासिरजंग के साथ हो लिया। कुछ दिन बाद सन् १७५० ई० में नासिरजंग धोखे से मार डाला गया। उसके मरने पर मुजफ्फरजंग ने फिर अपने को निजाम घोषित कर दिया। डूप्ले ने बुसी के साथ उसे हैदराबाद भेज दिया और वह गद्दी पर बैठ गया। डूप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिणी भाग का गवर्नर नियुक्त किया गया और उसे तथा फ्रांसीसी कम्पनी को बहुत-सा धन भेंट में मिला। इस प्रकार कर्नाटक और हैदराबाद दोनों ही डूप्ले के वश में हो गये।

इस स्थिति से अंग्रेज घबराये। मुहम्मद अली उनसे सहायता के लिए प्रार्थना कर ही रहा था। उन्होंने सैनिक तयारी भी कर ली थी। अस्तु एक युद्ध-समिति की बैठक हुई। उसमें क्लाइव नामक एक लेखक ने, जो १७४२ ई० में मद्रास आया था और जिसने १७४८ ई० में सैनिक का काम आरम्भ किया था, एक प्रस्ताव पेश किया। उसने कहा कि मुहम्मद अली की सहायता करने के लिए कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर हमला किया जाय। इसका फल यह होगा कि चाँदा साहब राजधानी बचाने के लिए त्रिचनापल्ली से हटेगा। इस प्रकार मुहम्मद अली को कुछ विश्राम मिल जायगा और चाँदा साहब की शक्ति बँट जाने के कारण उसकी हार भी हो सकती है। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और क्लाइव को ही इस आक्रमण का सेनापति बनाया गया।

अर्काट का घेरा—वह अर्काट लेने में सफल हो गया। चाँदा साहब घबड़ाकर अर्काट की ओर बढ़ा लेकिन वह पराजित हुआ और मारा गया। इस प्रकार सन् १७५१ ई० में मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब हो गया और वहाँ पर अंग्रेजों का प्रभुत्व जम गया। मुहम्मद अली ने कम्पनी को बहुत-सा धन और गाँव इनाम के रूप में दिये। यहीं से भारत में अंग्रेजी राज्य का श्रीगणेश समझना चाहिए।

हैदराबाद में भी गड़बड़ी होनेवाली थी क्योंकि मुजफ्फरजंग अचानक मर गया। बुसी ने बड़ी सावधानी दिखाई। उसने अपनी सेना की सहायता से तुरन्त सलाबतजंग को जो आसफजाह का तीसरा लड़का था गद्दी पर बिठा दिया और स्वयं उसकी सहायता के लिए वहीं रह गया। इस भाँति दक्षिण की एक रियासत अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में आ गई और दूसरी फ्रांसीसियों के। डूप्ले ने एक नई सेना तैयार करके अंग्रेजों को कर्नाटक से निकालना चाहा लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। बुसी ने निजाम की समुद्र-तटवर्ती उत्तरी सरकार के जिले अपनी सेना के खर्च के लिए ले लिये। यही एक कम्पनी का ठोस लाभ

कर्नाटक के युद्ध

कम्पनी ने मुगल सम्राट और पेशवा से विशेष सुविधायें प्राप्त कर ली थीं जिनसे उसका व्यापार और भी बढ़ा और वह बहुत धनी हो गई। फ्रान्सीसी कम्पनी सरकारी कम्पनी थी। उसका प्रबन्ध एक सरकारी विभाग की तरह होता था। फ्रान्स की सरकार उसके महत्त्व को बहुधा कम समझती थी। इस कारण वह समय पर सहायता नहीं देती थी। फ्रान्सीसी कर्मचारी मेल से काम नहीं करते थे और बहुधा एक दूसरे से जलते थे। इस कारण भी काफी नुकसान होता था। तीसरे फ्रान्स की सरकार इतनी शक्तिशाली भी नहीं थी कि वह आसानी से भारतवर्ष सहायता भेज सकती। इन सब असुविधाओं के विपरीत अंग्रेजी कम्पनी की स्थिति बहुत ही अच्छी थी। उसने व्यापार द्वारा काफी धन इकट्ठा कर लिया था। इस कारण उसे अपने खर्च के लिए किसी का मुंह नहीं ताकना पड़ता था। उल्टे वह अंग्रेजी सरकार को ही ऋण दिया करती थी। दूसरे कम्पनी के संचालक स्वतन्त्र व्यापारी थे जो सदा अपने लाभ का ध्यान रखते हुए इसकी उन्नति का प्रयत्न करते रहते थे। वे योग्य-से-योग्य व्यक्ति भेजते थे और उनके काम की निगरानी रखते थे। तीसरे, कम्पनी को अंग्रेजी सरकार की व्यापारिक नीति से बहुत लाभ हुआ। उसके कारण इसके सभी शत्रु नष्ट हो गये चौथे उसे अंग्रेजी जहाजी बेड़े की सहायता मिल सकती थी जो यूरोप में सबसे अधिक शक्तिशाली था और जिसके कारण अन्य देशों के लिए भारत सहायता भेज सकना बहुत कठिन था। पांचवें यह कम्पनी का सौभाग्य है कि इस काल में उसे क्लाइव, लारेन्स और वारन्सन् एसे योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त हो गईं। वे आपस में मेल जोल के साथ काम करते थे। सन् १७६१ ई० से दो वर्ष पहले पानीपत के युद्ध में मराठों की करारी हार हो चुकी थी। इस कारण कम्पनी को अपनी शक्ति बढ़ाने का अधिकाधिक अवसर मिलता गया।

मुख्य तिथियाँ

संयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना	१७०८ ई०
सम्राट फर्रुखसियर का आज्ञापत्र	१७१५ ई०
पेशवा का आज्ञापत्र	१७३६ ई०
मद्रास पर डूप्ले का अधिकार	१७४६ ई०
मुहम्मद शाह और निजामुलमुल्क की मृत्यु	१७४८ ई०
अनवरुद्दीन तथा शाहू की मृत्यु	१७४९ ई०
नासिरजंग की मृत्यु	१७५० ई०

सलावतजंग का निजाम होना	१७५१ ई०
अर्काट का घेरा और चाँदा साहब की मृत्यु	१७५१ ई०
डूप्ले का वापस जाना	१७५४ ई०
लला का भारत आगमन	१७५८ ई०
कर्नल फोर्ड का उत्तरी सरकार पर अधिकार	१७५९ ई०
वाण्डवाश का युद्ध	१७६० ई०
पाण्डीचेरी पर अंग्रेजों का अधिकार	१७६१ ई०
पेरिस की संधि	१७६३ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उन्नति के क्या कारण थे ?

(२) अठारहवीं शताब्दी में दक्षिण में कौन-कौन से राज्य थे ? उनके आपस के सम्बन्ध का वर्णन करो।

(३) डूप्ले कौन था ? उसकी नीति क्या थी ? वह सफल क्यों नहीं हुआ ?

(४) क्लाइव ने कर्नाटक के युद्धों में क्या भाग लिया ?

(५) अंग्रेजी कम्पनी की सफलता के क्या कारण थे ?

(६) दक्षिण भारत का एक नक्शा बनाओ और उसमें कर्नाटक के युद्धों के मुख्य स्थान दिखाओ। अंग्रेजी और फ्रांसीसी कोठियों को भिन्न तरीकों से व्यक्त करो।

अध्याय २४

बंगाल की स्वतन्त्रता तथा नवाबी का अन्त

बंगाल की नवाबी—औरंगजेब की मृत्यु के बाद सन् १७१३ में मुर्शिद कुली खाँ बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ। यह बारह वर्ष बंगाल का शासक रहा। उसी के समय से मुगल सम्राट का प्रभाव बंगाल पर भी घटने लगा। उसी के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर हुगली के अंग्रेजों ने फर्रुखसियर से विशेष सुविधाओं के लिए प्रार्थना की थी। परवाना मिल जाने के बाद जब उन्होंने उन गाँवों पर अधिकार करना चाहा जो सम्राट ने उनको दिये थे तो मुर्शिद कुली ने उनका विरोध किया। फलतः कम्पनी को सैनिक शक्ति का प्रयोग करके उन ग्रामों को लेना पड़ा। इस प्रकार कम्पनी के कर्मचारियों और बंगाल के हाकिम में कुछ अनबन हो गई। फिर भी दोनों ही ने एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया। इसके बाद शुजा खाँ (१७२५-३९) और अलीवर्दी खाँ (१७४१-५६) बंगाल के शासक हुए। अलीवर्दी खाँ के समय से बंगाल के शासक बिलकुल ही स्वतन्त्र हो गये यद्यपि नाममात्र के लिए वह अब भी मुगल सम्राट् को कभी-कभी कुछ भेंट भेज दिया करते थे। ये तीनों ही व्यक्ति काफी योग्य थे। इस कारण अंग्रेजों को कर्नाटक वाली नीति बरतने का अवसर नहीं मिला। जब जब उन्होंने या फ्रांसीसियों ने किले बनवाने आरम्भ किये अलीवर्दी खाँ ने उनको गिरवा दिया और उनको स्पष्ट आज्ञा दी कि वे केवल व्यापारियों की भाँति रहें और बङ्गाल को कर्नाटक न समझें।

नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेज व्यापारी—सन् १७५६ ई० में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो जाने पर उसका पोता सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठा। यह अल्प वयस्क ही था और उसे शासन का कुछ अनुभव नहीं था यद्यपि वह निरा अयोग्य भी नहीं था। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों ही जानते थे कि यूरोप में शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो जायगा और उस समय भारत में भी अवश्य लड़ाई छिड़ेगी। इस कारण वे अपनी बस्तियों के चारों ओर किलेबन्दी करने लगे। नवाब ने आज्ञा दी कि यह बन्द कर दिया जाय। चन्द्रनगर के फ्रांसीसियों ने तो यह

आज्ञा मान ली लेकिन अपनी शक्ति के गर्व में अंग्रेजों ने इसकी कुछ परवाह नहीं की। इस पर सिराजुद्दौला का रुष्ट होना स्वाभाविक ही था। अंग्रेज व्यापारियों ने इस समय दो और खास भूलें कीं। उन्होंने सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र करनेवालों को अपने यहाँ शरण दी और माँगने पर भी उन्हें वापस नहीं किया वरन् उन्हें और प्रोत्साहित किया। उन्होंने फर्रुखसियर के फर्मान से लाभ उठाकर चुंगी देना भी बन्द कर दिया और नवाब की आज्ञाओं की अवहेलना की। इस कारण सिराजुद्दौला के लिए उन पर आक्रमण करने के सिवा और कोई चारा ही नहीं रहा। इस प्रकार बङ्गाल के नवाब और कम्पनी में युद्ध आरम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप बङ्गाल पर भी अंग्रेजी कम्पनी का प्रभुत्व जम गया।

अंग्रेजों का बंगाल से निर्वासन—सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार करके कलकत्ते पर हमला किया। अंग्रेज गवर्नर ड्रेक बिल्कुल घबड़ा गया और जान बचाकर भाग निकला। इस कारण कलकत्ता पर भी नवाब का सहज ही में अधिकार हो गया। भागे हुए लोगों ने कलकत्ते से २० मील दक्षिण फुल्टा नामक स्थान में जाकर साँस ली। सिराजुद्दौला ने उनको वहीं पड़ा रहने दिया और अंग्रेजों की जितनी कोठियाँ बङ्गाल बिहार-उड़ीसा में थीं उन सब पर अधिकार कर लिया। इसी समय अर्काट का विजेता क्लाइव इंगलैण्ड से वापस आया था। मद्रास में जब बङ्गाल की घटनाओं की सूचना पहुँची तो बहुत परेशानी हुई।

क्लाइव का बंगाल पर आक्रमण—अन्त में यह निश्चय हुआ कि बङ्गाल सेना भेजना आवश्यक है। क्लाइव के साथ स्थल-मार्ग द्वारा और वाटसन के साथ जल-मार्ग द्वारा सेना भेजी गई। इसने जनवरी सन् १७५७ ई० में कलकत्ता पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही गंगा नदी के किनारे जितनी कोठियाँ थीं उनको भी फिर से जीत लिया। क्लाइव की इन विजयों का प्रधान कारण यह था कि सिराजुद्दौला को अंग्रेजों के आने की खबर इतनी देर में मिली कि वह उनको रोकने का समय से प्रबन्ध न कर सका। दूसरे उसे इस बात का भी पता चला कि कुछ लोग उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हैं। उसने सोचा कि अंग्रेजों से सन्धि करके पहले उन विद्रोहियों का ही दमन कर लेना चाहिए। इस उद्देश्य से उसने फरवरी सन् १७५७ ई० में सन्धि कर ली जिसकी शर्तों के अनुसार उसने न केवल उनको सभी पुरानी व्यापारिक सुविधायें प्रदान कर दीं, वरन् पिछले युद्ध में कम्पनी का जो नुकसान हुआ था उसे भी पूरा करने का वचन दिया। बिना कोई बड़ा युद्ध किये ऐसी शर्तें स्वीकार करने का मुख्य कारण आन्तरिक विद्रोह की आशंका के सिवा और कुछ न था।

सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र—क्लाइव बंगाल का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। अब वह बंगाल को पूर्ण रूप से अंग्रेजों के अधिकार में लाने का उपाय सोचने लगा। उसे शीघ्र पता चल गया कि नवाब के विरुद्ध दो दल हैं। उसका प्रधान सेनापति मीरजाफर अलीवर्दी खाँ का बहनोई था। वह सिराजुद्दौला को हटाकर स्वयं नवाब बनना चाहता था। दूसरे मुर्शिदाबाद के कुछ हिन्दू व्यापारी भी सिराजुद्दौला से बहुत अप्रसन्न थे। उनमें जगतसेठ और अमीचन्द मुख्य थे। इन लोगों ने एक महान् षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया था और चुपके-चुपके एक गुप्त सेना तैयार कर रहे थे। उनका उद्देश्य मुसलमानों को निकालकर फिर से हिन्दू राज्य स्थापित करने का था। क्लाइव ने दोनों दलों से मेल-जोल बढ़ाया और सिराजुद्दौला को गद्दी से उतारने का निश्चय किया। अन्त में उसे दरबारी षड्यन्त्र से अधिक लाभ होने की आशा दिखाई दी। इस कारण वह उसी दल में मिल गया। अमीचन्द ने मध्यस्थ का काम किया। मीरजाफर का नवाब स्वीकार किया गया और उसने नवाब होने पर कम्पनी को एक करोड़ रुपया और २४ परगने की जागीर जिसकी आय १० लाख रुपये या ९० हजार प्रति वर्ष पर देने का वादा किया। गुप्त रीति से उसने यह भी वादा किया कि वह अंग्रेज कर्मचारियों की भी जेबें गर्म कर देगा। सन्धि का असली मसविदा सफेद कागज पर लिखा गया। अमीचन्द को धोखा देने के लिए उसकी एक फर्जी नकल लाल कागज पर की गई। उस पर ऊपर वाली शर्तों के अतिरिक्त यह भी लिखा गया कि अमीचन्द को नवाब के खजाने में से ५ प्रतिशत रुपया और २५ प्रतिशत जवाहरात दिए जायेंगे। इस जाली संधिपत्र पर वाट्सन ने हस्ताक्षर नहीं किए। क्लाइव ने उसके दस्तखत स्वयं बना दिए और अमीचन्द को यही मसविदा दिखाकर बहका दिया।

प्लासी का युद्ध—अब सिराजुद्दौला से युद्ध का बहाना ढूंढना था। क्लाइव ने उसके पास पत्र भेजा कि आपने फरवरी की शर्तों को पूरा नहीं किया और फ्रान्सीसियों से मिलकर साजिश की है। उसका उत्तर पाने के पहले ही वह अपनी सारी सेना लेकर मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ा। नवाब घबड़ा गया। उसने क्लाइव के मिथ्या दोषारोपण का प्रतिवाद किया और अपनी सेना को शीघ्रता से इकट्ठा किया। प्लासी के पास दोनों सेनाएँ आमने-सामने आयीं। सिराजुद्दौला के दुर्भाग्य से २३ जून की रात को पानी बरस गया और उसके अफसरों की लापरवाही के कारण बारूद भीग गई। युद्ध आरम्भ होते ही मीरजाफर की सेना अंग्रेजों से मिल गई। यह देखकर सिराजुद्दौला की शेष सेना में भी भगदड़

फल गई। सैनिक सोचने लगे कि पता नहीं और कौन-कौन अंग्रेजों से मिल जाय। इस कारण वे बिना लड़े ही भाग निकले। सिराजुद्दौला भी भागा, लेकिन वह पकड़ा गया और उसे मीरजाफर के पुत्र मीरन ने मार डाला। इस प्रकार २६ जून सन् १७५७ ई० को बंगाल की स्वतन्त्र नवाबी का अन्त हो गया और अंग्रेजों का प्रभाव वहाँ भी जम गया।

अमीचन्द की मृत्यु—मीरजाफर नवाब हो गया। उसने अपने सहायकों का पुरस्कार देने के लिए एक दरबार किया। कम्पनी को २४ परगने की जागीर ६० हजार रुपये प्रतिवर्ष पर मिली। उसके सभी पुराने अधिकार पूर्ववत् रहे और उसे १ करोड़ रुपया देने का वचन दिया गया। क्लाइव को २३॥ लाख रुपया और अन्य कर्मचारियों को भी खूब लम्बी भेंटें दी गयीं। अमीचन्द को कुछ भी न मिला। उससे केवल यह बताया गया कि असली सन्धि पत्र पर उस देन की कोई बात ही नहीं थी। अपनी आँखों के सामने अपने दुष्कर्म द्वारा दूसरों का लाभ उठाते देखकर वह बौखला उठा और अन्त में पागल होकर मर गया।

क्लाइव और मीरजाफर (१७५७-१७६०)—क्लाइव ने कुल मिलाकर पौने दो करोड़ रुपये अपने तथा अपने सहयोगियों के लिए भेंट के रूप में लिये। कम्पनी का एक करोड़ रुपया बाकी ही रह गया। उसमें से कुछ रकम वसूल करना भी आवश्यक था। इस कारण बहुत-सा राजसी सामान और हीरे-मोती बेच डाले गये। उनके मूल्य से कम्पनी के कर्ज का कुछ भाग अदा कर दिया गया। मीरजाफर बड़ी अजीब स्थिति में था। वह नाम के लिए नवाब अवश्य था लेकिन उसके पास धन न होने के कारण वह अपनी कोई सेना नहीं रख सकता था और सेना के बिना कर वसूल करना भी कठिन था। अंग्रेज कर्मचारियों को भेंट दे चुकने पर उसने सोचा था कि कम्पनी के कर्ज से छुटकारा मिल जायगा लेकिन वह बराबर सूद के साथ बढ़ता ही गया। देश में विद्रोह हो रहे थे और दिल्ली का सम्राट शाहआलम भागकर बंगाल की ओर आ रहा था। विवश होकर उसे क्लाइव के हाथ की कठपुतली हो जाना पड़ा। क्लाइव ने कम्पनी के स्वार्थ की रक्षा के लिए सभी विद्रोहों को शान्त किया और मीरजाफर की ओर से कर वसूल करना आरम्भ कर दिया। उसके कार्यों का फल यह हुआ कि मीरजाफर के नाम से उसका अधिकार सम्पूर्ण बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर जम गया।

विदेशी आक्रमण—सन् १७५९ ई० तक मीरजाफर अपनी स्थिति से इतना ऊब गया कि उसने डच लोगों से सहायता की प्रार्थना की। डच लोगों

ने हुगली का घेरा डालने का प्रयत्न किया, लेकिन उनकी स्थल तथा जल दोनों ही में बुरी हार हुई और उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि भविष्य में व कभी भी शांति भंग नहीं करेंगे। इसी वर्ष शाहआलम ने बंगाल पर धावा किया। क्लाइव उसका सामना करने के लिए गया। उसके आने का समाचार पाकर अवध का नवाब जो शाहआलम की सहायता कर रहा था वापस चला गया। इस कारण उसकी स्थिति बहुत नाजुक हो गई। शाहआलम को क्लाइव ने एक हीरा भेंट किया और उसने उसे अमीर का खिताब दिया। क्लाइव न नवाब के पास कहला भेजा कि अमीर का खिताब तो मुझे मिल गया लेकिन जागीर कोई नहीं मिली। डर क मारे मीरजाफर ने उसे कलकत्ते के दक्षिण वाली भूमि जागीर में दे दी। उस भूमि क लिए कम्पनी उसे प्रतिवर्ष ३० हजार पौंड (लगभग ३ लाख रुपया) देती थी। अब यह रुपया क्लाइव को मिलने लगा।

क्लाइव के कार्य का महत्व—इस भांति क्लाइव ने सन् १७५७ से १७६० तक बंगाल के गवनर और सेना के अफसर की हैसियत से कम्पनी की शक्ति बढ़ा दी। नवाब कम्पनी क हाथ का खिलौना हो गया और फ्रांसीसी तथा डच सदा क लिए दब गये लेकिन कम्पनी का इतना लाभ पहुँचाने में उसने कम्पनी क लाभ का ही ध्यान नहीं रखा। उस समय के प्राय सभी अंग्रेज, चाहे व ईंगलैंड में हो या अन्यत्र, अपने पद का अनुचित लाभ उठाकर खूब रुपया कमाने में लगे थे। क्लाइव ने भी २३॥ लाख रुपया नकद और ३ लाख रुपया वार्षिक आय का जागीर अपने लिए प्राप्त कर ली थी। इस लाभ को उठाने में उसने उचित अनुचित का कोई ध्यान नहीं रखा। बादशाह क जाली दस्तखत बनाकर अमीचन्द को धोखा देना, सिराजुद्दौला से संधि करके फ परपात् उसी क विरुद्ध षड्यन्त्र करना तथा अकारण युद्ध छेड़कर उसके वध का प्रबन्ध करना, और नवाब के खजाने को भेंटों से लूटकर खाली कर देना उसी का काम था। इसके लिए आगे चलकर उसी क देश में उसकी बहुत निन्दा की गई।

मीरकासिम का नवाब होना (१७६०)—क्लाइव की नीति का फल यह हुआ कि नवाब की शक्ति बहुत घट गई और देश में भ्रष्टाचार होने लगा। कम्पनी के नये गवनर वन्सिटार्ट ने क्लाइव की भांति रुपया वसूल करने के इरादे से मीरजाफर के दामाद मीरकासिम को नवाब बनाया। मीरजाफर गद्दी से उतार दिया गया और उसका स्थान मीरकासिम को दिया। मीरकासिम ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने क लिए कम्पनी को बर्दवान, चटगाँव और मिदनापुर

के जिले दिये और २० लाख रुपया कौंसिल के मेम्बरों तथा दूसरे अफसरों को भेंट के रूप में दिया।

मीरकासिम का पतन—मीरकासिम एक योग्य व्यक्ति था और वह बंगाल के शासन को ठीक करना चाहता था। उसने सरकारी कर्मचारियों की संख्या घटाकर खर्चे में बचत की और उससे एक स्वतन्त्र सेना तयार की ताकि उसे बार बार कम्पनी की सहायता न लेनी पड़े। इस सेना में उसने विदेशी लोगों को भर्ती किया। उन लोगों ने इस सेना को यूरोप के ढंग की शिक्षा दी। उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते से काफी दूर मुँगेर में स्थापित की और वहाँ रहकर वह आन्तरिक शासन को ठीक करने का प्रयत्न करने लगा। इसी कारण उससे और कम्पनी के कर्मचारियों से झगड़ा हो गया। वे लोग न तो यह पसन्द करते थे कि वह विदेशियों को अपनी सेना में रखे और न उन्हें यही रुचता था कि वह अपना प्रबन्ध स्वयं ही कर ले और इस प्रकार उन्हें लूट-मार का अवसर न मिले लेकिन जिस बात पर स्पष्ट झगड़ा हो गया वह चुंगी का प्रश्न था। मीरकासिम के समय में कंपनी के कर्मचारी निजी व्यापार पर तो चुङ्गी देते ही नहीं थे वरन् अपनी मुहर जिसे दस्तक कहते थे भारतीय व्यापारियों को बेंचकर उनका सामान भी बिना चुङ्गी दिये निकलवा देते थे। इस प्रकार उन्हें मुफ्त के रुपये मिल जाते थे हिन्दुस्तानी व्यापारियों को चुङ्गी कम लगती थी और बेचारे नवाब की आमदनी कम होती जा रही थी। मीरकासिम ने इसके विरुद्ध कौंसिल के सामने शिकायत की। वारेन हेस्टिंग्स और वंसिटार्ट ने उसका समर्थन किया लेकिन बहुमत उसके विरुद्ध रहा। मीरकासिम ने परेशान होकर सब लोगों की चुङ्गी माफ कर दी। अब अंग्रेजों के दस्तक की बिक्री बन्द हो गई। इस अनुचित लाभ के बन्द होने से वे बहुत बिगड़े और उन्होंने मीरकासिम को हटाकर मीरजाफर को फिर नवाब बनाना चाहा। उनका रुख देखकर मीरकासिम ने उनकी कोठियों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया और जो अंग्रेज मिले उनको उसने कत्ल करवा दिया। इसके बाद वह अवध की ओर सहायता प्राप्त करने के लिए चला गया।

बक्सर का युद्ध—बंगाल कौंसिल ने तुरन्त मीरजाफर को फिर नवाब बना दिया और मीरकासिम से जो लाभ हुए थे उनको तो बनाये ही रखा उसके सारा जो हानि हुई थी उसे भी पूरा करने का वचन ले लिया और यह भूल गये कि मीरकासिम को गद्दी पर बिठानेवाले और मीरजाफर को उतारनेवाले वे ही लोग खुद थे और फिर भी इस परिवर्तन की हानि बेचारा मीरजाफर ही भुगते। नवाबी

का प्रबन्ध करके एक सेना तैयार की गई और वह हेक्टर मनरो की अध्यक्षता में अवध की ओर बढ़ी। मीरकासिम की सहायता के लिए अवध का नवाब शुजा उद्दौला और मुगल सम्राट शाहआलम भी आ गये। उनकी संयुक्त सेना सन् १७६४ ई० में बक्सर नामक स्थान पर पराजित हुई। मीरकासिम भाग गया और पता नहीं उसका किस प्रकार अन्त हुआ। शाहआलम कम्पनी के अधिकार में आ गया। इलाहाबाद के किले पर कम्पनी का अधिकार हो गया और शुजा उद्दौला डर गया कि कहीं उसका सारा राज्य न छीन लिया जाय। इस कारण वह भी सन्धि करने के लिए तैयार हो गया।

क्लाइव का दूसरी बार बंगाल का गवर्नर होना—इन सब घटनाओं की सूचना जब इंगलैण्ड पहुँचा तो लोगों ने क्लाइव को एक बार फिर गवर्नर बनाकर भेजा। इस बार वह केवल दो वर्ष तक (सन् १७६५-६७ ई०) गवर्नर रहा। इस अल्पकाल में ही उसने कई महत्वपूर्ण कार्य किये और कम्पनी की स्थिति को पहले से अधिक दृढ़ कर दिया।

इलाहाबाद की सन्धि (१७६५ ई०)—पहले वह शाहआलम और शुजा उद्दौला से सन्धि करने के लिए इलाहाबाद गया। इस सन्धि में चार दल थे—शाहआलम, अवध का नवाब शुजाउद्दौला, ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बंगाल का नवाब। क्लाइव ने ऐसी शर्तें रक्खीं कि जिनसे कम्पनी का दायित्व कम-से-कम रहे और प्रभाव अधिक-से-अधिक बढ़ जाय। यह सभी शर्तें शाहआलम के फरमान के रूप में निकाली गईं, यद्यपि वह स्वयं क्लाइव के ही इशारे पर चल रहा था। इस युद्ध में सबसे अधिक दोष अवध के नवाब को ठहराया गया क्योंकि उसी से युद्ध मिल सकता था। कड़ा और इलाहाबाद के जिले शाहआलम ने माँग कर लिये अर्थात् अवध के नवाब को उन्हें क्लाइव के भय से छोड़ देना पड़ा। कम्पनी को उसने ५० लाख रुपया हरजाने के रूप में देने का वचन दिया। अपनी रक्षा के लिए उसे अपने खर्चे पर कम्पनी की कुछ सेना भी रखना पड़ा। यह सेना नवाब को कम्पनी के विरुद्ध जाने से सदा रोके रहती और आवश्यकता पड़ने पर नवाब के विरुद्ध भी काम में लाई जा सकती। इस प्रकार से इस कम्पनी का प्रभुत्व अवध पर जम गया। मीरजाफर मर चुका था। उसका दूसरा बेटा नज्मुद्दौला सूबेदार नियुक्त किया गया और कम्पनी दीवान बनाई गई। दीवान की हैसियत से उसे ५० लाख रुपया वार्षिक सूबेदार को व्यक्तिगत खर्च और शान्ति-रक्षा के लिए देने को कहा दी गई और २६ लाख रुपया

मालाना सम्राट को देने का आदेश हुआ। इस प्रकार बगाल में दोहरा शासन प्रबन्ध स्थापित हुआ।

क्लाइव के सुधार—सन्धि करने के पश्चात् क्लाइव ने आतरिक शासन की ओर ध्यान दिया। बंगाल के नये नवाब के साथ एक दूसरी सन्धि की गई। उसे वादा करना पडा कि वह नायब नवाबो द्वारा शासन-कार्य करेगा। नायब नवाब व ही व्यक्ति बनाये जा सकते थे जिनके नाम कम्पनी का गवनर भेजे और वे बिना कम्पनी की अनुमति के निकाले नहीं जा सकते थे। इस प्रकार बगाल के नवाब से एक प्रकार स त्याग-पत्र लिखवा लिया गया।

कम्पनी के कर्मचारियो में उस समय दो मुख्य दोष थे। घूस लेना और निज का व्यापार करना। क्लाइव ने सभी अफसरो स पट्टे लिखवाकर और उनकी आय बढाने के अन्य उपाय करके इन दोषो को कम कर दिया।

बगाल की नवाबी का अन्त—क्लाइव के जाते ही दोहरे शासन के दोष स्पष्ट दिखाई पडने लगे। कम्पनी और नवाब के नौकरो में झगडा होने लगा। दोनों ही कम-से-कम समय में अधिक स अधिक धन इकट्ठा करना चाहते थे। इसका भार गरीब जनता पर पडा। इधर सन १७६६ में कम्पनी ने यह आज्ञा निकाली थी कि कर इकट्ठा करनेवाले कर्मचारियों का कमीशन मिला करेगा। इस कारण भी लगान की वसूली में बहुत सख्ती की जाने लगा और कभी-कभी किसान के पास रुपया न होने पर उसका सामान मिट्टी के मोल नीलाम कर दिया जाता था। लगान के अतिरिक्त नजराने भी देने पडते थे। फल यह हुआ कि किसान को खाने-पहनने के लिए भी कष्ट होने लगा। ऐसे ही समय में सन् १७७० ई० में एक भयंकर दुर्भिक्ष पडा। राजकर्मचारी अकाल-पीडितो की सहायता देने के स्थान पर कमीशन के लालच से अब भी लगान उगाहने में प्रयत्नशील थे। इस राजकीय और दैवी प्रकोप के कारण बगाल की एक तिहाई जन-संख्या खाने के बिना तडप-तडपकर मर गई और ⅓ से अधिक जमीन बंजर पड गई। इस अशाति के समय क्रांतिकारी सन्यासियों का आन्दोलन भी जोर पकडने लगा।

इस परिस्थिति में वारेन हेस्टिंग्स बंगाल का गवनर नियुक्त हुआ। उसने १७७२-१७७४ के बीच में कई सुधार किये जिनसे कम्पनी तथा जनता की स्थिति में कुछ सुधार हुआ यद्यपि बंगाल की नवाबी का सदा के लिए अन्त हो गया। उसने राजकर्मचारियों को ठीक करने के लिए क्लाइव के समय के कार्नों की याद दिलाई और घूस लेने तथा निज का व्यापार करने के जोर में

उनको निकाल बाहर करने की धमकी दी। अधिकाश ने भविष्य म स्वामिभक्त रहने का वचन दिया और उनको माफ कर दिया गया। घर का स्थिति ठीक करने के बाद उसने दोहरे शासन का अन्त करने का निश्चय किया। नवाब के सभी शासन के अधिकार ले लिये गये और उसे १६ लाख रुपये वार्षिक पेंशन दी जाने लगी। उसके बहुत-से फिजूल खर्च तोड़ दिये गये और उसके लिए शान्तिपूर्वक अकर्मण्यता और विलासिता का जीवन व्यतीत करने की सुविधा प्रदान कर दी गई। उसके द्वारा नियुक्त नायब नवाब निकाल दिये गये और सम्पूर्ण प्रान्त के लिए प्रत्येक जिले में अंग्रेज कलेक्टर रख गये जो लगान वसूली के साथ शान्ति रक्षा का भी प्रबन्ध करते थे। इस प्रकार १७५७ में जो काम प्रारम्भ हुआ था वह हेस्टिंग्स की नीति द्वारा समाप्त हुआ और बङ्गाल के नवाबों का अन्त हो गया।

मुख्य तिथियाँ

प्लासी का युद्ध	१७५७ ई०
क्लाइव को अमीर का पद और जागीर मिलना	१७५९ ई०
मीरकासिम का नवाब होना	१७६० ई०
बक्सर का युद्ध	१७६४ ई०
इलाहाबाद की सन्धि	१७६५ ई०
बंगाल का दुर्भिक्ष	१७७० ई०
हेस्टिंग्स का गवर्नर होना और नवाबों का अन्त	१७७२ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बंगाल के नवाबों से किन बातों पर झगड़ा होता था? जब १७५६ ई० के पहले कोई युद्ध क्यों नहीं हुआ?

(२) सिराजुद्दौला ने अंग्रेजी बस्तियों पर क्यों आक्रमण किया?

(३) क्लाइव को सिराजुद्दौला के विरुद्ध किन कारणों से सफलता मिली?

(४) क्लाइव ने बंगाल में कम्पनी का प्रभुत्व जमाने के लिए क्या किया?

(५) क्लाइव की नीति में क्या दोष थे?

(६) क्या क्लाइव को ब्रिटिश राज्य की नीव डालनेवाला कहा जा सकता है ? कारण बताओ।
(७) मीरकासिम और बंगाल की कौंसिल म क्यो झगडा हुआ ? इस झगडे मे किसका दोष था ?
(८) बक्सर की लडाई का क्या परिणाम हुआ ?
(९) क्लाइव को दूसरी बार गवनर बनाकर कब और क्या भेजा गया ? इस बार उसने क्या काय किये ?
(१०) इलाहाबाद की सधि की मुख्य धाराये बताओ। इस सधि से कम्पनी को क्या लाभ हुआ ?

अध्याय २५

कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार

(१७७४ १८५७)

सन् १७७४ म कम्पनी की स्थिति—सन् १७७४ कम्पनी क इतिहास में एक खास तिथि ह। उस समय तक कम्पनी ने भारतीय व्यापार पर प्राय एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। उसकी व्यापारिक तथा राजनीतिक शक्ति क ३ मुख्य केन्द्र थ—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई। इन तीनो ही स्थानो में कोठियो क प्रधान पहले स ही प्रेसीडेण्ट कहे जाते थे। मद्रास के प्रेसीडेण्ट की मातहती में उत्तरी सरकार के जिले और मद्रास क आसपास की भूमि थी। कर्नाटक का नवाब उसके प्रभाव क्षेत्र में था और मसूर तथा हैदराबाद के शासको का संबंध उससे रहता था। इनमें स निजाम कम्पनी का मित्र बन रहा था और मैसूर का हैदरअली हाल में ही उसका कट्टर शत्रु हो गया था। बंगाल में कलकत्ता का प्रेसीडेण्ट बहुत प्रभावशाली हो गया था। बंगाल बिहार और उडीसा का शासन सब उसक हाथ में था। अवध का नवाब वजीर एक प्रकार स उसक

ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

अधीन था। मुगल सम्राट कुछ दिन पहले तक कम्पनी से यहाँ से पेंशन पाया करता था। केवल बम्बई के प्रेसीडेण्ट के अधिकार में कोई राज्य नहीं था। कम्पनी का साम्राज्य छितरा हुआ था और उसके कर्मचारी एक ही देशी रियासत से विरोधी सन्धियाँ कर सकते थे क्योंकि उनको एक दूसरे के कामों का पता नहीं रहता था। इससे कम्पनी को बड़ी हानि हो सकती थी। इस दोष को दूर करने और कम्पनी की आन्तरिक स्थिति को सुधारने के लिए सन् १७७३ ई० में इंगलैंड की पार्लियामेंट ने एक रेगुलेटिंग ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा बंगाल का गवर्नर गवर्नर जनरल बना दिया गया और मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उसके अधीन कर दिये गये। साधारणतः सन्धि तथा युद्ध का अधिकार अब केवल गवर्नर जनरल को रह गया। इस प्रकार कम्पनी की एक निश्चित वैदेशिक नीति रह सकती थी। आन्तरिक शासन ठीक हो जाने से कम्पनी की आर्थिक दशा भी सुधार गई और वह नये राज्य प्राप्त करने की चेष्टा कर सकती थी।

सन् १७७४ की राजनीतिक स्थिति—उस समय भारतवर्ष में जो प्रमुख रियासतें थीं उनकी स्थिति ने कम्पनी के साम्राज्य-विस्तार का काम आसान कर दिया। उस समय तक देश में केवल दो प्रधान शक्तियाँ रह गई थीं—मैसूर का हैदरअली और मराठे। हैदरअली का जन्म १७२२ ई० में एक साधारण परिवार में हुआ था लेकिन वह अपने साहस और शौर्य के कारण मैसूर के हिन्दू राजा को हटाकर वहाँ का स्वामी बन गया था। हैदरअली मराठों और निजाम से सदा लड़ा करता था और इन लड़ाइयों में वह कभी-कभी अंग्रेजों से भी सहायता माँगता था। सन् १७६६ में कम्पनी की सेना और हैदरअली में पहली लड़ाई हुई थी लेकिन उसके बाद दोनों में सन्धि हो गई थी। सन् १७७१ में मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया और उनसे बहुत-सा रुपया वसूल करने के अलावा उसके राज्य का वह भाग भी छीन लिया जिस पर पहले मराठों का अधिकार था। उस समय कम्पनी ने हैदरअली की सहायता नहीं की, इसलिए वह कम्पनी का कट्टर शत्रु हो गया और मराठों तथा निजाम से मिलकर अंग्रेजों को भारत से निकालने की योजना बनाने लगा। लेकिन निजाम मराठों या हैदर पर विश्वास नहीं करता था और उसने १७६६ में कम्पनी से सन्धि कर ली थी क्योंकि वह समझता था कि यदि कम्पनी हट जायगी तो मैसूर और मराठे उसके राज्य को हड़प कर जायेंगे। मराठों की शक्ति उस समय बहुत अधिक थी। परन्तु १७६१ में पानीपत की पराजय ने उनकी शक्ति

ब्रिटिश अधिकृत भाग
१७७४ ई० में
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

अधीन था। मुगल सम्राट कुछ दिन पहले तक उसीके यहाँ से पेंशन पाया करता था। केवल बम्बई के प्रेसीडेंसी के अधिकार में कोई राज्य नहीं था। कम्पनी का साम्राज्य छितरा हुआ था और उसके कर्मचारी एक ही दशा रियासत से विरोधी सन्धियाँ कर सकते थे क्योंकि उनको एक दूसरे के कामों का पता नहीं रहता था। इससे कम्पनी को बड़ी हानि हो सकती थी। इस दोष को दूर करने और कम्पनी की आन्तरिक स्थिति को सुधारने के लिए सन् १७७३ ई० में इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने एक रेगुलेटिंग ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा बंगाल का गवर्नर गवर्नर जनरल बना दिया गया और मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उसके अधीन कर दिये गये। साधारणतः सन्धि तथा युद्ध का अधिकार अब केवल गवर्नर जनरल को रह गया। इस प्रकार कम्पनी की एक निश्चित वैदेशिक नीति रह सकती थी। आन्तरिक शासन ठीक हो जाने से कम्पनी की आर्थिक दशा भी सुधर गई और वह नये राज्य प्राप्त करने की चेष्टा कर सकती थी।

सन् १७७४ की राजनीतिक स्थिति—उस समय भारतवर्ष में जो प्रमुख रियासतें थी उनकी स्थिति ने कम्पनी के साम्राज्य-विस्तार का काम आसान कर दिया। उस समय तक देश में केवल दो प्रधान शक्तियाँ रह गई थी— मैसूर का हैदरअली और मराठे। हैदरअली का जन्म १७२२ ई० में एक साधारण परिवार में हुआ था लेकिन वह अपने साहस और शौर्य के कारण मैसूर के हिन्दू राजा को हटाकर वहाँ का स्वामी बन गया था। हैदरअली मराठों और निजाम से सदा लड़ा करता था और इन लड़ाइयों में वह कभी कभी अंग्रेजों से भी सहायता माँगता था। सन् १७६६ में कम्पनी की सेना और हैदरअली में पहली लड़ाई हुई थी लेकिन इसके बाद दोनों में सन्धि हो गई थी। सन् १७७१ में मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया और उनसे बहुत-सा रुपया वसूल करने के अलावा उसके राज्य का वह भाग भी छीन लिया जिस पर पहले मराठों का अधिकार था। उस समय कम्पनी ने हैदरअली की सहायता नहीं की, इसलिए वह कम्पनी का कट्टर शत्रु हो गया और मराठों तथा निजाम से मिलकर अंग्रेजों को भारत से निकालने की योजना बनाने लगा। यद्यपि निजाम मराठों या हैदर पर विश्वास नहीं करता था और उसने १७६६ में कम्पनी से सन्धि कर ली थी क्योंकि वह समझता था कि यदि कम्पनी हट जायगी तो मैसूर और मराठे उसके राज्य को हड़प कर जायेंगे। मराठों की शक्ति उस समय बहुत अधिक थी। परन्तु १७६१ में पानीपत की पराजय ने उनकी शक्ति

विशेष लाभ नहीं हुआ परन्तु उसको यह पता चल गया कि मराठा की सेना कैसी है और उनमें कितनी आपसी फूट है जिसका लाभ उठाया जा सकता है।

(२) मराठों मे फूट और बेसीन की सन्धि—इस सन्धि के बाद २० वर्ष तक कम्पनी को मराठा के मामले में हस्तक्षेप करने का उचित अवसर नहीं मिला। इस बीच में कम्पनी की शक्ति काफी बढ़ गई थी और उसका गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७६८-१८०५) बहुत ही योग्य और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। इसके विपरीत मराठों के आपसी झगड़े बढ़ते गये। पेशवा और गायकवाड़ होल्कर और सिंधिया तथा पेशवा और उसके सलाहकार नाना फड़नवीस में बड़े झगड़े हुए। प्रथम मराठा युद्ध के समय के प्रमुख व्यक्ति मर चुके थे और तत्कालीन मराठा के नेता बड़े ही स्वार्थी और अदूरदर्शी थे। राघोबा मर गया था परन्तु उसका पुत्र बाजीराव द्वितीय १७६५ में पेशवा हो गया था। तुकोजी होल्कर और अहिल्याबाई की मृत्यु के बाद जसवंतराव होल्कर इन्दौर का शासक हो गया था और महादाजी सिंधिया की मृत्यु के बाद दौलतराव सिंधिया उसका उत्तराधिकारी हो गया था। नाना फड़नवीस मर चुका था। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अपनी नीति से सिंधिया तथा होल्कर दोनों को ही असन्तुष्ट कर दिया था और वे दोनों ही उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहते थे। इस आपसी ईर्ष्या और विद्वेष के कारण सन् १८०२ में बाजीराव द्वितीय ने होल्कर द्वारा पराजित होने पर अंग्रेजों के यहाँ शरण ली और बेसीन की सन्धि द्वारा उसने सहायक प्रथा की शर्तें स्वीकार कर ली। अंग्रेजों ने उसे फिर पूना की गद्दी पर बिठाने का वादा किया और बाजीराव ने अंग्रेजी सेना रखना तथा उसके खर्च के लिए २६ लाख सालाना आय का इलाका देना स्वीकार कर लिया। उसने कम्पनी को कुछ व्यापारिक सुविधायें भी दे दीं। कम्पनी ने सेना भेजकर उसे पूना की गद्दी पर बिठा दिया और होल्कर की सेना को निकाल दिया।

(३) द्वितीय मराठा युद्ध—पेशवा के इस कार्य से सिंधिया और भोंसला बहुत असंतुष्ट हुए और उन्होंने उसे कम्पनी के चंगुल से छुड़ाने के इरादे से युद्ध की घोषणा कर दी। होल्कर और गायकवाड़ ने इस युद्ध में भाग नहीं लिया। वेलेजली ने युद्ध की सभी तैयारी कर ली थी। लेक की अध्यक्षता में एक सेना उत्तर भारत में और आर्थर वेलेजली की अध्यक्षता में दूसरी सेना दक्षिण में युद्ध करने के लिए भेजी गई। वेलेजली ने अहमदनगर के किले पर अधिकार करके असायी के मैदान में भोंसला और सिंधिया की सेनाओं को पराजित किया। इसके बाद उसने असीरगढ़ और बुरहानपुर पर अधिकार करके दक्षिण भारत में

सिन्धिया की शक्ति का विनाश कर दिया। इसके बाद उसने अर्गावँ के युद्ध में भोसला को हराया और वह सन्धि करने पर विवश हो गया। उत्तर में लेक ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार करके सिन्धिया को लासवाड़ी के स्थान पर हराया जिससे वह भी युद्ध बन्द करने के लिए बाध्य हो गया। सन् १८०३ में भोसला ने देवगाँव के स्थान पर सन्धि कर ली। उसने बेसीन की सन्धि स्वीकार कर ली और अपने यहाँ एक रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। कटक और बरार के इलाके कम्पनी को मिल गये और भोसला भी कम्पनी की अधीनता में आ गया। सिन्धिया ने सन् १८०३ और १८०४ में दो सन्धियाँ कीं जिनके अनुसार उसने बसीन की सन्धि स्वीकार कर ली, कम्पनी और उसके मित्रों के विरुद्ध अपने सभी अधिकार त्याग दिये और अपने यहाँ एक रेजीडेण्ट रख लिया। उसने अमारगढ़ के अतिरिक्त दक्षिण भारत का अपना सारा राज्य और दिल्ली आगरा तथा जमुना के दक्षिण का प्रदेश कम्पनी को दे दिया। इसी की आय से कम्पनी ने एक सेना सिन्धिया की सीमा के पास रख दी। इस प्रकार सिंधिया भी कम्पनी की अधीनता में आ गया।

(४) तृतीय मराठा युद्ध—सिन्धिया और भोसला की पराजय से घबड़ाकर होल्कर ने भी युद्ध आरम्भ कर दिया और राजस्थान की प्रसिद्ध रियासत जयपुर पर हमला किया। वहाँ के राजा ने कम्पनी से सहायता माँगी और वेलेजली ने होल्कर के विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। भरतपुर के जाट राजा ने भी होल्कर की सहायता की परन्तु जब होल्कर डीग फर्रुखाबाद तथा दिल्ली के पास हार गया और अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ता ही गया तो उसने कम्पनी से सन्धि कर ली। सन् १८०६ ई० में २ वर्ष के युद्ध के बाद होल्कर ने भी सन्धि कर ली। उसने चम्बल के उत्तर का प्रदेश कम्पनी को दे दिया और कम्पनी के मित्रों के विरुद्ध अपने सभी अधिकार त्याग दिये। जिस समय यह युद्ध चल रहा था, उसी समय गायकवाड़ ने भी १८०५ ई० में सहायक सन्धि स्वीकार कर ली और इस प्रकार १८०६ तक सभी मराठा सरदार कम्पनी के वश में आ गये।

(५) चतुर्थ मराठा युद्ध और पेशवाई का अन्त—यद्यपि एक-एक करके सभी मराठे हार चुके थे तो भी उनमें स्वतन्त्र होने की भावना बनी थी। बार्लो (१८०५-१८०६) ने सिन्धिया के साथ एक नई सन्धि करके उसे सन्तुष्ट रखने के लिए ग्वालियर और गोहद का इलाका वापस कर दिया था। इससे सिन्धिया के हौसले बुलन्द बढ़ने लगे थे। बाजीराव द्वितीय मराठों की दुर्दशा पर बहुत पछता रहा था और वह अपने प्रयत्न से एक बार फिर उनको स्वतन्त्र करा देना चाहता

१८०५ ई० में अंग्रेजी राज्य
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी

था। वह इसी उद्देश्य से गुप्त कार्यवाही कर रहा था और मराठों को संगठित करके एक साथ कम्पनी पर आक्रमण करना चाहता था। परन्तु वह वलेजली की सहायक संधि द्वारा इस प्रकार जकड़ा हुआ था कि उसके मंसूबे छिप न रह सके। लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३-१८२३) ने पेशवा, गायकवाड, भोंसला और सिंधिया को नई सन्धियाँ स्वीकार करने पर विवश किया जिनके द्वारा कम्पनी ने उनके राज्य और उनकी स्वतन्त्रता की सीमा घटा दी और उनके राज्यों में रहने वाली कम्पनी की सेना की संख्या बढ़ा दी। फिर भी पेशवा से चुप नहीं रहा गया और सन् १८१७ ई० में उसने किरकी में रहने वाली अंग्रेजी फौज पर हमला कर दिया। भोंसला और होल्कर ने भी इसका अनुकरण किया लेकिन लाभ कुछ नहीं हुआ। लार्ड हेस्टिंग्स ने इतनी तैयारी कर रखी थी कि तीन महीने के भीतर सभी विद्रोही मराठा सरदार घुटने टेकने पर बाध्य हो गये। युद्ध में पेशवा ने सबसे अधिक भाग लिया था इसलिए उसे ८ लाख वार्षिक पेंशन देकर पूना से बहुत दूर कानपुर जिले के बिठूर स्थान में रख दिया गया और उसके राज्य का अधिकांश भाग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। शेष भाग सतारा के राजा प्रताप सिंह को जो शिवाजी का वंशज था दे दिया गया और उसे सहायक संधि की सभी शर्तें स्वीकार करनी पड़ी। भोंसला के राज्य का उत्तर भारतीय प्रदेश अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और शेष भाग पर एक बालक राजकुमार की ओर से रेजीडेण्ट शासन करने लगा। होल्कर के यहाँ भी अंग्रेजी सेना रख दी गई और उसके अधिकार कम कर दिये गये।

इस प्रकार सन् १८१८ तक मराठों की स्वतन्त्र सत्ता का सदा के लिए अन्त हो गया और ब्रिटिश-साम्राज्य का विस्तार और प्रभाव बहुत बढ़ गया। उसकी शक्ति से प्रभावित होकर मध्य भारत और राजस्थान के शासकों ने बिना युद्ध किये ही सहायक संधियाँ स्वीकार कर लीं और कम्पनी की अधीनता में आ गये।

(६) मराठों के पतन के कारण—इस स्थान पर तनिक ठहरकर मराठों के पतन के कारणों पर दृष्टि डाल देना अनावश्यक न होगा। मराठा पादशाही के स्वप्न धूल में मिलने और परतन्त्रता की बेड़ियों में कस जाने के मुख्य कारण मराठों के व्यक्तिगत दोष थे। शिवाजी के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले जिसके कारण पेशवा की शक्ति बहुत बढ़ गई। माधवराव के बाद जितने पेशवा हुए वे भी अयोग्य थे और उनकी कमजोरी तथा अदूरदर्शिता के कारण मराठा शक्ति अव्यवस्थित हो गई। मराठा सरदारों में इतनी अधिक फूट थी कि वे स्वार्थ तथा ईर्ष्या से प्रेरित होकर सब कुछ करने को तैयार रहते थे और अपने शत्रुओं का

मिलकर विरोध नहीं कर पाते थे। उनका सैनिक-संगठन भी ठीक नहीं था। उन्होंने अपनी सेनाओं को यूरोपियन ढंग की शिक्षा दिलाने के लिए विदेशी अफसर रख दिये थे जो रुपये के लालच से विश्वासघात करने में नहीं हिचकते थे। उनका तोपखाना और बन्दूकें भी अच्छी नहीं थी। मराठों ने अठारहवीं शताब्दी में लूट-खसोट को अपनी नीति का एक मुख्य अंग बनाकर दूसरे भारतीय शासकों और उनकी प्रजा को अपना शत्रु बना लिया जिसके कारण हिन्दू-मुसलमान सभी उनके विरोधी हो गये और उनकी पराजय की बाट जोहने लगे। इन दोनों के विपरीत कम्पनी की शक्ति बहुत बढ़ रही था। उसके कर्णधार बड़े चतुर कूटनीतिज्ञ थे और उनकी सेना बहुत सुसंगठित और अच्छे हथियारों से लैस थी।

मैसूर के युद्ध (१७८०-१७६६ ई०)—मराठों की अपेक्षा मैसूर पर अधिकार करने में कम्पनी को कम कठिनाई हुई। मैसूर के शासक हैदरअली से कम्पनी का पहला युद्ध १७६७-६६ में हुआ था जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसके बाद प्रथम मराठा युद्ध के समय में हैदरअली ने १७८० में मद्रास पर आक्रमण करके द्वितीय मैसूर युद्ध का सूत्रपात किया। हैदरअली ने पौलीलोर में बेली को हराया और कर्नाटक उजाड़ता हुआ वह मद्रास की ओर बढ़ा। इस बीच में उसके बेटे टीपू ने ब्रथवेट को पराजित किया लेकिन सर आयर कूट ने पोर्टोनोवा के युद्ध में हैदरअली को हराकर उनकी सेना का बढ़ाव रोक दिया। इसके बाद ही दिन बाद सन् १७८२ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसके बेटे टीपू सुलतान ने सन् १७८४ तक युद्ध जारी रखा और अन्त में मंगलोर की सन्धि द्वारा दोनों पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश लौटाकर युद्ध समाप्त किया।

अपने पिता के उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से टीपू अपनी शक्ति बढ़ाने लगा और मराठों तथा निजाम से कम्पनी को भारत से निकालने के लिए सन्धि का प्रस्ताव करने लगा। कार्नवालिस (१७८६-१७६३) ने टीपू की शक्ति का अन्त करने के उद्देश्य से युद्ध की तयारी शुरू कर दी। टीपू ने इसी समय ट्रावंकोर पर आक्रमण कर दिया और कार्नवालिस ने निजाम तथा पेशवा से सन्धि करके मैसूर के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। दो वर्ष लड़ाई चलने के बाद सन् १७६२ में श्रीरंगपट्टन की सन्धि द्वारा इस युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध में टीपू को किसी से भी सहायता नहीं मिली और जब उसकी राजधानी का घेरा सफल होने की सम्भावना हुई तो वह सन्धि करने के लिए तयार हो गया। उधर कार्नवालिस भी फ्रांस से युद्ध छिड़ने की आशंका के कारण सन्धि करने के लिए इच्छुक था। इस सन्धि द्वारा टीपू को अपना आधा राज्य दे देना पड़ा जिसे निजाम कम्पनी

इमामबाड़ा, लखनऊ
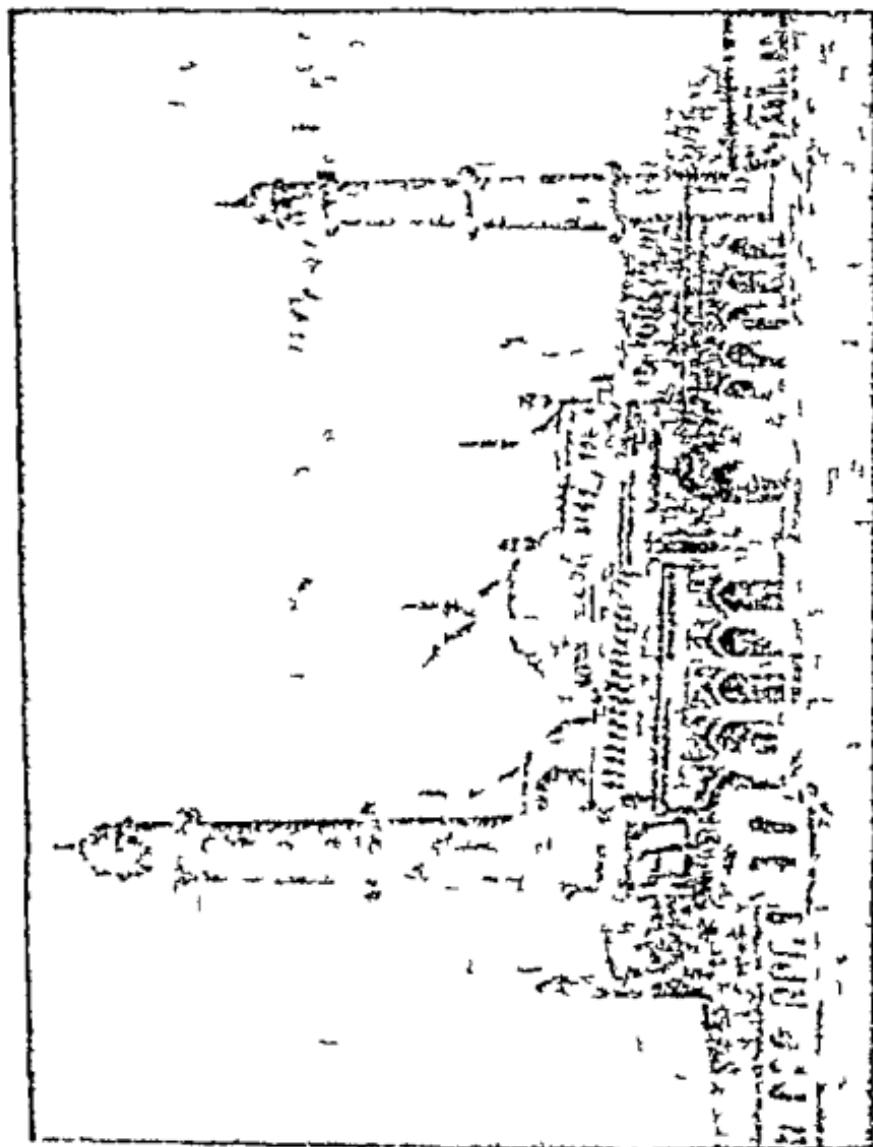
और पेशवा ने बाँट लिया। हर्जाने के रूप में उसने ३ करोड़ रुपया देने का वादा किया जिसमें से डेढ़ करोड़ तुरन्त ले लिया गया और शेष की अदायगी के समय तक उसके दो पुत्र कम्पनी के पास बंधक के रूप में रहे। कम्पनी ने मैसूर का ऐसा हिस्सा लिया जिसके द्वारा उसका समुद्र से सम्बन्ध नष्ट हो जाय और उस पर आक्रमण कर सकना अधिक सुगम हो जाय।

टीपू पराजित होने पर भी हतोत्साह नहीं हुआ। उसने इंगलैण्ड की कठिनाइयों से लाभ उठाने की सोची और अरब, टर्की, अफगानिस्तान तथा फ्रान्स से सन्धि की बातचीत शुरू की। अभी वह शक्ति संगठित कर ही रहा था कि वेलजली गवर्नर-जनरल होकर आ गया। उसने मैसूर के शासक के मंसूबों को समझ लिया और पेशवा तथा निजाम से सन्धि करके युद्ध की तैयारी कर ली। उधर इंगलैण्ड की स्थिति में भी सुधार हो रहा था क्योंकि नेपोलियन बोनापार्ट, जो मिस्र तक आ गया था, वापस चला गया और अफगानिस्तान का शासक जमानशाह दिल्ली की लूट के बाद आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर काबुल लौट गया था। इसीलिए वेलजली ने टीपू पर सन्धि तोड़ने का दोष लगाकर सन् १७९९ में आक्रमण कर दिया। आर्थर वेलेजली और हैरिस ने टीपू को हरा दिया और श्रीरंगपट्टन पर अधिकार कर लिया। टीपू लड़ता हुआ मारा गया।

इस युद्ध के बाद टीपू के बेटों को पेंशन देकर अलग कर दिया गया। मैसूर का कुछ भाग मित्रराष्ट्रों ने आपस में बाँट लिया और शेष भाग के लिए पुराने हिन्दू राजवंश का एक बालक शासक नियुक्त किया गया। उसे सहायक सन्धि की सभी शर्तें माननी पड़ी और कम्पनी ने शासन ठीक न रखने पर सारा राज्य जब्त करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस भाँति १७९९ में मैसूर राज्य का भी अन्त हो गया। वेलजली ने हिन्दू राजवंश स्थापित करने में बड़ी दूरदर्शिता दिखाई। उसके इस कार्य से हिन्दू कम्पनी के प्रशंसक हो गये। मैसूर एक प्रकार से कम्पनी के अधिकार में आ ही गया, परन्तु निजाम या पेशवा को उसमें हिस्सा बँटाने का अवसर नहीं मिला।

सहायक सन्धियों का साम्राज्य विस्तार पर प्रभाव—वेलजली के समय के युद्धों ने कम्पनी के शत्रुओं की शक्ति घटा दी और उसके राज्य तथा प्रभाव को बहुत बढ़ा दिया, लेकिन वेलजली ने बिना युद्ध किए केवल राजनीतिक दबाव द्वारा भी कम्पनी का राज्य और प्रभाव काफी बढ़ाया। सन् १७९९ ई० में तन्जौर में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा हुआ। वेलजली ने तन्जौर को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया और वहाँ के राजा को पेंशन देकर शान्त कर दिया।

सन् १८०० में उसने निजाम से नई सन्धि करके सेना के खर्च के लिए उससे वह सब राज्य ले लिया जो उसको मैसूर से प्राप्त हुआ था। उसी वर्ष सूरत की नवाबी के लिए उत्तराधिकार का झगड़ा हुआ। वेलेजली ने उसे भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। सन् १८०१ में उसने कर्नाटक के नवाब को २ लाख रुपया पेंशन देकर उसका राज्य भी जब्त कर लिया। उसी वर्ष उसने अवध के नवाब से एक नई सन्धि की। वहाँ अंग्रेजी सेना की संख्या बढ़ा दी गई और उसके खर्च के लिए नवाब के वे जिले ले लिये गये जिन पर मराठा अथवा अफगानों के आक्रमण का अधिक भय था। इस भाँति इलाहाबाद, फतहपुर, कानपुर, आजमगढ़, गोरखपुर, बरेली, मुरादाबाद, बदायूँ और शाहजहाँपुर के जिले कम्पनी के अधिकार में आ गये और नवाब का राज्य पहले की अपेक्षा आधा रह गया।

सिन्ध, पंजाब और आसाम-ब्रह्मा के अतिरिक्त प्राय सभी भारतीय प्रदेशों पर अधिकार करने के पश्चात कम्पनी ने कुछ समय शासन संगठन में लगाया। इसके उपरान्त लार्ड मिन्टो (१८०७-१८१३) के समय में उसने सीमाओं को सुरक्षित करने के उद्देश्य से फारस, अफगानिस्तान, सिन्ध तथा पंजाब के शासकों से सन्धियाँ कीं। कम्पनी के गवर्नर-जनरल यथासंभव युद्ध से बचने का प्रयत्न कर रहे थे क्योंकि इंगलैण्ड को नेपोलियन बोनापार्ट के विरुद्ध युद्ध करना था। नेपोलियन की शक्ति द्रुतगति से बढ़ रही थी। उसने १८०७ ई० तक सम्पूर्ण यूरोप को अपने अधीन कर लिया। केवल इंगलैण्ड ही टापू होने के कारण बच रहा था। उसने रूस के जार (शासक की पदवी) से सन्धि कर ली थी (१८०७) और वह स्थल मार्ग से भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था।

फारस से सन्धि—नेपोलियन का इरादा टर्की और फारस होकर आक्रमण करने का था। भारत-सरकार ने मलकम को दूत बनाकर फारस भेजा। उसी समय इंगलैण्ड की सरकार ने भी एक दूत फारस भेजा। फारस के राजा ने इन दोनों से ही बात करने से इन्कार किया और कहा कि ये दोनों ही झूठे मालूम होते हैं। अन्त में इंगलैण्ड के दूत जोन्स ने अपने दूत होने का प्रमाण देकर एक उचित सन्धि कर ली। इसके अनुसार फारस के शाह ने अपने राज्य से होकर रूसिया और फ्रान्सीसियों को न जाने का वादा किया। अंग्रेजी सरकार ने उसे यूरोपियन शत्रुओं के विरुद्ध धन तथा सैनिकों द्वारा सहायता देने का वचन दिया।

अफगानिस्तान से सन्धि—दूसरा दूत अफगानिस्तान भेजा गया। उस

समय वहाँ का अमीर शाहशुजा था। उसने भी संधि कर ली और वादा किया कि फारस, फ्रान्स या रूस की सेना को अपने देश से होकर जाने की अनुमति नहीं देगा। अंग्रेजी सरकार ने भी उसे उन शत्रुओं के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया।

सिन्ध और पंजाब—इसी प्रकार की संधि सिन्ध के अमीरों से भी हो गई। उन्होंने फ्रान्सीसियों को अपने राज्य से निकाल दिया और वादा किया कि किसी विदेशी सेना को अपने देश से होकर जाने की अनुमति नहीं देंगे। पंजाब में उस समय रणजीतसिंह राज्य कर रहा था। सन् १८०७ तक वह सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार कर चुका था और उसके बाद उसने सतलज तथा यमुना के बीच वाले भाग पर धावे शुरू किये। इस भाग की झींद और पटियाला रियासतों ने अंग्रेजों से सहायता माँगी।

मिण्टो रणजीतसिंह से युद्ध नहीं करना चाहता था परन्तु वह सतलज पार उसका प्रभाव बढ़ने देना भी हानिकारक समझता था। इसके विपरीत वह उससे एक ऐसी संधि करना चाहता था जिसके द्वारा सम्भाव्य फ्रान्सीसी आक्रमण के समय भारतीय सरकार को उससे सहायता मिल सके। अस्तु, उसने मेटकाफ को दूत बनाकर भेजा। पहले उसने अंग्रेजों की स्थिति नाजुक समझकर शर्त रखी कि सतलज पार वाली सिक्ख रियासतों पर भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया जाय।

मेटकाफ और मिण्टो स्थिति को ध्यानपूर्वक देखते रहे और संधि की बातचीत चलाते रहे। धीरे-धीरे इंग्लैण्ड की स्थिति में बहुत सुधार हो गया। टर्की के सुलतान, फारस के शाह, अफगानिस्तान के शासक तथा सिन्ध के अमीर उसके मित्र हो गये थे। नेपोलियन की सेना स्पेन के युद्ध में फँस गयी था और रूस भारत की ओर आने का साहस नहीं कर पा रहा था। इस प्रकार भारत पर आक्रमण होने की सम्भावना बहुत कम हो गई थी। फलतः अब १८०६ ई० में मिण्टो ने रणजीतसिंह से दबने के स्थान पर उसे धमकाना आरम्भ किया। उसने ऑक्टर-लोनी को एक सेना के साथ अम्बाला भेजा और घोषणा की कि सतलज की दक्षिण की रियासतें अंग्रेजी कम्पनी की अधीनता में आ गई हैं। यदि लाहौर दरबार उन पर आक्रमण करेगा तो इसका बलपूर्वक विरोध किया जायगा। रणजीतसिंह स्थिति-परिवर्तन से सहम गया और उसे भय हुआ कि कहीं सतलज के उत्तरवाले सिक्ख सरदार भी उसके विरुद्ध षड्यन्त्र न करने लगें। इस कारण उसने भी सन्धि कर ली।

अमृतसर की सन्धि (१८०६ ई०)—इस सधि के अनुसार रणजीतसिंह और अंग्रेजी कम्पनी ने एक दूमरे के साथ स्थायी मत्री का व्यवहार करने का वादा किया। रणजीतसिंह ने सतलज के दक्षिण कयल उतनी ही मेना रखने का वादा किया जितनी उमके राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक थी। साथ ही उसने यह भी वचन दिया कि वह उन सिक्ख रा या क अधिकारो में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं करेगा जो सतलज के दक्षिण उसके राज्य की सीमा के बाहर हैं। अंग्रेजी कम्पनी न भी वचन दिया कि वह सतलज क उत्तर महाराजा के राज्य या उसकी प्रजा के मामलों में कोई हस्तक्षेप नही करगी। इस सधि के हो जाने से कम्पनी का प्रभाव सतलज नदी तक जम गया और विदेशी आक्रमण के विरुद्ध मत्रीपूण राष्ट्रों की दोहरी दीवाल खडी हो गई।

अरब सागर और हिन्द-महासागर—मिण्टो ने फ्रान्सीसी हमले की सम्भावना का समूल नष्ट कर देने का निश्चय किया। इसलिए उसने फ्रान्स और उसके अधीन राज्यों के अधिकार वाले द्वीपों पर आक्रमण किया और उनको अपने वश में कर लिया। इस भाँति मारिशस वूवन जावा आदि द्वीप भारतीय सरकार के अधिकार में आ गये। इन विजयों के कारण फ्रा सीसी जहाजी वेडे को ठहरने के लिए हि -महासागर में को स्थान नही रहा। इस प्रकार जल माग से आक्रमण की सम्भावना भी नष्ट हो गई।

कम्पनी की उत्तरी सीमा—कम्पनी के राज्यों की उत्तरी सीमा पर नेपाल के गोरखो का राज्य था। गोरखे हिमालय की तरा के सभी भाग पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। कम्पनी के गवनर-जनरलों में से कानवालिस और वेलेजली ने गोरखा पर कम्पनी का प्रभाव जमाने का निष्फल प्रयत्न किया था। मिण्टो के समय में श्योराज और बुटवल पर गोरखा ने अधिकार कर लिया था। मिण्टो न उन पर फिर अधिकार कर लिया लेकिन इसक आगे उसने कुछ नही किया। सन् १८१४ में गोरखा ने फिर बुटवल पर अधिकार कर लिया। इस पर हेस्टिंग्स न युद्ध की घोषणा कर दी।

गोरखा युद्ध (१८१४ १८१६)—हेस्टिंग्स ने एक बडी सेना तयार की और लुधियाना तथा पूर्णिया क बाच में पाँच विभिन्न मार्गों स नेपाल राज्य में प्रवेश किया। वह समझता था कि गोरखे घबडाकर तुरंत संधि क लिए प्रार्थना करेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि उन सेनाओं में स केवल लुधियाने वाली सेना, जिसका नेता ऑक्टर लोनी था सफल हुई और शेष सभी हारकर पीछे

लौट पड़ी। अब गोरखों ने पंजाब के राजा रणजीतसिंह, उत्तर तथा दक्षिण भारत के मराठा सरदारों, राजपूतों और ब्रह्मा के राजा के पास अपने दूत भेजे और उनको कम्पनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए आमन्त्रित किया। कम्पनी के सौभाग्य से सभी हाथ-पर-हाथ रख बैठे रहे और आक्टर लोनी का सेना सहायता पाने पर आगे बढ़ती गई। फलत सन् १८१६ में सिगोली की सन्धि हो गई। इसके अनुसार कम्पनी को गढ़वाल, कुमायूँ और तराइ का अधिकांश भाग प्राप्त हो गया जिसमें शिमला, मंसूरी आदि स्थान स्थित हैं। नेपाल सरकार ने एक अंग्रेज रजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया और शिकम से अपना अधिकार हटा लिया। इसके बाद ही शिकम ने सहायक सन्धि कर ली। इस युद्ध के कारण कम्पनी के राज्य की सीमा हिमालय की तराई तक पहुँच गई और गोरखों से मैत्री हो जाने के कारण न केवल उत्तरी सीमा सुरक्षित हो गई वरन् भारतीय नरेशों के विरुद्ध लड़ने के लिए कुशल सैनिक मिलना भी सुगम हो गया। गोरखों ने अपनी हार के लिए भारतीय नरेशों को कभी क्षमा नहीं किया।

ब्रह्मा विजय (१८२४ १८८६ ई०)—हेस्टिंग्स के समय में कम्पनी का अधिकार प्राय सारे भारत पर हो गया था और उसकी सीमायें भी सुरक्षित थीं परन्तु पूरब की ओर एक नये राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति से उसे कुछ आशंका होने लगी। सन् १७६० से ही आवा के राजा की शक्ति बढ़ने लगी थी और सन् १७९३ ई० तक वह अपर ब्रह्मा, लोअर ब्रह्मा, अराकान तथा तनासरम का स्वामी हो गया था। इसी समय से उसने चटगाँव, मुर्शिदाबाद, ढाका और कासिमबाजार के जिलों पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया। यहीं से उसमें और कम्पनी में अनबन होने लगी। कम्पनी ने जब-जब व्यापार की सुविधायें माँगी तभी उसकी प्रार्थना ठुकरा दी गई। इसलिए कम्पनी ब्रह्मा के राजा के विरोधियों को अपने यहाँ शरण देकर आक्रमण करने में सहायता देती रही थी। इधर ब्रह्मा के राजा ने १८२२ में आसाम, मनीपुर तथा कचार पर और १८२४ में चटगाँव के पास शाहपुरी टापू पर अधिकार कर लिया। उसने पूरबी बंगाल पर आक्रमण करने की भी तयारी की। इसलिए सन् १८२४ में लार्ड एम्हर्स्ट (१८२३ १८२८) ने युद्ध की घोषणा कर दी।

(१) प्रथम युद्ध (१८२४ १८२६)—सर आर्चीबल्ड कम्पबेल ने मई में रंगून पर अधिकार कर लिया लेकिन उसी समय वर्षा और मलेरिया का

ब्रह्मा की लड़ाइयाँ
ब गा ल की खा ड़ी

प्रकोप आरम्भ हुआ। ऐम्हर्स्ट रसद और इलाज का ठीक प्रबन्ध नहीं कर सका इसलिए सैकड़ों सैनिक मर गये। उधर ब्रह्मा की सेना महाबुन्देला की अध्यक्षता में बंगाल में घुस आई। वर्षा समाप्त होने पर ब्रह्मा के राजा ने महाबुन्देला को रंगून पर अधिकार करने की आज्ञा दी जिसमें वह असफल हुआ। इससे कम्पनी के सैनिकों का हौसला बढ़ गया और उन्होंने सम्पूर्ण लोअर ब्रह्मा जीत लिया। अराकान मनीपुर और कचार की ओर से जाने वाली सेनायें आगे बढ़ने में सफल नहीं हुई। इतने में ही बरसात आरम्भ होने से फिर युद्ध बन्द हो गया। दूसरी बार बरसात के बाद के हमले से ब्रह्मा का राजा घबड़ा गया और उसने यान्डू के स्थान पर सन्धि कर ली। इसके अनुसार अराकान और तनासरम कम्पनी को दे दिये गये। आसाम, मनीपुर और कचार स्वतन्त्र कर दिये गये और उन्होंने कम्पनी से सहायक सन्धि करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली ब्रह्मा में अंग्रेज रेजीडेण्ट रहने लगा और अंग्रेजों को ब्रह्मा में व्यापार करने की सुविधा दे दी गई। वहाँ के राजा ने एक करोड़ रुपया लड़ाई का हर्जाना देना भी स्वीकार कर लिया। इस युद्ध के कारण कम्पनी की पूरबी सीमा सुरक्षित हो गई और ब्रह्मा के राजा पर भविष्य में आक्रमण कर सकना बहुत सुगम हो गया।

(२) द्वितीय युद्ध (१८५२ ई०)—सन् १८२६ से १८३७ तक ब्रह्मा के दरबार से मैत्री का व्यवहार रहा लेकिन जब ब्रह्मा के नये शासक ने न केवल अपने देश के चलन के अनुसार पुराने राजा की सन्धि को मानने से इनकार किया वरन् अंग्रेजों को अपमानित किया तो रेजीडेण्ट वापस चला आया और व्यापारियों ने लार्ड डलहौजी के पास फरियाद की। सन् १८५१ ई० में डलहौजी ने एक सेना भेजी और ब्रह्मा के राजा से अपनी नीति बदलने के लिए कहा। इसका सन्तोषजनक परिणाम न होने पर उसने १८५२ में युद्ध आरम्भ कर दिया और सम्पूर्ण लोअर ब्रह्मा जीतकर अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। उसने यह भी धमकी दी कि यदि ब्रह्मा का राजा विरोध करेगा तो उसका सारा राज्य छीन लिया जायगा। हार के भय से राजा चुप रह गया।

(३) तृतीय युद्ध (१८८५ १८८६)—कुछ दिन फिर शान्ति रही। परन्तु १८७८ में जब थीबो नया राजा हुआ तो फिर झगड़ा होने लगा और रेजीडेण्ट को वापस जाना पड़ा। उसने इटली फ्रान्स और जर्मनी को व्यापार की सुविधायें दीं और अंग्रेज व्यापारियों को वह तंग करने लगा। उसने फ्रान्स की सरकार से युद्ध-सामग्री के लिए भी प्रार्थना की। इन बातों की सूचना पाकर अंग्रेजी सरकार

ने ब्रह्मा की स्वतन्त्र रियासत का अन्त करने का इरादा किया। सन् १८८५ में एक अंग्रेजी सेना ने माण्डले पर अधिकार कर लिया और थीबो कद करके बम्बई प्रान्त में रत्नागिरि भेज दिया गया। इसके बाद १८८६ में ब्रह्मा अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

पश्चिमोत्तर सीमा के युद्ध—कम्पनी ने उत्तरी और पूर्वी सीमा की सुरक्षा के लिए कई युद्ध किये लेकिन लार्ड आकलैण्ड (१८३६-१८४२) के समय तक उसने पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा के लिए केवल सन्धियों पर ही निर्भर रहना पसन्द किया। आकलैण्ड ने सोचा कि जिस प्रकार नैपाल और ब्रह्मा के अधीन हो जाने से उत्तर तथा पूरब की ओर से साम्राज्य को कोई विशेष भय नहीं है, उसी प्रकार यदि अफगानिस्तान का अमीर कम्पनी के प्रभाव में आ जाय तो भारतीय साम्राज्य को रूस की बढ़ती हुई शक्ति से कोई भय नहीं रहेगा। इसलिए उसने दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को वहाँ का अमीर बनाना चाहा। इस कारण प्रथम अफगान युद्ध (१८३९ १८४३) हुआ।

आकलैण्ड और अफगानिस्तान—आकलैण्ड के विषय में एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है कि "वह अयोग्य और ऊटपटाँग काय करने वाला व्यक्ति था। उसके शासन-काल की जितनी भर्त्सना की गई है उससे अधिक किसी दूसरे गवर्नर-जनरल की नहीं की गई।' उसके समय की मुख्य घटना अफगानिस्तान की पहली लड़ाई है। उसमें उसने अपने सब दुर्गुणों का विस्तृत प्रदर्शन किया जिसके कारण उसे वापस बुला लिया गया। उसके समय में दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का अमीर था। उसे हर दिशा में किसी-न-किसी शत्रु से भय था। इस कारण दोस्त मुहम्मद को किसी शक्तिमान् सहायक की बहुत आवश्यकता थी। उसने सोचा कि शायद भारतीय सरकार से उसको सहायता मिल जाय। इस उद्देश्य को साधने के लिए उसने लार्ड आकलैण्ड के पास एक बधाई-पत्र भेजा।

दोस्त मुहम्मद से झगड़ा—आकलैण्ड के पास जब यह पत्र आया तो वह बहुत खुश हुआ। उसने सोचा कि अफगानिस्तान का राज्य अब मेरा ही है और मैं उसके विषय में जो प्रबन्ध चाहूँ कर सकता हूँ। दोस्त मुहम्मद को तो रूसियों का भय था ही, इंगलैण्ड की सरकार भी इस समय रूस की एशियाई नीति से भयभीत रहती थी। इस कारण आकलैण्ड चाहता था कि दोस्त मुहम्मद यह वादा कर ले कि वह रूसियों से कोई सबंध नहीं रखेगा यद्यपि वह स्वयं अमीर को कोई सहायता का वचन देने के लिए तैयार नहीं था। अस्तु विवश होकर

दोस्त मुहम्मद ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और अपनी रक्षा के हेतु फारस तथा रूस से सन्धि कर ली। यह खबर मिलते ही आकलैण्ड बहुत नाराज हुआ और उसने दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को अमीर बनाने का निश्चय किया। यह सच है कि वेंटिङ्क, वेलेजली और एलफिन्स्टन जैसे अनुभवी शासकों ने भारत सरकार की इस नीति का विरोध किया और रूस के जार ने लड़ाई के भय से अपने दूत को वापस बुला लिया। परन्तु आकलैण्ड की बुद्धि में यही आया कि शत्रुता रखनेवाले अमीर के स्थान पर मित्र-पूर्ण अमीर का होना परमावश्यक है और ऐसा अमीर शाहशुजा ही हो सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने एक योजना बनाई। शाहशुजा रणजीतसिंह और कम्पनी में एक सन्धि हुई (१८३८), जिसके अनुसार शाहशुजा को अमीर बनाने में शेष दो ने सहायता देने का वचन दिया। सिक्खों की सेना रहेगी और अंग्रेजों का रुपया। यह रुपया सिंध के अमीरों से लिया गया।

युद्ध का प्रारम्भ—रणजीतसिंह ने रुपया तो ले लिया लेकिन उसने न तो पशावर के दर्रों के आगे बढ़ने का ही वादा किया और न अंग्रेजी सेना को अपने राज्य से होकर जाने की आज्ञा दी। फलतः अंग्रेजी सेना सिंध के मार्ग से कन्दहार की ओर बढ़ी। सिपाहियों ने सिंध में खूब लूट-मार की और अमीरों को अपनी सहायता का पुरस्कार यह मिला कि वे कम्पनी की मातहती में ले लिए गये। कन्धार पर अप्रैल १८३९ में अधिकार हो गया और अगस्त तक सम्पूर्ण अफगानिस्तान वश में कर लिया गया। शाहशुजा ने बर्न्स और मैक्नाटन नामक अंग्रेजी राजदूतों की सलाह से शासन करना आरम्भ किया। अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए उसने कलात के खाँ को हटाकर दूसरे व्यक्ति को वहाँ का शासन नियुक्त किया। दोस्त मुहम्मद कुछ दिन इधर उधर घूमने के बाद अंग्रेजों की शरण में आ गया और नवम्बर १८४० में कलकत्ते भेज दिया गया।

आकलैण्ड की गलतियाँ—उसके आने के बाद अंग्रेज सैनिक और अफसर बिलकुल बेफिक्री से साथ रहने ... सुन्दर स्थानों पर बंगले बनाये, पर पर ... न लग ... ।-पुरुषों से अधिक मेल जोल ... झुकाकर उन्हें ... से अप्रसन्न ... न करने लगे गालाहियार ... दिया ... के ... सैनिक ... आ दिया ... खुले खेमे में ... आदि ... रखा गई ... एन ... उनकी

फ़िस्न के विषय में, जो सेनापति था, आकलण्ड की बहन ने लिखा है, 'बेचारा बुरी तरह से गठिया के रोग स ग्रस्त ह। उसका एक हाथ सीधा नहीं होता और वह बहुत लँगडाता ह। परन्तु अन्य दृष्टियो से भारतवष के लिए काफी युवक-सा सेनापति है।"

अंग्रेजी सेना का सत्यानाश—एक ओर अंग्रेज अपना सनिक प्रबध इतना ढीला कर रहे थे और दूसरी ओर अफगान शाहशुजा को निकालने पर तुले हुए थ क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनका अमीर सिक्ख काफिरों और अग्रेजों का खिलौना बनकर रहे। उन्होंने दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ की अध्यक्षता में सब तयारी कर ली। दूसरी नवम्बर १८४१ को बन्स की हत्या कर डाली गई और अनेक अंग्रेज अफसर तथा उनके सम्पूण परिवार कत्ल कर दिये गये। एलफिंस्टन को इन घटनाओ की सूचना शाम को मिली और उसने मक्नाटन को केवल यह उत्तर देकर ही सन्तोष कर लिया कि देखें कल सुबह क्या होता है। इन मूखताओ का फल यह हुआ कि अग्रेजो की शक्ति और प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा मैक्नाटन मारा गया, सभी स्त्रियाँ और अफसर कैद कर लिये गय, उनका रुपया और लडाई का सामान छीनने के बाद १६,००० सैनिकों को काबुल से जलालाबाद का ओर जाने की आज्ञा दी गई और माग में उन सबको मार डाला गया। केवल डाक्टर ब्राइडन यह दुःखद समाचार सुनाने के लिए शेष बचा।

युद्ध का अन्त और एलेनबरा—इस भीषण हत्याकाण्ड और क्षति का समाचार पाकर आकलण्ड कुछ न कर सका। इंग्लण्ड की सरकार ने उस हटाकर एलेनबरा को गवनर-जनरल बनाकर भजा। पहले तो उसने भी कुछ कायरता दिखाई लेकिन बाद में उसने अफगानो से बदला लेने के लिए ठाना था। पशावर से पौलक और कन्दहार से नाट की सेनाए बढा और गजनी तथा काबुल को लूटती जलाती और नष्ट करती हुई वापस आ गई। कुछ दिन बाद भारत सरकार ने दोस्त मुहम्मद का ही अमीर स्वीकार करके काबुल भेज दिया। इस प्रकार जो स्थिति १८३८ में थी वही बना रही। आकलण्ड की नीति से शाहशुजा की जान गई, कम्पनी के २०,००० सनिक और अफसर कुत्तों की मौत मर और १५ करोड रुपये खच हुए। अफगानिस्तान का अमीर दोस्त मुहम्मद ही रहा और कम्पनी का लौटती हुई सेना की क्रूरता के कारण अफगान असंतुष्ट हो गये। कम्पनी का प्रतिष्ठा भी बहुत कम हो गई। इसी

प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए लार्ड एलेनबरा (१८४२-१८४४) ने सिन्ध पर आक्रमण किया।

सिन्ध विजय (१८४३ ई०)—एलेनबरा के दूत चार्ल्स नेपियर ने अमीरों से सहायक सेना रखने के लिए आग्रह किया। उस सेना के पहुँचते ही अमीरों की सेना ने विद्रोह कर दिया। नेपियर इसी स्वर्ण अवसर की ताक में था। उसने विद्रोह दबा दिया। यद्यपि अमीरों ने कम्पनी की ओर से दुर्व्यवहार होने पर भी कोई सन्धि नहीं तोड़ी थी, फिर भी इस विद्रोह का उत्तरदायित्व उन्हीं पर रखा गया और सिन्ध अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

पंजाब पर अधिकार (१८४५-१८४६ ई०)—सिन्ध पर अधिकार कर लेने के बाद कम्पनी का ध्यान स्वाभाविक रीति से पंजाब की ओर गया। जब तक रणजीतसिंह (१७८० १८३६) जीवित रहा कम्पनी को पंजाब पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं पड़ी। वह था भी बड़ा ही योग्य और कुशल शासक। सुकर चकिया मिस्ल के सरदार के पुत्र की हैसियत से उसने १७ वर्ष की आयु में जमानशाह के आक्रमण के समय से ही उन्नति करना आरम्भ किया और १८०७ ई० तक उसने सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार कर लिया। वह सतलज पार की रियासतों को भी जीतना चाहता था लेकिन अमृतसर की सन्धि (१८०६) द्वारा उसने यह इरादा त्याग दिया क्योंकि उन रियासतों ने कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने पेशावर पर भी अधिकार कर लिया था और इस सम्पूर्ण राज्य के लिए उचित शासन-व्यवस्था बनाई। उसकी सेना बड़ी प्रबल थी और उसको यूरोपियन ढंग की शिक्षा मिली थी। अपनी शक्ति के मद में उसने कभी कम्पनी से शत्रुता मोल नहीं ली। मराठों अथवा गोरखों को उसने कोई सहायता नहीं दी।

उसकी मृत्यु के बाद पंजाब की दशा बिगड़ने लगी। उसके उत्तराधिकारियों में कोई भी योग्य नहीं निकला और कई षड्यन्त्रों तथा हत्याओं के बाद उसका सबसे छोटा लड़का दिलीपसिंह महाराजा बनाया गया। दिलीपसिंह बालक था। इसलिए उसकी माता जिन्दन और उसका प्रेमी लालसिंह शासन का काम देखने लगे। पंजाब के बहुत से लोग उनसे असंतुष्ट थे। सेना उनके दबाव में नहीं रही और उसने खालसा (मन्त्रियों की प्रतिनिधि-सभा) स्थापित करके उसी की आज्ञा के अनुसार काम करना आरम्भ किया। जिन्दन और लालसिंह किसी भाँति सेना की शक्ति कम करके उसे वश में करना चाहते थे। राजपूतों का सरदार गुलाबसिंह अंग्रेजों को गुप्त सहायता और सूचना देकर उनकी कृपा से एक अलग राज्य

रणजीतसिंह का राज्य

स्थापित करने की योजना बना रहा था। यह दशा देखकर कम्पनी के अफसरों ने समझ लिया कि पंजाब पर अधिकार होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। लार्ड हार्डिञ्ज (१८४४-१८४८) ने सतलज के पूरब की ओर ४०,००० सेना इकट्ठा कर ली और उनके साथ ६८ तोपें भी भेज दी गई। सिन्ध में सतलज पर पुल बनाने के लिए नावें इकट्ठा की जा रही थीं, परन्तु कम्पनी को आक्रमण करने का कोई बहाना नहीं मिल रहा था। सन् १८४५ में उसने सतलज पार के दो गाँवों पर अधिकार कर लिया। इस पर लालसिंह ने सिक्ख सेना को समझाया कि अंग्रेजों का दूसरा वार पंजाब पर ही होगा। यह सुनकर वे उत्तेजित हो उठे और उन्होंने सतलज पार करके अंग्रेजों के विरुद्ध प्रस्थान किया।

प्रथम युद्ध (१८४५-१८४६)—यहीं से सिक्खों के प्रथम युद्ध का प्रारम्भ हुआ। पहली लड़ाई मुदकी के स्थान पर हुई जहाँ लालसिंह के विश्वासघात से सिक्खों की हार हुई। इसी भाँति फीरोज़ शहर की लड़ाई में तेजसिंह ने धोखा दिया और सेना को पीछे हटना पड़ा। गुलाबसिंह तथा दूसरे स्वार्थी सरदार भी सेना को धोखा देते रहे। वे उसकी सभी चालें पहले से अंग्रेजों को बता देते थे और फिर सेना को भिड़ाकर स्वयं युद्ध-स्थल से हट जाते थे। इसलिए अलीवाल और सोबराँव की लड़ाइयों में भी सिक्खों की हार हुई और उनका सैनिक संगठन टूट गया। अब लाहौर दरबार और कम्पनी में संधि हो गई और युद्ध बन्द हो गया। लाहौर की सन्धि द्वारा व्यास और सतलज के बीच का दोआब तथा सतलज पार की जमीन कम्पनी को दे दी गई। लाहौर दरबार ने डेढ़ करोड़ रुपया हर्जाना देना भी स्वीकार किया और कम्पनी ने दबाव से उसकी अदायगी के लिए काश्मीर का प्रान्त एक करोड़ रुपये में गुलाबसिंह को बेच दिया। विद्रोही सैनिकों से हथियार छीन लिए गये और उनको निकाल दिया गया। सिक्ख सेना की संख्या १२,००० घुड़सवार और २०,००० पैदल निश्चित की गई। कुछ समय के लिए अंग्रेजी सेना पंजाब में रख ली गई और उसे सब जगह जाने की आज्ञा मिल गई। भावी शासन के लिए दिलीपसिंह शासक, उसकी माँ संरक्षक, लालसिंह प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए, लेकिन उनको रेजीडेण्ट हेनरी लारेन्स की सलाह से राज्य करने का अधिकार दिया गया।

द्वितीय युद्ध (१८४८-१८४९)—कुछ समय बाद जिन्दन और लालसिंह को पंजाब के बाहर निकाल दिया गया और रेजीडेण्ट एक ८ आदमियों की समिति की सलाह से शासन करने लगा। लाहौर-दरबार ने एक स्थायी सहायक सेना रखना भी स्वीकार कर लिया और उसके खर्च के लिए २२ लाख रुपया

१८५६ ई० मे अंग्रेजी साम्राज्य
तिब्बत
नेपाल
भूटान
पंजाब
राजस्थान
मालवा
गुजरात
नागपुर
निज़ाम
मैसूर
बंगाल
आसाम
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

प्रतिवर्ष देने का वादा किया। हेनरी लारेन्स ने सिक्खों के स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया और उसने धार्मिक तथा सामाजिक सुधार भी किये। इस कारण असंतोष बढ़ने लगा। इसी समय सन् १८४८ में मुलतान हाकिम मूलराज ने त्यागपत्र दे दिया और जो अंग्रेज अफसर उसके उत्तराधिकारी के साथ भेजे गये उनको किसी ने रात में मार डाला। इसलिए मूलराज ने विद्रोह कर दिया। इसकी सूचना पाकर दूसरे असंतुष्ट व्यक्तियों ने भी उसका साथ दिया। विद्रोह बढ़ता ही गया। डलहौजी (१८४८-१८५६) ने उसके दमन का तुरन्त प्रबन्ध किया। रामनगर और चिलियानवाला के युद्धों में किसी पक्ष की विजय नहीं हुई परन्तु मुलतान और गुजरात की लड़ाइयों में सिक्ख हार गये और युद्ध बन्द हो गया।

डलहौजी ने दिलीपसिंह के निर्दोष होने पर भी उसको गद्दी से उतार दिया और पंजाब को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। दिलीपसिंह को ५०,००० पौण्ड पेंशन दी जाने लगी और वह कुछ दिन बाद इंगलैण्ड चला गया जहाँ वह ईसाई हो गया। इस प्रकार रणजीतसिंह की मृत्यु के दस वर्ष बाद ही उसके राज्य का अन्त हो गया। इसके मुख्य कारण तीन हैं—(१) रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी अयोग्य थे, (२) सेना के सरदार स्वार्थी तथा विश्वासघाती थे और (३) कम्पनी की शक्ति उस समय तक बहुत बढ़ गई थी।

अन्य राज्यों का मिलना—डलहौजी और उसके पहले के गवर्नर-जनरलों ने कई छोटे-बड़े राज्य बिना युद्ध किये हुए ही अंग्रेजी राज्य में मिला लिये थे। लार्ड विलियम बेंटिङ्क (१८२८-१८३५) ने कुप्रबन्ध के कारण सन् १८३१ में मैसूर और कचार पर अधिकार कर लिया। १८३२ में मनीपुर के राजा के कोई पुत्र न होने के कारण उसकी मृत्यु पर उसका राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया। सन् १८३४ में कुर्ग का अत्याचारी राजा पदच्युत कर दिया गया और सन् १८३५ में जयन्तिया का राजा जिसने दो अंग्रेजों को मार डाला था गद्दी से उतार दिया गया। यह दोनों राज्य भी कम्पनी के अधिकार में आ गये। सन् १८४१ में आकलैण्ड ने कर्नाल के नवाब को केवल इस सन्देह पर हटा दिया कि वह अंग्रेजों से शत्रुता रखता है।

डलहौजी समझता था कि देशी नरेश अयोग्य और अकर्मण्य हैं जिनके कारण उनकी प्रजा को बहुत कष्ट होता है। इसलिए उसकी धारणा थी कि जितने राज्यों का अन्त किया जा सके, उतना ही प्रजा और कम्पनी के लिए लाभदायक है। इस नीति के अनुसार उसने कई राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।

सतारा (१८४९), झाँसी (१८५३) और नागपुर (१८५४) के राजाओं के कोई औरस पुत्र नहीं था। डलहौजी ने इनमें से किसी को लड़का गोद लेने का अनुमति नहीं दी और सभी को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। सन् १८५६ में कुशासन के अभियोग में अवध का नवाब वाजिदअलीशाह भी गद्दी से उतार दिया गया और अवध अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

इस भाँति १८५६ ई० तक इंगलैण्ड की व्यापारी कम्पनी समूचे भारत की मालिक हो गई। बहुतेर भाग पर उसका सीधा शासन था और शेष भाग पर देशी शासकों का अधिकार था जो प्राय सभी बातों में उसकी इच्छा के अनुसार चलने के लिए बाध्य थे। कम्पनी के अधिकारियों ने इस साम्राज्य निर्माण में उचित अनुचित का अधिक ध्यान नहीं रखा और अपने देश के लाभ के लिए सभी कुछ किया। क्लाइव ने जालसाजी की निर्दोष नवाबों को पदच्युत किया और मीरजाफर की कमजोरी से लाभ उठाकर खूब धन बटोरा। वारेन हेस्टिंग्स ने व्यक्तिगत चरित्र शुद्ध रखते हुए भी कम्पनी के युद्धों के लिए धन प्राप्त करने में रुहेलों, अवध की बेगमों और बनारस के राजा चेतसिंह के साथ बहुत अनुचित व्यवहार किया। वेलेजली और डलहौजी ने दूसरों की भावनाओं का ध्यान हा नहीं रखा और जिसका लाठा उसकी भैंस वाली कहावत को ही अपनी नीति का आधार बनाया।

मुख्य तिथियाँ

हैदरअली का राज्याभिषेक	१७६३ ई०
मैसूर की पहली लड़ाई	१७६७–१७६९ ई०
प्रथम मराठा युद्ध का प्रारम्भ	१७७६ ई०
द्वितीय मैसूर युद्ध का प्रारम्भ	१७८० ई०
सालबाई की संधि	१७८२ ई०
टीपू का राज्याभिषेक	१७८२ ई०
मंगलौर की संधि	१७८४ ई०
तृतीय मैसूर-युद्ध	१७९०–१७९२ ई०
बाजीराव द्वितीय का पेशवा होना	१७९५ ई०
चतुर्थ मैसूर-युद्ध	१७९९ ई०
बसीन की संधि	१८०२ ई०
भोसला और सिंधिया की पराजय	१८०३–१८०४

होल्कर की पराजय	१८०६ ई०
अमृतसर की संधि	१८०९ ई०
गोरखा-युद्ध	१८१४–१८१६ ई०
मराठों का पतन और पेशवाई का अन्त	१८१७–१८१८ ई०
यांदबू की सन्धि	१८२६ ई०
प्रथम अफगान युद्ध	१८३९–१८४३ ई०
रणजीतसिंह की मृत्यु	१८३९ ई०
दोस्त मुहम्मद का शरण में आना	१८४० ई०
बर्न्स की हत्या	१८४१ ई०
प्रथम अफगान युद्ध का अन्त	१८४३ ई०
सिन्ध विजय	१८४३ ई०
लाहौर की संधि	१८४६ ई०
पंजाब का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८४९ ई०
ब्रह्मा की दूसरी लड़ाई	१८५२ ई०
नागपुर राज्य का अन्त	१८५४ ई०
अवध का अन्त	१८५६ ई०
अपर ब्रह्मा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८८६ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) कम्पनी ने अपने राज्य को बढ़ाने के लिए किन उपायों का अवलम्बन किया ? उनमें से कौन सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ ? उदाहरण देकर बताओ।

(२) मराठों की पराजय के क्या कारण थे ? जिन युद्धों द्वारा मराठों की स्वतंत्रता का विनाश हुआ, उनका संक्षिप्त विवरण दो

(३) हैदरअली का क्या उद्देश्य था ? वह उसमें असफल क्यों हुआ ?

(४) लार्ड मिण्टो ने पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा और भारत में फ्रांस की शक्ति नष्ट करने के लिए क्या उपाय किये ?

(५) गोरखा-युद्ध का भारतीय इतिहास में क्या महत्व है ?

(६) ब्रह्मा के राजाओं और कम्पनी के हाकिमों में झगड़े के क्या मुख्य कारण थे ? ब्रह्मा की स्वतंत्रता का अन्त किस प्रकार हुआ ?

(७) प्रथम अफगान युद्ध के क्या कारण थे ? आकलैण्ड की अफगान नीति का संक्षेप में वर्णन करो।
(८) पंजाब पर अधिकार करने में किन बातों से सहायता मिली ?

अध्याय २६

ब्रिटिश शासन व्यवस्था का विकास

(१७७४-१८५७ ई०)

विकास के साधन—रेगुलेटिंग ऐक्ट के पास होने के पहले इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट कम्पनी के मामलों में अधिक दिलचस्पी नहीं लेती थी। वह प्रायः तभी उसके विषय में विचार करती थी जब कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध शिकायत करे या कम्पनी के डाइरेक्टर विशेष सुविधाओं के लिए प्रार्थना करें। परन्तु सन् १७७३ के बाद पार्लियामेण्ट ने नियमित रूप से कम्पनी के काम की देखभाल करना आरम्भ कर दिया और समय-समय पर यह नये ऐक्ट बनाकर कम्पनी के आन्तरिक शासन और ब्रिटिश सरकार से उसके सम्बन्ध को सुधारने का प्रयत्न करती रही। ब्रिटिश भारतीय-शासन-व्यवस्था के विकास में इन ऐक्टों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय सरकार के पदाधिकारी समय-समय पर अनेक परिवर्तन करते रहे जिनके कारण शासन-व्यवस्था का स्वरूप बदलता गया। पठन की सुविधा की दृष्टि से इन दोनों प्रकार के नियमों का अलग अलग वर्णन करना अधिक उपयोगी होगा।

रेगुलेटिंग ऐक्ट (१७७३)—कम्पनी के कर्मचारी बहुत स्वार्थी और बेईमान होते जा रहे थे। उसे कई युद्ध भी करने पड़े थे। फलतः उसकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई और उसे इंगलैण्ड की सरकार के ऋण के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। पार्लियामेण्ट ने रुपया मंजूर करने के साथ कम्पनी की स्थिति सुधारने के लिए रेगुलेटिंग ऐक्ट भी पास किया। इसके द्वारा कम्पनी के शासन का सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य पर और ब्रिटिश सरकार का कम्पनी पर नियन्त्रण बढ़ा दिया गया। इस ऐक्ट के अनुसार [illegible] प्रमुख परिवर्तन किए गए—

(१) बगाल का गवनर अब गवनर-जनरल बना दिया गया और उसे अन्य गवर्नरों की प्रदेशिक नीति पर नियन्त्रण रखने का अधिकार दिया गया।

(२) गवर्नर-जनरल पर नियंत्रण रखने और उसको परामश देने के लिए एक चार सदस्यों की कौंसिल नियुक्त की गई जिसकी इच्छा के विरुद्ध काय करने का अधिकार गवनर-जनरल को नहीं दिया गया।

(३) सकौंसिल गवनर-जनरल पर कम्पनी के डाइरेक्टरों का नियन्त्रण बना रहा।

(४) डाइरेक्टरों की नीति पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण रखने के लिए यह नियम बनाया गया कि वे कम्पनी के आय-व्यय का ब्यौरा ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करें और अपनी सैनिक तथा व्यापारिक नीति की सूचना समय-समय पर देते रहें।

(५) न्याय विभाग के केन्द्रीकरण के उद्देश्य से एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित किया गया, जिस पर गवनर-जनरल अथवा उसकी कौंसिल का कोई नियन्त्रण नहीं रहा।

(६) कम्पनी के प्रधान कर्मचारियों का वतन बढ़ा दिया गया और उनका निजी व्यापार करने की मनाही कर दी गई।

इस ऐक्ट में कई दोष रह गये थे, जिनको दूर करने के लिए दूसरे ऐक्ट बनाने पड़े।

पिट का इण्डिया बिल १७८४ ई०—कौंसिल के साथ गवनर-जनरल को तग करने के लिए उसकी हर बात का विरोध करने लगे। उसे उनकी सम्मति को मानना ही पड़ता था। दूसरे मद्रास तथा बम्बई के गवनर अब भी मनमानी करना चाहते थे। इन दोषों को दूर करने और कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण बढ़ाने के लिए पिट ने १७८४ ई० में नया ऐक्ट पास किया। इसके अनुसार कौंसिल के सदस्यों की संख्या घटाकर तीन कर दी गई और गवनर जनरल को साधारण सदस्य की भाँति तथा बराबर वोट होने पर सभापति होने के नाते दोबारा वोट देने का अधिकार मिल गया। फलत यदि एक सदस्य भी उसके पक्ष में रहे तो वह अपने इच्छानुसार शासन कर सकता। दूसरे गवर्नरों को स्पष्ट आज्ञा दी गई कि वे युद्ध, सन्धि, आय-व्यय अथवा अन्य शासन-कार्यों में गवर्नर-जनरल के नियन्त्रण में रहकर शासन करें और उनको चेतावनी दे दी गई कि यदि वे गवर्नर-जनरल की आज्ञा की अवहेलना करेंगे तो वे अस्थायी रूप से अपने काय भार से मुक्त किये जा सकेंगे।

कम्पनी पर पार्लियामेण्ट का नियन्त्रण बढ़ाने के लिए कई धारायें रखी गई। कम्पनी के सचालकों में तीन व्यक्तियों की एक गुप्त समिति भारतीय सरकार से पत्र-व्यवहार करने के लिए नियुक्त की गई। प्रथम मन्त्री, एक अन्य मन्त्री और ४ प्रिवी कौंसिल के सदस्यों का एक बोर्ड स्थापित किया गया जिसकी नियुक्ति सम्राट के अधिकार में रही। इस बोर्ड को सचालकों तथा उनकी गुप्त समिति के सभी कार्यों के नियन्त्रण का अधिकार दिया गया और बोर्ड की सभी आज्ञायें उनके लिए मान्य कर दी गई। सचालकों को केवल नियुक्तियाँ करने की पूरी स्वतन्त्रता रही।

१७८६ का ऐक्ट—लार्ड कार्नवालिस की नियुक्ति के समय पार्लियामेण्ट ने और एक ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा गवर्नर-जनरल को अपनी कौंसिल के सभी सदस्यों के एकमत होने पर भी उनकी सम्मति के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार दिया गया। इस ऐक्ट के पास होने से गवर्नर-जनरल का प्रभाव बहुत बढ़ गया।

चार्टर ऐक्ट १७९३ ई०—सन् १७९३ ई० में कम्पनी को नया आज्ञापत्र दिया गया। उसकी धाराओं के अनुसार प्रान्तीय गवर्नरों को भी विशेष परिस्थितियों में अपनी कौंसिलों की सम्मति के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय सरकार की आय में से बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सदस्यों और उनके दफ्तर का खर्च भी दिया जाने लगा।

चार्टर एक्ट १८१३ ई०—बीस वर्ष बाद दूसरा आज्ञा पत्र दिया गया। कम्पनी के पास अब बहुत बड़ा राज्य हो गया था यद्यपि वह व्यापार भी कर रही थी। भारतीय व्यापार में उसका एकाधिकार तोड़ दिया गया और उसे आज्ञा दी गई कि वह व्यापार और राज्य के आय-व्यय का हिसाब अलग-अलग रखे। साथ ही कम्पनी को एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा की उन्नति के लिए खर्च करने का भी आदेश दिया गया।

चार्टर ऐक्ट १८३३ ई०—सन् १८३३ तक कम्पनी का साम्राज्य और भी विस्तृत हो गया था। इसलिए नये आज्ञापत्र में उसको व्यापार करने की अनुमति नहीं दी गई। कम्पनी के राज्य विस्तार का ध्यान रखते हुए गवर्नर-जनरल को अब भारतवर्ष का न कि बंगाल का गवर्नर जनरल कहा जाने लगा। उसको ब्रिटिश भारत के सभी व्यक्तियों और विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमों को बनाने, संशोधन और रद्द करने का अधिकार दिया गया और इस कार्य में उसकी सहायता करने के लिए उसकी कौंसिल में, एक अतिरिक्त सदस्य लॉ मेम्बर.

नियुक्त किया गया। इसी ऐक्ट के अनुसार शिक्षा पर १० लाख प्रतिवर्ष व्यय किया जाने लगा और भारतीयों को ऊँची नौकरियाँ मिलने लगीं।

चार्टर ऐक्ट १८५३ ई०—अन्तिम चार्टर ऐक्ट के द्वारा बंगाल का एक लफ्टिनेण्ट गवर्नर नियुक्त किया जाने लगा और गवर्नर-जनरल का काम केवल अखिल भारतीय विषयों का शासन और प्रान्तीय शासन का नियन्त्रण रह गया। गवर्नर-जनरल को कानून बनाने में परामर्श देने के लिए एक समिति नियुक्त की गई जिसमें कौंसिल के सदस्यों और कमाण्डर-इन-चीफ के अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट का प्रधान जज तथा एक अन्य जज और चारों प्रान्तों द्वारा मनोनीत बीस वर्ष के अनुभव वाला एक एक उच्च अफसर शामिल किया गया।

इन सब ऐक्टों के द्वारा गवर्नर-जनरल, गवर्नर तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों के अधिकार और कर्तव्य निश्चित किये गये और उनके पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या की गई। साथ ही पार्लियामेण्ट का नियन्त्रण दिन-पर दिन बढ़ता ही गया और १८५८ में कम्पनी के सभी अधिकार छीन लिये गये और ब्रिटिश सम्राट ने भारतीय शासन अपने हाथ में ले लिया।

शासन-सुधार—कम्पनी के पदाधिकारियों ने आवश्यकतानुसार अनेक सुधार किये जिनसे सरकार की शक्ति और आय बढ़ी और प्रजा के कष्टों में कुछ कमी हुई। सुधार करनेवाले गवर्नर-जनरलों में वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, लार्ड हेस्टिंग्स, विलियम बेंटिङ्क और डलहौजी मुख्य हैं।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार—वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी के कर्मचारियों की घूसखोरी और निज की तिजारत किस प्रकार बन्द की थी इसका उल्लेख पहले हो चुका है। उसने शासन के सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिये और नवाब को पेंशन देकर शासन भार से मुक्त कर दिया। इस प्रकार बंगाल के दोहरे शासन का अन्त हुआ। सारा प्रान्त कई जिलों में विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक के लिए एक कलक्टर नियुक्त कर दिया गया जो लगान वसूल करता और शान्ति तथा सुरक्षा का प्रबन्ध करता था।

आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिए उसने पहले खर्च में कमी की। बंगाल के नवाब की पेंशन ३२ लाख के स्थान पर १६ लाख कर दी गई। दोहरे शासन का अन्त हो जाने से नायब नवाबों तथा अन्य कई कर्मचारियों की आवश्यकता नहीं रही। उनको निकाल दिया गया। इससे भी खर्च में बचत हुई। शाहआलम मराठों से मिल गया था और निःशक्त था इसलिए उसकी २६ लाख सालाना पेंशन बन्द कर दी गई। इसके अतिरिक्त उसने आय बढ़ाने के लिए भी उद्योग

किया। कडा और इलाहाबाद के जिलों पर अधिकार कर लिया गया और बाद में ५० लाख रुपये देने पर यह अवध के नवाब को दे दिये गये। मराठों से बचने के लिए सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई थी। हेस्टिंग्स ने उनमें से कुछ सैनिक अवध में रख लिये और उनका वेतन नवाब से वसूल किया। लगान की वसूली में सुविधा की दृष्टि से उसने जमीन को ५ वर्ष के ठेके पर दे दिया। ठेके की प्रथा होने के कारण भी आमदनी बढ़ गई। जब इन रीतियों से कम्पनी का व्यय पूरा नहीं हुआ और उसे कोई उचित साधन न सूझा तो उसने अवध के नवाब को रुहेलों के विरुद्ध सहायता देकर ४० लाख रुपये देने का वादा करा लिया। बाद में मराठों और मैसूर के युद्ध होने के समय उसने अवध की बेगमों और बनारस के राजा चेतसिंह से बेजा दबाव डालकर बहुत-सा रुपया वसूल किया और जब चेतसिंह ने मुँहमाँगा रुपया नहीं दिया तो उसे गद्दी से उतारकर दूसरे व्यक्ति को राजा बनाया और २२- लाख प्रतिवर्ष के स्थान पर बनारस राज्य का कर ४० लाख रुपया कर दिया। इन उचित तथा अनुचित उपायों द्वारा उसने कम्पनी के राज्य की किसी प्रकार रक्षा कर ली और उसकी आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी कर दी।

जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए हेस्टिंग्स ने दो कार्य किये। उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फौजदारी अदालत स्थापित की। दीवानी अदालत का काम कलक्टर करता था किन्तु फौजदारी अदालत के लिए भारतीय न्यायाधीश रख गये जो कलक्टर के नियन्त्रण में काम करते थे। इन अदालतों के ऊपर उसने कलकत्ते में दो अपील की अदालतें खोलीं। सदर दीवानी अदालत दीवानी अदालतों के फैसलों के विरुद्ध अपील सुनती थी और फौजदारी अदालतों की अपीलें सदर निजामत अदालत के सामने पेश होती थीं। न्याय का प्रबन्ध हो जाने से जनता की स्थिति सुधर गई। दूसरे उसने संन्यासियों के विद्रोह का दमन करके शान्ति स्थापित की।

कार्नवालिस के सुधार—वारन हेस्टिंग्स के स्थायी उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस ने अपने शासन-काल का अधिकांश समय कम्पनी और प्रजा की दशा सुधारने में ही लगाया। उसके समय में शासन प्रबन्ध में चार मुख्य दोष थे।

(१) कम्पनी के कर्मचारियों का वेतन बहुत कम था लेकिन निजी व्यापार (जो वे अपने सम्बन्धियों या मित्रों के नाम से करते थे), भूमि-कर के कमीशन और घूस आदि से वे बहुत काफी रुपया कमा लेते थे। इस भाँति बनारस के अंग्रेज एजेण्ट को वेतन केवल १३५० पौंड मिलता था लेकिन उसकी पूरी वार्षिक आमदनी ४०,००० पौंड से भी अधिक थी।

(२) कलक्टर और न्यायाधीश एक ही व्यक्ति होता था। इसलिए अक्सर उचित न्याय नहीं होता था और पक्षपात तथा बेईमानी की शिकायतें होती रहती थीं।

(३) इसके अतिरिक्त जिले की अदालतें फैसला करने में बहुत समय लगाती थीं जिसके कारण गरीब तथा असहाय लोगों की रक्षा का उपाय नष्ट हुआ जा रहा था। देर में फैसला होने पर भी यदि वह उभय पक्ष में से किसी को ठीक नहीं लगा तो उसके विरुद्ध कलकत्ता आकर अपील करना बहुधा असंभव या बहुत ही कष्टकर होता था।

(४) पंचवर्षीय और वार्षिक ठेके की प्रथा से किसानों का कष्ट और सरकार की उलझन बहुत बढ़ गई थी। साथ ही समय पर पूरा रुपया भी वसूल नहीं होता था।

सिविल सर्विस का सुधार—कार्नवालिस ने एक-एक करके इन सभी दोषों को कम किया या दूर कर दिया। उसने सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़वा दिया ताकि वे ईमानदारी से काम कर सकें। उदाहरणार्थ उसके समय में जिले के जज को २५०० रुपया मासिक वेतन मिलता था। वेतन बढ़ाने के बाद उसने उनको चेतावनी दी कि वे प्रतिष्ठा-मर्यादा का उचित पालन करें और घूस लेना तथा व्यापार करना बिलकुल बन्द कर दें। इस नियम के विरुद्ध कार्य करनेवालों के साथ कोई रियायत नहीं की जाती थी। फल यह हुआ कि सरकारी कर्मचारियों का चरित्र काफी सुधर गया।

अदालतों का सुधार—कार्नवालिस ने अदालतों में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये। अपराधियों का पता लगाने के लिए उसने हिन्दुस्तानी दारोगा नियुक्त किये। उनको २५ रुपया प्रतिमास वेतन मिलता था। प्रत्येक जिले में एक अंग्रेज जज रहता था जो सभी फौजदारी के मुकदमे सुनता था। उसकी सहायता के लिए भारतीय अफसर भी रहते थे। जिले की अदालतों से अपील करने के लिए उसने कलकत्ते के स्थान पर चार अपील की अदालतें खोलीं। उनके केन्द्र ढाका, मुर्शिदाबाद, पटना और कलकत्ता थे। इन चार अपील की अदालतों के बन जाने से लोग अपने घरों से थोड़ी ही दूर जाकर अपील कर सकते थे। विशेष सुविधा की बात यह थी कि इन अपील की अदालतों में जो तीन जज रहते थे, वे अपने अधीन जिलों में दौरा करते रहते थे और स्थान-स्थान पर मुकदमे करते थे। इसी कारण उनको सेशन जज भी कहते थे। इन चारों अपील की अदालतों के

ऊपर कलकत्ते में सदर निजामत अदालत रहती थी। उसका प्रधान गवर्नर जनरल होता था और उसके सदस्य कौंसिल के मेम्बर होते थे। इन अदालतों की सुविधा के लिए कार्नवालिस ने एक नियमों की पुस्तक तैयार कराई जो कि 'कार्नवालिस कोड' के नाम से प्रसिद्ध है।

फौजदारी अदालतों से ही मिलता जुलता दीवानी अदालतों का प्रबन्ध था। दीवानी के छोटे-छोटे मुकदमे मुन्सिफ करते थे। वे भारतीय होते थे। उनको कुछ वेतन नहीं मिलता था। मुकद्दमा दायर करनेवाले को कुछ फीस देनी पड़ती थी। यही उनकी आय होती थी। मुन्सिफों के ऊपर जिले का जज होता था। यह कलेक्टर से भिन्न होता था। कार्नवालिस का विचार था कि कलेक्टर यदि न्यायाधीश भी होगा तो वह निश्चय ही कुछ-न-कुछ अन्याय करेगा। इसी कारण उसने कलेक्टर के स्थान पर एक अलग व्यक्ति को दीवानी मुकदमों का जज बनाया। इन जिलों की दीवानी अदालतों के निर्णय के विरुद्ध भी ढाका पटना कलकत्ता और मुर्शिदाबाद में अपील हो सकती थी। इन अपील की अदालतों के वे ही जज होते थे जो फौजदारी की अदालतों के थे। अन्तर केवल इतना ही था कि दीवानी मुकदमों के करते समय उन्हें असेसरों की आवश्यकता नहीं रहती थी और न वे इन मुकदमों के सुनने के लिए दौरा ही करते थे।

कार्नवालिस के इन सुधारों का फल यह हुआ कि न्याय में अधिक सुविधा हो गई फैसले जल्दी होने लगे और प्रजा को अधिक आराम हो गया लेकिन उसने भारतीयों को सभी ऊँचे पदों से निकालकर बड़ी भूल की। न्याय विभाग थोड़े ही समय में बहुत अयोग्य और खर्चीला विभाग हो गया। इन दोषों को आगे चल कर हटाना पड़ा।

स्थायी प्रबन्ध १७९३ ई०—कार्नवालिस ने भूमि-कर की भी सतापजनक प्रबन्ध करने का निश्चय किया। सन् १७८६ ई० में उसे आज्ञा मिली थी कि वार्षिक प्रबन्ध को बन्द करके दशवर्षीय प्रबन्ध करे। कार्नवालिस ने इस कार्य के लिए जान शोर को नियुक्त किया। यह बड़ा परिश्रमी व्यक्ति था। उसने तीन वर्ष में घूम घूमकर प्रत्येक जिले की भूमि ठेकेदारों को दे दी। जिस व्यक्ति ने सबसे अधिक वार्षिक कर देने का वचन दिया, उसी को १० वर्ष के लिए जमीन दे दी गई। यह प्रबन्ध १७८९ ई० तक समाप्त हो गया। जान शोर भी दशवर्षीय प्रबन्ध के ही पक्ष में था लेकिन कार्नवालिस इससे सन्तुष्ट नहीं था। उसके कहने से सन् १७९२ से यही दशवर्षीय प्रबन्ध स्थायी प्रबन्ध कर दिया गया।

लाभ—इस प्रबन्ध से कम्पनी को बहुत लाभ हुआ। उसे बार-बार प्रबन्ध

करने के झंझट से छुटकारा मिल गया। कर वसूल करने का खर्च बहुत घट गया, क्योंकि जमींदार स्वयं जाकर खजाने में रुपया जमा कर जाते थे। तीसरे, कम्पनी का आय निश्चित और स्थायी हो गई और वह उसी के अनुसार अपनी योजनायें बना सकती थी। चौथे, जिन लोगों को ठेके मिले थे वे कम्पनी के सहायक हो गये क्योंकि उन्हें भय था कि राज्य-परिवर्तन होने पर संभव है उनका स्थायी अधिकार न रहे।

कम्पनी के अतिरिक्त जमींदार या ठेकेदारों को भी इससे लाभ हुआ। वे स्थायी स्वामी बन गये इस कारण उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। उनका कर निश्चित हो गया, लेकिन उनकी आय बराबर बढ़ती जा सकती थी। इस प्रकार वे शीघ्र ही काफी धनी हो गये। स्थायी आय होने के कारण वे दूसरे व्यवसायों में भी काफी धन लगा सकते थे।

जनता को इस प्रबन्ध से अधिक लाभ नहीं हुआ। जमींदारों के संचित धन से बंगाल में कारोबार की उन्नति हुई और विद्या का प्रचार बढ़ा। कुछ जमींदारों ने अपना धन प्रजा हितकारी कामों में भी लगाया।

हानि—लेकिन इस प्रबन्ध में कुछ दोष भी थे जिनके कारण सभी लोगों को कुछ हानि भी हुई। यद्यपि सरकार को कृषि की उन्नति के लिए धन व्यय करना पड़ता था लेकिन उसकी आय में कोई वृद्धि नहीं हो सकती थी। जमींदारों को इस नियम से यह बड़ी असुविधा हुई कि नियत तिथि पर रुपया अदा न होने पर उनकी भूमि नीलाम कर दी जाती थी। इस नियम के कारण बहुत-से धनी-मानी जमींदार कंगाल हो गये। कुछ जमींदार आलसी और काहिल भी हो गये और वे केवल भोग विलास में ही लिप्त रहने लगे जिससे उनका नैतिक पतन हुआ।

इस प्रबन्ध से सबसे अधिक हानि बेचारे गरीब किसान को हुई। उसके हितों का इसमें कोई ध्यान नहीं रखा गया था। जमींदार जब चाहता उसे निकाल सकता था और उसका लगान बढ़ा सकता था। जमींदार या उसके नौकरों के अत्याचारों के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी फरियाद के कारण जमींदार अपनी जमींदारी से वंचित नहीं किया जा सकता था। फल यह हुआ कि जमींदारों और उनके गुमाश्तों ने किसानों का सब रक्त चूसा और उनको निर्धन बना दिया। आगे [illegible] भी स्थायी कर दिया गया तब उनकी दशा सुधर[illegible] तक कोई

हेस्टिंग्स के सुधार—लार्ड [illegible] रखकर

[illegible] किया

अपना समय काटता रहा। वेलेजली के समय से लेकर हेस्टिंग्स के आने के वक्त तक इंग्लैण्ड की सरकार नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने में लगी हुई थी। इस कारण भारतीय गवर्नर-जनरलों ने या तो युद्ध करके भावी शत्रुओं का दमन किया या सन्धियों द्वारा अपने मित्रों की संख्या बढ़ा ली। परन्तु हेस्टिंग्स के दस वर्ष के शासन-काल में जब मराठा और गोरखा का दमन हो गया तो उसने शासन-सुधार की आवश्यकता समझी। उसके सुधारों का महत्व उसकी विजयों से कम नहीं है।

उसके सौभाग्य से उसे चार बहुत योग्य गवर्नरों का सहयोग प्राप्त हुआ। वे हैं एलफिन्स्टन, मलकम, मनरो और मेटकाफ। एलफिन्स्टन पहले पेशवा के यहाँ रेजीडेण्ट था। सन् १८१८ के बाद वह पेशवा के राज्य का गवर्नर नियुक्त किया गया। मैलकम मालवा और भोंसला से प्राप्त राज्य का शासक था। मेटकाफ वर्तमान उत्तरप्रदेश के उन जिलों का शासन करता था जो उस समय तक कम्पनी को मिल चुके थे और वहीं दिल्ली के मुगल सम्राट की भी देख रेख करता था। मनरो मद्रास का गवर्नर था। इन चारों ही व्यक्तियों ने प्रजा के हित के लिए अनेक कार्य किये और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की।

न्याय विभाग—हेस्टिंग्स के समय में मुख्यतः चार प्रकार के सुधार हुए—न्याय संबंधी भूमिकर सम्बन्धी, शिक्षा सम्बन्धी और सुव्यवस्था सम्बन्धी। न्याय विभाग का सबसे बड़ा दोष यह था कि मुकदमों का फैसला होने में बहुत देर लगती थी। इसे दूर करने के लिए उसने भारतीय मुन्सिफों और सदर अमीनों का वेतन बढ़ा दिया जिससे उनमें अधिक योग्य व्यक्ति आने लगे और उनके अधिकार भी बढ़ा दिये गये। उसने जिले के जजों को आज्ञा दी कि वे भारतीय मुन्सिफों की संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ा भी सकते हैं। उसने छोटे दर्जे के अंग्रेज हाकिमों को कुछ न्याय के अधिकार भी दे दिये और कलेक्टर को माल के कुछ मुकदमे सुनने का अधिकार फिर दे दिया। बम्बई और मद्रास में उसने गाँव के मुखियों और पंचायतों को कुछ मुकदमे करने का अधिकार दे दिया और बंगाल में उसने प्रान्तीय अपील की अदालतों के जजों की संख्या ३ से बढ़ाकर ४ कर दी जिससे वे अधिक जल्दी काम कर सकें। इन सुधारों से दो मुख्य लाभ हुए—न्याय शीघ्रता से होने लगा और भारतीयों को न्याय-विभाग में अधिक स्थान मिलने लगा।

करने के झंझट से छुटकारा मिल गया। कर वसूल करने का खर्च बहुत घट गया, क्योंकि जमींदार स्वयं आकर खजाने में रुपया जमा कर जाते थे। तीसरे कम्पनी की आय निश्चित और स्थायी हो गई और वह उसी के अनुसार अपनी योजनायें बना सकती थी। चौथे जिन लोगों को ठेके मिले थे, वे कम्पनी के सहायक हो गये क्योंकि उन्हें भय था कि राज्य-परिवर्तन होने पर संभव है उनका स्थायी अधिकार न रहे।

कम्पनी के अतिरिक्त जमींदार या ठेकेदारों को भी इससे लाभ हुआ। वे स्थायी स्वामी बन गये, इस कारण उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। उनका कर निश्चित हो गया लेकिन उनकी आय बराबर बढ़ती जा सकती थी। इस प्रकार वे शीघ्र ही काफी धनी हो गये। स्थायी आय होने के कारण वे दूसरे व्यवसायों में भी काफी धन लगा सकते थे।

जनता को इस प्रबन्ध से अधिक लाभ नहीं हुआ। जमींदारों के संचित धन से बंगाल में कारोबार की उन्नति हुई और विद्या का प्रचार बढ़ा। कुछ जमींदारों ने अपना धन प्रजा हितकारी कार्यों में भी लगाया।

हानि—लेकिन इस प्रबन्ध में कुछ दोष भी थे जिनके कारण सभी लोगों को कुछ हानि भी हुई। यद्यपि सरकार को कृषि की उन्नति के लिए धन व्यय करना पड़ता था लेकिन उसकी आय में कोई वृद्धि नहीं हो सकती थी। जमींदारों को इस नियम से यह बड़ी असुविधा हुई कि नियत तिथि पर रुपया अदा न होने पर उनकी भूमि नीलाम कर दी जाती थी। इस नियम के कारण बहुत-से-धनी-मानी जमींदार कंगाल हो गये। कुछ जमींदार आलसी और काहिल भी हो गये और वे केवल भोग विलास में ही लिप्त रहने लगे जिससे उनका नैतिक पतन हुआ।

इस प्रबन्ध से सबसे अधिक हानि बेचारे गरीब किसान की हुई। उसके हितों का इसमें कोई ध्यान नहीं रखा गया था। जमींदार जब चाहता उसे निकाल सकता था और उसका लगान बढ़ा सकता था। जमींदार या उसके नौकरों के अत्याचारों के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी फरियाद के कारण जमींदार अपनी जमींदारी से वंचित नहीं किया जा सकता था। परिणाम यह हुआ कि जमींदारों और उनके गुमाश्तों ने किसानों का खूब रक्त चूसा और उनको निर्धन बना दिया। आगे चलकर जब किसानों का लगान भी स्थायी कर दिया गया तब उनकी दशा सुधर गई।

हेस्टिंग्स के सुधार—लार्ड कार्नवालिस के जाने के बाद २० वर्ष तक कोई शासन सम्बन्धी सुधार नहीं किया गया। सर जान शोर केवल शान्ति रखकर

अपना समय काटता रहा। वेलेजली के समय से लेकर हेस्टिंग्स के आने के वक्त तक इंगलैण्ड की सरकार नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने में लगी हुई थी। इस कारण भारतीय गवनर-जनरलों ने या तो युद्ध करके भावी शत्रुओं का दमन किया या सन्धियों द्वारा अपने मित्रों की संख्या बढ़ा ली। परन्तु हेस्टिंग्स के दस वर्ष के शासन-काल में जब मराठों और गोरखों का दमन हो गया तो उसने शासन-सुधार की आवश्यकता समझी। उसके सुधारों का महत्व उसकी विजयों से कम नहीं है।

उसके सौभाग्य से उसे चार बहुत योग्य गवनरों का सहयोग प्राप्त हुआ। वे हैं एलफिन्स्टन, मलकम, मनरो और मटकाफ। एलफिन्स्टन पहले पेशवा के यहाँ रेजीडेण्ट था। सन् १८१८ के बाद वह पेशवा के राज्य का गवनर नियुक्त किया गया। मलकम मालवा और भोंसला से प्राप्त राज्य का शासक था। मेटकाफ वर्तमान उत्तरप्रदेश के उन जिलों का शासन करता था जो उस समय तक कम्पनी को मिल चुके थे और वहीं दिल्ली के मुगल सम्राट की भी देख रेख करता था। मनरो मद्रास का गवनर था। इन चारों ही व्यक्तियों ने प्रजा के हित के लिए अनेक कार्य किये और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की।

न्याय विभाग—हेस्टिंग्स के समय में मुख्यतः चार प्रकार के सुधार हुए—न्याय संबंधी, भूमिकर सम्बन्धी, शिक्षा सम्बन्धी और सुव्यवस्था सम्बन्धी। न्याय-विभाग का सबसे बड़ा दोष यह था कि मुकदमों का फैसला होने में बहुत देर लगती थी। इसे दूर करने के लिए उसने भारतीय मुन्सिफों और सदर अमीनों का वेतन बढ़ा दिया जिससे उनमें अधिक योग्य व्यक्ति आने लगे और उनके अधिकार भी बढ़ा दिये गये। उसने जिले के जजों को आज्ञा दी कि वे भारतीय मुन्सिफों की संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ा भी सकते हैं। उसने छोटे दर्जे के अंग्रेज हाकिमों को कुछ न्याय के अधिकार भी दे दिये और कलेक्टर को माल के कुछ मुकद्दमे सुनने का अधिकार फिर दे दिया। बम्बई और मद्रास में उसने गाँव के मुखियों और पंचायतों को कुछ मुकदमे करने का अधिकार दे दिया और बंगाल में उसने प्रान्तीय अपील की अदालतों के जजों की संख्या ३ से बढ़ाकर ४ कर दी जिससे वे अधिक जल्दी काम कर सकें। इन सुधारों से दो मुख्य लाभ हुए—न्याय शीघ्रता से होने लगा और भारतीयों को न्याय-विभाग में अधिक स्थान मिलने लगा।

की अपेक्षा शासन-सुधार की योग्यता अधिक थी। तीसरे, अनेक युद्धों के कारण भारतवर्ष में बहुत-से लोग कम्पनी से असंतुष्ट होने लगे थे और कम्पनी के मालिकों का लाभ भी घट गया था क्योंकि युद्धों के कारण खर्च इतना बढ़ गया था कि १६॥ करोड़ कर्ज हो गया था। इस अवस्था को ठीक करने के लिए शान्ति और सुधार की आवश्यकता थी। चौथे, कम्पनी के संचालक चाहते थे कि कम्पनी की आय और व्यय बराबर रहें और लोकमत उससे सन्तुष्ट रहे। यही कारण है कि बेंटिङ्क के समय में इतने अधिक सुधार हुए।

आर्थिक सुधार—उसके सुधारों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—आर्थिक, शासन-सम्बन्धी और सामाजिक। कम्पनी की आर्थिक दशा सुधारने के लिए उसने कई उपाय किये। कलकत्ते से ४०० मील की दूरी तक रहनेवाले सिपाहियों को अब केवल आधा भत्ता दिया जाने लगा और सब अस्थायी सेनायें बर्खास्त कर दी गईं। इस प्रकार एक करोड़ रुपया प्रतिवर्ष की बचत हो गई। इसके अतिरिक्त उसने बहुत-से अनावश्यक कर्मचारियों को निकाल दिया। प्रवास की प्रान्तीय अदालतें तोड़ दीं और अंग्रेजों के स्थान पर कम वेतन पर उनसे अधिक योग्य भारतवासी अफसर नियुक्त किये। इन सब सुधारों से ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष की बचत हुई।

राज्य की आय बढ़ाने के लिए उसने तीन उपाय किये। मध्यभारत में अफीम की खेती करनेवालों को केवल इस शर्त पर आज्ञा दी गई कि वे सारी अफीम बम्बई बन्दरगाह से बाहर भेजें। इस प्रकार जो चुङ्गी पहले सिन्ध के अमीरों को कराची से मिलती थी अब वह अंग्रेजी कम्पनी को मिलने लगी। दूसरे उसने कर मुक्त भूमि भोगनेवालों के अधिकारों की जाँच करवाई और जो लोग कोई पुराना सनद या फरमान न दिखा सके उनके ऊपर लगान बाँध दिया गया। तीसरे, पश्चिमोत्तर प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में सीमा-मालगुजारी बन्दोबस्त किया गया जिससे कारण राज्य की आमदनी बढ़ गई। बेंटिङ्क के इन सब सुधारों का फल यह हुआ कि १६॥ करोड़ की कमी पूरी हो गई और २ करोड़ की बचत होने लगी।

अदालतों में सुधार—अदालतों में उस समय कई दोष थे। उनमें मुख्य तीन थे। अंग्रेज जज अधिकतर अयोग्य और निकम्मे थे क्योंकि जो व्यक्ति किसी अन्य पद के योग्य नहीं होता था, उसे न्याय विभाग में स्थान देने की बुरी प्रथा चल गई थी। दूसरे फारसी का प्रयोग होने के कारण प्रजा को बहुत असुविधा थी। तीसरे, अदालतों की कार्यवाही के नियमों में अनेक दोष थे। उसने द्वारा,

मुर्शिदाबाद, पटना और कलकत्ता की प्रान्तीय अपील की अदालतें तोड़ दी क्योंकि वे ठीक काम नहीं कर रही थी। उत्तर प्रदेश के लोगों की सुविधा के लिए इलाहाबाद में एक चीफ कोर्ट स्थापित किया गया। प्रान्तीय अपील की अदालतों के अधिकार जिले के जजों को दे दिये गये। वे डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज कहलाने लगे। इन जजों का काम बहुत बढ़ गया। उसे हल्का करने के लिए दो उपाय किये गये। फौजदारी मुकदमे करने का बहुतेरा अधिकार जिले के कलेक्टरों और नये नियुक्त किये हुए भारतीय डिप्टी-कलेक्टरों को दे दिया गया। दीवानी मुकदमों के लिए सदर अमीन नियुक्त किये गये। उनका वेतन ५०० रुपये से ६०० रुपये तक कर दिया गया और उनके अधिकार बढ़ा दिये गये। इस भाँति न्याय का काम जल्दी और अच्छा होने लगा। अदालत में प्रान्तीय भाषाओं के प्रयोग की आज्ञा हो गई और पुराने नियमों के स्थान पर प्रजा की सुविधा का ध्यान रखते हुए नियम बना दिये गये। बैंटिङ्क के अदालतों के सुधार बहुत स्थायी सिद्ध हुए।

पुलिस—उचित न्याय के लिए एक सन्तोषजनक पुलिस विभाग बहुत आवश्यक है। बेंटिङ्क ने थानेदारी प्रथा को चलने दिया और उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया लेकिन उसने दो नई बातें कीं। उसने ग्राम्य जनता के हितों की दृष्टि से जमींदारों और पटेलों को कुछ पुलिस के अधिकार दे दिये। ये लोग थानेदारों की अपेक्षा अधिक उत्तम काम करते थे। दूसरे, उसने प्रत्येक जिले में कुछ पुलिस कर्मचारी रखने की प्रथा डाली। उनसे अपराधियों का पता लगाने और उनको गिरफ्तार करने में काफी सहायता मिलने लगी।

सामाजिक सुधार और सती प्रथा—बेंटिङ्क ने कई महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार भी किये। सबसे पहले उसने सहमरण या सती प्रथा को बन्द करने का निश्चय किया। हिन्दुओं के उच्च वर्गों में इस प्रथा का बहुत चलन था। स्त्री को अपने मृत पति के साथ जलकर प्राण देने पड़ते थे। इसी कारण इसे सहमरण कहते थे। किसी समय में स्त्रियाँ पति-वियोग में इतना दुखी होती थीं कि वे मर जाना ही श्रेयस्कर समझती थीं। हिन्दू समाज में विधवाओं के साथ जो दुर्व्यवहार किया जाता था उसके कारण भी बहुत स्त्रियाँ सती हो जाती थीं। कुछ ऐसी भी थीं जिनको यह विश्वास था कि यदि वे पति के साथ जल जायँगी तो उन दोनों के सभी पाप नष्ट हो जायँगे। और वे साथ-साथ स्वर्ग में रहेंगे।

आगे चलकर इसमें बहुत-से दोष उत्पन्न हो गये थे। बहुत-सी स्त्रियाँ पति के साथ जलना नहीं चाहती थीं, लेकिन उनके परिवार के लोग इसमें अपनी

बहुत अप्रतिष्ठा समझते थे और सोचते थे कि केवल कुलटा और दुश्चरित्रा स्त्री ही सती होने से इनकार करती है। इस कारण वे उस अभागिनी को जबर्दस्ती जला देते थे। बेंटिङ्क के सामने जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसने उसके ऊपर ध्यानपूर्वक विचार किया। जब उसे मालूम हुआ कि रणजीत सिंह जैसे सरदार के साथ १०० से भी अधिक स्त्रियाँ जल मरी थीं और प्रत्येक वर्ष हजारों स्त्रियाँ अनिच्छा रहते हुए भी जीवित जलाई जाने की यातना भोगती हैं तो उसने १८२९ ई० में इसे नियम बनाकर बन्द कर दिया। इस नियम के बनने के बाद किसी स्त्री को अपने पति के साथ मरने का अधिकार नहीं रहा और जो व्यक्ति उसे इस कार्य में किसी प्रकार की भी सहायता करे उसको मनुष्य-हत्या का अपराधी समझा जाने लगा। पुराने ढंग के पण्डितों ने इसके विरुद्ध बहुत हाथ-पैर फटफटाये लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ और यह प्रथा सदा के लिए बन्द हो गई।

ठगी—बेंटिङ्क के समय में ठगी बहुत फैली हुई थी। ठगों को फाँसीगार भी कहते थे। वे काली की उपासना करते थे। वे बड़े निर्दयी और चतुर होते थे। रास्ता चलते हुए वे बटोहियों के साथ हो लेते थे और मौका पाकर उनके गले में रस्सी डालकर फाँसी लगा देते थे। जो कुछ माल असबाब होता उसे लेकर वे चम्पत हो जाते और उसे उसी दशा में पड़ा रहने देते। कभी-कभी वे राहगीरों को गरम राख सूँघने के लिए बाध्य करते थे और इस प्रकार उनका फन्दा तैयार हो जाता था। वे राहगीरों के मुँह में कपड़ा ठूँसकर भी उनको मार डालते थे। कुछ लोगों को वे पकड़ ले जाते थे और अपनी देवी के सामने उनकी बलि देते थे। उनके उपद्रवों के कारण सभी परेशान थे।

बेंटिङ्क ने सन् १८२९ ई० में स्लीमन की अध्यक्षता में एक ठगी का महकमा खोला और ठगों को कड़ी-कड़ी सजाएँ दी जाने लगीं। उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया जिससे वे धीरे-धीरे अपनी बुरी आदतों को छोड़कर शान्तिपूर्वक रहने लगें और ईमानदारी से रोजी कमाने में सम्पन्न हो जायँ। ठगों की करतूतों का अन्दाज इस बात से लग सकता है कि स्लीमन ने जिन १५०० आदमियों को १८ ४ ई० तक गिरफ्तार किया था उनमें से एक मुन्ने ने बताया था कि उसने ४० वर्ष में ९३१ आदमियों की हत्या की थी। एक अधम व्यक्ति ने २० वर्ष में ही ५०८ लोगों को मौत के घाट उतारा था। बेंटिङ्क के प्रयत्न से धीरे-धीरे ठगी बन्द हो गई।

बाल-हत्या—राजस्थान, अजमेर और खानदेश में बाल-हत्या और स्त्रियों के बेचने की प्रथा बहुत चल रही थी। बहुधा छोटी उम्र में ही कन्याओं का वध कर दिया जाता था। मातायें भी इस काम में सम्मिलित हो जाती थीं। इस कारण पता लगा सकना बड़ा कठिन था। हत्या करने के कई उपाय थे। बच्चे का गला घोट देना उसे दूध न पिलाना अफीम मल देना आदि। इस हत्या का मुख्य कारण यह था कि लड़कियों के विवाह में बड़ी कठिनाई होती थी और बहुत दहेज देना पड़ता था। बेण्टिङ्क ने सब बच्चों के जन्म-मरण का लेखा लिखवाना शुरू किया और सन्देह होने पर अपराधियों को कड़ी सजाएँ दीं। उसने दहेज की रकम निश्चित कर दी और गरीबों का उनकी लड़कियों के विवाह के लिए राज्य की ओर से सहायता देने का नियम बना दिया। इस प्रकार धीरे धीरे बाल-हत्या बन्द हो गई। कड़ी सजाएँ देकर उसने स्त्रियों का भगाना और बेचना भी कम कर दिया।

दास-व्यापार और दासता का अन्त—सन् १८३२ में दासों का रखना नियम विरुद्ध कर दिया गया। जितने भी व्यक्ति दास थे वे स्वतन्त्र हो गये और मालिकों का उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं रहा। नये दास बनाना भी सदा के लिए बन्द कर दिया गया।

शिक्षा—बेण्टिङ्क के सामाजिक सुधारों में शिक्षा-सम्बन्धी सुधार बहुत ही महत्वपूर्ण है। सन् १८१३ ई० में पार्लियामेण्ट ने १ लाख रुपया खर्च करने की आज्ञा दी थी। इस रुपये का कुछ उपयोग हेस्टिंग्स के समय में किया गया था। आगे चलकर यह तय हुआ कि यदि कोई स्कूल या कालेज जनता के उद्योग से खोला जाय तो उसे राज्य की ओर से कुछ सहायता दी जाय। इस नीति के अनुसार बंगाल बम्बई मद्रास और उत्तर प्रदेश में कई स्कूल और कालेज खुल गये। उत्तर प्रदेश के शिक्षालयों में काशी के जयनारायण घोषाल द्वारा स्थापित किया हुआ स्कूल और गङ्गाधर शास्त्री द्वारा स्थापित किया हुआ आगरा कालेज मुख्य हैं। बेण्टिङ्क के समय में सन् १८३३ ई० में पार्लियामेण्ट ने १० लाख रुपया प्रतिवर्ष भारतीयों की शिक्षा पर खर्च करने की आज्ञा दी थी। बेण्टिङ्क ने मेकाले की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की और उसने यह निश्चय किया कि भारतवासियों को पश्चिमी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाय। राजा राममोहन राय बहुत दिन से अंग्रेजी भाषा द्वारा पश्चिमी शिक्षा के दिये जाने के लिए प्रचार कर रहे थे। बेण्टिङ्क ने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया उसने आज्ञा दी कि भारतीयों को पश्चिमी साहित्य आदि

विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी भाषा में दी जाय। उसी समय से पश्चिमी शिक्षा का प्रचार हुआ।

इस सम्बन्ध में कुछ बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। मकाले ने भारतीय साहित्य, इतिहास तथा दर्शन का ज्ञान न रखते हुए भी उसकी तीव्र आलोचना की जो कि बहुत-से मनमाने आदमियों ने सत्य समझ ली। ट्रेवल्यन नामक विद्वान् ने अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा का विरोध करते हुए कहा था कि यदि उसकी बात न मानी गई तो १०० वर्ष के भीतर ही हमें भारतवर्ष के राज्य से हाथ धोना पड़ेगा। जनमत के ऊपर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव को उसने बहुत कुछ ठीक समझा था। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो जाने से विद्यार्थियों की मौलिकता क्षीण हुई और उनका बहुत समय एक विदेशी भाषा सीखने में ही नष्ट होने लगा जिससे भारतीय राष्ट्रीय क्षति हुई। भारतीय टोला, पाठशालाओं मदरसों मकतबों का धीरे धीरे पतन हो गया जिसके कारण जनता में शिक्षा का प्रचार कम हो गया। परन्तु यह भी निर्विवाद है कि अंग्रेजी भाषा के पढ़ने के कारण सम्पूर्ण भारत में एकता का भाव पैदा हुआ और पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से सामाजिक धार्मिक तथा राजनीतिक सुधार की गति अधिक तीव्र हो गई। सरकार का भी सस्ते लेकिन सुयोग्य कर्मचारी मिलने में बड़ी सुविधा हो गई।

बेंटिङ्क ने इतने अधिक सुधार किये कि भारतवासी उससे बहुत सन्तुष्ट रहे। आजकल भी बेंटिङ्क की गणना उन थोड़े गवर्नर-जनरलों में की जाती है जिन्होंने भारतीयों की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया और उनको सुखी बनाया।

डलहौजी के सुधार—बेंटिङ्क के बाद डलहौजी ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये। उसने कुछ दिशाओं में बेंटिङ्क द्वारा आरम्भ किये हुए कार्य को पूरा किया। बेंटिङ्क ने विधवाओं को जीवित रहने का कानूनी संरक्षण प्रदान किया था। डलहौजी ने उनका जीवन सुखमय बनाने के लिए उन्हें दूसरी बार विवाह करने का भी अधिकार दे दिया। इसी प्रकार अंग्रेजी शिक्षा में भी काफी उन्नति हुई। प्रत्येक सूबे में एक शिक्षा विभाग खोला गया। उसके ही समय में सर चार्ल्स वुड के प्रस्तावों के आधार पर शिक्षा-सुधार की योजना तैयार की गई। उसके अनुसार विश्वविद्यालयों को कायम करने का निश्चय किया गया और प्रारम्भिक शिक्षा स्त्रियों की शिक्षा, सम्पादन-कला की शिक्षा और इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा का सरकार की ओर से प्रबन्ध करने का निश्चय किया गया। इसी के समय में २०० मील से अधिक रेल की लाइन बिछाई गई और पहली

सड़कें बनाई गई, जिनमें ग्राण्ड ट्रङ्क रोड सबसे प्रसिद्ध है। गङ्गा की नहर भी इसी समय बनी और कुछ छोटी नहरें पंजाब में भी बनने लगी। जल्दी समाचार भेजने के लिए तार लगाये गये और डाक की सुविधा सर्वसाधारण के लिए कर दी गई। स्थान-स्थान पर अस्पताल खोले गये जिनमें गरीबों को मुफ्त दवा दी जाती थी।

ये सभी सुधार प्रजा के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए और सरकार को भी उनसे बहुत लाभ हुआ, लेकिन उस समय के लोगों ने उनका भी अर्थ उलटा ही लगाया। वे समझते थे कि उनमें भी कोई छल-कपट छिपा है।

मुख्य तिथियाँ

पिट का इंडिया बिल	१७८४ ई०
स्थायी प्रबन्ध	१७९३ ई०
पहला चार्टर ऐक्ट	१७९३ ई०
दूसरा चार्टर ऐक्ट और लार्ड हेस्टिंग्स की नियुक्ति	१८१३ ई०
बंगाल टिनेन्सी ऐक्ट	१८२२ ई०
पिंडारियों का अन्त	१८२३ ई०
लार्ड विलियम बैंटिङ्क की नियुक्ति	१८२८ ई०
सती प्रथा का अन्त	१८२९ ई०
ठगों का नया महकमा	१८२९ ई०
दास प्रथा का अन्त	१८३२ ई०
तीसरा चार्टर ऐक्ट और कम्पनी के व्यापारी विभाग का अन्त	१८ ३ ई०
ठगों का अन्त	१८,४ ई०
अंग्रेजी शिक्षा का सरकारी प्रचार	१८३५ ई०
चौथा चार्टर ऐक्ट	१८५२ ई०
वुड की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट	१८५४ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) सन् १७७४ के बाद गवर्नर-जनरल का प्रभाव और अधिकार बढ़ाने के लिए क्या उपाय किये गये?

(२) कम्पनी के व्यापारिक अधिकार क्या छीन लिये गये? इस नीति के विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखो।

(३) वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी की दशा ठीक करने के लिए क्या उपाय किये? उसकी नीति का जनता पर क्या प्रभाव पड़ा?

(४) कार्नवालिस के समय में न्याय विभाग में क्या दोष थे ? उन दोषों को दूर करने के लिए हेस्टिंग्स और बेंटिङ्क ने क्या उपाय किये ?
(५) कार्नवालिस ने भूमिकर का स्थायी प्रबन्ध क्यों किया ? उसके बाद अन्य प्रान्तों में वैसा ही प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया ?
(६) कम्पनी के शासन-काल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किस प्रकार बढ़ा ? उससे भारतीयों को क्या हानि-लाभ हुआ ?
(७) कम्पनी के शासन-काल में भारतीयों की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए क्या उपाय किये गये ? जनता पर उनका क्या प्रभाव पड़ा ?

अध्याय २७

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध—कम्पनी का अन्त

सन् १८५७ का विद्रोह—लार्ड डलहौजी के भारत से जाने के बाद लार्ड कैनिंग गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसे आश्वासन दिया गया था कि फिलहाल कुछ समय के लिए अब भारत में हथियार उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, लेकिन सन १८५७ ई० में उसे एक ऐसी भयंकर आपत्ति का सामना करना पड़ा जैसी पहले कभी उपस्थित नहीं हुई थी। कुछ लोगों ने उसे केवल एक सिपाही विद्रोह बताया है और कहा है कि उसका मूल कारण सैनिकों का असन्तोष था। कुछ लोगों ने कहा है कि वास्तव में यह विद्रोह मुसलमानों द्वारा किया गया एक विराट् षड्यन्त्र था जिसका उद्देश्य मुगल-साम्राज्य को पुनः जीवित करना था। इन षड्यन्त्रकारियों ने ही लोगों को भड़काकर यह उपद्रव खड़ा किया था। कुछ लोगों ने इसे भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहा है और उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह गदर हिन्दुओं-मुसलमानों का संयुक्त उद्योग था जिसका उद्देश्य अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकना और मुगल सम्राट् तथा पेशवा की शक्ति को नये सिरे से स्थापित करना था। अधिकतर विद्वानों को इनमें से एक भी मत पूर्णतः मान्य नहीं है। उनका मत यह है कि १८५७ का विद्रोह कई कारणों से फैले हुए असंतोष का फल था। [illegible]

कुछ कारण राजनीतिक थे, कुछ सामाजिक तथा धार्मिक और कुछ सैनिक। इन कारणों में से कौन सा अधिक प्रभावशाली हुआ कह सकना सरल नहीं है। परन्तु अब यह धारणा दृढ़ हो गई है कि यह प्रथम अवसर था जब जातिधर्म के भेद को भूलकर भारतीयों ने अंग्रेजी सरकार को समूल नष्ट करने के हेतु एक अखिल भारतीय संयुक्त मोर्चा स्थापित किया था।

राजनीतिक कारण—लार्ड डलहौजी के समय में अवध, पंजाब, नागपुर सतारा झाँसी आदि कई राज्य भिन्न भिन्न आधारों पर अंग्रेजी राज्य में मिला लिये गये थे। इस कारण जिन लोगों को राजगद्दी से वंचित किया गया वे और उनके साथी असंतुष्ट हो गये। इन राज्यों की प्रजा में भी असंतोष फैल गया। दूसरे, इन राज्यों का अंत होने से दूसरे देशी राज्यों में भी कुछ अशांति फैलने लगी।

डलहौजी ने बहुत-से राज्यच्युत राजाओं और नवाबों के वंशजों की पेंशनें भी बन्द कर दी थीं। उसने मुगल-सम्राट की नाममात्र की सत्ता को भी नष्ट करने का निश्चय कर लिया था। इस कारण भी बहुत-से लोगों में असन्तोष फैला था।

तीसरे अंग्रेजी राज्य कायम हो जाने के बाद भारतीयों को ऊँचे ओहदे मिलना बन्द हो गया था। इस कारण मध्यम श्रेणी के लोगों में भी असंतोष था। अवध के ताल्लुकदारों और बंगाल तथा बम्बई के जमींदारों के अधिकारों की नये सिर से जाँच कराई गई थी और जो लोग अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सके थे उनकी भूमि छीन ली गई थी। अवध के कई हजार गाँव इस प्रकार छीन लिये गये। बम्बई में लगभग २०,००० छोटी रियासतें जब्त कर ली गई थीं। इस कारण भी असंतुष्ट लोगों की संख्या में वृद्धि हुई।

धार्मिक तथा सामाजिक कारण—कम्पनी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के जो प्रयत्न किये उनसे भी असंतोष बढ़ा। सती प्रथा को रोकने, विधवाओं के पुनर्विवाह की आज्ञा देने, धर्म-परिवर्तन के बाद भी पैतृक संपत्ति पर अधिकार बना रहने तथा बालहत्या के बन्द करने के नियमों से प्रजा असंतुष्ट थी। वह इनको सामाजिक सुधार नहीं वरन् सामाजिक पतन का लक्षण मानती थी। अंग्रेजी शिक्षा के लिए जो स्कूल और कालेज खुले थे उनमें से अधिकांश ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित थे। उनमें ईसाई धर्म की अनिवार्य शिक्षा दी जाती थी और इस्लाम तथा हिन्दू धर्म की निन्दा की जाती थी। इस कारण जो शिक्षा प्रचार की योजनाएँ बनी उनको भी लोगों ने ईसाई बनाने का उपाय मात्र माना। तीसरे मिशनरियों को सरकार की ओर से बहुत-सी सुविधायें दी जाती थीं। यह बात भी लोगों को अप्रिय मालूम होती थी। सरकार की ओर

से जो अस्पताल खोल गये थे उनको भी इसाई बनाने का स्थान बताया गया क्योंकि वहाँ छुआछूत का विचार बहुत कम रहता था। तार की उन्नति को भी प्रजा ने पसन्द नहीं किया। वे समझते थे कि इनके द्वारा सरकार उनको बाँध लेना चाहती है। इस प्रकार धार्मिक असंतोष के अनेक कारण मौजूद थे।

सैनिक कारण—भत्ते के प्रश्न पर सेना में १८४४ और १८४७ के बीच में कई बार विद्रोह हो चुके थे लेकिन वे दबा दिये गये थे। सैनिकों को यह विश्वास था कि साम्राज्य के निर्माता वे ही लोग हैं और ग्वालियर, पंजाब तथा अफगानिस्तान के युद्धों के बाद वे यह भी अनुभव करने लगे थे कि अंग्रेज अफसर काफी अयोग्य हैं। भारतवर्ष के बाहर चीन और क्रीमिया की लड़ाइयों में भी अंग्रेजी सेनापतियों ने काफी अयोग्यता दिखाई थी। इस कारण उनकी श्रेष्ठता का सिक्का नष्ट हो चुका था। इसी समय उन सैनिकों की संख्या भारतीय सैनिकों की ⅙ रह गई थी। इस कारण सिपाहियों का साहस और भी बढ़ गया और वे सोचने लगे कि अंग्रेजों को निकाल बाहर करना उनके लिए कठिन नहीं होगा। दिल्ली और इलाहाबाद के किलों में केवल भारतीय सिपाही थे और इलाहाबाद से कलकत्ते तक केवल दानापुर में अंग्रेज सैनिक थे। शेष सभी स्थानों में भारतीय सैनिक ही थे। दुर्भाग्य ने इसी समय कैनिंग ने दो ऐसे नियम चलाये जिनके कारण सिपाहियों का असंतोष विद्रोह के रूप में उबल पड़ा। पहली बात तो यह थी कि उनमें यह नियम बनाया कि प्रत्येक सैनिक को जहाँ आज्ञा दी जायगी वहीं जाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उच्च वर्ण वाले हिन्दू या तो समुद्र-यात्रा करके अपना धर्म नष्ट करें या अपनी नौकरी से हाथ धोवें। इसके बाद नई राइफलें दी गई जिनका कारतूस दाँत से काटना पड़ता था। कारतूस के ऊपर कुछ चर्बी लगी था। लोगों में यह अफवाह फैला दी कि उसमें सूअर और गाय की चर्बी का प्रयोग किया गया है। इस कारण उनको दाँत से काटने में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही धर्म भ्रष्ट हो जायेंगे।

युद्ध का प्रारम्भ—विद्रोह का आरम्भ मार्च सन् १८५७ में बैरकपुर में हुआ जहाँ मंगल पाण्डेय और उसके साथियों ने कारतूस को चलाने से इन्कार कर दिया। विद्रोह बहुत तेजी से फैल गया। मई मास में मेरठ के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह किया। उन्होंने खजाना लूट लिया, अपने अफसरों को मार डाला और उनके घर जला दिये और दिल्ली पर अधिकार करके बूढ़े बहादुरशाह को फिर मुगल सम्राट घोषित कर दिया। साथ-साथ में हिन्दू-मुसलमान दिल्ली

में इकट्ठा होने लगे और जो अंग्रेज इधर-उधर फैले हुए थे वे भाग गए या मार डाले गये।

लखनऊ—लखनऊ के आस-पास फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह और अवध की बेगमों के प्रभाव से काफी अशान्ति फैल गई। हेनरी लारेन्स ने रेजीडेन्सी में छिपकर विद्रोहियों का वीरता के साथ सामना किया। यद्यपि उसकी मृत्यु हो गई तथापि रेजीडेंसी पर विद्रोहियों का अधिकार न हो सका।

कानपुर—कानपुर की छावनी पर बिठूर के नाना साहब (बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र जिसकी पेंशन डलहौजी ने बन्द कर दी थी) के साथियों ने हमला किया। अंग्रेज हार गये बहुत से मर गये और बचे-खुचे भाग निकले लेकिन मार्ग में वे भी काल के ग्रास हुए। नाना साहब ने लखनऊ के विद्रोहियों और दिल्ली के विद्रोहियों से सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की। इस प्रकार कानपुर भी विद्रोहियों का एक प्रधान गढ़ बन गया।

झाँसी—बुन्देलखण्ड में बाँदा के नवाब, जालौन के राजा और झाँसी की रानी तथा तात्या टोपे के प्रभाव से एक भीषण उपद्रव खड़ा हो गया। इसका केन्द्र झाँसी था। मार-काट हत्या आदि का बाजार गर्म हो गया और चारों ओर अशान्ति फैल गई।

सरकार के सहायक—राजस्थान पंजाब दक्षिण भारत और मध्य प्रान्त में भी कुछ छिट-पुट विद्रोह हुए लेकिन वे शीघ्र ही दबा दिये गये। बंगाल और बिहार में जगदीशपुर के राजा कुंवर सिंह की अध्यक्षता में काफी विद्रोह फैला और बहुत दिन तक चलता रहा लेकिन यह विद्रोह देश-व्यापी नहीं था। दक्षिण का अधिकांश भाग इससे अछूता रह गया और निजाम के प्रधान मन्त्री सालारजंग ने विद्रोह के दबाने में बहुत सहायता की। मराठा शासकों पर इस विद्रोह का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। सिंधिया और उसके मन्त्री दिनकर राव ने सरकार को बहुत सहायता दी जिसके कारण मध्य भारत का विद्रोह शान्त करने में बहुत सुविधा हुई। भोपाल की बेगम ने भी काफी सहायता दी। पंजाब कश्मीर में जान लारेन्स के कारण विद्रोह बढ़न नहीं पाया। कश्मीर के राजा गुलाबसिंह और पटियाला कपूरथला तथा झींद के सिक्ख शासकों ने भी सरकार की बहुत सहायता की। सिक्ख सैनिकों ने बड़ी तत्परता से विद्रोहियों का दमन किया और इस भाँति अपनी हार का बदला लिया और सरकार की बड़ी सेवा की। इसी भाँति नेपाल के प्रधान मन्त्री जंग बहादुर ने भी गोरखों की पल्टन

भेज कर बहुत सहायता की। गोरखे भी भारतीय सैनिकों से बहुत जलते थे क्योंकि वे अपनी हार का कारण उन्हीं को समझते थे। इस समय उन्होंने पुरानी कसर निकालने का अच्छा अवसर पाया और उन्होंने विद्रोहियों के दमन में बहुत उत्साह दिखाया।

इन बड़े-बड़े राज्यों के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय कर्मचारी और अधिकतर जमींदार भी सरकार के भक्त बने रहे। बहुत से लोगों ने अंग्रेजों को अपने घरों में छिपाकर उनकी प्राण-रक्षा की और अवसर मिलने पर उनको अधिक सुरक्षित स्थानों में पहुँचा दिया।

विद्रोह का दमन—सरकार ने इंग्लैण्ड से सैनिक भेजने का प्रबन्ध किया और बम्बई तथा मद्रास की सेनाएँ भी उत्तरी भारत की ओर रवाना हुईं। सिक्खों, गोरखों और स्वामिभक्त देशी नरेशों की सहायता से सन् १८५८ के अन्त तक विद्रोहियों का दमन कर दिया गया और एक-एक करके उनके सभी गढ़ छीन लिये गये। टेलर और मेजर आयर ने बिहार का विद्रोह शान्त किया। नील और कैम्पबेल ने कानपुर तथा लखनऊ पर अधिकार कर लिया और उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों में शान्ति स्थापित की। ह्यूरोज ने मध्य भारत का और निकलसन ने दिल्ली का विद्रोह शान्त किया। इस प्रकार प्रायः सभी स्थानों पर सरकार का दबदबा जम गया। विद्रोह शान्त करने में सरकारी सैनिकों ने भी खूब बर्बरता दिखाई और यह कहना कठिन है कि निरपराध स्त्रियों, बच्चों और शान्तिपूर्वक रहनेवाले नागरिकों के साथ किस सरकारी दल ने अधिक अत्याचार किया।

विद्रोहियों के नेताओं में से नानासाहब का पता नहीं कहाँ भाग गया। बहादुरशाह गिरफ्तार किया गया और रंगून भेज दिया गया जहाँ वह १८६२ ई० में मर गया। झाँसी की रानी लड़ती हुई मारी गयी और तात्या टोपे अनेक यातनाओं बाद मार डाला गया। लार्ड कैनिंग ने स्थान-स्थान पर दरबार किये और लोगों को आश्वासन देकर शान्त होने के लिए प्रेरित किया।

महारानी का घोषणापत्र—इंग्लैण्ड में इस विद्रोह का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कम्पनी के ऊपर रखा गया। अस्तु यह निश्चय हुआ कि कम्पनी का अन्त कर दिया जाय और शासन का सम्पूर्ण अधिकार महारानी विक्टोरिया अपने हाथ में ले लें। यह घोषणा नवम्बर १८५८ में की गई। उस घोषणा में कई धाराएँ ऐसी भी थीं जिनके द्वारा विप्लवात्मक भावों को शान्त करने में सहायता मिली। राजाओं तथा नवाबों का असन्तोष दूर करने के लिए महारानी

ने घोषणा की कि वे सभी पुरानी सन्धियों को स्वीकार करती हैं और उनका पालन करेंगी। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि वे देशी नरेशों के अधिकारों, प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा करेंगी और उनकी नीति अंग्रेजी राज्य बढ़ाने की नहीं है। उन्होंने देशी नरेशों को अपने परम्परागत रीति रिवाजों को मानने की अनुमति दी और प्रतिज्ञा की कि सरकार की ओर से उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। साधारण जनता को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि उनका उद्देश्य न तो भारतीयों के धर्म में हस्तक्षेप करना है और न उनके पुराने आचार-विचारों में ही परिवर्तन करने की इच्छा है। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि प्रत्येक भारतीय बिना किसी धर्म जाति या रंग के पक्षपात के जिस पद के योग्य होगा उसे प्राप्त कर सकेगा। विद्रोहियों को आश्वासन दिया गया कि यदि वे १ली जनवरी १८५९ तक आत्मसमर्पण कर देंगे या विद्रोह बन्द कर देंगे तो उनको साधारण रूप से कोई दण्ड नहीं दिया जायगा। केवल वे जिन लोगों ने अंग्रेजों का वध किया हो अथवा जिन्होंने ऐसे हत्यारों को प्रोत्साहित किया हो या उनकी सहायता की हो दण्ड के भागी होंगे।

स्वतन्त्रता युद्ध की असफलता के कारण—इस घोषणा का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा और विद्रोह शीघ्र ही शान्त हो गया। एक समय में यह विद्रोह बहुत ही भयंकर रूप धारण कर चुका था लेकिन इसके कारण अंग्रेजी राज्य की नींव हिल न सकी। इस असफलता के मुख्य कारण चार हैं। विद्रोहियों में कोई निश्चित संयुक्त योजना नहीं थी और न उनका कोई एक नेता ही था जो कि उनके कार्यों को किसी एक उद्देश्य के हिसाब से संचालित करता। विद्रोहियों का कोई एक उद्देश्य भी नहीं था। बहुत से नेता केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए लड़ रहे थे। दूसरे विद्रोहियों ने जनता की सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने लूट-मार करके जनता को अपना विरोधी बना लिया इस कारण उनकी शक्ति सीमित रह गई। तीसरे अंग्रेज हाकिमों ने बड़े धैर्य, साहस तथा दृढ़ता से काम किया। उनके पास हथियार बहुत अच्छे थे। उन्होंने आने-जाने के मार्गों पर अधिकार करके नियमित रूप से विद्रोहियों का दमन किया। चौथे, बहुत-से भारतीय नरेशों, सिक्खों, गोरखों, जमींदारों और सरकारी कर्मचारियों ने भी सरकार की सहायता की।

युद्ध से लाभ—लेकिन यह प्रयत्न पूर्णतया असफल नहीं रहा। यह सत्य है कि झाँसी की रानी, पेशवा, मुगल सम्राट तथा अन्य छोटे राजा नवाब अपने पुराने राज्य प्राप्त करने में पूर्णतया असफल रहे तो भी दूसरे भारतीय नरेशों के

अधिकार अधिक सुरक्षित हो गये और सरकार ने गोद लेने की प्रथा को स्वीकार कर लिया। धार्मिक असन्तोष के कारणों को दूर करने का प्रयत्न किया गया और भारतवासियों के लिए सभी ऊँचे पदों का द्वार खोल दिया गया। सरकार ने अपनी नीति अधिक उदार बना दी और भारतवासियों का सहयोग प्राप्त करने का विशेष प्रयत्न किया। इस कारण यह कहना भूल होगी कि विद्रोह पूर्णतया असफल रहा।

कैनिंग के समय के अन्य कार्य—कैनिंग का अधिकतर समय इस विद्रोह का अन्त करने और उसके द्वारा उत्पन्न दूषित वायुमण्डल को सुधारने में ही लग गया। उसने सन् १८६० ई० में एक नियम बनाकर जनता को हथियार रखने की मनाही कर दी। इस आज्ञा से शान्ति स्थापित करने में बहुत सहायता अवश्य मिली, लेकिन प्रजा में आत्मनिर्भरता और साहस का नाश हो गया और वह आत्मरक्षा के योग्य नहीं रह गई। इससे देश की गहरी हानि हुई। उसके समय में कुछ वैधानिक सुधार भी हुए, जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

मुख्य तिथियाँ

स्वतन्त्रता युद्ध का आरम्भ	१८५७ ई०
महारानी विक्टोरिया की घोषणा	१८५८ ई०
हथियार रखने की मनाही का नियम	१८६० ई०
कैनिंग का वापस जाना	१८६२ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के क्या कारण थे?
(२) स्वतन्त्रता युद्ध के मुख्य नेता कौन थे? उनका प्रभाव किन स्थानों में अधिक था?
(३) विद्रोहियों की असफलता के क्या कारण थे? क्या उनका उद्योग पूर्णतया असफल रहा?
(४) महारानी विक्टोरिया की घोषणा की मुख्य धाराएँ बतायो।
(५) विद्रोहियों के दमन में किन लोगों ने विशेष उद्योग किया?
(६) विद्रोहियों के नेताओं का अन्त कहाँ और किस प्रकार हुआ?
(७) भविष्य में शान्ति रखने के लिए क्या उपाय किये गये?

अध्याय २८

भारतीय सीमाओं की सुरक्षा और वैदेशिक नीति

लार्ड कैनिंग के समय से भारत के गवर्नर-जनरल वाइसराय भी कहे जाने लगे। कैनिंग ही प्रथम वाइसराय था। उनको वाइसराय इस कारण कहते थे क्योंकि वे इंगलैंड के राजा या रानी के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते थे। वाइसरायों के समय में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु-पर्यन्त और उसके बाद भी एक मुख्य प्रश्न सीमाओं की रक्षा का था। लार्ड कैनिंग के बाद लार्ड एलगिन थोड़े समय के लिए वाइसराय हुए लेकिन उनके समय में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई।

भारत सरकार की अफगान नीति—तीसरे वाइसराय लार्ड लारेन्स के समय में अफगानिस्तान में गड़बड़ी फैली क्योंकि वहाँ का अमीर दोस्त मुहम्मद सन् १८६३ में मर गया और उसके बाद गद्दी के लिए युद्ध छिड़ गया। दोस्त मुहम्मद ने अपने तीसरे बेटे शेरअली को अमीर के पद के लिए चुना था और वह गद्दी पर बैठ भी गया था लेकिन उसके भाई उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगे। उनमें से प्रत्येक भारतीय सरकार की सहायता चाहता था। लारेन्स ने उनकी सहायता करने से इनकार किया और कहा कि भारतीय सरकार उसी व्यक्ति को अमीर स्वीकार कर लेगी जो अपनी शक्ति से अमीर बन जायगा और वह अफगानिस्तान के आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझती।

सन् १८६८ में कई राज-परिवर्तनों के बाद शेरअली फिर अमीर हुआ। उसका एक भतीजा अब्दुर्रहमान रूसियों के पास गया। रूसियों ने मध्य-एशिया में साम्राज्य बढ़ाना आरम्भ कर दिया था और १८६८ तक उन्होंने ताशकन्द तथा बुखारा जीत लिया और रूसी तुर्किस्तान का एक नया सूबा बनाया। उनके भय से और शेरअली की योग्यता से प्रभावित होकर लारेन्स ने उसे ६०,००० पौण्ड और कुछ लड़ाई का सामान दिया और कहला भेजा कि यदि वह अंग्रेजी सरकार से संधि रक्खेगा तो भारतीय सरकार उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उसके शत्रुओं के विरुद्ध जो सहायता आवश्यक समझेगी देगी।

लार्ड मेयो—इस नीति से भारतीय सरकार का अमीर पर प्रभाव भी जम गया और रूसियों से युद्ध की आशंका भी नहीं रही। सन् १८६९ में लार्ड मेयो नये वाइसराय हुए। उन्होंने लारेन्स की नीति को ग्रहण किया और शेरअली को लड़ाई का सामान और ६० ००० पौण्ड दिया। शेरअली वाइसराय से मिलने के लिए अम्बाला आया। वह चाहता था कि भारतीय सरकार उसे एक स्थायी रकम प्रतिवर्ष देने का वादा करे और उसके शत्रुओं के विरुद्ध धन या सैनिकों के रूप में आवश्यकता पड़ने पर सहायता देने का निश्चित वचन दे। इसके अतिरिक्त वह यह भी चाहता था कि भारतीय सरकार उसके पुत्र अब्दुल्ला जान को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। मेयो ने मैत्रीपूर्ण आश्वासन दिया कि वह प्रत्येक दशा में उसकी इच्छाओं और हितों का ध्यान रखते हुए आवश्यक सहायता देने का प्रयत्न करेगा। लेकिन वह भारतीय सरकार की ओर से कोई निश्चित सन्धि नहीं कर सकता।

लार्ड नार्थब्रुक और अमीर का असन्तोष—मेयो की नीति से शेरअली असन्तुष्ट हो गया लेकिन रूसियों के डर से उसने कुछ कहा नहीं। सन् १८७३ ई० में उसने अपने दूत द्वारा लार्ड नार्थब्रुक से प्रार्थना की कि वह रूसियों के विरुद्ध सहायता करने की स्पष्ट सन्धि कर ले। परन्तु नार्थब्रुक ने कहा कि वह भारतीय सरकार की निश्चित नीति के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। भारतीय सरकार ने अब्दुल्ला जान को शेरअली का उत्तराधिकारी स्वीकार करने से भी इन्कार कर दिया। इस कारण उसे विश्वास हो गया कि उससे कोई सहायता नहीं मिलेगी। फलतः उसने रूस से अपनी मैत्री बढ़ाना आरम्भ किया।

लार्ड लिटन और द्वितीय अफगान युद्ध—सन् १८७४ ई० में इंग्लैंड की मन्त्रि-परिषद् में परिवर्तन हो गया। नया प्रधान मन्त्री डिजरायली अफगानिस्तान में हस्तक्षेप करके रूसियों का प्रभाव रोकना चाहता था। नार्थब्रुक ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इसलिए सन् १८७६ ई० में उसे त्यागपत्र देना पड़ा और उसके स्थान पर लार्ड लिटन गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। लिटन इंग्लैंड की सरकार की नीति से सहमत था। उसने एक दूत भेजकर अमीर के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। उसके अनुसार उसने अमीर को प्रतिवर्ष अधिक रुपया देने, अब्दुल्ला जान को उत्तराधिकारी स्वीकार करने और रूसियों के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया, लेकिन अमीर से यह प्रस्ताव किया कि वह अपने दरबार में एक अंग्रेज राजदूत रखे। अमीर ने अंग्रेज राजदूत रखने से इन्कार कर दिया क्योंकि इस दशा में उसे रूसी दूत भी रखना पड़ता। यही

सहायता आदि की बात थी। उसके लिए उससे कहा कि भारतीय सरकार उसे पहले ही वचन दे चुकी है। लिटन इस उत्तर से अप्रसन्न हो गया। उसने क्वेटा पर अधिकार करके अमीर को धमकाना चाहा और कानफरेन्स करके उसे शान्त करना भी चाहा। लेकिन कुछ फल नहीं हुआ।

इसी बीच में रूस का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता गया और एक रूसी दूत भी अफगानिस्तान में जबरदस्ती रहने लगा। लिटन ने नवीन चैम्बरलेन को भेजा और अमीर से कहा कि वह उसे भी रहने दे। अमीर ने आनाकानी की। इस पर लिटन ने युद्ध की घोषणा कर दी। यद्यपि उस समय तक यह निश्चय हो गया था कि अफगानिस्तान में रूस का प्रभाव मिट गया है। इस प्रकार सन् १८७८ में द्वितीय अफगान युद्ध प्रारम्भ हुआ। खैबर, कुर्रम और बोलन दर्रों से तीन सेनायें भेजी गयी। शेरअली हार गया और रूसी तुर्किस्तान भाग गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। भारतीय सरकार ने उसके पुत्र याकूब खाँ से सन् १८७९ में सन्धि कर ली।

गन्डमक की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार अमीर ने अपनी वैदेशिक नीति में अंग्रेज दूत की सलाह मानना स्वीकार किया। कुर्रम, पिशिन, सीबी आदि सीमान्त इलाके उसने भारत सरकार को दे दिये और अंग्रेजों ने सहायता करने का वचन दिया। भारत सरकार ने उसे ६ लाख रुपया प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया और आक्रमण के समय सहायता देने का वचन दिया।

तृतीय अफगान युद्ध—यह सन्धि स्थायी न हो सकी क्योंकि अफगान अंग्रेज दूत के अधिकार को सहन नहीं कर सकते थे। दूसरे अमीर कुछ अस्थिर बुद्धि का था। फल यह हुआ कि अंग्रेज दूत मार डाला गया और अशान्ति आरम्भ हो गई। अंग्रेज सेनापतियों ने काबुल और कन्धार पर अधिकार कर लिया और याकूब खाँ को कैद करके भारतवर्ष भेज दिया। वह शिमला चला गया और वहाँ देहरादून में रहने लगा। लिटन ने अफगानिस्तान के कई टुकड़े करना चाहा लेकिन इससे पहले कि यह पूरा हो सके उसे इंग्लैंड वापस बुला लिया गया। उसके स्थान पर रिपन गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। रिपन ने अफगानिस्तान से फौज हटाना ही ठीक समझा। इस कारण उसने अब्दुर्रहमान से सन्धि कर ली और उसे अमीर बना दिया। उसने गन्डमक की सन्धि की शर्तें मान लीं। उसके विरुद्ध शेरअली के पुत्र अयूब खाँ ने विद्रोह किया। वह हरा दिया गया और सन् १८८१ ई० में अंग्रेजों ने कन्धार खाली कर दिया।

अब्दुर्रहमान का शासन—इस युद्ध के बाद अफगानिस्तान में रूस का प्रभाव बढ़ने का भय नहीं रहा। ब्रिटिश बिलोचिस्तान पर भारत सरकार

का अधिकार हो गया और क्वेटा तथा वोलन का दर्रा उसके वश में आ गया। अब्दुरहमान एक बहुत योग्य शासक था। उसने १६०१ तक शासन किया। इस काल में उसने रूसियो को भी दूर रखा और अग्रेजों का भी प्रभाव बढने नहीं दिया। उसके समय में सन् १८८५ में रूसियों ने पजदेह पर अधिकार कर लिया। उस समय अब्दुरहमान ने बडी शान्ति से काम लिया। १० वर्ष के पत्र-व्यवहार के बाद उसने सीमा का झगडा तय किया और आक्सस नदी रूसी साम्राज्य तथा अफगानिस्तान के बीच की सीमा मान ली गई।

लार्ड कर्जन—अब्दुर्रहमान की मृत्यु के बाद हबीबुल्ला अमीर हुआ। उसने भी पुरानी शर्तें स्वीकार कर ली लेकिन यह सन्देह किया जाता था कि वह अग्रेजो का मित्र नहीं है। इस कारण कर्जन ने पश्चिमोत्तर प्रान्त का एक नया सूबा बनाया और सीमाओं की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया।

अमानुल्ला—हबीबुल्ला ने अफगानिस्तान में सुधार करना चाहा। इस कारण १६१६ में वह मार डाला गया। उसके बाद अमानुल्ला अमीर हुआ। उसने पूर्ण स्वतन्त्र होने के इरादे से भारतवर्ष पर आक्रमण किया। युद्ध के बाद उससे सन्धि हो गई। अब अफगान वैदेशिक नीति पर अंग्रेजो का कोई अधिकार नहीं रहा। अफगान राजदूत लन्दन में रहने लगा। भारत सरकार ने उसे वार्षिक सहायता देना बन्द कर दिया लेकिन भारतीय बन्दरगाहों में होकर बिना चुंगी दिये सामान मगाने की आज्ञा दे दी। इस सन्धि के बाद अफगानिस्तान में बहुत उथल-पुथल होने पर भी भारत-सरकार सदा तटस्थ रही है। १६२६ में अमानुल्ला को निकाल दिया गया और अनेक परिवर्तनों के बाद अमानुल्ला के सेनापति नादिर खाँ का पुत्र जहीरशाह स्थायी शासक हो गया। १५ अगस्त १६४७ से पाकिस्तान की स्थापना हो गई है। सीमाप्रान्त के पठान स्वतन्त्र पठान राज्य (पख्तूनिस्तान) बनाना चाहते हैं। इसका समर्थन अफगान सरकार भी कर रही है और इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र-संघटन के सम्मुख उठा रही है। सीमान्त गाँधी खान अब्दुल गफ्फार तथा उनके अनुयायी अभी हाल तक जेल में पड़े रहे। यह लोग देश विभाजन के पूर्व स्वतन्त्रता-संग्राम में सदा अग्रणी रहते थे। इस कारण भारत सरकार जिसमें कांग्रेस दल का बहुमत है यह चाहती है कि कोई ऐसा सुझाव निकल आये जिससे इन राष्ट्रभक्तों को भी स्वतन्त्रता और सुख का अनुभव प्राप्त हो सके। परन्तु तटस्थता की नीति मानने के कारण वह किसी प्रकार की सामरिक गुटबन्दी में पड़ने के लिए तैयार नहीं है।

भूटान—नेपाल युद्ध के बाद उत्तरी सीमा काफी सुरक्षित हो गई था।

फारस (ईरान)—जिस भाँति भारत सरकार को रूस का प्रभाव बढने की माशका से तिब्बत ग्रौर ग्रफगानिस्तान में हस्तक्षेप करने की इच्छा रही ह उसी प्रकार फारस की खाडी का भारतीय साम्राज्य ग्रौर व्यापार में काफी महत्त्व होने क कारण उसने फारस को भी ग्रपने प्रतिद्वन्दियो के हाथ में जाने स रोका ह। लाड मिन्टो ने पहले-पहल नेपोलियन के भय स फारस से सन्धि करनी चाही थी ग्रौर कुछ कठिनाइयो के बाद उसका उद्देश्य पूरा हो गया था। परन्तु फारस का सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार स ही रहा। ब्रिटेन भारतीय स्थिति का ध्यान रखत हुए ऐस व्यक्तियो को ग्रपना दूत चुनता था जिनको भारत सरकार भी पसन्द कर। लाड कर्जन के समय तक कोई विशेष घटना नही हुई। उस समय फ्रांस रूस ग्रौर जर्मनी फारस में ग्रपना प्रभाव बढ़ाना चाहते थे। कर्जन की नीति का फल यह हुग्रा कि फारस पर उनका प्रभाव न जम सका। महायुद्ध के समय फारस की सहानुभूति इंग्लैण्ड क पक्ष में नही थी ग्रौर उसके बाद फारस ने स्वतन्त्र वदेशिक नीति पालन करने की चेष्टा की। द्वितीय महायुद्ध के समय में फारस को ग्रंग्रेज ग्रौर रूसी फौजो ने संरक्षण में ले लिया था। इस समय वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र ह ग्रौर ईरान के नाम से पुकारा जाता है।

ग्रन्य देश—साधारणत भारत सरकार की वैदेशिक नीति वही रहती थी जो इंग्लैण्ड के वदेशिक विभाग द्वारा स्वीकृत की गई हो परन्तु बाद में भारत सरकार को ग्रपेक्षाकृत कम महत्त्व क प्रश्नो में कुछ ग्रधिक स्वतन्त्रता मिलन लगी। भारत-सरकार न ग्रन्तर्राष्ट्रीय संस्थाग्रों में सदा भाग लिया ग्रौर उसक सदस्यों ने कभी-कभी स्वतन्त्र भाग का भी ग्रवलम्बन किया। व्यापार की सुविधा ग्रौर सांस्कृतिक सम्बन्ध सुदृढ करन क लिए भारत सरकार ने एक ग्रन्तर्राष्ट्रीय ग्रनुसन्धान विभाग, जिसे ग्रंग्रेजी में इण्टरनेशनल रिसर्च ब्यूरो कहत हैं खोला। उसके एजेण्ट ग्रौर दूत विभिन्न देशो में रहते थे। उसने चीन, ग्रमरिका, लङ्का, तथा ब्रिटिश साम्राज्य के ग्रन्य भागो से ग्रधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करन की चष्टा की थी। ग्रब स्वतन्त्र होन पर भारत के राजदूत सभी प्रमुख देशों में रहत हैं ग्रौर एक स्वतन्त्र नीति का सूत्रपात कर रह ह।

मुख्य तिथियाँ

भूटान की लड़ाई	१८६५ ई०
ग्रम्बाला दरबार	१८६९ ई०
ग्रफगानिस्तान की दूसरी लड़ाई	१८७८ ई०

अंग्रेज राजदूत की हत्या	१८७९ ई०
अब्दुर्रहमान से सन्धि	१८८० ई०
अफगानिस्तान की तीसरी लड़ाई	१८८१ ई०
तिब्बत का सिक्कम पर आक्रमण	१८८७ ई०
रूस-अफगान सीमा का स्पष्टीकरण	१८९५ ई०
अब्दुर्रहमान की मृत्यु	१९०१ ई०
यंग हस्बैण्ड का तिब्बत पर आक्रमण	१९०३ ई०
अमानुल्ला से नई सन्धि	१९२१ ई०
अमानुल्ला का राज्य-त्याग	१९२९ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) लार्ड लारेन्स ने अफगानिस्तान में हस्तक्षेप न करने की नीति क्यों अपनाई ?

(२) इस नीति से क्या लाभ हुआ ? क्या इसमें कोई हानि भी हुई ?

(३) लार्ड मेयो और लार्ड नार्थब्रुक का शेरअली के साथ क्या सम्बन्ध रहा ?

(४ लार्ड लिटन और शेरअली में समझौता क्यों नहीं हुआ ?

(५) अफगानों से दूसरी लड़ाई क्यों हुई ?

(६) इस युद्ध से भारत सरकार को क्या लाभ हुआ ?

(७) अफगानों से तीसरी लड़ाई क्यों हुई ? उसका अन्त किस प्रकार हुआ ?

(८) लार्ड रिपन से लेकर आज तक अफगानिस्तान और भारत सरकार के सम्बन्ध का संक्षिप्त वर्णन करो।

(९) भूटान से युद्ध क्यों हुआ ? इस युद्ध का परिणाम क्या हुआ ?

(१०) भारत सरकार और फारस (ईरान) के सम्बन्ध का वर्णन करो।

(११) चीन ने तिब्बत पर आक्रमण क्यों किया ? उसका क्या फल हुआ ?

अध्याय २९

शासन-विधान का इतिहास

महारानी की घोषणा (१८५८ ई०)—सन् १८५८ में महारानी की घोषणा के अनुसार शासन-विधान में कई परिवर्तन हुए। कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया और कम्पनी के स्थान पर भारतीय शासन का भार सकौंसिल सम्राट् ने ले लिया। पार्लियामेण्ट ही अब भारतवर्ष की वास्तविक शासक बन गई। बोर्ड आफ कण्ट्रोल और संचालक समिति दोनों का ही अन्त कर दिया गया। उनके स्थान पर एक भारत-सचिव नियुक्त किया गया जो अपने सभी कार्यों के लिए पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। उसकी सहायता के लिए एक इंडिया कौंसिल बनाई गई जिसमें १५ सदस्य होते थे। उसमें से कम-से-कम आधे ऐसे होते थे जिनको भारत का व्यक्तिगत अनुभव हो। भारत-सचिव भारत सरकार के संचालक और निरीक्षक हो गये और उनकी आज्ञा के विरुद्ध गवर्नर-जनरल कुछ भी नहीं कर सकता था। देशी नरेशों का सम्बन्ध अब कम्पनी के स्थान पर इंग्लैण्ड के शासक से हो गया।

इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट (१८६१)—सन् १८५८ के बाद भारतीयों को अपने देश के शासन में अधिकाधिक हाथ बटाने का अवसर दिया गया। लार्ड कैनिंग के समय में प्रथम इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट सन् १८६१ में पास हुआ। उसके अनुसार एक केन्द्रीय धारा-सभा की नींव पड़ी। कानून बनाने के लिए गवर्नर-जनरल को अपनी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों में अतिरिक्त कम से-कम छः और अधिक-से अधिक १० व्यक्ति नामजद करने की आज्ञा दी गई। इनमें कम-से-कम आधे गैर सरकारी व्यक्ति होना अनिवार्य कर दिया गया और उनका कार्य-काल दो वर्ष निश्चित किया गया। इस प्रकार देश भर के लिए कानून बनाने में कुछ गैर-सरकारी व्यक्तियों का सहयोग लेने का अवसर मिल गया। केन्द्रीय धारा-सभा की भाँति बम्बई मद्रास और बंगाल में लिए भी धारा सभाएँ स्थापित की गईं। उसी प्रकार की धारा-सभायें उत्तर प्रदेश और पंजाब के लिए बनाने की भी आज्ञा दी गई यद्यपि ये बहुत दिनों बाद बनीं। इसी वर्ष

एक दूसरा ऐक्ट बना जिसके द्वारा सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतें तोड़ दी गईं और हाईकोर्ट स्थापित किये गये। पहले बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में ये हाईकोर्ट बने। बाद में अन्य हाईकोर्ट भी बने जिनके अधिकारों और संगठन में १९११ और १९३५ के ऐक्टों ने कुछ परिवर्तन कर दिया।

इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट (१८९२ ई०)—लार्ड डफरिन के समय में सन् १८८६ में वर्तमान उत्तर प्रदेश में एक प्रान्तीय धारा-सभा स्थापित की गई। लैन्सडाउन के समय में द्वितीय इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट बना (१८९२)। इसके अनुसार केन्द्रीय धारा-सभा में नामजद किये हुए सदस्यों की संख्या कम-से-कम १० और अधिक-से-अधिक १६ कर दी गई। नामजद किये हुए व्यक्तियों में से कुछ का चुनाव सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा होता था और निर्वाचित व्यक्ति को ही गवर्नर-जनरल नामजद कर देते थे। इस प्रकार परोक्ष निर्वाचन प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि इन धारा-सभा के अधिकार बढ़ा दिये गये। इसके सदस्य सरकार की नीति की आलोचना कर सकते थे और प्रश्न पूछ सकते थे। उनको आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हो गए। प्रान्तीय धारा-सभाओं में नामजद किये हुए सदस्यों की संख्या ३० तक कर दी गई। इस प्रकार से लोकमत का अधिक प्रतिनिधित्व शासन योग्य बनने लगी।

मार्ले मिण्टो सुधार (१९०९)—लार्ड डफरिन के समय में सन् १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई थी। उसने, एक वार्षिक बैठक में १८९२ के ऐक्ट के प्रति बहुत असन्तोष प्रकट किया गया और अधिक अधिकारों के लिए माँग पेश की गई। कुछ दिनों तक कांग्रेस के आन्दोलन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन सन् १९०७ से इसके नेताओं की देश में प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। इस कारण सरकार ने भी उनकी माँगों पर अधिक ध्यान दिया। अतः १९०९ ई० में एक नया सुधार नियम पास हुआ। उस समय भारत के गवर्नर जनरल मिण्टो थे और भारत-सचिव मार्ले थे। इस कारण इसे मार्ले-मिण्टो सुधार कहते हैं। इस नियम के अनुसार केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों की संख्या ६० कर दी गई। उनमें से ३३ नामजद किये जाते थे और २७ जनता द्वारा चुने जाते थे। सीधे चुनाव करने का यह प्रथम अवसर था परन्तु साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ होने से देश को बड़ी हानि हुई। सन् १९०६ में मुस्लिम-लीग बना था। उसने सदस्यों के पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त की माँग की। इसके बाद से भी सरकार मुसलमानों को अधिक सुविधा देने

लगी थी। इस कारण मिन्टो ने लीग की माँग स्वीकार कर ली। १९०९ के सुधार नियम के अनुसार साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचन प्रणाली प्रान्तों तथा स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं में भी चल पडी। उत्तर प्रदेश की धारा-सभा के सदस्यों की संख्या ५० कर दी गई और उसमें निर्वाचित व्यक्तियों का अनुपात बढ़ा दिया गया। सभी धारा-सभाओं के अधिकार भी बढा दिये गए। उनको प्रस्ताव पास करने सरकार की नीति की आलोचना करने और एक प्रश्न के उत्तर से असन्तुष्ट होने पर पूरक प्रश्न पूछने के अधिकार मिल गए। यह होते हुए भी जनता को अभी अपने देश के शासन में बहुत कम अधिकार थे।

माटंग्यू चेम्सफोर्ड सुधार (१९१९ ई०)—मिन्टो-मार्ले सुधारों से उस समय शिक्षित जनता संतुष्ट नहीं हुई। कांग्रेस का आन्दोलन दिन-प्रतिदिन अधिक प्रभावशाली होता गया। इसी बीच में यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया। १९१४ से १९१८ तक जो भीषण संग्राम हुआ उसमें भारतीयों ने सरकार की बहुत सेवा की। कांग्रेस-नेताओं ने भी आन्दोलन बन्द करके सरकार की सहायता की और केवल शांतिपूर्वक अधिक सुविधाओं की माँग पेश की। १९१६ में कांग्रेस-लीग समझौता हो जाने से राष्ट्रीय माँग का प्रभाव और भी बढ़ गया। सन् १९१७ में सरकार की स्थिति बहुत ही खराब थी। उस समय अधिक-से-अधिक सहायता प्राप्त करने के लिए भारत मंत्री मिस्टर माण्टेग्यू ने एक घोषणा की जिसमें उन्होंने कहा कि भारत में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना है। इसके बाद वह स्वयं भारत आए और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का दौरा करके और मुख्य-मुख्य व्यक्तियों से भेंट करके उन्होंने भारतीय शासन की नई योजना तैयार की। उसके अनुसार इंगलैंड की पार्लियामेण्ट ने १९१९ में एक सुधार नियम पास किया। इसे माटेंग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार कहते हैं।

इस सुधार नियम के अनुसार केन्द्रीय व्यवस्थापक-मंडल में दो सभायें कर दी गईं। एक का नाम कौंसिल-ऑफ स्टेट और दूसरी का लेजिस्लेटिव असेम्बली। कौंसिल ऑफ स्टेट में ३३ निर्वाचित और २७ नामजद किये हुए व्यक्ति रखे गये। इसके वोटर बहुत मालदार या बड़े विद्वान् व्यक्ति ही हो सकते थे। असेम्बली में १४५ सदस्य रखे गए। उनमें से १०४ निर्वाचित और ४१ नामजद किये हुए थे। असेम्बली के वोटरों की संख्या भी बहुत कम थी लेकिन कौंसिल-ऑफ स्टेट की अपेक्षा उसके वोटरों की योग्यता काफी निम्न श्रेणी की थी। साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचन प्रणाली अब भी बनी रही। गवर्नर-जनरल को

का एक सदस्य भारतीय होता था। अब गवर्नर-जनरल और कमाण्डर इन चीफ को मिलाकर उसके ८ सदस्यों में से ३ हिन्दुस्तानी होने लगे। इसी समय केन्द्रीय सरकार का काम ८ विभागों में बाँट दिया गया और प्रत्येक सदस्य उनमें से किसी एक का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

इस प्रकार इस सुधार नियम ने भारतीयों को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की ओर एक कदम और आगे बढ़ा दिया, लेकिन भारतीय लोकमत इस प्रगति से सन्तुष्ट नहीं हुआ। प्राय सभी राजनीतिक दलों ने कहा कि सुधार अपर्याप्त है और ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता की महत्वाकांक्षा की अवहेलना कर रही है। बाल गंगाधर तिलक महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय इत्यादि कांग्रेस नेताओं ने सुधारों का बहिष्कार किया लेकिन अन्य व्यक्तियों को जो मिला था उसे स्वीकार करके दूसरे अधिकार माँगने की नीति को अपनाया। कांग्रेस का प्रभाव बढ़ते जाने के कारण प्रान्तीय मन्त्रियों की प्रतिष्ठा बहुत कम रहा। उनमें और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों में उचित सहयोग न हो सका। द्वैध-शासन के दोष स्पष्ट दिखाई देने लगे। इस कारण कुछ सुधारों की फिर आवश्यकता प्रतीत हुई। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सर जान साइमन की अध्यक्षता में सात अंग्रेजों का एक कमीशन नियुक्त किया। उसने १९२७ १९२८ में भारत के विभिन्न भागों का दौरा करके और विभिन्न दलों के व्यक्तियों से मिलकर एक रिपोर्ट तयार की। इस कमीशन में एक भी भारतीय न होने के कारण यह बहुत बदनाम हो गया। अधिकांश दलों ने इससे सहयोग करने से इन्कार किया। इसकी रिपोर्ट की बहुत बुराई की गई। संशोधन के लिए भारतीयों और अंग्रेजों की तीन राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंसें लन्दन में की गई। उनमें से एक में कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी भी सम्मिलित हुए। इन कान्फ्रेंसों ने साइमन कमीशन रिपोर्ट को और भी संकुचित कर दिया। इसके बाद अन्य कई सीढ़ियों को पार करके सन् १९३५ में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ और प्राय प्रत्येक सीढ़ी पार करने के बाद यह अधिकाधिक संकुचित ही होता गया।

१९३५ का गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट—यद्यपि १९३५ के ऐक्ट की निन्दा भारतवर्ष के प्राय सभी दलों ने की है तो भी उसके द्वारा भारतीयों को पहले की अपेक्षा कई नये अधिकार मिले और शासन-विधान में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसमें कुछ बातें बिलकुल ही नई थीं। अब देशी राज्यों और ब्रिटिश प्रान्तों को मिलाकर एक सार्वभौम भारतीय संघ-शासन की योजना

योग किया। यह काम चल ही रहा था कि सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। सरकार ने प्रान्तीय सरकारों से बिना पूछे युद्ध की घोषणा कर दी इसलिए कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये और गवर्नर अपने विशेषाधिकार से शासन करने लगे।

युद्ध की प्रगति ने ब्रिटिश सरकार को भारतीयों को सतुष्ट करने के लिए प्रेरित किया और सन् १९४२ के मार्च महीने में सर स्टफोर्ड क्रिप्स भारतीय समस्या सुलझाने के लिए भेजे गये। इस समय तक लीग ने पाकिस्तान माँगना शुरू कर दिया था। क्रिप्स ने समझौता का प्रयत्न किया और एक अवसर पर ऐसा प्रतीत हुआ कि समझौता हो गया लेकिन एकाएक सरकारी रुख बदल गया और स्थिति पहले से भी बिगड़ गई। युद्ध संचालन में सरकार ने कुछ ऐसे काय किये जिनको कांग्रेस ने बहुत अनुचित समझा और उसने उनका विरोध करना चाहा। गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो ने कांग्रेस नेताओं को अगस्त १९४२ में कद कर लिया। उसके बाद देश भर में कड़ी सनसनी फल गई और भीषण उपद्रव आरम्भ हो गया। सरकार के दमन ने उपद्रव को दबा दिया और कुछ समय बाद (मई १९४४) महात्मा गाँधी जल-मुक्त कर दिये गये। नये वाइसराय लार्ड वेवल ने भारतीय नताओं के सम्पर्क में आने की चेष्टा की और राजनीतिक गत्यावरोध का अन्त करने के लिए इनके प्रयत्न किये। इस बीच में युद्ध समाप्त हो गया और सरकार की नीति फिर बदल गई। ब्रिटेन में कुछ लोग यह अनुभव करने लगे कि भारतमंत्री एमरी और प्रधान मन्त्री चर्चिल भारतीय भावनाओं की जान-बूझकर उपेक्षा करते हैं। मजदूर-दल के कुछ व्यक्तियों ने, जिनमें हरोल्ड लास्की का नाम मुख्य है मजदूर दल के सदस्यों पर भारतीय स्थिति सुधारने के लिए जोर डालना शुरू किया। उसी समय ब्रिटेन में नया चुनाव हुआ जिसमें मजदूर दल की विजय हुई। जून १९४५ में सरकार की ओर से वाइसराय ने एक नई घोषणा की और कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये। शिमला में एक सर्वदल सम्मेलन हुआ जिसमें कोई समझौता नहीं हुआ। सन् १९४६ में प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव के उपरान्त राज-नीतिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। कांग्रेस ने अगस्त १९४२ के भारत छोड़ो प्रस्ताव के आधार पर चुनाव में भाग लिया और लीग ने पाकिस्तान के आधार पर। १९३७ में कांग्रेस ने लीगी सदस्यों का विरोध नहीं किया था, लेकिन इस बार प्रायः प्रत्येक प्रान्त में राष्ट्रीय मुसलिम दल का संगठन हुआ जिसने कांग्रेस

के होने पर भी भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य बराबर चलता रहा था। संविधान-सभा के सदस्यों की अन्तिम संख्या ३०८ थी। ९ दिसम्बर १९४६ से २६ नवम्बर १९४९ तक विधान-सभा ने ११ अधिवेशन किये। विभिन्न कार्यों के लिए उनकी अनेक उपसमितियाँ बनीं जिन्होंने संविधान-सभा का काम सुगम बनाया। अन्त में लगभग ३ वर्ष के पश्चात और लगभग ६४ लाख रुपये का व्यय हो चुकने पर २६ नवम्बर १९४९ को प्रजातन्त्र भारत का प्रथम संविधान स्वीकृत हो गया। इसमें ३९५ धाराएँ और ८ अनुसूचियाँ हैं। संविधान-सभा ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया। संविधान की एक प्रति पर सभी सदस्या ने हस्ताक्षर करवा लिए गये हैं और यह प्रति ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु हो गई है। अधिकाश सदस्या ने २४ जनवरी १९५० को हस्ताक्षर किये थे। उसके २ दिन बाद २६ जनवरी को पूर्ण सत्ताधारी भारतीय जनतन्त्र की स्थापना हो गई और संविधान-सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद प्रथम राष्ट्रपति हुए।

संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताएँ—इस संविधान द्वारा भारत एक जनतान्त्रिक धर्म निरपेक्ष पूर्ण सत्ताधारी प्रजातन्त्र बन गया है और यद्यपि भारत सरकार ने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया तो भी इंग्लैण्ड के राजा का भारतीय संविधान में अब कोई स्थान नहीं है। १९४९ ई० में एक दूसरे ऐक्ट द्वारा प्रिवी कौंसिल के अधिकारों को समाप्त करके सुप्रीम कोर्ट को अन्तिम न्यायालय बना दिया गया है।

भारतीय संघ के अन्तर्गत जो भूमि तथा जनसमुदाय है उसे शासन की दृष्टि से कई भागों में विभक्त कर दिया गया है। उनमें से कुछ वे राज्य हैं जो पहले गवर्नरों द्वारा शासित प्रान्त थे जैसे बम्बई मद्रास यू० पी० आदि। दूसरी श्रेणी में वे राज्य हैं जो एक अथवा अनेक देशी रियासतों को मिलाकर बने हैं जैसे— हैदराबाद, कश्मीर राजस्थान, मध्यभारत, सौराष्ट्र आदि। तीसरी श्रेणी में वे राज्य हैं जिनमें पहले चीफ कमिश्नर शासन करते थे जैसे—अजमेर भोपाल दिल्ली हिमाचल प्रदेश कच्छ आदि। इनके अतिरिक्त कुछ पिछड़े हुए लोगों के प्रदेश हैं जिनके शासन के लिए विशेष व्यवस्था की गई है।

वास्तविक जनतन्त्र की स्थापना की दृष्टि से वयस्क मताधिकार स्थापित किया गया है। साथ ही नागरिकों के अनेक मौलिक अधिकारों तथा राज्य की नीति के आधारभूत सिद्धान्तों की विवेचना करके जनतन्त्र की ओर प्रगति करने का आश्वासन दिया गया है।

भारतीय संविधान ने एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की है जिसमें केन्द्रीकरण की स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसी कारण राज्यों तथा संघ के बीच जो कार्यों का बँटवारा हुआ है और उनके पारस्परिक संबंध की जो विवेचना हुई है उससे यह प्रकट होता है कि राज्यों के अधिकार काफी सीमित हैं।

संघीय सरकार का कार्य राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल तथा भारतीय पार्लियामेण्ट एवं अनेक अन्य पदाधिकारियों के द्वारा संपादित होता है। भारतीय पार्लियामेण्ट की दो धारा-सभाएं हैं। पहली का नाम राज्यसभा है और उसमें २५० सदस्य होते हैं जिनमें से १२ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। दूसरी सभा को लोकसभा कहते हैं और उसके सभी सदस्य निर्वाचकों द्वारा चुने जाते हैं। उनकी संख्या ५०० है।

राज्यों में एक गवर्नर, राजप्रमुख, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर या उनका समकक्ष कोई अन्य पदाधिकारी कार्यकारिणी का अध्यक्ष होता था। गवर्नर को राज्यपाल कहते हैं। इनके अतिरिक्त बड़े राज्यों में धारा-सभाएँ तथा मंत्रिमण्डल हैं। इन सभी स्थानों में ग्राम-पंचायतों के संगठन, १४ वर्ष की आयु तक के बालक-बालिकाओं के निःशुल्क अनिवार्य शिक्षण तथा श्रमजीवी एवं पिछड़े हुए वर्गों और हरिजनों के आर्थिक तथा सांस्कृतिक हितों का विशेष ध्यान रखा जायगा।

संविधान ने साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति का अन्त कर दिया है और हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है। इस भाँति नये संविधान ने राज्य के संगठन में अनेक मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं। परन्तु जैसा प्रायः होता है, कुछ लोग इस संविधान की धाराओं से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं और उनका विचार है कि इसमें शीघ्र ही यदि आमूल नहीं तो अनेक परिवर्तन अवश्य करने पड़ेंगे।

संविधान में संशोधन—सन् १९५१ में संविधान में प्रथम संशोधन हुआ। अनेक राज्यों में जमींदारी उन्मूलन नियम बनाये गये थे किन्तु उनका व्यक्ति के सम्पत्ति सम्बन्धी मौलिक अधिकारों का विरोध घोषित किये जाने की आशंका उपस्थित हो गयी। इसलिए सन् १९५१ में प्रथम संशोधन द्वारा संपत्ति-सम्बन्धी धाराओं में परिवर्तन किया गया। भारतीय जनगणना (१९५१) के कारण लोकसभा की सदस्यता के नियमों में संशोधन के लिए सन् १९५२ में द्वितीय संशोधन किया गया। सन् १९५६ में सातवाँ संशोधन पास हुआ जिसके द्वारा भारतीय संघ के राज्यों में अनेक परिवर्तन किये गये। पहले राज्यों की चार श्रेणियाँ थीं और उनकी शासन व्यवस्था में बड़ा अन्तर था। किन्तु सातवें संशोधन के द्वारा समस्त देश को १४ राज्यों तथा ६ प्रदेशों में विभक्त कर दिया गया

है। आंध्रप्रदेश, आसाम विहार, बम्बई, जम्मू-कश्मीर, केरल, मध्यप्रदेश मद्रास मैसूर, उडीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल राज्य हैं जिसमें प्रत्येक में राज्यपाल, मंत्रिमण्डल तथा विधान सभाएं हैं। प्रदेशों में प्रशासकों तथा परामर्शदात्री समितियों के द्वारा शासन की व्यवस्था की गई है। बम्बई को द्विखण्डित करके गुजरात और महाराष्ट्र तथा पंजाब को द्विखण्डित करके पंजाब सूबा और हरियाना के राज्य बनाये गये हैं।

मुख्य तिथियाँ

कम्पनी का अन्त	१८५८ ई०
प्रथम कौंसिल ऐक्ट	१८६१ ई०
द्वितीय कौंसिल ऐक्ट	१८९२ ई०
मार्ले मिण्टो सुधार	१९०९ ई०
माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार	१९१९ ई०
साइमन कमीशन की नियुक्ति	१९२७ ई०
साइमन रिपोर्ट	१९३० ई०
गोलमेज कान्फ्रेंस	१९३० १९३२ ई०
गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट	१९३५ ई०
प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना	१९३७ ई०
राजनीतिक गत्यावरोध का आरम्भ	१९३९ ई०
क्रिप्स प्रस्ताव और अगस्त आन्दोलन	१९४२ ई०
शिमला कान्फ्रेंस	१९४५ ई०
कबिनेट मिशन और अंतर्कालीन सरकार	१९४६ ई०
औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना	१९४७ ई०
भारतीय संविधान की स्वीकृति	१९४९ ई०
भारतीय जनतंत्र की स्थापना	१९५ ई०
राज्यों का पुनर्संगठन	१९५६ ई०
महाराष्ट्र और गुजरात की स्थापना	१९५९ ई०
हरियाना और पंजाबी सूबा का निर्माण	१९६६ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) सन् १८६१ और १८९२ के नियमों द्वारा केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल के विकास में क्या परिवर्तन हुए?

(२) बीसवी शताब्दी मे केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल के विकास का क्रम बताओ। क्या कारण है कि व्यवस्थापक-मण्डल जनता के प्रतिनिधियो की इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करता ?
(३) भारत-मन्त्री की उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई ? १६१६ और १६३५ के ऐक्टो ने उसके अधिकारो म क्या परिवतन किये ?
(४) प्रान्तीय स्वराज्य का क्या अथ है ? सन् १६१६ और १६३५ के ऐक्टो द्वारा प्रान्तीय शासन म क्या परिवतन किये गये ?
(५) सन् १६३५ का ऐक्ट जनता को ग्राह्य क्यो नही हुआ ? उसके दोपो को दूर करने के लिए ब्रिटिश मरकार ने क्या किया ?
(६) इग्लैण्ड की मजदूर-सरकार ने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए क्या प्रयत्न किये ?
(७) भारतीय सविधान ने सघीय तथा राज्यो की सरकार के सगठन में क्या परिवतन किये हैं ?
(८) भारतीय सविधान ने वास्तविक जनतत्र की ओर क्या प्रगति की है ?
(९) भारतीय सविधान म सशोधनो की आवश्यकता क्या हुई ? कतिपय सशोधनो का विवरण दीजिए ?

अध्याय ३०

न्याय-विभाग, पुलिस और सिविल सर्विस

न्याय—शासन विधान के विकास के साथ-साथ सरकार के मुख्य विभागो में भी परिवतन होते रहे है। जिस विभाग में इस काल में सर्वाधिक परिवर्तन हुए हैं वह है न्याय विभाग। वारेन हेस्टिंग्स कार्नवालिस हेस्टिंग्स और बेंटिङ्क के सुधारों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। लार्ड रिपन के समय में भी न्याय-विभाग में कई सुधार हुए।

नियम-ग्रन्थ (कोड)—लार्ड कनिंग के समय से ही इन सुधारों का सूत्रपात हुआ। सन् १८५६ में दीवानी अदालतों की कार्यवाही को नियमित रूप देने के लिए सिविल प्रोसीजर कोड बनाया गया। उसी प्रकार फौजदारी अदालतों के लिए सन् १८६० ई० में क्रिमिनल प्रोसीजर कोड बनाया गया। इन कोडों का प्रचार देश भर में हो गया और सभी जगह की अदालतों का कार्य उन्हीं की धाराओं के अनुसार होने लगा। किस अपराध में क्या दण्ड देना चाहिए बताने के लिए सन् १८६१ में इण्डियन पेनल कोड अर्थात् भारतीय दण्ड-विधान बनाया गया। इन नियम-ग्रन्थों के बन जाने से अदालतों के जजों वकीलों और जनता सभी को सुविधा हो गई।

हाईकोर्ट ऐक्ट (१८६१)—सन् १८६१ ई० में ही एक कानून पास हुआ जिसके अनुसार सुप्रीम कोर्ट, सदर दीवानी और सदर निजामत अदालतें तोड़ दी गईं। उनके स्थान पर कलकत्ता बम्बई और मद्रास में हाईकोर्ट स्थापित हो गये। उनमें एक प्रधान जज और अधिक से अधिक १८ अन्य जज नियुक्त किये जा सकते थे। दीवानी तथा फौजदारी सभी प्रकार के मुकदमों की अपीलें हाई कोर्ट में ही होने लगीं। हाईकोर्ट को अपने आधीन न्यायालयों के नियम बनाने और उनका निरीक्षण करने का भी अधिकार दिया गया।

सन् १८६६ में इलाहाबाद में भी एक हाईकोर्ट स्थापित किया गया और उसी वर्ष पंजाब में लाहौर चीफ कोर्ट की स्थापना हुई। दीवानी और फौजदारी अदालतों का संगठन देश भर में प्रायः एक-सा करने के लिए कई और नियम बनाये गये। लार्ड रिपन के समय तक किसी भारतीय जज को यूरोपियनों का मुकदमा करने का अधिकार नहीं था। उसने इस भेद भाव को हटाने के लिए सन् १८८२ में इलबर्ट बिल पास किया जिसके अनुसार भारतीय जजों को जूरी की सहायता से उनके मुकदमे करने का अधिकार दिया गया। धीरे धीरे जब प्रांतीय शासन में उन्नति होती गई तो १९११ में एक नया ऐक्ट पास किया गया जिसके अनुसार हाईकोर्टों का नये सिरे से संगठन किया गया। अब जजों की संख्या बढ़ाकर २० तक कर दी गई और गवर्नर-जनरल को अस्थायी जजों की नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया। आवश्यकतानुसार नये हाईकोर्ट स्थापित करने का अधिकार भी गवर्नर-जनरल को ही दिया गया। इसी ऐक्ट के अनुसार पटना लाहौर और रंगून में हाईकोर्ट खोले गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रत्येक राज्य के लिए पृथक हाईकोर्ट स्थापित किये गये हैं।

सघीय न्यायालय—१६३५ के ऐक्ट के अनुसार १६३७ में एक संघीय न्यायालय स्थापित किया गया। इसमें एक चीफ जस्टिस और अधिकाधिक ५ अन्य जज हो सकते थे यद्यपि किसी भी समय इसमें ३ जजों से अधिक नहीं थे। सघीय न्यायालय में शासन-विधान के अर्थ विषयक मुकदमे जाते थे। १६४६ तक संघीय न्यायालय के अधिकार काफी बढ़ गये परन्तु विधान की दृष्टि से यह सर्वोच्च न्यायालय नहीं था क्योंकि उस समय तक प्रिवी कौंसिल की न्यायसमिति ही अपीलों का अन्तिम निर्णय करती थी। १६४६ में प्रिवी कौंसिल के अधिकारों का अन्त कर दिया गया। भारतीय सविधान ने सघीय न्यायालय के स्थान पर एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की है और उस सर्वोच्च न्यायालय के सभी अधिकार प्रदान किये हैं। हाईकोर्टों के सगठन में भी कुछ परिवर्तन हो गये हैं।

न्याय विभाग पर एक दृष्टि—प्राय सभी भारतीय न्यायालयों में उचित योग्यतावाले व्यक्ति रखे जाते हैं जिनको पर्याप्त वेतन दिया जाता है और जिनमें अधिकाश का चुनाव पब्लिक सर्विस कमीशन करते हैं। इस समय भारतीय अदालतों में मुख्यत ४ दोष हैं—(१) न्याय प्राप्त करने में बहुत अधिक खर्च होता है। (२) किसी मुकदमे का अन्तिम निर्णय होने में बहुत समय लगता है, जिसके कारण न्याय की उपयोगिता घट जाती है। (३) माल की अदालतों के न्यायाधीश अन्य काम भी करते हैं जिसके कारण वह न्याय की ओर यथाशीघ्र ध्यान नहीं दे पाते। (४) फौजदारी के छोटे मुकदमे करने का अधिकार उन व्यक्तियों को दे दिया गया है जो शाति रक्षा के लिए भी उत्तरदायी हैं। इस कारण कभी-कभी उनके फसले पक्षपात रहित नहीं होते।

पुलिस विभाग—न्यायालयों का काय सुचारु रूप से तभी चल सकता है जब उसे पुलिस विभाग का सहयोग प्राप्त हो और वह सुसंगठित तथा कुशल हो। शांति तथा सुव्यवस्था रखने के लिए भी पुलिस कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। कार्नवालिस ने पहले-पहल थानेदारी प्रथा की नींव डाली थी और थाने के दारोगा को २५ रुपया वेतन देना आरम्भ किया था। यह वेतन इतना कम था कि पुलिस के दारोगा प्राय घूस लेते थे और सामान्यत वे बदमाशों के सहायक तथा धनी भलेमानसों के शत्रु रहते थे। *बेंटिंक ने स्थिति सुधारने का कुछ प्रयत्न* किया लेकिन उससे विशेष लाभ नहीं हुआ। कर्जन (१८६६ १६०५) ने पुलिस विभाग को सुधारने के लिए कमीशन नियुक्त किया था। उसकी रिपोर्ट इतनी खराब थी कि वह प्रकाशित नहीं की गई। जब कर्जन ने उसके आधार पर कुछ सुधार कर लिए तब उसने उसे प्रकाशित करने का साहस किया और उसी के

साथ यह भी विज्ञप्ति निकाली कि जिन दोषों का वर्णन किया गया है उनमें से बहुत से दोष हटा दिये गये हैं। कालान्तर में पुलिस की स्थिति और सुधरती गई लेकिन उसका संगठन और उसकी कार्य प्रणाली अब भी दोष रहित नहीं है।

शिक्षा और सुधार होने पर भी पुलिस विभाग में अनेक दोष हैं। घूस लेना, बदमाशों से मिल जाना, प्रजा की सेवा के स्थान पर उस पर अपना रोब जमाकर उसके धन की इच्छा करना, अपनी वाहवाही के लिए झूठे मुकदमे बनाना, निर्दोष व्यक्तियों को फँसा देना प्रमाण ढूँढ़ने के सिलसिले में अनेक यातनायें देना आदि ऐसे दोष हैं जो समय-समय पर अनेक कर्मचारियों के विरुद्ध प्रमाणित हो चुके हैं।

सरकारी नौकरियाँ—भारतवर्ष की शासन-व्यवस्था का आधार सरकारी नौकरियाँ हैं। वे तीन श्रेणियों में विभक्त की गई हैं—अखिल भारतीय, प्रान्तीय और निम्न कोटि की नौकरियाँ। अखिल भारतीय नौकरियों में इण्डियन सिविल सर्विस, जिसे अब इण्डियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस कहते हैं, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रायः इस सर्विस के लोग ही जिले के शासक, जिला जज, हाईकोर्टों के एक तिहाई जज, कमिश्नर, चीफ कमिश्नर, गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सदर दफ्तरों के सेक्रेटरी अर्थात् अध्यक्ष और देशी रियासतों के एजेण्ट होते रहे हैं। अस्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि ब्रिटिश शासन का एक मुख्य स्तम्भ इण्डियन सिविल सर्विस था।

सन् १८५३ के पहले इस सर्विस में एक भी भारतीय नहीं था। उस वर्ष से इसकी परीक्षा लन्दन में होने लगी और भारतीयों को सम्मिलित होने की आज्ञा मिली। इस सुविधा से लाभ उठाना बहुत कठिन था, लेकिन उसमें काफी धन खर्च होता था। सन् १८७० तक केवल रमेशचन्द्र दत्त इस परीक्षा को पास कर सके। सन् १९२१ से यह परीक्षा भारत में भी होने लगी और भारतीयों की संख्या बढ़ने लगी यद्यपि अंग्रेजों का भर्ती किया जाना बराबर जारी रहा। १९४७ में जब इण्डियन यूनियन और पाकिस्तान की स्थापना हुई तब अधिकांश अंग्रेजों ने विशेष पेंशन के नियमों से लाभ उठाकर अवकाश ग्रहण कर लिया। इस कारण अनुभवी कर्मचारियों की कमी पड़ गई। इसे पूरा करने के लिए भारी संख्या में नई नियुक्तियाँ की गईं और प्रायः सभी योग्य तथा अनुभवी प्रान्तीय सिविल सर्विस के कर्मचारियों को द्रुत गति से ऊँचे पदों पर रखा गया। कुछ लोगों को भय था कि इससे शासन में बहुत ढीलापन आ जायगा परन्तु जैसा भय था वैसा अवांछनीय परिवर्तन नहीं हुआ। प्रान्तीय और निम्न कोटि की नौकरियों के लिये प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन नियुक्ति करते हैं।

मुख्य तिथियाँ

सिविल प्रोसीजर कोड	१८५९ ई०
क्रिमिनल प्रोसीजर कोड	१८६० ई०
प्रथम हाईकोट ऐक्ट	१८६१ ई०
इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थापना	१८६६ ई०
इलबट बिल	१८८२ ई०
द्वितीय हाईकोट ऐक्ट	१९११ ई०
भारत में सिविल सर्विस की परीक्षा का प्रारम्भ	१९२१ ई०
संघीय न्यायालय की स्थापना	१९३७ ई०
प्रिवी कौंसिल के अधिकारों का अन्त	१९४९ ई०
सुप्रीम कोट की स्थापना	१९५० ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) १८५७ के बाद न्याय विभाग को सुधारने के लिए क्या प्रयत्न किये गए ? अभी किन दूसरे सुधारों की आवश्यकता है ?

(२) भारतीय पुलिस विभाग को सुधारने के लिए क्या प्रयत्न किये गये हैं ? उसके सगठन मे किन सुधारों की आवश्यकता है ?

अध्याय ३१

शिक्षा संस्थाओं की उन्नति

शिक्षा-सुधार का इतिहास—शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के साथ-साथ सरकार ने शिक्षा की उन्नति के लिए भी उद्योग किया है। लार्ड हेस्टिंग्स, बेंटिङ्क और डलहौजी के समय सुधारों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। कैनिंग के समय में सरकार को भारत-मन्त्री की ओर से आदेश दिया गया कि प्रारम्भिक (प्राइमरी) शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाय और उसका निरीक्षण तथा नियन्त्रण सरकारी कर्मचारियों के सुपुर्द किया जाय। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता विश्वविद्यालयों की स्थापना सन् १८५७ में हो चुकी थी। लार्ड रिपन के समय में हण्टर कमीशन नियुक्त किया गया। उसकी सम्मति के अनुसार सन् १८८२ में जनता को माध्यमिक शिक्षा का भार लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया। सरकार हाई स्कूलों को वार्षिक सहायता देती थी। कुछ सरकारी स्कूल भी खोले गये। स्थानीय स्वराज्य की नई संस्थाओं को प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध सौंप दिया गया। परन्तु विश्वविद्यालयों में कोई विशेष सुधार नहीं किया गया। लार्ड कर्जन के समय में राले कमीशन नियुक्त किया गया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर सन् १९०४ में एक ऐक्ट बनाया गया जिसके द्वारा विश्वविद्यालयों के संगठन में सरकार का प्रभाव बढ़ाया गया। इस परिवर्तन से सरकार का नियन्त्रण अवश्य बढ़ गया लेकिन जनता को यह काम रुचिकर नहीं हुआ। सन् १९१९ के सुधारों के बाद विश्वविद्यालयों में कई सुधार किये गये। अभी तक विश्वविद्यालय केवल परीक्षा का प्रबन्ध करते थे। अब कुछ ऐसे विश्वविद्यालय भी बने जिनमें शिक्षा देने के लिए प्रोफेसर लेक्चरर आदि नियुक्त किये गये और अन्य आवश्यक प्रबन्ध किये गये। इसी काल में लखनऊ बनारस अलीगढ़ प्रयाग, पटना आदि के शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालय बने। प्रयाग के पुराने विश्वविद्यालय की ओर से कई कालेजों के छात्रों की परीक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। वह काम आगरा विश्वविद्यालय को दे दिया गया। नागपुर ढाका, हैदराबाद, मैसूर ट्रावन्कोर, लाहौर शिमला, आन्ध्र, अन्नामलाई और रंगून में भी नये विश्वविद्यालय खोले गये। यू० पी० में एफ० ए० की शिक्षा का काम
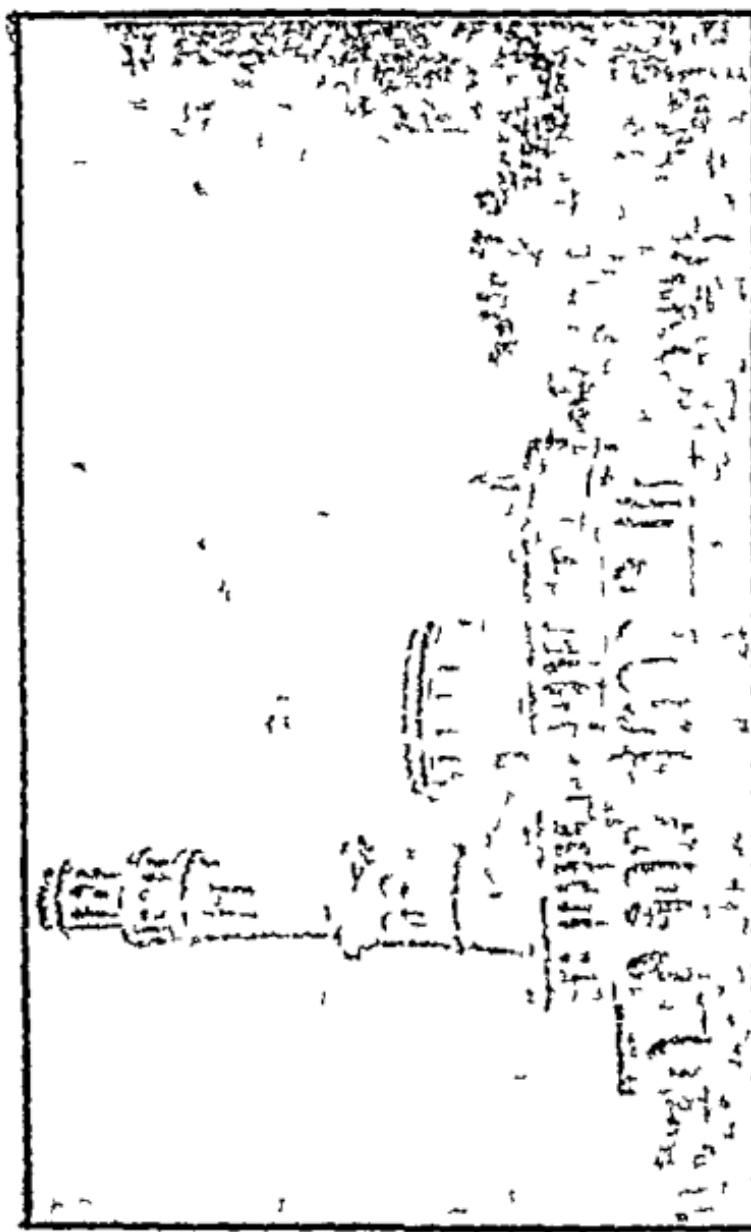
म्योर सेण्ट्रल कालेज, प्रयाग (विश्वविद्यालय का विज्ञान विभाग)

विश्वविद्यालय से ले लिया गया। एक इण्टरमीडियट बोर्ड की स्थापना की गई जो हाईस्कूल और इण्टमीडियट की परीक्षाओं और शिक्षा का प्रबन्ध करता है।

शिक्षा विभाग—इस समय भारत-सरकार का एक सदस्य शिक्षा-विभाग का भी अध्यक्ष है। वह उन विश्वविद्यालयों के कार्य को देखता है जिनको भारत सरकार की सहायता मिलती है। उत्तर प्रदेश में ऐसे विश्वविद्यालय अलीगढ़ और बनारस में हैं। ये विभिन्न राज्यों के अधिकारियों और प्रधान प्रोफ़ेसरों का सम्मेलन कराके शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर परामर्श भी करते हैं।

राज्यों के हाकिम—प्रत्येक राज्य में एक शिक्षामन्त्री होता है। उसकी सहायता के लिए एक स्थायी शिक्षा-सेक्रेटरी होता है। उसके नीचे डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन या एजूकेशन, डिप्टी डाइरेक्टर और असिस्टेण्ट डाइरेक्टर होते हैं। डाइरेक्टर ही राज्य की शिक्षा का निरीक्षण करता है। शिक्षा-मन्त्री की आज्ञाओं और धारा-सभा के नियमों का पालन कराना उसी का कर्त्तव्य है। पूरा राज्य कई सर्किलों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक सर्किल एक इंस्पेक्टर अथवा डिप्टी डाइरेक्टर के अधीन रहता है। उसकी सहायता के लिए जिलों के इंस्पेक्टर रहते हैं। प्रत्येक जिले में एक डिप्टी इंस्पेक्टर और कई सब डिप्टी इंस्पेक्टर भी होते हैं। डिप्टी और सब डिप्टी इंस्पेक्टर प्राइमरी, मिडिल और दूसरी हिन्दी उर्दू पाठशालाओं का निरीक्षण करते हैं। जिला इंस्पेक्टर इन सबका देखने के अतिरिक्त अंग्रेजी स्कूलों को विशेष रूप से देखता है। फ़ारसी, अरबी और संस्कृत की पाठशालाओं के लिए अलग अलग अफ़सर नियुक्त हैं। प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना के बाद एक शिक्षा प्रसार विभाग खोला गया है। यह वयस्क अनपढ़ व्यक्तियों को शिक्षित बनाने का प्रयत्न कर रहा है। उसकी ओर से पाठशालाएँ खोली गई हैं वाचनालय स्थापित किये गये हैं और जनता को अपने अनपढ़ पड़ोसियों को शिक्षित बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया है।

शिक्षा-संस्थाएँ—प्रायः सभी राज्यों में उसी प्रकार की शिक्षा-संस्थाएं हैं जैसी कि उत्तर प्रदेश में। यहाँ पर प्रारम्भिक शिक्षा के लिए गाँवों और नगरों में प्राइमरी एवं बेसिक स्कूल खोले गये हैं। उनमें बालक-बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध है। प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना के बाद इन स्कूलों में नई शिक्षण प्रणाली चलाई गई है। बच्चों को मिट्टी, कागज, सूत, लकड़ी आदि की चीज़ें बनाने का अवसर दिया जाता है। उनको भूगोल, इतिहास, नागरिक-शास्त्र, साधारण विज्ञान आदि की शिक्षा पहले से बहुत ऊँचे पैमाने पर देने की योजना बनाई गई है। प्राइमरी या प्रारंभिक स्कूलों के अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा के लिए जूनियर

तथा हायर सेकेण्डरी स्कूल हैं। इनमें अन्य विषयों के साथ अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है लेकिन शिक्षा का माध्यम अब क्षेत्रीय भाषाएँ कर दी गई हैं। उच्च शिक्षा के लिए कालेज और विश्वविद्यालय हैं। उनमें अभी अंग्रेजी द्वारा ही शिक्षा दी जाती है। परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने की चेष्टा की जा रही है। भारत-सरकार ने संविधान सभा के राष्ट्रभाषा विषयक निर्णय को दृष्टि में रखते हुए सभी राज्यों की सरकारों तथा विश्वविद्यालयों से अनुरोध किया है कि वे ऐसी नीति का अनुसरण करें जिससे १५ वर्ष के भीतर राष्ट्रभाषा तथा प्रान्तीय भाषाओं में सभी शिक्षा कार्य सुचारु रूप से हो सके। माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षालयों के लिए उचित अध्यापक तयार करने के लिए टेनिंग कालेज नामल स्कूल और ट्रेनिंग सेंटर खोले गये हैं। उत्तर प्रदेश ने इस दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं। प्रारंभिक शिक्षा के लिए उसने उचित शिक्षक प्राप्त करने के उद्देश्य से नामल स्कूलों की संख्या बढ़ा दी है और चल-शिक्षण शिविर स्थापित किये हैं जो घूम घूमकर अध्यापकों को शिक्षण-पद्धति की शिक्षा देते हैं। माध्यमिक शिक्षा के लिए उपयुक्त अध्यापक तयार करने के लिए उसने कई नामल स्कूलों को जूनियर ट्रेनिंग कालेज बना दिया है एक दस्तकारी अध्यापन विधि का महाविद्यालय एक गृहशास्त्र महिला महाविद्यालय तथा एक शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय खोला है। इंजीनियरिंग दस्तकारी उद्यम, कला आदि की शिक्षा के लिए अनेक स्कूल और कालेज खोले गये हैं लेकिन उनमें अभी अधिक लोग नहीं जाते। उत्तर प्रदेश की सरकार ने रुड़की में इंजीनियरिंग का विश्वविद्यालय खोला है और टेकनिकल स्कूलों का पाठ्य-क्रम बढ़ा दिया है। संस्कृत फारसी और अरबी की शिक्षा के लिए पाठशालाएँ और मदरसे हैं उनको सरकार की ओर से कुछ सहायता मिलती है, लेकिन उनका अधिकांश खर्च जनता द्वारा ही जुटाया जाता है। काशी का राजकीय संस्कृत कालेज विश्वविद्यालय में परिणत किया गया है।

आधुनिक कालीन प्रगति—बीसवीं शताब्दी में शिक्षा की प्रगति में उत्तरोत्तर विकास हुआ है किन्तु सन् १९४६ के बाद से स्वतन्त्र भारत की सरकारों ने इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण प्रयत्न एवं प्रयोग किये हैं और निरंतर सुधार विकास तथा संशोधन का काम चल रहा है।

नए संविधान के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रधानतः राज्यों का दायित्व है और यह व्यवस्था मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के समय से ही चली आ रही थी। परन्तु फिर भी संघीय सरकार में एक शिक्षा-मन्त्रालय भी रखा गया है जिसका दायित्व है समस्त देश की शिक्षा-व्यवस्था की ओर दृष्टि रखना

उचित सहयोग करना, निर्देश देना तथा उच्च स्तर से शिक्षा की समस्याओं पर विचार करके देश भर में शिक्षा की समान सुविधाओं का प्रबन्ध करना। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राज्य की सरकारों ने शिक्षा के विषय में प्रधानतः ४ कार्य किये हैं—(१) नूतन विश्वविद्यालयों की स्थापना करना। स्वतन्त्रता के पूर्व देश भर में कुल १८ विश्वविद्यालय थे किन्तु १९६७ के प्रारंभ तक उनकी संख्या ७५ के ऊपर हो गयी है। इन विश्वविद्यालयों में कई केवल कृषि, इंजीनियरिंग, टेक्नालाजी संस्कृत सामाजिक शास्त्रों अथवा ललित कलाओं के विश्वविद्यालय हैं। इस समय कोई राज्य ऐसा नहीं है जिसमें एक अथवा अधिक विश्वविद्यालय न हो। उत्तर प्रदेश में उनकी संख्या १३ है। (२) उन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का विस्तार किया है। (३) वयस्कों की शिक्षा का प्रसार किया है तथा (४) व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षालयों की वृद्धि की है। प्रत्येक राज्य ने क्षेत्रीय भाषा के विकास की ओर भी ध्यान दिया है।

इसी काल में संघीय सरकार ने भी शिक्षा की उन्नति के लिए अनेक कार्य किये हैं। उसने प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए एक अनुसंधान केन्द्र खोला है और १९५७ में अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा समिति की स्थापना की है। इसी भाँति माध्यमिक शिक्षा कमीशन (१९५२) की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने माध्यमिक शिक्षा में अनेक निर्देश तथा सुझाव दिये हैं और १९५५ में अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा समिति की स्थापना की है। विश्वविद्यालयों के प्रबंध में सरकार ने राधाकृष्णन् कमीशन (१९४८) की स्थापना की थी और उसकी सिफारिशों के अनुसार १९५३ में एक विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन की स्थापना की है। सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास तथा ग्राम्य एवं प्रौढ़ साहित्य के प्रकाशन के लिए पुरस्कारों की योजना बनाई है। सरकार ने सांस्कृतिक कार्यों के लिए साहित्य तथा कला अकादमी बनाई है और वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा व्यावसायिक अनुसंधान के लिए अनेक संस्थायें स्थापित की हैं। उसने विदेशों में भारतीय नागरिकों को दानवृत्ति देकर भेजने का प्रबन्ध किया है ताकि वे वहाँ से उपयोगी ज्ञान लाभ करके देश की शिक्षा-संस्थाओं को उन्नत बनायें और उसने उच्चस्तरीय विद्वानों, कवियों साहित्यिकों के महत्त्व को आर्थिक सहायता या प्रतिष्ठा देकर स्वीकार किया है। उसने सी० वी० रमन्, के० एस० कृष्णन् तथा सत्येन बोस जैसे विद्वानों को राष्ट्रीय प्रोफेसर घोषित किया है और उनको २५०० रु० प्रतिमास वेतन देना स्वीकार किया है। इस भाँति शिक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं और हो रहे हैं।

सरकार ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपने पद पर आसीन करने के लिए अनेक कार्य किये हैं किन्तु अभी इस दिशा में इतनी प्रगति नहीं हुई जितनी होनी चाहिए थी। दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में अंग्रेजी को हटाकर उसके स्थान पर हिन्दी को रखने का विरोध आरम्भ हो गया और सरकार ने इस विषय की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जिसकी रिपोर्ट १६५७ में छप गयी। उसके १८ सदस्यों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के कार्यकारी रूप में ग्रहण करने को व्यावहारिक तथा बुद्धिमानी की बात बताया है किन्तु दो सदस्यों ने इसका विरोध किया है। दक्षिण भारत में यह विरोध कम हो इसके लिए सरकार ने चेष्टा आरम्भ की है किन्तु १६६५ तक हिन्दी अंग्रेजी का स्थान आंशिक रूप में ही ले सकी है। १६६७ के चुनावों के बाद हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है।

मुख्य तिथियाँ

कलकत्ता, बंबई, मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना	१८५७ ई०
हंटर कमीशन	१८८२ ई०
राले कमीशन	१६०४ ई०
शिक्षा-मंत्रियों की नियुक्ति	१८२० ई०
वुड-ऐबट रिपोर्ट	१६३७ ई०
राधाकृष्णन् रिपोर्ट	१६४६ ई०
माध्यमिक शिक्षा कमीशन	१६५२ ई०
विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन	१६५३ ई०
राष्ट्रभाषा कमीशन रिपोर्ट का प्रकाशन	१६५७ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) १६वीं शताब्दी में शिक्षा की उन्नति के लिए क्या प्रयत्न किये गये?

(२) वर्तमान समय की शिक्षा-संस्थाओं का उल्लेख करो और बताओ कि उनमें किन किन सुधारों की आवश्यकता है।

(३) राज्यों के शिक्षा विभाग के संगठन का संक्षिप्त वर्णन करो और प्रत्येक अफसर के मुख्य कर्त्तव्य बताओ।

(४) १६४७ के बाद राज्य सरकारों ने शिक्षा की उन्नति के लिए क्या कार्य किये हैं?

(५) संघीय शिक्षा मन्त्रालय ने शिक्षा एवं संस्कृति के विकास के लिए क्या कार्य किया है?

अध्याय ३२

स्थानीय स्वराज्य

स्थानीय स्वराज्य का अर्थ—किसी भी सभ्य राष्ट्र की सरकार पूरे देश की छोटी-बड़ी सब आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। बहुत-से ऐसे काम हैं जिन्हें स्थानीय व्यक्ति अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं, क्योंकि वे उन कामों से अधिक परिचित होते हैं और वहाँ की आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यक्तिगत रुचि रखते हैं। इसलिए केन्द्रीय सरकार बहुत-से स्थानीय कार्य वहीं के मतदाताओं द्वारा चुने हुए व्यक्तियों के अधिकार में छोड़ देती है। इस स्थानीय शासन को जिसमें उसी स्थान के निवासियों द्वारा निर्वाचित व्यक्ति स्थानीय कार्यों का उत्तरदायित्व रखते हों स्थानीय स्वराज्य कहते हैं।

प्रारम्भिक दशा—ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् १६८७ में मद्रास की बस्ती के लिए एक अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियों का कारपोरेशन बनाया था। आगे चलकर ऐसे ही कारपोरेशन कलकत्ता और बम्बई के लिए भी बनाये गये। परन्तु इन कारपोरेशनों के सदस्य निर्वाचित न होकर नामजद किये हुए होते थे। इसलिए १७वीं शताब्दी की यह संस्थाएं वास्तविक स्थानीय स्वराज्य स्थापित नहीं कर सकीं। कालान्तर में कम्पनी का राज्य बढ़ता गया और उसे स्थान स्थान पर छावनियाँ बनानी पड़ीं। प्रायः नगर गन्दे रहते थे और खाने-पीने की वस्तुओं की बिक्री तथा सफाई का ठीक प्रबन्ध न होने के कारण सैनिक बहुधा बीमार पड़ जाते थे और मर जाते थे। सैनिक सुरक्षा की दृष्टि से छावनियों और उनके इर्द गिर्द के स्थान को साफ-सुथरा रखना नितान्त आवश्यक था। केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व इतना बढ़ रहा था कि वह इन कामों की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पाती थी। इसलिए सन् १८४२ में म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने के लिए बंगाल में एक कानून बना। जो म्युनिसिपैलिटियाँ पहले बनी उनके सदस्य भी नामजद किये जाते थे। सन् १८७० में लार्ड मेयो के समय से कुछ निर्वाचित व्यक्ति भी सदस्य होने लगे क्योंकि उन्होंने अपने प्रस्ताव में यह प्रकट किया था कि शिक्षा, सफाई, मुफ्त चिकित्सा, स्थानीय सड़कों पुलों आदि का प्रबन्ध स्थानीय व्यक्तियों के हाथ में रहे तो अधिक उन्नति होगी। लार्ड मेयो के बाद लार्ड रिपन (१८८० १८८४) ने स्थानीय स्वराज्य की नींव दृढ़ की और उनका प्रचार प्रायः

सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में कराया। अब प्रत्येक बड़े नगर में एक म्युनिसपल बोर्ड और प्रत्येक जिले में एक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्थापित किया गया। दोनों ही बोर्डों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होने लगा क्योंकि लार्ड रिपन ने यह इच्छा प्रकट की थी कि सरकारी सदस्य एक तिहाई से अधिक न हों। उसके समय के पहले इन संस्थाओं के चेयरमैन सदा सरकारी अफसर होते थे। उसने प्रान्तीय सरकारों को यह आज्ञा दी कि यथासम्भव सरकारी चेयरमैनों के स्थान पर गैर-सरकारी चेयरमैन रखे जायें। उसने इन बोर्डों की आय के साधन और मुख्य कर्तव्य भी निश्चित कर दिए। रिपन ने तहसीलों, तालुका, ग्राम-सभा के लिए भी छोटे बोर्ड बनाने की आज्ञा दी लेकिन उनका प्रचार अधिक नहीं हुआ।

स्थानीय स्वराज्य में प्रगति—रिपन के उत्तराधिकारियों के समय के कर्मचारियों ने इन संस्थाओं को अधिक स्वतन्त्रता नहीं दी। चेयरमैन का स्थान प्रायः कलक्टर प्राप्त कर लेता था और उसके प्रभाव के कारण सदस्यों का काम प्रायः हाँ-में-हाँ मिलाना ही रह जाता था। यह स्थिति माँटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के समय तक रही। उस समय स्थानीय स्वराज्य मन्त्रियों के अधिकार में दे दिया गया। सभी प्रान्तों में स्थानीय स्वराज्य का मन्त्री होने लगा और स्थानीय स्वराज्य का उचित संगठन करने के लिए नये कानून बनाये गये। इनके अनुसार मतदाताओं की संख्या बढ़ा दी गई निर्वाचित सदस्यों का बहुमत और बढ़ा दिया गया और चेयरमैन गैरसरकारी व्यक्ति निर्वाचित होने लगे। उत्तरप्रदेश में यह सुधार म्युनिसिपलिटी ऐक्ट (१९१६) और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐक्ट (१९२२) द्वारा किये गये।

१९३५ के गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट ने प्रान्तीय धारा-सभाओं के मतदाताओं की संख्या बढ़ाने की सिफारिश की थी। १९३७ में जो चुनाव हुए, उनमें संशोधित नियमों के अनुसार प्रान्तीय धारा-सभा के मतदाता बनाये गये। उस समय यह देखा गया कि धारा-सभा के वोटरों की योग्यताएँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्युनिसिपलिटी के वोटरों की योग्यताओं से निम्न श्रेणी की थीं, यद्यपि होना ठीक इसका उलटा चाहिये। इसलिए प्रान्तीय मंत्रिमण्डल ने इन संस्थाओं में सुधार के लिए नियम बनाना चाहा। परन्तु युद्ध आरंभ होने पर जब इन लोगों ने त्याग-पत्र दे दिया तो यह काम रुक गया। प्रान्तीय गवर्नर ने एक विशेष आज्ञा द्वारा इन संस्थाओं के वोटरों की योग्यताएँ वही कर दीं जो कि प्रान्तीय धारा-सभा के वोटरों की थीं। अस्तु इन नियमों के अनुसार साधारणतः इन बोर्डों के वोटर वे व्यक्ति हो सकते थे जो [illegible] में रहते हों जिनकी अवस्था २

वर्ष से अधिक हो जो उसी सम्प्रदाय के हों जिसका सदस्य चुनना हो और जिनमें निम्नांकित योग्यताओं में से कोई एक हो—

(१) अपर प्राइमरी या समकक्ष परीक्षा पास हों या साक्षर स्त्री हो।

(२) कम-से-कम २४) सालाना किराये के मकान के मालिक या किरायेदार हों।

(३) कम-से-कम ५) सालाना लगान वाली जमीन के मालिक हों या १०) सालाना लगान वाली जमीन के काश्तकार हों, या

(४) जिन्होंने पिछले वर्ष कम-से-कम १५०) की आय पर आय कर या म्युनिसिपल कर दिया हो।

स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के प्रकार—आजकल नगरों और जिलों में विभिन्न प्रकार की स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएं स्थापित की गई हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कराची, दिल्ली, कानपुर ऐसे बड़े नगरों में कारपोरेशन होते हैं जिनका साधारण संगठन म्युनिसिपलिटी का-सा होता है परन्तु उनके आर्थिक अधिकार बड़े होते हैं, और वे कर्ज भी ले सकते हैं। उनसे छोटे दर्जे के नगरों में म्युनिसिपल बोर्ड होते हैं। इनमें से ७० से अधिक बोर्डों की जनसंख्या सन् १९३८ में ५०,००० से अधिक थी और उनकी कुल आय ३६ करोड़ के लगभग थी। इनमें वे स्थानीय जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, रोशनी आदि विषयों पर खर्च कर रहे थे। बन्दरगाहों में पोर्ट ट्रस्ट और छावनियों में कण्टानमेण्ट बोर्ड होते हैं। उनका संगठन भी म्युनिसिपल बोर्ड से मिलता-जुलता है परन्तु ये केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं। छोटे कस्बों में नोटीफाइड एरिया कमेटी और टाउन एरिया कमेटी होती हैं। उत्तरप्रदेश में इनके कस्बों की संख्या ५ या ७ होती हैं। उनकी आय और उनके अधिकार कम होते हैं लेकिन उनका काम म्युनिसिपल बोर्ड का सा ही होता है और वे भी स्थानीय सफाई, शिक्षा, सड़कों की मरम्मत और रोशनी आदि का प्रबन्ध करती हैं।

देहातों का प्रबन्ध करने के लिए जिला बोर्ड होते हैं। उनके काम भी म्युनिसिपल बोर्डों से मिलते-जुलते हैं। जिला बोर्ड के नीचे तहसील बोर्ड या तालुका बोर्ड होते हैं। मद्रास प्रान्त में यूनियन बोर्ड भी होते हैं। भारतीय संविधान में ग्राम पंचायतों की स्थापना का स्पष्ट आदेश दिया गया है। समस्त देश में ग्राम सभायें बन गयी हैं। पंचायत राज ऐक्टों द्वारा ऐसी पंचायतें स्थापित की गई हैं और उनके अन्तर्गत ग्राम सभायें तथा पंचायती अदालतें स्थापित की गई हैं। इसी भांति जिला बोर्डों, म्युनिसिपल बोर्डों तथा अन्य स्थानीय

स्वराज्य की संस्थाओं में संशोधन करने के लिए नये नियम बनाये गये हैं या बनाये जा रहे हैं। अब उनके अधिकार और बढ़ जायेंगे और उन सभी में वयस्क मताधिकार का चलन कर दिया गया है।

इन संस्थाओं से जनसाधारण और सरकार को बहुत लाभ हुआ है। उन्होंने स्थानीय कार्यों का भार अपने ऊपर लेकर प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकार के बोझ को हल्का कर दिया है और सरकार की प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया है। साधारण जनता को उनके द्वारा राजनीतिक शिक्षा मिली है और लोगों ने स्वशासन सीखने का अवसर पाया है। उन्होंने शिक्षा प्रसार, सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य और यातायात के साधनों की उन्नति में बहुत काम किया है। उन्होंने बाजारों, मेलों, सिनेमाघरों आदि का प्रबन्ध करके जनता को सुखी जीवन व्यतीत करने में सहायता दी है।

आवश्यक सुधार—इतना होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कार्य संतोषजनक है और उनके संगठन तथा कार्यक्रम में व्यापक सुधार की आवश्यकता नहीं है। बोर्ड के सदस्य और कर्मचारी सदा जनहित और ईमानदारी का ध्यान नहीं रखते। कहीं कहीं तो इतनी अधिक गड़बड़ी होने लगती है कि बोर्ड के अधिकार छीन लिये जाते हैं। तमाम लोग किसी-न किसी बहाने रुपया खा जाते हैं और अपने को तथा बोर्ड को बदनाम करके जनता में उदासीनता और घृणा की भावना पैदा करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इन संस्थाओं के संगठन में मौलिक सुधार किये जायें। बोर्डों के अधिकार और उनकी आय के साधन बढ़ा देने चाहिए। बेईमानी के कुपरिणाम को हटाने के लिए सार्वजनिक शिक्षा का सुधार होना चाहिए और सहानुभूतिपूर्ण नियन्त्रण बढ़ाना चाहिए।

मुख्य तिथियाँ

मद्रास कारपोरेशन का बनना	१६८७ ई०
म्युनिसिपलिटियों का प्रारम्भ	१८४२ ई०
लार्ड मेयो के सुधार	१८७० ई०
रिपन के सुधार	१८८२ ई०
युक्तप्रान्तीय म्युनिसिपलिटी ऐक्ट	१९१६ ई०
युक्तप्रान्तीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐक्ट	१९२२ ई०
निर्वाचन नियमों में सुधार	१९४४ ई०
पंचायत राज ऐक्ट यू० पी०	१९४८ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) स्थानीय स्वराज्य का क्या अर्थ है ? स्थानीय स्वराज्य की सस्थायें पहले-पहल कब और क्यों स्थापित की गई ?
(२) स्थानीय शासन म स्थानीय स्वराज्य की सस्थाओ से क्या लाभ होते हैं ? ये लाभ और अधिक मात्रा में क्यो नहीं हुए ?
(३) स्थानीय स्वराज्य की सस्थाओ म से कुछ के नाम बताओ और उनके विषय म जो कुछ जानते हो लिखो।
(४) स्थानीय स्वराज्य की सस्थाओ में किन सुधारो की आवश्यकता है ?

अध्याय ३३

लोकमत का सगठन

१८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में भारत में अंग्रेजों ने साम्राज्य विजय प्रारम्भ की और १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक व भारत के सर्वेसर्वा हो गये। कोई भी राज्य इतना शक्तिशाली बाकी नही रह गया जो उनका मुकाबला कर सकता। अंग्रेजों की सफलता का मुख्य कारण यह था कि भारत में एकता का नितान्त अभाव था और दूसरे उनकी युद्ध-कला भारतीयों से उच्च कोटि की थी। उनकी अभूतपूर्व सफलता के कारण भारतीय भी उनसे ऐसे प्रभावित हुए कि उनकी प्रत्येक वस्तु को बड़े आदर की दृष्टि से देखने लगे। भारतीय लोग अपनी संस्कृति सभ्यता, धर्म आदि का तिरस्कार करने लगे। इस प्रकार भारत की केवल राजनीतिक पराजय ही नहीं हुई बल्कि उसकी संस्कृति व सभ्यता की भी पराजय हो गई।

परन्तु इसी समय कुछ ऐसी नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनके फलस्वरूप देश में एक नवीन जागृति हुई। सम्पूर्ण राष्ट्र में एक नव जीवन का सचार हो गया। इस समय कुछ धार्मिक व सामाजिक आन्दोलन हुए जिन्होंने हमारी मृतप्राय चेतना को फिर से जाग्रत किया और हमारे जीवन में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। बगाल में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म-समाज आन्दोलन चलाया। उत्तर-पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाज आन्दोलन आरम्भ किया। स्वामी आ न

कहा कि प्राचीन वदिक धम सब धर्मों में श्रेष्ठ है। यद्यपि स्वामी जी का आन्दोलन मुख्यत धार्मिक था परन्तु उसने लोगा के हृदय में अपने धम व संस्कृति के प्रति गौरव व सम्मान उत्पन्न कर दिया। अत इसने भारत की राष्ट्रीय जागृति म महत्त्वपूण काय किया। रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द ने भी प्राचीन भारतीय सभ्यता का मान देश विदेशों में बढाया और बताया कि आध्यात्मिकता की दृष्टि से भारत सारे संसार का नेता ह। इन धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव यह हुआ कि देश में एक नवीन जागृति प्रारम्भ हुई। भारतवासियों में आत्म विश्वास तथा आत्म-गौरव के भाव जागृत हुए। अपने देश जाति व सभ्यता के प्रति निरादर के भाव दूर हुए। इस प्रकार मुख्यत धार्मिक होते हुए भी इन आन्दोलनो ने देश म राष्ट्रीयता देश प्रेम व जातीयता की भावना को प्रोत्सा हित किया।

इसी प्रकार अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव भा बहुत महत्त्वपूण हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ने दश के विभिन्न प्रान्तों और विभिन्न भाषा भाषियों में भाषा की एकता स्थापित की। विभिन्न प्रान्तों के लोग एक दूसरे के निकट आ गये और विचारों का आदान प्रदान करने लगे। भाषा की विभिन्नता होने स यह सम्भव नहीं था कि लोग प्रान्तीयता की भावना छोड सकें और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक समझ सकें। अंग्रेजी भाषा के द्वारा यह रुकावट जाती रही और सारे राष्ट्र म एकता स्थापित हो गई। अंग्रेजी भाषा द्वारा भारतीयों का परिचय पाश्चात्य विचारों से हुआ। पाश्चात्य, साहित्य, इतिहास राजनीति तथा दशन इत्यादि पढकर भारतीयों को राष्ट्रीयता जातीयता व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समानता आदि के सिद्धान्तों स परिचय हुआ और उनमें यह भावना उत्पन्न हुई कि इन विचारों का समावेश अपने राज नीतिक व सामाजिक जीवन में करें।

जिस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भाषा और विचारों का एकता स्थापित हुई उसी तरह अंग्रेजी राज्य से सम्पूर्ण देश में राजनीतिक एकता भी स्थापित हो गई। सारे देश में एक ही शासन-व्यवस्था, कानून एव न्याय-व्यवस्था स्थापित हुई। अत सारे देश के लोग एकता के सूत्र में बध गये। रेल, सड़क, डाक, तार आदि साधनों ने भी देश में एकता की भावना को बहुत प्रोत्साहित किया।

अंग्रेजी राज्य ने जहाँ भारतीयों में राष्ट्रीयता एकता व स्वदेश प्रेम की भावना को जगाया वहाँ उसने उनमें ब्रिटिश शासन के प्रति आलोचना व असंतोष की भावना भी भर दी। ब्रिटिश शासन की बहुत-सी त्रुटियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ और वे समझने लगे कि उनकी दुरवस्था और गिरावट का मूल

कारण विदेशी राज्य है। उनका ध्यान देश की गरीबी की ओर गया। देश में कृषि की दशा बड़ी अवनत थी। उद्योग-धन्धे बहुत पिछड़ी अवस्था में थे। अंग्रेज अपने व्यापार के हित में उनको विकसित नहीं होने देना चाहते थे। सरकारी नौकरियों में सब उच्च पदों पर अंग्रेज आसीन थे। भारतीयों को केवल छोटी-मोटी नौकरियों से ही संतोष करना पड़ता था। शिक्षित भारतीयों में इस कारण बहुत क्षोभ था। इसी प्रकार अंग्रेज अपने को विजेता समझकर भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार करते थे। वे भारतीयों की सभ्यता, संस्कृति तथा आचार विचारों को बहुत निम्न-कोटि का समझते थे। सन् १८५७ के विद्रोह के बाद तो वे भारतीयों को अत्यन्त सन्देह की दृष्टि से देखने लगे और उनसे घृणा करने लगे। अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार से भारतीयों में भी उनके प्रति घृणा, असंतोष तथा क्षोभ की भावना जागृत हुई। सरकारी नीति में परिवर्तन कराने की माँग पेश करने के लिए कुछ प्रांतीय संस्थायें भी बनाई गईं। इस काल में भारत में कुछ प्रांतीय भाषाओं के समाचारपत्र भी निकलने लगे थे। हेस्टिंग्स ने उन पर लगने-वाले टिकट की दर घटाकर उनकी बिक्री बढ़ाने में योग दिया। उनके द्वारा लोकमत का संगठन होने लगा। सर चार्ल्स मेटकाफ ने सन् १८३६ में भारतीय समाचार-पत्रों को सरकार की नीति की आलोचना करने की अधिक स्वतन्त्रता दे दी। साधारण रूप से समाचार-पत्रों ने इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं किया। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का 'बंगाली' और शिशिर-कुमार घोष का अमृत बाजार पत्रिका राष्ट्रीय माँगों का प्रचार अधिक जोर के साथ करने लगे। लार्ड लिटन के समय में कुछ काम ऐसे हुए जिनके कारण प्रजा बहुत बिगड़ी और समाचार-पत्रों ने उसकी तीव्र आलोचना की। जिस समय बंगाल में अकाल के कारण जनता में त्राहि त्राहि मची हुई थी उसी समय उसने महारानी विक्टोरिया को साम्राज्ञी घोषित करने के लिए एक शानदार दरबार किया जिसमें तमाम रुपया खर्च किया गया। जनता को यह अन्धेर का उत्सव बहुत बुरा लगा और बंगाल के समाचार-पत्रों ने उसकी बड़ी निन्दा की। लिटन उसे पढ़कर बौखला गया और उसने प्रांतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों से जमा-नतें माँगी और आज्ञा दी कि वे साम्प्रदायिक विरोध या अंग्रेजों के प्रति घृणा उत्पन्न करनेवाले कोई समाचार न छापें। यह नियम बहुत दिन नहीं चला क्योंकि उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपन ने इसे रद्द कर दिया।

इलबर्ट बिल—रिपन के समय में ही इलबर्ट बिल पास हुआ था। इस बिल के पास होते ही भारत में रहनेवाले सभी अंग्रेज रिपन से असंतुष्ट होने लगे।

कुछ अंग्रेजी पत्रों ने उसे बुरी तरह गाली देना शुरू कर दिया। वे शिष्टता की सीमा को भी लाँघ गये। उन्होंने स्थान-स्थान पर उसके विरुद्ध प्रदर्शन किये। इसका फल यह हुआ कि इलबट बिल में परिवतन कर दिया गया और भारतीय जजों को बिना जूरी की सहायता के जिसमें कम-से-कम आधे अंग्रेज हों अंग्रेजों का मुकदमा करने का अधिकार नहीं मिला। अशिष्टता प्रदर्शन और गाली बकने की सफलता पर भारतीय विस्मित हो गये। उन्होंने इस घटना से शिक्षा ग्रहण की और इसी के अनुरूप काय करके अधिकार प्राप्त करने की सोची।

कांग्रेस का जन्म—जिस समय भारतीयों में शिक्षा प्रचार धर्म-सुधार, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव समाचार-पत्रों के आन्दोलन और इलबर्ट बिल की घटना से अधिकार-वृद्धि की इच्छा प्रकट हो रही थी उसी समय मिस्टर ए० ओ० ह्यूम ने सोचा कि यदि भारतवर्ष के सभी शिक्षित व्यक्ति वर्ष में एक बार एक स्थान पर एकत्रित हो सकें तो उनके सहयोग से समाज को बहुत लाभ हो सकता है। इस उद्देश्य से उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुराने छात्रों के नाम एक पत्र लिखा और उनसे सहयोग प्राप्त किया। इसके बाद ह्यूम ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन से भेंट की। उन्होंने भी उसके उद्देश्य की प्रशंसा की और अपनी सहानुभूति प्रकट की ह्यूम ने इंगलैण्ड की यात्रा करके वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों का सहयोग और उनकी शुभ कामनायें भी प्राप्त कीं। इस प्रकार सन् १८८४ ई० में भारतीयों के जोश और अंग्रेजों की सहानुभूति के आधार पर 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' का जन्म हुआ। उसकी पहली बैठक दिसम्बर सन् १८८५ में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज बम्बई में हुई। इसके सभापति श्री उमेशचन्द्र बनर्जी थे। इसी बैठक के बाद इस संस्था का नाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस' पड़ गया और उसी नाम से वह आज तक विख्यात है।

प्रथम अधिवेशन के काय—कांग्रेस की पहली बैठक में केवल ७२ व्यक्ति शामिल हुए थे लेकिन मार्के की बात यह था कि वे देश के प्रत्येक भाग से आये थे। कांग्रेस ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। उसने शासन-विधान की जाँच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की प्रार्थना की और कुछ आवश्यक सुधारों की मांग किया। उसने इण्डिया कौंसिल के तोड़ने धारा-सभाओं में निर्वाचित व्यक्तियों का समावेश करने जहाँ धारा-सभायें नहीं थीं उन प्रान्तों में धारा सभाओं की स्थापना करने इण्डियन सिविल सर्विस का परीक्षा भारत में करने और उसके लिए अधिक आयु के लोगों को सम्मिलित होने की आज्ञा देने और सेना का खर्च घटाने का माँग पेश की। इन प्रस्तावों की एक-एक प्रतिलिपि

गवर्नर-जनरल और भारत-मन्त्री के पास भेज दी गई। प्रस्तावों की भाषा बहुत ही संयत और विनम्र थी।

१८९२ का सुधार—इसी प्रकार के प्रस्ताव प्रतिवर्ष पास किये जाते थे और सरकार के पास भेज दिये जाते थे। सरकार उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देती थी। समाचार-पत्रों द्वारा इन प्रस्तावों का प्रचार प्रायः सभी शिक्षित जनता में हो जाता था। इस प्रकार राष्ट्रीयता की लहर उठना आरम्भ हुई। उस समय के नेताओं में सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, फीरोजशाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी और उमेशचन्द्र बनर्जी मुख्य हैं। यद्यपि कांग्रेस के वार्षिक उत्सवों में बहुत दिन तक सुन्दर वस्त्रों का प्रदर्शन, दावतों का आयोजन और भावपूर्ण वक्तृताओं का श्रवण मुख्यतः होता रहा तो भी समाचार पत्रों की सहानुभूति और अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क में कुछ लाभ अवश्य हुआ और कांग्रेस के प्रभाव से राष्ट्रीय भावनायें अधिक जोरदार होने लगीं और सन् १८९० में सरकार ने आज्ञा निकाल कर अपने कर्मचारियों को इसके जलसों से अलग रहने का स्पष्ट आदेश दिया। सन् १८९२ का नियम कुछ हद तक इस विनम्र आन्दोलन का फल था।

क्रांतिकारी आन्दोलन—सन् १८५७ की क्रांति दबा दी गयी थी किन्तु उसका प्रभाव पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ। देश के कुछ नवयुवक ऐसे थे जिन पर १८५७ के क्रांतिकारी नेताओं का प्रभाव पड़ा और उन्होंने हिंसात्मक कार्य द्वारा सरकार को बदलना चाहा। इस मनोवृत्ति से भारत में भारतीय क्रांतिकारी दल की स्थापना की। इसमें महाराष्ट्र देश का अग्रणी हुआ। वहाँ सन् १८९३ ई० में चापेकर भाइयों ने एक गुप्त समिति की स्थापना की। यद्यपि गंगाधर तिलक क्रांतिकारी दल के सदस्य नहीं थे किन्तु उन्होंने कांग्रेस की तत्कालीन नीति को अपर्याप्त समझा। उन्होंने महाराष्ट्र में केसरी पत्र के द्वारा प्रचार-कार्य प्रारंभ किया और गणपति उत्सव तथा शिवाजी उत्सव का प्रचलन करके क्रांतिकारी दल को अप्रत्यक्ष सहायता पहुँचाई।

सन् १८९३ में ही स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की विश्वधर्मसभा में भारत की विजय-पताका फहराया और उसी वर्ष श्री अरविन्द ने बड़ौदा सरकार की सेवा में प्रवेश किया। बंगाल के एक क्रांतिकारी नवयुवक ये स्वामी ... साथ ब्रह्मचर्य। उन्होंने ... किया तब उनका नाम निरालम्ब स्वामी हुआ। वह स्वामी ... के जीवन से बहुत प्रभावित हुए थे। श्री अरविन्द की सहायता से वह बड़ौदा सरकार की सेना में प्रविष्ट हुए और कालान्तर में उन्होंने श्री अरविन्द का ...

के नेतत्व की ओर खींचा मन् १९०३ म बगाल में गुप्त समिति की स्थापना हुइ जिसमें श्री अरविंद का सक्रिय सहयोग रहा। बंगाल में क्रांति का वेग तेजी से बढ़ा क्याकि नवयुवक दिखा देना चाहते थे कि उनमें भारत माता को स्वतन्त्र करने का पौरुष है। महाराष्ट्र के लेले गुरु तथा श्री अरविंद में विशेष अन्तरंग सबध स्थापित हो गया और दोनों स्थाना के कार्यों में सम्पर्क रखने की चेष्टा की गयी।

यह दल उच्च पदाधिकारिया की हत्या करके अग्रेजों का भारत छोड़ने पर बाध्य करना चाहता था। इस दल ने कुछ व्यक्तिया का वध भी किया। इस दिशा में चापेकर भाइयो ने पहला सफल वार किया और पकड जाने पर प्रथम शहीद हुए। उसके बाद बंगाल के किशोरवीर खुदीराम बोस ने बम फेंका और उनको भी शहीद होने का सौभाग्य मिला।

बगाल के बाद इस मनोवृत्ति का प्रचार पजाब में हुआ और फिर प्राय सारे देश में इसका प्रभाव फैलने लगा। परन्तु क्रांतिकारी दल कभी भा बहुत व्यापक नही हो सका। इसक कई कारण थे। सरकार संदेह मात्र होने पर अनेक निर्दोष व्यक्तिया को भी मृत्यु-दण्ड या कालापानी का दण्ड दे देती था और उसकी खुफिया पुलिस चारा ओर अाँख फैलाय क्रातिकारियो को ढूढती रहती थी। दूसरे काग्रेस म गाँधीजी के प्रवश के कारण अहिंसात्मक आन्दोलन राष्ट्रव्यापी हो गया और इस आन्दोलन के फलस्वरूप सरकार कुछ अधिकार दन का प्रस्तुत होती गयी। तीसर क्राति के नताओं में मौलिक मतभेद हो गया। लेले गुरु तथा श्री अरविंद इस दल का अध्यात्म क पथ पर ले जाना चाहते थे। वे चाहते थे कि पहले दिव्य माँ की शक्ति स शक्तिमान् होना चाहिए तब अन्य शक्ति सफल हो सकती है। अस्तु व आध्यात्मिक पहलू पर विशष जोर दते थे। अन्य लोगों में आत्मशोधन का भावना के स्थान पर प्रतिशोध का भाव प्रबल था। अन्त में श्री अरविंद तथा उनसे प्रभावित लोग इस दल स अलग हो गय और उन्होंने पाण्डीचेरी जाकर भागवत शक्ति के अवतरण क द्वारा मानव को दिव्य अमर अतिमानव में परिणत करने क लिए साधना आरम्भ की। परन्तु पिस्तौल और बम का प्रयोग करनवाला दल बराबर बना रहा और अंग्रेजा का हत्याएँ तथा नवयुवक नताओं की फाँसियाँ चलती रहा।

युग विच्छेद १९०८—सन् १८९२ स १९०५ तक फिर कोई विशेष घटना नहीं हुई। हाँ बजट की नीति क कारण असन्तोष अवश्य बढ़ता गया। जापान की रूस पर १९०४ ई० में विजय हुई। इसस पूर्वी देशा में कुछ अधिक उत्साह पैदा होन लगा। असन्तोष और उत्साह क मिलने स अग्रेजों की नीति म नजा

और भाषणों में कुछ उग्रता आने लगी। इसी समय १६०५ ई० में कर्जन ने बंग-विच्छेद किया। इसके कारण बहुत असन्तोष फैला और कांग्रेस का आन्दोलन अधिक शक्तिमान् हो गया। सुधारों की माँग के साथ बंग विच्छेद के रद्द करने की भी प्रार्थना की गई।

गरम दल की उन्नति——धीरे-धीरे कांग्रेस के नवयुवक सदस्य विनम्र प्रार्थनाओं की नीति से असन्तुष्ट होने लगे। वे सरकार को सुधार करने के लिए बाध्य करना चाहते थे। इन लोगों को गरम दल का नेता कहा जाने लगा। इनमें बाल गंगाधर तिलक लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल अधिक प्रसिद्ध हैं। तिलक ने महाराष्ट्र में केसरी नामक समाचार-पत्र द्वारा बहुत जागृति उत्पन्न कर दी थी। एक बार अकाल के समय लगान न देने का आन्दोलन चलाने के कारण वे एक वर्ष की सजा भी भुगत चुके थे

सूरत कांग्रेस—१६०६—में कलकत्ता कांग्रेस में झगड़ा बहुत बढ़ गया। तिलक और उनके साथी गरम दलवालों की हँसी उड़ाने लगे। दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य प्राप्त करना स्वीकार करके कुछ दिन के लिए झगड़ा बचा लिया। आखिरकार १६०७ में सूरत की कांग्रेस के समय दोनों दल अलग हो गये।

सरकार ने कांग्रेस व नरम दलवालों के प्रति सहानुभूति दिखाना आरम्भ की। दूसरी ओर सय्यद अहमद खाँ की सहायता से सरकार ने मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने का प्रयत्न किया। उनको नौकरियों में कुछ विशेष सुविधा दी जाने लगी। पूर्वी बंगाल को आसाम से मिलाकर एक नया सूबा बनाने में भी मुसलमानों को प्रसन्न करने की इच्छा दबी हुई थी, क्योंकि इस प्रकार मुसलमान बहुमत का एक बड़ा प्रांत बन गया। इसका फल यह हुआ कि मुसलमानों में से कुछ लोग हिन्दुओं से वैमनस्य रखने लगे और सरकार की कृपा प्राप्त करके उनसे बढ़ जाने की आशा करने लगे। इसी उद्देश्य से सन् १६०६ ई० में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। आगा खाँ ने लार्ड मिण्टो से भारतीय मुसलमानों की ओर से प्रार्थना की कि उनको धारा-सभाओं तथा स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं में अलग अलग सदस्य चुनकर भेजने का अधिकार दिया जाय और मुसलमान सदस्यों के चुनाव में हिन्दुओं का कोई हाथ न रहे।

मार्ले मिण्टो सुधार—मुसलमानों तथा नरम दलवाले कांग्रेसियों को सन्तुष्ट करने के लिए १६०८ ई० में मिण्टो मार्ले सुधार नियम पास किया गया जिसमें धारा-सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ाने के साथ पृथक् तथा साम्प्रदायिक

निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ किया गया। कांग्रेस का एक भी दल इन सुधारों से सन्तुष्ट नहीं हुआ।

लखनऊ कांग्रेस १९१६—कुछ दिन बाद १९११ में बंग-विच्छेद को रद कर दिया गया और दो प्रान्तों के स्थान पर बंगाल, बिहार और आसाम के तीन प्रान्त बनाये गये। सन् १९१४ में महायुद्ध आरम्भ हुआ। उस समय अंग्रेजी सरकार को भारतीयों की पूर्ण सहायता की आवश्यकता थी। प्रधान मंत्री मिस्टर ऐस्क्विथ ने पार्लमेण्ट में भाषण करते हुए कहा कि प्रत्येक राज्य को वह चाहे जितना छोटा या कमजोर क्यों न हो स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। उनका संकेत बेल्जियम की ओर था लेकिन भारतीय समझने लगे कि शायद युद्ध के बाद वे भी स्वतन्त्र कर दिये जायंगे। इस कारण उन्होंने जान तोड़कर सरकार की सहायता की। आन्तरिक कलह समाप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया गया। १९१६ में कांग्रेस के दोनों दल मिल गये और तिलक उसके संचालक नियुक्त हुए। मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस से समझौता कर लिया। सरकार पर इस स्थिति का कुछ प्रभाव पड़ा। उधर यूरोप में उसकी करारी हार हो रही थी। इस कारण १९१७ में भारत-मंत्री मिस्टर माण्टेग्यू ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में धीरे धीरे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना है। मिस्टर माण्टेग्यू ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड की सहायता से सुधार-योजना बनाने के लिए एक रिपोर्ट तैयार की। उसका विरोध किया गया और कई स्थानों पर सार्वजनिक सभायें भी की गईं। सरकार ने इस आन्दोलन को रोकने के लिए रौलट बिल पास किया। रौलट बिल का विरोध करने के लिए भी सभायें की गईं। इस अपराध के लिए बहुत से लोग गिरफ्तार भी किये गये। उसी समय जलियाँवाला बाग में जनरल ओडायर ने निहत्था और शांत भीड़ पर गोली चलाकर सैकड़ों बच्चों, वृद्धों और स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया। उसके इस अमानुषिक कार्य की इंग्लैण्ड में भी निन्दा की गई और वह वापस बुला लिया गया।

असहयोग आन्दोलन—इस असंतोष और क्षोभ के वातावरण में १९१९ के सुधार नियम पास हुए। महात्मा गाँधी ने इस समय कांग्रेस का नेतृत्व प्राप्त किया और उन्होंने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। उनका कहना था कि सब भारतीयों को चाहिये कि घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति करें, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करें सरकारी स्कूल-कालेजों को छोड़ दें, सरकारी अदालतों से कोई संपर्क न रखें और कई धारा-सभाओं का पूर्ण बहिष्कार करें। इस प्रश्न पर

कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों को इस स्थिति से बड़ी परेशानी हुई। एक ओर तो लोग उन पर यह दोष लगाते थे कि व मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उनके साथ पक्षपात करते हैं और दूसरी ओर लोगों ने यह कहना शुरू किया कि कांग्रेसी राज्य में मुसलमानों के हितों का बलिदान हो रहा है। इस कारण कई साम्प्रदायिक दंगे हुए। प्राय सभी मन्त्रिमण्डलों ने इस विषम स्थिति का सफलतापूर्वक सामना किया, अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये जिनसे किसान-मजदूरों की स्थिति सुधरी और शिक्षा स्वास्थ्य तथा रक्षा का प्रसार हुआ और उन्होंने यह दिखा दिया कि उनमें न केवल आन्दोलन करने का साहस है वरन शासन की योग्यता भी है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के उत्तराधिकारी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने के पक्ष में निश्चय किया। आसाम और सीमाप्रान्त में भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गये और सिंध तथा बंगाल के गैरकांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की स्थिति संकटमय हो गई। उन्होंने एक राष्ट्रीय निर्माण-समिति स्थापित की और समाजवादी प्रगति को अधिक तेज करना चाहा। इसे कुछ नेताओं ने पसन्द नहीं किया और बोस को त्यागपत्र देना पड़ा।

द्वितीय महायुद्ध—इधर सन् १९३९ में दूसरा महायुद्ध छिड़ने पर कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये। उनके स्थान पर गवर्नरी शासन स्थापित हो गया।

मन्त्रिमण्डल बनाने के समय से कांग्रेस में कई दल तैयार हो गये। उनके कारण उसका प्रभाव कुछ घटने लगा और उसकी शक्ति बिखर गई। एक दल गांधीजी के अनुयायियों का था। वे अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। उसमें सरदार वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना अबुलकलाम आजाद खान अब्दुल गफ्फार खाँ और सरोजनी नायडू आदि मुख्य थे। दूसरा दल फारवर्ड ब्लाक था। उसके निर्माता सुभाषचन्द्र बोस थे। जब दूसरे नेताओं ने उनकी नीति स्वीकार नहीं की तो उन्होंने यह दल स्थापित किया था। इसका प्रभाव अधिक नहीं था। कुछ दिन बाद बोस चुपके से देश के बाहर निकल गये। उस समय से इस दल का प्रभाव और भी घटने लगा। तीसरा दल समाजवादियों का था। वे पूँजीवाद का विरोध करते थे, अहिंसा को केवल साधनमात्र मानकर अपनाते थे और गांधीवादी धर्म-नीति को ठीक नहीं समझते थे। उनमें आचार्य नरेन्द्रदेव, यूसुफ मेहर अली, बाबू जयप्रकाशनारायण आदि मुख्य थे। चौथा दल साम्यवादियों का था। वे कांग्रेस को ग्राम और नगर के मजदूरों का प्रभाव बढ़ाना चाहते थे और रूस की सरकार से मिलती-जुलती सरकार बनाना चाहते थे।

अन्य दल—कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य कई दल ह जिनका राष्ट्रीय आदोलन पर प्रभाव पड़ा ह। मुस्लिम लीग और उसके नेता मिस्टर जिन्ना का जिक्र पहले हो चुका है। मुस्लिम लीग का प्रभाव काफी बढ़ गया। उसने पाकिस्तान-योजना का प्रचार करके मुसलमानो में काफी जोश भर दिया लेकिन उसने मुसलमानो का आर्थिक दशा सुधारने या उनमें सामाजिक सुधार करने की ओर बहुत कम ध्यान दिया। इस कमी की नवयुवक लीगियों ने बडी निन्दा की। तब वह इस ओर भी कुछ ध्यान देने लगी। मुसलमानो का एक दूसरा महत्वपूर्ण दल राष्ट्रीय मुस्लिम-दल था। ये लोग कांग्रेस में मिलकर स्वतन्त्रता-संग्राम में हाथ बँटाना चाहते थे और पाकिस्तान का विरोध करते थे। इस दल में नेता तो काफी प्रभावशाली थे लेकिन उनके अनुयायियों की सख्या अधिक नहीं थी। इनके अतिरिक्त अहरार, मवदल मुस्लिम कान्फ्रेन्स खुदाई खिदमतगार आदि अन्य मुस्लिम दल थे। उनका प्रभाव बहुधा एक ही प्रान्त या कुछ ही लोगों तक सीमित रहा ह।

हिंदुओ में अधिकांश लोग कांग्रेस में थे। परन्तु १९१९ के बाद से लिबरल दल बन गया। प्राय इसमें बडे धुरन्धर नेता रहे ह लकिन उनके अनुयायियों की संख्या कम होने के कारण उनका अधिकार प्रभाव नहा रहा। सरकार उनका इज्जत करती थी और उनमें स अधिकाश सर या उच्च पदवियों से विभूषित थे। विनायक दामोदर सावरकर के सभापति होने क बाद से हिन्दू महासभा का प्रभाव फिर कुछ बढ़ने लगा और इसमें राजा सेठ और जमींदार भी शामिल होने लगे।

युद्धकालीन स्थिति १९३९-१९४५—युद्ध-नीति से असन्तुष्ट होने क कारण जब कांग्रेस ने सरकार स असहयोग किया तो मुस्लिम-लीग और हिन्दू महासभा का प्रभाव बढ़ने लगा। सिंध आसाम सीमाप्रात और बंगाल में लीगी मन्त्रिमण्डल स्थापित हो गये और लीग तथा महासभा क सदस्य केन्द्रीय तथा प्रातीय सरकारों में उच्च पद पाने लगे। सरकार को युद्ध चलाने के लिए पर्याप्त रंगरूट और धन मिल ही रहा था, पूँजीपतियो और मिल-मालिकों के सहयोग से उस आवश्यकता युद्ध-सामग्री तयार करने में भी कोई असुविधा नही पडती थी और गवनरी शासन होने के कारण वह सभी कुछ कर सकती थी। इसलिए १९३९-४२ में कांग्रेस स समझौता करने की कोई चेष्टा नहीं की गई। गांधीजी ने युद्ध को बुरा बताया, परन्तु सरकार को युद्ध के समय परेशान करके अधिकार माँगना अनुचित समझा। श्री अरविन्द न हिटलर को विरुद्ध शक्ति कहा और उसका पराजय का भविष्यवाणी की। धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन होने लगा। सरकार को यद्ध -

भी काफी संख्या में शिक्षित रँगरूट मिलना कठिन होने लगा और स्थान-स्थान से उसके पास यह सूचना आने लगी कि कांग्रेस का असहयोग ही इस उदासीनता का मुख्य कारण है। युद्ध की स्थिति विषम थी विषमतर होती गई और मित्र राष्ट्रों को बड़े संकट का सामना करना पड़ा। इसलिए सरकार ने यह अनुभव किया कि भारतीयों का हार्दिक सहयोग प्राप्त करना परमावश्यक है। जापानी सेनायें भारतीय सीमा तक आ गई थी। उनके आक्रमण करने पर असन्तुष्ट भारतीय जापानियों से मिलकर सरकार की स्थिति खराब कर सकते थे। इसलिए मार्च १९४२ में क्रिप्स प्रस्ताव द्वारा समझौता करने की चेष्टा की गई। श्री अरविन्द ने गांधीजी के पास विशेष प्रतिनिधि भेजकर भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए क्रिप्स प्रस्ताव स्वीकार करने की सलाह दी। परन्तु कांग्रेस ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इधर कांग्रेसी संस्थाओं और नेताओं के पास यह शिकायतें आने लगी कि युद्धोद्योग के सिलसिले में जनता पर बहुत सख्ती की जा रही है। इसलिए कांग्रेसी नेताओं ने चुप रहना अनुचित समझा और १९४२ के अगस्त मास में भारत छोड़ो प्रस्ताव पास किया गया। उसके पास होते ही देश भर में कार्यकर्ताओं की धरपकड़ शुरू हो गई और वे जेल तथा अज्ञात स्थानों में अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिए गए। युद्ध स्थिति से संत्रस्त और राष्ट्रीय नेताओं की अनुपस्थिति से क्षुब्ध जनता ने एक भीषण आन्दोलन आरम्भ कर दिया जिसमें अहिंसा के सिद्धान्त को छोड़कर बल प्रयोग द्वारा सरकार को उखाड़ फेंकने का उद्योग किया गया। सरकारी दफ्तर जला दिये गये, रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई और सरकारी सामान लूट लिए गए। सरकार ने इस दबाने का प्रयत्न किया और लाठियों, गोलियों, मशीनगनों आदि का उपयोग किया गया। पकड़ धकड़ और भगदड़ और कई सरकारी कर्मचारियों की हत्याएं की गईं। अन्त में सरकार ने अधिकाधिक सख्ती करके आन्दोलन शान्त कर दिया और समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता सीमित कर दी।

इस बीच में सुभाषचन्द्र बोस जापान और जर्मनी से सहयोग किया। मलाया और ब्रह्मा में 'आजादहिन्द फौज' बनाई गई जिसमें शुद्ध राष्ट्रीय आधार पर एक सेना और सरकार संगठित की गई। उसका नेतृत्व 'नेताजी' सुभाषचन्द्र बोस ने ग्रहण किया और 'भारत की अस्थायी सरकार' को जापान, जर्मनी इटली मंचुकुओ श्याम आदि कई राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया। इस सरकार के सदस्यों ने जापान की सहायता से भारत पर आक्रमण करने और अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने का प्रयत्न किया। इसमें वे सफल रहे और युद्ध में मित्रराष्ट्रों

की विजय होने पर इस दल के अधिकांश व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गये और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। प्रथम मुकदमे के अभियुक्त शाहनवाज, सहगल और ढिल्लों रिहा कर दिए गये क्योंकि उनके पक्ष में एक देशव्यापी आंदोलन हुआ था।

भारत विभाजन—स्थिति सुधारने पर सरकार ने महात्मा गांधी को जेल मुक्त कर दिया उनके कारण बाहर की स्थिति खराब नहीं हुई। युद्ध समाप्त होने पर कुछ सुधार करना आवश्यक समझकर सरकार ने कांग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया और शिमला कान्फ्रेन्स द्वारा समझौता करना चाहा लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। १९४५ के प्रारम्भिक महीनों में कांग्रेस की शक्ति बहुत क्षीण मालूम पड़ने लगी थी परन्तु शीघ्र ही उसने अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त कर ली। उसने १९४२ के आन्दोलनकारियों के साहस और त्याग की प्रशंसा करके उनके कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया जिससे उसकी प्रतिष्ठा और लोक-प्रियता बढ़ गई। आजाद हिन्द फौज के सदस्यों के मुकदमों और उनके परिवारों की सहायता का प्रबन्ध करके उसने देश भर में एक अनुपम उत्साह भर दिया और स्थान-स्थान पर जय हिन्द तथा दिल्ली चलो के नारे सुनाई पड़ने लगे। केन्द्रीय धारा-सभा के चुनावों में उसकी बड़ी भारी विजय हुई और उसने अपने पुराने सदस्यों को फिर अपने साथ लाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। इस आशाजनक स्थिति में भावी स्वतन्त्रता निकट आई प्रतीत होने लगी। पार्लमेण्टरी शिष्ट-मण्डल और कैबिनेट मिशन को भेजकर मजदूर सरकार ने यह प्रकट किया कि वह गत्यावरोध हटाना चाहती है। १९४६ के चुनावों अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की विषमता और भारतीय नेताओं से विचार विनिमय ने मजदूर सरकार को यह कहने पर बाध्य किया कि वह भारत छोड़ने के लिए तैयार है। अन्त में उसने भारत विभाजन कर दिया। भारत और पाकिस्तान दो नये राज्य बन गये।

इस जागृति में समाचार पत्रों और प्रचारकों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। भारत में प्रायः सभी दल समाचार-पत्रों द्वारा अपने विचारों का प्रचार करते रहते हैं। कांग्रेस ने इसका सबसे अच्छा प्रबन्ध किया। उसने विदेशों में भी अपना प्रचार करने का उद्योग किया। भिन्न-भिन्न दलों के वार्षिक जलसे होते हैं। उनकी कार्यवाही का विवरण समाचार-पत्रों में छपता है। इससे सरकार को जनता की प्रगति का पता चलता है और लोकमत के संगठन में सुविधा होती है। जनता को प्रश्न समस्याओं को ...[illegible] अवसर मिलता है और उसमें

महात्मा गांधी

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

पं० जवाहरलाल नेहरू

सरदार वल्लभभाई पटेल
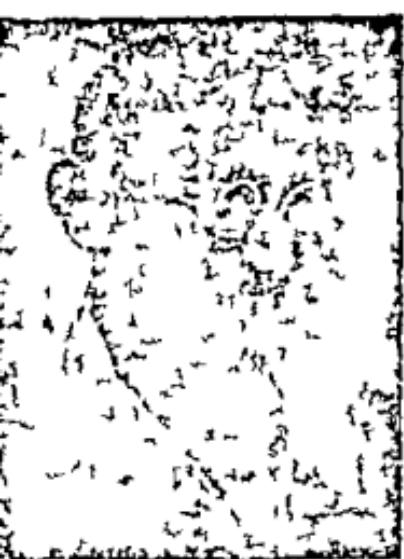
जागरूकता बढ़ती है। सरकार की ओर से इन सभी दलों के शांतिमय और वैधानिक कार्यों के लिए सुविधायें प्रदान की जाती हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद—१९४६ में अन्तर्कालीन सरकार बनने के बाद से भारतीय जनमत प्राय प्रधान होने लगा। मुस्लिम जनमत का संगठन करके ही मिस्टर जिन्ना ने अपनी पाकिस्तान-योजना को सफल बनाया साम्प्रदायिकता के आधार पर किया गया आंदोलन कई दृष्टियों से हानिकर सिद्ध हुआ। अनेक स्थानों में भीषण दंगे हुए जिनमें सहस्रों लोगों की जानें गई और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। इसी बीच में साम्यवादी तथा समाजवादी दल कांग्रेस की नीति के आलोचक बन गये। हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को नीति भी कांग्रेसी सरकार को ठीक नहीं जँची। इस कारण उसने विशेष नियम बनाकर नागरिक स्वतन्त्रता को बहुत सीमित कर दिया यद्यपि उसका यह दावा रहता है कि वह इस नियम का प्रयोग केवल शांति भंग करनेवालों के विरुद्ध ही करती है फिर भी अनेक व्यक्तियों ने इस नीति का विरोध किया है और उन्होंने नागरिक स्वतन्त्रता संघों की स्थापना करके साधारण नागरिक अधिकारों की रक्षा की चेष्टा की है। जनमत इतना प्रबल और प्रभावशाली हो गया है कि उसकी उपेक्षा करना खतरे से खाली नहीं है। इसी कारण सरकार के प्रमुख सदस्य निश्चित समय पर प्रेस कान्फ्रेन्स करते हैं और प्रेसवालों के प्रश्नों का यथासंभव स्पष्ट उत्तर देते हैं तथा उनसे सदा सहयोग की अपील करते रहते हैं।

गांधीजी के सिद्धान्त तथा उनके कार्य का महत्त्व—गांधीजी ने भारत की राजनीति तथा सामाजिक आदर्शों पर स्थायी प्रभाव डाल है। इसका कारण है उनका विशिष्ट व्यक्तित्व तथा उनके सिद्धान्त। गांधीजी के सिद्धांतों में सत्य और अहिंसा का मौलिक महत्त्व है। गांधीजी उन राजनीतिक विचारकों एवं नेताओं में से जो केवल लक्ष्य के ठीक होने पर ही बल नहीं देते वरन् जो उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए केवल नैतिक साधनों का सहारा लेते हैं। गांधीजी देश की स्वतन्त्रता चाहते थे। इसके लिए विदेशियों को विदा करना अभीष्ट था। गांधीजी कहते थे कि अंग्रेज अपना हित नहीं जानते। इसी कारण वे हमारी इच्छा के विरुद्ध यहाँ ठहरे हैं। उनको उनके कर्त्तव्य का बोध करा देना भारत तथा इंग्लैंड दोनों के लिए हितकर होगा। अस्तु वे सत्य का आश्रय लेकर उन साधनों का प्रयोग करना चाहते थे जिससे विरोधी शासन का हृदय प्रभावित हो। यही है उनका सत्याग्रह। वे द्वेष के वशीभूत होकर कुछ नहीं करना चाहते थे। वे कहते थे कि हिंसा केवल शास्त्रों के प्रयोग को ही नहीं कहते। किसी के प्रति दुर्भाव रखना

उसका अकल्याण चाहना, उसकी विपत्ति से लाभ उठाने की इच्छा करना भी उनकी दृष्टि में हिंसा थी। इस कारण वे इस व्यापक अर्थ में अहिंसा के अस्त्र का उपयोग करना चाहते थे। वे जानते थे कि सरकार आन्दोलन को कुचलने के लिए पाशविक शक्तियों का प्रयोग करेगी। परन्तु वह आशा करते थे कि यदि उनके बावजूद भारतीय अपने लक्ष्य पर दृढ़ रह सकें तो उनमें ऐसा आत्मबल विकसित होगा जिसके सामने कोई शक्ति ठहर न सकेगी। अनेक लोगों ने इस कापुरुषता की नीति कहा और इसकी खिल्ली उड़ाई। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया गांधीजी के सिद्धान्तों में देश की आस्था बढ़ती गई और अन्त में उनको पूर्ण सफलता मिली।

गांधीजी के दूसरे सिद्धान्त सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखते हैं। गांधीजी चाहते थे कि समस्त देश में एक भाषा हो। इसलिए उन्होंने हिन्दी का समर्थन किया और जब मुसलमानों ने साम्प्रदायिक भावना के कारण इसका विरोध किया तो उन्होंने एक नई भाषा हिन्दुस्तानी का प्रचार आरम्भ कराया। इस भाँति गांधीजी सब प्रकार का भेदभाव मिटाकर हिन्दुओं को एक बन्धुत्व में परिणत करना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने अन्तर्जातीय भोज, अन्तर्जातीय विवाह तथा हरिजन उद्धार का कार्य उठाया। इनमें से हरिजनों का प्रश्न उन्हें सबसे जटिल प्रतीत हुआ क्योंकि डाक्टर अम्बेडकर ने हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् करने और आवश्यक हो तो धर्म-परिवर्तन की धमकी दी। गांधीजी ने इस कार्य को सामाजिक क्षेत्र में प्राथमिकता दी। उच्च वर्गों के लोगों ने मेहतरों का काम किया, मेहतरों का परोसा हुआ भोजन ग्रहण किया और उनसे साथ हेल-मेल बढ़ाया। सरकार तथा जनता के सहयोग से हरिजनों की सांस्कृतिक तथा आर्थिक दशा सुधारने के विभिन्न उपाय गांधीजी की ही प्रेरणा के परिणाम हैं। इसी प्रकार गांधीजी ने पर्दा-प्रथा का विरोध करके भारतीय नारी को सार्वजनिक जीवन में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए आवाहन किया। उन्होंने नशाखोरी भी बन्द करना चाहा।

गांधीजी ने आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए खादी का प्रचार किया। खादी एक प्रतीक मात्र है। इसका अर्थ है—छोटे कुटीर उद्योगों का समर्थन और इसका विरुद्ध [illegible] सामान के साथ संघर्ष। गांधीजी ने दान तथा उदारता की प्रवृत्ति को तो बढ़ावा दिया और मनुष्य की स्वार्थ-परता को हिंसात्मक बताया।

शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी चाहते थे कि देश-काल की स्थिति के अनुकूल सस्ती, सरल, उपयोगी तथा स्वावलम्बी पाठ्यक्रम वाली शिक्षा का प्रचलन हो। यहाँ भी वे नैतिक गुणों के विकास पर बल देते थे।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद गांधीजी चाहते थे कि रामराज्य की स्थापना हो। इसमें वर्ग वर्ण, जाति, लिंग अथवा सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेदभाव न करके सबको अपनी अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार आत्म विकास की पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिये। पुलिस और सेना का क्रमश बहिष्कार होना चाहिये। नैतिक बुराइयों—यथा मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ आदि—का अन्त होना चाहिये और समाज में शान्ति व्यवस्था शिक्षा तथा सांस्कृतिक उन्नति के साधन उपलब्ध होने चाहिये भुखमरी बेकारी, अज्ञान अनाचार अपराध का सदा के लिए अन्त हो जाना चाहिए। गांधीजी इस काम को पूर्ण करने के पूर्व ही इस संसार से बिदा हो गये।

फिर भी वह जो कर गये हैं उसके आधार पर उनकी एक युगान्तरकारी नेता का महत्त्व प्राप्त हो गया है गांधीजी स्वयं मना न करते तो लोग उन्हें भगवान् का अवतार सिद्ध कर देते। देश के जीवन के सभी अंगों पर उनकी एक अमिट छाप लगी है और वे इस युग में चिरस्मरणीय रहेंगे।

मुख्य तिथियाँ

कांग्रेस का जन्म	१८८५ ई०
सूरत कांग्रेस	१९०७ ई०
लखनऊ कांग्रेस और लीग से समझौता	१९१६ ई०
साइमन कमीशन	१९२७ ई०
कांग्रेस मन्त्रिमण्डल	१९३७ ई०
द्वितीय महायुद्ध	१९३९ ई०
क्रिप्स मिशन और भारत छोड़ो प्रस्ताव	१९४२ ई०
युद्ध की समाप्ति और शिमला कान्फ्रेंस	१९४५ ई०
कैबिनेट मिशन	१९४६ ई०
भारत विभाजन	१९४७ ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) कांग्रेस की उत्पत्ति कब और क्या हुई ?

(२) कांग्रेस की नीति पहले क्या थी ? वह किन उपायों द्वारा अपने उद्देश्यों को सफल बनाना चाहती थी ?

(३) तिलक ने कांग्रेस की नीति में क्या परिवर्तन किया ? उनको गरम दल का नेता क्यों कहा जाता है ?

(४) मुस्लिम लीग की स्थापना का कांग्रेस पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(५) महात्मा गांधी ने कांग्रेस की नीति म क्या परिवतन किया ?

(६) कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलो को अपने शासन-काल मे किन कारणो से कठिनाई हुई ?

(७) कांग्रेस के मुख्य दलो और उनकी नीति का वणन करो।

(८) मिस्टर जिन्ना और सावरकर का भारतीय राजनीति म क्या स्थान है ?

(९) विभिन्न दलो के होने से सरकार और जनता को क्या लाभ हुआ है ?

(१०) क्रांतिकारी दल के उद्देश्य क्या थे ? उसको अधिक सफलता क्यो नही मिली ?

(११) गाधी जी के मुख्य सिद्धान्त क्या थे ? भारतवर्ष की राजनीति म उनका क्या स्थान है ?

अध्याय ३४

सामाजिक और आर्थिक उन्नति

आधुनिक काल—आधुनिक काल में संसार के प्राय सभी देशों में बड़े बड़े परिवतन हुए हैं। भारतवर्ष के इतिहास में यह काल (१९वीं तथा बीसवीं सदी) कई दृष्टियो म बहुत महत्त्वपूर्ण है। १९वी सदी के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रिटिश सत्ता स्थायी रूप मे जम गई और राजनीतिक विशृंखलता के स्थान पर एक सार्वभौम राजसत्ता स्थापित हो गई। उसकी नीति का प्रभाव यह हुआ कि भारतीयो को अपने बहुत से दोष मालूम हो गये और वे स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र स्थापित करने के लिए फिर प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजों और भारतीयों के अधिकाधिक सम्पर्क का प्रभाव भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ा। कुछ भारतीय पश्चिमी विज्ञान की उन्नति और ईसाई मिशनरियो के प्रचार से ऐसे प्रभावित हुए कि वे समझने लगे कि भारतीय धर्म और सामाजिक संगठन सर्वथा दोषपूर्ण और दकियानूसी है। शिक्षित-समुदाय के लोग मेकाले की भविष्यवाणी के अनुसार रूप रंग में भारतीय होते हुए भी अपने विचारों, रहन-सहन और आचारों में अंग्रेजों की भांति बन गये और उनको भारतीय संस्कृति से चिढ़ होने लगा। भारत भूमि की विजय के बाद हमारे शासकों ने भारतीय आत्मा पर भी विजय पाने की चेष्टा की।

ब्रह्म समाज १८३० ई०—इस विजय को रोकने का पहला प्रयत्न राजा राममोहन राय (१७७२ १८३३) ने किया। उन्होंने सन् १८३० ई० में 'ब्रह्म समाज' नामक संस्था की स्थापना की। ब्रह्म समाज ने ईश्वर की सर्वव्यापकता पर जोर दिया और एकमात्र परमेश्वर की भक्ति की शिक्षा दी। उसमें मूर्तिपूजा, अनेक देवी-देवताओं की आराधना और पुजारियों की प्रधानता का खण्डन किया गया। इस धर्म का मूल आधार उपनिषद् और बौद्ध धर्म थे परन्तु ईसाइयों और यहूदियों का भी इस पर कुछ प्रभाव पड़ा था। राजा राममोहन राय ने इस धर्म में उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया था जिन पर ईसाई कटाक्ष करके शिक्षित हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट कर लेते थे। हिन्दू-समाज को समुन्नत बनाने के लिए उन्होंने प्रचलित कुप्रथाओं को हटाने का भी प्रयत्न किया और सती प्रथा तथा जाति-व्यवस्था का विरोध और विधवा-विवाह तथा शिक्षा प्रचार का समर्थन किया। आगे चलकर ब्रह्म समाज में दो भाग हो गये। एक दल तो उसे हिन्दू-धर्म के निकट रखना चाहता था और दूसरा अधिक प्रगतिशील हो गया जिसके कारण लोग इसे ईसाई धर्म की एक शाखा बताकर इसका विरोध करने लगे।

आर्य समाज १८७३ ई०—इसी समय सन् १८७३ में स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४ १८८३) ने आर्यसमाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द ने केवल वेदों की शिक्षा के आधार पर भारतीय धर्म और समाज के दोष हटाकर उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने शास्त्रार्थों द्वारा विरोधी धार्मिक नेताओं को पराजित किया और अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की। उन्होंने छुआछूत जाति भेद मूर्तिपूजा, बाल विवाह आदि का घोर विरोध किया और शिक्षा प्रचार, अन्तर्जातीय भोज और विवाह, अहिन्दुओं की शुद्धि और विधवा-विवाह का समर्थन किया। उनके प्रचार के कारण हिन्दुओं में एक नई जागृति पैदा हुई, वेदों का पठन-पाठन बढ़ा, भारतीयों को अपने प्राचीन गौरव का पुनः ज्ञान हुआ और उनके कुछ सामाजिक दोष घट गये। नयी शिक्षा-संस्थायें भी स्थापित हुई और खान-पान के नियम ढीले होने से आन्तरिक संगठन अधिक सबल हो गया।

अन्य संस्थाएँ—प्रार्थना समाज (१८६७), रामकृष्ण मिशन (१८९७) थियासोफिकल सोसाइटी (१८७९) और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं ने भी भारतीयों में शिक्षा और धर्म के प्रचार द्वारा सहयोग और स्नेह बढ़ाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भी सामाजिक कुरीतियों को हटाने और निर्धनों तथा दीन-दुखियों की सहायता करके उनके जीवन को अधिक सुखमय बनाने की चेष्टा की है।

वहाबी और अहमदिया आन्दोलन—जिस प्रकार हिन्दुओं की दशा

सुधारने के लिए कई धर्म-सुधारकों ने प्रयत्न किये -उसी प्रकार मुसलमानों को समुन्नत और जागरूक बनाने के लिए वहाबी अहमदिया और अलीगढ़ आन्दोलनों ने योग दिया है। वहाबी केवल कुरान को ही धर्म का आधार मानते हैं। और वह प्रत्येक व्यक्ति को उसका अर्थ लगाने की स्वतन्त्रता देते हैं। इस दृष्टि से वे साधारण मुसलमानों से अधिक उदार हैं। उन्होंने कब्रों फकीरों आदि की पूजा का भी विरोध किया। इस देश में उनका प्रचार रायबरेली के सैयद अहमद साहब (१७८२-१८३१) ने किया था। इनका प्रभाव अधिक नहीं हुआ। इन लोगों ने पश्चिमी शिक्षा का विरोध किया। इनके विपरीत सर सैयद अहमद खाँ (१८१७-१८९८) ने अंग्रेजी न पढ़ना मुसलमानों की बड़ी भूल समझी। उन्होंने मुस्लिम संस्कृति को पाश्चात्य विज्ञान के अनुरूप ढालने की चेष्टा की। उन्होंने धार्मिक विचारों और सामाजिक रीति रिवाजों को भी आधुनिक स्थिति के अनुकूल बनाना चाहा और पर्दा प्रथा, अशिक्षा तथा मुसलमानों के ऊँच-नीच के भेद को हटाने का उद्योग किया। उन्हीं के उद्योग से अलीगढ़ का मुस्लिम ऐंग्लो ओरियण्टल कालेज स्थापित हुआ (१८७५) जो आगे चलकर अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में परिणत हो गया। मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी द्वारा चलाया हुआ अहमदिया आन्दोलन उन सभी बातों का हटाना चाहता था जो मुहम्मद साहब के समय में इस्लाम में नहीं थीं। उन्होंने कुरान का स्वतन्त्र अर्थ लगाने का विरोध किया और मुसलमानों को अधिक कट्टर बनाना चाहा। इन लोगों में से अलीगढ़ आंदोलन ही सबसे अधिक महत्व का है और उसी के कारण मुसलमानों में शिक्षा तथा जागरूकता का प्रचार हुआ।

हरिजन आन्दोलन—धर्म सुधारकों की शिक्षा राजनैतिक आन्दोलन और समाचार-पत्रों के प्रभाव से प्राय सभी वर्गों में कुछ ऐसे व्यक्ति पैदा हुए हैं जिन्होंने अपने वर्ग और समाज को अधिक ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। हिन्दू समाज में दो मुख्यतम समस्याएँ थीं और अभी तक हैं। उनमें से एक है अछूतों की स्थिति और दूसरी स्त्रियों की दशा। इन दोनों के सम्बन्ध में जो कोई सुधार हुए हैं उनका उल्लेख संक्षेप में ही किया जा सकता है। महात्मा बुद्ध के समय से भारतीय धर्म-सुधारक जाति-भेद और अछूत भेद का विरोध करते आए हैं। समय-समय पर उच्च वर्ग की जातियों का व्यवहार उनके प्रति और बुरा अच्छा हो गया है। कभी-कभी उनके मुसलमान अथवा ईसाई हो जाने पर उनके पूर्व-सहधर्मियों को अपने अत्याचार का भान होता रहा है। परन्तु ऐसी हजारों में भी अछूतों की स्थिति हिन्दू समाज के मस्तक पर कलंक के टीके की तरह

विद्यमान ह । आयसमाज के प्रचार ने उनम से कुछ को ऊपर उठने का अवसर दिया ह । महात्मा गांधी न उनका नाम बदलकर हरिजन रख दिया ह और उनके उद्योग से विभिन्न स्थानो में हरिजनो की स्थिति सुधारने के लिए सघ और आश्रम खोल गये ह । य आश्रम और सघ हरिजनो को शिक्षित बनाते हैं, उनको नशीली चीजो का बहिष्कार करने की प्रेरणा देते ह और उनको सम्मानित जीवन व्यतीत करने योग्य बनाते हैं । सरकार न भी हरिजनो की शिक्षा के लिए विशेष सुविधायें प्रदान की ह हरिजन छात्रो को पुस्तकें तथा छात्रवृत्ति दने का प्रबन्ध किया ह और उनको सरकारी नौकरियो में अधिक स्थान दिया । धारा-सभाओं में भी उनके प्रतिनिधियो के लिए स्थान सुरक्षित कर दिये गये ह । इन सबके कारण उनकी स्थिति कुछ सुधर रही ह लेकिन अभी बहुत काम बाकी ह । सवर्ण हिन्दू के दिमाग से श्रेष्ठता का भूत अभी नही उतरा ह और जब तक यह नही होता तब तक यह काम अधूरा ही रहेगा । अस्पृश्यता निवारण के लिए भारतीय संविधान में सत्रहवी धारा भी रखी गई है । अन्य मौलिक अधिकारो की विवेचना करते हुए भी असमानताओ का अन्त करने की इच्छा प्रकट की गई ह । आन्ध्र तथा अन्य राज्यो में अब यह भी अनुभव किया जाने लगा ह कि हरिजनो को जो विशेष सुविधायें दी गयी हैं उनसे हरिजनो में समानता एकता अथवा सहयोग की भावना उत्पन्न नही हुई । इसलिए १९५८ से इस नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता पर विचार एव काय आरम्भ हो गया ह ।

स्त्रियो की स्थिति—सन् १८२९ में सती प्रथा के निषेध द्वारा विधवा स्त्रियों को जीवित रहने का अधिकार मिला । इसस उनकी प्रतिष्ठा कुछ बढ गई लेकिन उमस अधिक आवश्यक सुधार था विधवाओं की स्थिति सुधारना । ब्रह्मसमाज, आयसमाज तथा शिक्षित समुदाय ने विधवा-विवाह का समथन किया ह । पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शास्त्रो की सहायता स यह सिद्ध कर दिखाया है कि प्राचीन हिन्दू समाज में विधवा विवाह प्रचलित था । उनके उद्योग का फल यह हुआ कि सन् १८५६ म सरकार ने एक नियम बनाकर विधवाओ को विवाह करने का अधिकार दे दिया ह । आयसमाज तथा विभिन्न विधवा आश्रमो न विधवाओ को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाने का उद्योग किया ह और उनके विवाह भी करा दिये ह । सन् १९३७ में सरकार ने एक कानून बनाकर विधवाओं को परिवार की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया है । विधवाओं की सख्या बढ़ने का मूल कारण बाल-विवाह और अनमेल विवाह ह । बाल विवाह रोकने के लिए सरकार ने १९३० में एक कानून बनाया था जो शारदा ऐक्ट के नाम स प्रसिद्ध ह ।

अनमेल विवाहों को रोकने के लिए भी प्रयत्न किये गये हैं। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए सरकारी और गैरसरकारी संस्थायें स्थापित की गयी हैं और शिक्षित स्त्रियों ने प्रांतीय तथा अखिल भारतवर्षीय कान्फ्रेंसों द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। सरकार ने विवाह तथा उत्तराधिकार के नियमों द्वारा स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति में अधिकार दिया है और बहुविवाह का निषेध तथा विवाह-विच्छेद की सुविधा प्रदान की है। इस भाँति स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हो गया है। वे धारासभाओं की सदस्या, कांग्रेस की प्रधान, प्रांतों की गवर्नर, केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सदस्या तथा दूतावासों एवं अन्तरराष्ट्रीय संगठनों में जानेवाले दलों की अध्यक्ष हो चुकी हैं और वकील, डाक्टर, इन्स्पेक्टर, अध्यापिका आदि का काम निपुणता से कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४५) के समय में स्त्रियों ने युद्धोद्योग में भी काफी भाग लिया था और एक महिला सहायक सेना अर्थात् वीमेन्स आक्जिलरी कोर की स्थापना की गई थी। भारतीय परम्परा और वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप नारी को उचित स्थान देने के लिए अभी भी बहुत काम करना शेष है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य—भारतीय जनता का भोजन बहुधा अच्छा नहीं होता और न जन-साधारण को उचित भोजन का ठीक ज्ञान है। जिनको इसका कुछ ज्ञान है भी उनकी आर्थिक व्यवस्था इतनी खराब है कि वह स्वास्थ्यकर भोजन पर्याप्त मात्रा में पा नहीं सकते। इस कारण भारतीयों का स्वास्थ्य खराब है और उनको अनेक रोग अपना शिकार बनाये हुए हैं। सरकार तथा उदार व्यक्तियों ने इस संकट के निवारण के लिए अनेक उपाय किये हैं। सरकार का सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग सफाई का प्रबन्ध करता है और रोगों से बचने के उपाय बताता है। प्लेग, हैजा, चेचक, मियादी बुखार आदि की सूचना निरन्तर दी जाती है। जब इन बीमारियों का प्रकोप होता है, तब सरकार उनके मुफ्त टीके लगवाने का प्रबन्ध कर देती है। आँखों के इलाज, राजयक्ष्मा, कालाजार, कोढ़ आदि के लिए अलग चिकित्सालय खोल गये हैं। परन्तु इस ओर भी अभी बहुत प्रगति की आवश्यकता है। प्रत्येक गाँव में उचित चिकित्सा की सुविधा होनी चाहिए और जनता को शिक्षा तथा आर्थिक उन्नति द्वारा उसको स्वस्थ रहने के योग्य बनाना चाहिए।

आर्थिक स्थिति—जिस भाँति आधुनिक युग में सामाजिक उन्नति हुई उसी प्रकार जन-साधारण की आर्थिक दशा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न किये गये हैं। भारतवर्ष एक कृषिप्रधान देश है। पर कोई भी देश केवल एक ही व्यवसाय पर नहीं चल सकता। इतने बड़े विस्तृत और घने बसे हुए देश के लिए विशेष

रूप से कृषि के सिवा दूसरे व्यवसायों का सहारा लेना आवश्यक है। मध्यकाल में इस देश की व्यावसायिक दशा यथेष्ट रूप से अच्छी थी और इस हेतु यहाँ यूरोपीय व्यापारियों का आगमन हुआ था। इस देश में कपड़े की बिनाई और छपाई का व्यवसाय मुगल काल में हरा भरा बना रहा। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक यूरोप में व्यावसायिक क्रान्ति हो चुकी थी। उस समय से भारत-सरकार की नीति पर अंग्रेज व्यवसायियों का विशेष प्रभाव पड़ा और यहाँ की व्यवसायिक नीति इंगलैण्ड की नीति का एक अङ्ग बन गई। अतः यहाँ की व्यावसायिक अवनति और बाद में पिछले महायुद्ध के समय तक थोड़ी-बहुत उन्नति अंग्रेज पूँजीपतियों की इच्छा और सुविधा से हुई। पिछले वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण देशवासियों का ध्यान इधर विशेष आकृष्ट हुआ है। भारतीय व्यवसायों के पिछड़ेपन से भारत और ब्रिटिश साम्राज्य दोनों को कितनी क्षति पहुँच सकती है यह दोनों महायुद्धों ने सिद्ध कर दिया है। मध्यपूर्व में भारत ही एक ऐसा देश था जो ब्रिटिश साम्राज्य को बचा सकता था। अतः युद्ध के समय सरकार और राष्ट्रीय व्यवसायी दोनों ही ने देश को उन्नत बनाने की अपनी-अपनी योजनायें बनाई। उनके पूर्णरूप से कार्यान्वित हुए बिना हम देश की दशा सुधर नहीं सकती। यहाँ हम देश के प्रमुख व्यवसायों के विकास पर क्रमशः प्रकाश डालेंगे।

कृषि—ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खेती और किसानों की दशा में कोई सुधार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी थी। सरकारी मालगुजारी वसूल होती रहे यहीं तक उसका ध्यान था। १८५८ के बाद भी किसान पुरानी प्रथाओं में बँधा था। साधारणतया वह जमींदारों की मर्जी के अनुसार ही खेत जोत सकता था। जमींदार अपनी इच्छा से लगान बढ़ा सकते थे बेगार लेते थे और अप्रसन्न होकर खेत घर जानवर पेड़ सभी कुछ छीनकर उसे भिखारी बना सकते थे। खेती सदा अच्छी होती नहीं है अतः जब कभी अकाल पड़ा या कोई शादी-विवाह पड़ा तो किसान महाजन का कर्जदार भी हो जाता था। जमींदार से बचा-खुचा किसान का रक्त ये महाजन चूसा करते थे। ऐसी दशा में प्राकृतिक विपत्तियों से भी रक्षा का कोई प्रबन्ध न था यदि वर्षा समय पर न हुई तो बस किसान मटियामेट।

कृषि-सुधार के प्रयत्न—डलहौजी के शासनकाल के पश्चात् सरकार ने दो कानून पास किये। १८६८ के अवध टिनेन्सी ऐक्ट द्वारा काश्तकारों को मौरूसी अधिकार देने की व्यवस्था की गई। यदि जमींदार उनको पहले ही बेदखल करे तो उसे किसान को उस धन का उचित भाग देना पड़ता था जो

अनमेल विवाहों को रोकने के लिए भी प्रयत्न किये गये हैं। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए सरकारी और गैरसरकारी संस्थायें स्थापित की गयी हैं और शिक्षित स्त्रियों ने प्रांतीय तथा अखिल भारतवर्षीय कान्फ्रेंसो द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। सरकार ने विवाह तथा उत्तराधिकार के नियमों द्वारा स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति में अधिकार दिया है और बहुविवाह का निषेध तथा विवाह विच्छेद की सुविधा प्रदान की है। इस भांति स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हो गया है। वे धारासभाओं की सदस्या, कांग्रेस की प्रधान, प्रांतों की गवर्नर, केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सदस्या तथा दूतावासों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में जानेवाले दलों की अध्यक्ष हो चुकी हैं और वकील, डाक्टर, इन्जीनियर, अध्यापिका आदि का काम निपुणता से कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४५) के समय में स्त्रियों ने युद्धोद्योग में भी काफी भाग लिया था और एक महिला सहायक सेना अर्थात् वीमेन्स आक्जिलीरी कोर की स्थापना की गई थी। भारतीय परम्परा और वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप नारी को उचित स्थान देने के लिए अभी भी बहुत काम करना शेष है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य—भारतीय जनता का भोजन बहुधा ठीक नहीं होता और न जन-साधारण को उचित भोजन का ठीक ज्ञान है। जिनको इसका कुछ ज्ञान है भी उनकी आर्थिक व्यवस्था इतनी खराब है कि वह स्वास्थ्यकर भोजन पर्याप्त मात्रा में पा नहीं सकते। इस कारण भारतीयों का स्वास्थ्य खराब है और उनको अनेक रोग अपना शिकार बनाये हुए हैं। सरकार तथा उदार व्यक्तियों ने इस संकट के निवारण के लिए अनेक उपाय किये हैं। सरकार का सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग सफाई का प्रबन्ध करता है और रोगों से बचने के उपाय बताता है। प्लेग, हैजा, चेचक, मियादी बुखार आदि की सुइयाँ निकाली गई हैं। जब इन बीमारियों का प्रकोप होता है, तब सरकार उनके मुफ्त टीके लगवाने का प्रबन्ध कर देती है। आँखों के इलाज, राजयक्ष्मा, कालाजार, कोढ़ आदि के लिए अलग चिकित्सालय खोले गये हैं। परन्तु इस ओर भी अभी बहुत प्रगति की आवश्यकता है। प्रत्येक गाँव में उचित चिकित्सा की सुविधा होनी चाहिए और जनता को शिक्षा तथा आर्थिक उन्नति द्वारा उसको स्वस्थ रहने के योग्य बनाना चाहिए।

आर्थिक स्थिति—जिस भाँति आधुनिक युग में सामाजिक उन्नति हुई उसी प्रकार जन-साधारण की आर्थिक दशा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न किये गये हैं। भारतवर्ष एक कृषिप्रधान देश है। पर कोई भी देश केवल एक ही व्यवसाय पर नहीं चल सकता। इतने बड़े विस्तृत और घने बसे हुए देश के लिए विशेष

रूप से कृषि के सिवा दूसरे व्यवसायों का सहारा लेना आवश्यक है। मध्यकाल में इस देश की व्यावसायिक दशा यथेष्ट रूप से अच्छी थी और इस हेतु यहाँ यूरोपीय व्यापारियों का आगमन हुआ था। इस देश में कपड़े की बिनाई और छपाई का व्यवसाय मुगल काल में हरा भरा बना रहा। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक यूरोप में व्यावसायिक क्रान्ति हो चुकी थी। उस समय से भारत-सरकार की नीति पर अंग्रेज व्यवसायियों का विशेष प्रभाव पड़ा और यहाँ की व्यावसायिक नीति इंगलैण्ड की नीति का एक अङ्ग बन गई। अतः यहाँ की व्यावसायिक अवनति और बाद में पिछले महायुद्ध के समय तक थोड़ी-बहुत उन्नति अंग्रेज पूँजीपतियों की इच्छा और सुविधा से हुई। पिछले वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण देशवासियों का ध्यान इधर विशेष आकृष्ट हुआ है। भारतीय व्यवसायों के पिछड़ेपन से भारत और ब्रिटिश साम्राज्य दोनों को कितनी क्षति पहुँच सकती है यह दोनों महायुद्धों ने सिद्ध कर दिया है। मध्यपूर्व में भारत ही एक ऐसा देश था जो ब्रिटिश साम्राज्य को बचा सकता था। अतः युद्ध के समय सरकार और राष्ट्रीय व्यवसायी नेताओं ने देश को उन्नत बनाने की अपनी-अपनी योजनायें बनाई। उनके पूर्णरूप से कार्यान्वित हुए बिना हम देश की दशा सुधर नहीं सकती। यहाँ हम देश के प्रमुख व्यवसायों के विकास पर क्रमशः प्रकाश डालेंगे।

कृषि—ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खेती और किसानों की दशा में कोई सुधार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी थी। सरकारी मालगुजारी वसूल होती रहे, यही तक उसका ध्यान था। १८५८ के बाद भी किसान पुरानी प्रथाओं में बँधा था। साधारणतया वह जमींदारों की मर्जी के अनुसार ही खेत जोत सकता था। जमींदार अपनी इच्छा से लगान बढ़ा सकते थे बेगार लेते थे और मनमाना होकर खेत घर जानवर पेड़ सभी कुछ छीनकर उसे भिखारी बना सकते थे। खेती सदा अच्छी होती नहीं है अतः जब कभी अकाल पड़ा या कोई शादी विवाह पड़ा तो किसान महाजन का कर्जदार भी हो जाता था। जमींदार ने बचा-खुचा किसान का रक्त ये महाजन चूसा करते थे। ऐसी दशा में प्राकृतिक विपत्तियों में भी रक्षा का कोई प्रबन्ध न था यदि वर्षा समय पर न हुई तो बस किसान मटियामेट।

कृषि-सुधार के प्रयत्न—कम्पनीजी के शासनकाल के पश्चात सरकार ने दो कानून पास किये। १८६८ के अवध टिनेन्सी ऐक्ट द्वारा काश्तकारों को मौरूसी अधिकार देने की व्यवस्था की गई। यदि जमींदार उनको पहले ही बेदखल कर तो उन्हें किसान को उस धन का उचित भाग देना पड़ता था

उसने खेती को सुधारने में व्यय किया हो। सन् १८६६ में पंजाब टिनेन्सी ऐक्ट द्वारा पंजाब के कृषकों को भी उसी प्रकार की सुविधायें दी गईं और जमींदारों का अकारण लगान बढ़ाने का अधिकार नहीं रहा। लार्ड मेयो ने एक कृषि विभाग स्थापित किया। उसने स्थान-स्थान पर वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए आदर्श खेती-केन्द्र स्थापित किये ताकि किसान और जमींदार खेती के सुधार उपायों की जानकारी प्राप्त करके उनका उपयोग कर सकें। उसने सिंचाई के लिए नहरें भी बनाईं। लार्ड डफरिन के समय में भी कई सुधार हुए। सन् १८८५ के बंगाल टिनेन्सी ऐक्ट द्वारा किसानों को अपनी भूमि सदा के लिए मिल गई और उसका उचित लगान निश्चय कर दिया गया। सन् १८८६ में अवध के किसानों को अधिकार दिया गया कि खेतों की दशा सुधारने पर कम-से-कम ७ वर्ष तक वे खेत उन्हीं के पास रहें या जमींदार उनका खर्च लौटाकर उनके खेत छुड़ावें। सन् १८८७ में इसी प्रकार का नियम पंजाब के लिए भी बनाया गया। और सरकार ने उचित लगान तै कर दिया। डफरिन के बाद कर्जन ने कृषकों की दशा सुधारने के लिए कई नियम बनाये। सन् १९०० में एक नियम बनाकर उसने पंजाब के किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी कर दी। अब महाजन न तो कर्ज के बदले उनकी जमीन ले सकते थे और न उसे २० वर्ष से अधिक समय के लिए गिरवी रख सकते थे। सम्पूर्ण भारत में खेतों की दशा सुधारने के लिए उसने एक इन्सपेक्टर-जनरल नियुक्त किया। वह न केवल आदर्श फार्मों की देख रेख करता था वरन् कृषि की उन्नति के साधनों का अनुसंधान भी करता था। किसानों को महाजनों के चंगुल से बचाने के लिए कम सूद पर कर्ज देनेवाली सहयोग-समितियाँ स्थापित करने के लिए १९०४ में एक अन्य नियम बनाया गया।

अकालों से रक्षा—कृषकों को सबसे अधिक भय वर्षा न होने और बाढ़ आने से रहता है। इन्हीं दो के कारण अकाल पड़ते हैं। अंग्रेजी शासन-काल में १८६५, १८६६, १८९९, १९०० और १९०७-१९०८ में बड़े भयंकर दुर्भिक्ष पड़ चुके हैं। लार्ड कर्जन ने अकालपीड़ितों की सहायता के लिए स्थायी प्रबन्ध किया। उसने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए कार्य स्थापित किया और उनको सहायता पहुँचाने के लिए उचित उपाय निश्चय किये। अब जहाँ कहीं अकाल पड़ता है, वहाँ सरकार अनाज बाँटती है, लगान माफ कर देती है और सड़कें, नहरें आदि ऐसे सार्वजनिक हित के काम आरम्भ कर देती है जिनमें मजदूरी करके अकाल-पीड़ित व्यक्ति भोजन का प्रबन्ध कर सकें बाद में सिंचाई

के ही उद्देश्य से भी कुछ नहरें बनी जिनमें शारदा नहर बहुत प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक सरकार ने कृषि के ढगों में भी सुधार की आवश्यकता मान ली। अत १६०१ में भारत सरकार का कृषि विभाग स्थापित हुआ और वाइसराय की कार्यकारिणी सभा के एक सदस्य के हाथों में सौंपा गया। इस विभाग न खेतों में सुधार करने क लिए आदर्श खेत बनाये, कुछ कृषि-कालेज स्थापित किए तथा किसानों को पशु-पालन और खेती के अधिक लाभप्रद ढगो की शिक्षा दी। इसके सिवा इस विभाग ने कृषि के ढगा में अनुसंधान भी आरम्भ किया पर यह सब काम बहुत धीरे धीरे चलता रहा लार्ड लिनलिथगो (१६३६ ४३) न गाय-बैलों की नस्ल-सुधार में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

सन् १६३७ म सूबों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना हुई। इन सरकारों ने विभिन्न सूबों में किसानों की रक्षा तथा समृद्धि के लिए कई कानून पास किये जिनसे वे जमींदार और महाजन क अत्याचारों स बच सके। कम सूद पर कर्ज देनेवाली कोआपरेटिव सोसाइटियाँ तो पहले ही स्थापित हो चुकी थी। ग्राम सुधार विभाग ने भी खेती की दशा सुधारने में बड़ा काम किया। इस विभाग क उद्योग स किसानों में कुछ प्रगति दिखाई पड रही है। किसान सभाओं ने भी किसानों का ध्यान अपने अधिकारों की ओर आकृष्ट किया। इधर सिंचाई के लिए भी कुछ महत्त्वपूर्ण काम हुए हैं। कुछ नदियों में बाँध बाँधकर तथा कहीं-कहीं पर बिजली द्वारा कुओं स सिंचाई का प्रबन्ध हुआ है जैसे सक्खर बाँध स सिंध प्रदेश हरा भरा हो गया है इस प्रान्त क पश्चिमी जिलों में कुओं से बिजली की सहायता स सिंचाई का प्रबन्ध भी बड़ा सफल हुआ है। इसे टघूबवेल योजना कहते हैं। यह सब होते हुए भी यह सत्य है कि किसानों और खेती की दशा में उन्नति उनकी शिक्षा और दृष्टिकोण बदलने ही पर हो सकती है और इसके लिए राष्ट्रीय सरकार की परमावश्यकता थी। युद्ध-काल म किसानों का कुछ लाभ हो गया है परन्तु उनका स्वास्थ्य, शिक्षा तथा रहन-सहन अब भी दयनीय है। देश विभाजन के बाद भारतीय संघ में अन्न का संकट बहुत बढ़ गया है। पाकिस्तान और भारत-सरकार की मुद्रा-नीति असमान होने के कारण यह संकट और भी बढ़ गया। अस्तु, स्वतन्त्रता प्राप्ति क बाद से भारत सरकार तथा अन्य सरकारें खाद्यान्न की उपज बढ़ाने की ओर विशेष सचेष्ट हैं। ऊसर खादर तथा अन्य प्रदेश जोते जा रहे हैं। वर्षा बढ़ाने क लिए नये पेड़ लगाये जा रहे हैं। उत्तमोत्तम खादें तथा वैज्ञानिक यंत्र उपलब्ध कराने की चेष्टा हो रही है।

सिंचाई की सुविधा बढ़ाने तथा बाढ़ के प्रकोप को रोकने के लिए अनेक बाँध बनाने की योजनायें बन रही हैं और कार्यान्वित की जा रही हैं। साथ ही किसानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया है। उनका लगान घटा दिया गया है और चकबन्दी की जा रही है। कोआपरेटिव सोसाइटियों शिक्षण शिविरों, स्वास्थ्य-गृहों में भी इसी काल में बहुत प्रगति हुई है, समुदाय विकास केन्द्रों तथा ग्राम-पंचायतों ने भी किसानों की दशा में सुधार किया है। सरकार ने जापानी विधि की धान की खेती चलायी है और अधिक उत्पादन करनेवालों को पुरस्कार उपाधि आदि देने की परिपाटी चलाई है।

कपड़े के व्यवसाय और पुतलीघर—खेती के बाद अब दूसरा महत्वपूर्ण व्यवसाय कपड़े का है। आजकल इसके चार अंग हैं—सूत, रेशम ऊन और जूट। सूत की बुनाई का काम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक खूब बढ़ा चढ़ा रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी इसकी उन्नति ही चाही। उस समय सूत की कताई-बुनाई का काम जुलाहे और कोरी अपने घरों में करते थे। फैक्टरियों का नाम निशान भी न था। व्यावसायिक क्रान्ति के बाद इंगलैण्ड में मिलों की स्थापना हुई और वहाँ पर कानून द्वारा भारतीय कपड़े की बिक्री बन्द हो गई। दूसरे यूरोपीय देशों में भारतीय माल की खपत कम होने लगी। भारतीय कारीगरों को इससे धक्का लगा, पर अभी विपत्ति का प्रारम्भ ही था। धीरे-धीरे विदेशी मिलों के कपड़ों ने भारतीय बाजार पर भी आक्रमण किया। भारत सरकार की नीति ऐसी रही कि देशी व्यवसाय चौपट हो गया और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय भी विदेशी कपड़े ही से निर्वाह करने लगे। जुलाहे और कोरी अपना व्यवसाय चलाते रहे पर अब वे केवल स्थानीय लोगों के लिए साधारण कपड़ा बनाते थे। यह दशा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः अन्त तक रही।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भारत-सरकार स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में थी, पर उसे अन्दर आने वाले माल पर सरकारी आय बढ़ाने के लिए कर लगाना पड़ा। इधर अंग्रेज व्यापारियों ने भारतवर्ष में मजदूर काफी सस्ते देखे और कपास का तो यहाँ घर ही था। अतः ब्रिटिश पूँजीपतियों ने यहाँ मिलें खोलीं। पहले बम्बई और कलकत्ता में मिलें खुलीं। कलकत्ते में जूट मिलें भी खुलीं। रेलवे अधिकारियों की नीति बन्दरगाहों की ओर सस्ते सामान ले जाने की थी ताकि कच्चे माल के निर्यात में सुविधा हो और बन्दरगाहों से सामान लानेवाला

गाड़ियों को जाते समय भी सामान मिले। बिहार में कोयले की खानें थी। अत कुछ मिलें धीरे-धीरे देश म अन्दर की ओर खुलने लगी और शोलापुर, नागपुर, कानपुर चटगाँव, नरायनगज मदुरा आदि भी इस व्यवसाय के केन्द्र हो गये।

भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन के साथ-साथ स्वदेशी का भी प्रचार हुआ। अत इन मिलों को कुछ सहायता मिली पर इनके माल की विशेष खपत अफ्रीका फारस आदि में थी। पिछली लडाई के समय भी कुछ उन्नति हुई। इस युद्ध के समय सूत के कपड़ के व्यवसाय में कोई उन्नति नही हुई। केवल उन मिलो की दशा सुधर गई जिन्हें घाटा हो रहा था। ब्रिटिश इण्डिया में सरकारी निरोधों स पीछा छुडाने के लिए रियासतो में भी कुछ मिलें बनी हैं। दूसरा कारण कुछ रियासतों का प्रगतिशील होना ह। इन सबका फल यह हुआ ह कि काटन मिलें अब सारे देश में फल गई ह। इस व्यवसाय में आगे बढ़ने का अभी *बहुत मौका है। भारतीय मिलें बहुत अच्छा कपड़ा अब भी नही बना पातीं।* उनके यन्त्र पुराने और काम करन के ढग बहुत लाभकारी नही ह। इसका प्रधान कारण इस दश में यन्त्र उत्पादन की असुविधा और नाम-मात्र की टेक निकल शिक्षा का होना ह। हमें विदेशो स मशीनें और कारीगर मँगान हाते हैं। आशा है कि अब इस दिशा में भी उन्नति होगी।

जूट का ससार भर का व्यवसाय बगाल ही म केन्द्रित है। अत इसके विकास का बहुत ही अच्छा अवसर है पर यह व्यवसाय अधिकतर ब्रिटिश पूँजी पतियों के हाथ में रहा है, जिन्होंने राष्ट्रीय हितों को अधिक महत्त्व नहीं दिया। अत इसकी उन्नति अधिक नहीं हुई ेशी पूजी ने भी अब कुछ हाथ बँटाया है। युद्ध के समय जूट का व्यवसाय अवनत हो गया था क्योंकि विदेशी व्यापार घट गया था।

रेशम का व्यवसाय इस दश में नाम मात्र का है। साधारणतया कपडा और कच्चा माल जापान और चीन से आता था युद्ध के समय दोनो दशो न माल आना बन्द हो गया था अत रेशम का काम कुछ बढ गया। यहाँ इसके मुख्य केन्द्र कश्मीर बनारस भागलपुर, मैसूर आदि ह।

ऊन का व्यवसाय भी अभी इस देश में बहुत पिछडा है। ब्रिटिश काल में इस व्यवसाय पर सबसे पीछे ध्यान दिया गया क्योंकि कच्चा माल देश म कम है और अच्छा भी नही ह। कानपुर और पजाब में धारावाल तथा अमृतसर इस व्यवसाय के मुख्य केन्द्र हो गये हैं।

चर्खा-सघ—कांग्रेस और गांधीजी के उद्योग से हाथ से बने माल की ओर

भी लोगों का ध्यान गया। गांधी चर्खा-संघ ने खादी का प्रचार करके सूत और ऊन के छोटे व्यवसायों को ऊपर उठाने की बड़ी कोशिश की है। यह व्यवसाय मृतप्राय हो चुका था पर अब फिर से इस व्यवसाय ने उन्नति की है और युद्ध के समय जब मिलों का कपड़ा फौजी आवश्यकताओं की पूर्ति में अधिक लगता था, इन व्यवसायियों की दशा सुधर गई। इस पुराने और महत्त्वपूर्ण कलात्मक व्यवसाय की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष जैसे गाँवों के देश में बहुतरी मिलें खुल जाने पर भी इनके लिए यथेष्ट अवसर रहेंगे।

लोहे और कोयले का व्यवसाय—रुई और बिनाई के व्यवसायों के बाद लोहे और कोयले के व्यवसायों का स्थान है। आजकल किसी भी देश की उन्नति के लिए ये दो व्यवसाय बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। लोहे का व्यवसाय कम्पनी के समय तक बहुत ही साधारण और सीमित था। बाद में भी अधिकतर कच्चा लोहा बाहर जाता था। १९०७ में जमशेदजी नसरवानजी ताता ने 'ताता 'आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' की बिहार में स्थापना की और वहाँ पर जमशेदपुर का नगर बस गया। उनकी देखा देखी कुछ और कम्पनियाँ भी स्थापित हुई। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ तक भी यह देश लोहे के अधिकांश सामान के लिए विदेशों पर निर्भर था और कच्चा लोहा यहाँ से बाहर जाता था। इस व्यवसाय की अवनति का मुख्य कारण ब्रिटेन की ईर्ष्या और उसके फलस्वरूप सरकारी अवहेलना था। उस समय तक लोहे की कम्पनियाँ लोहे की केवल मामूली चीजें बनाती थीं। इंजिन, मशीनें आदि बनाने का अधिकार इन्हें न था, लड़ाई का सामान भी बाहर ही से आता था। युद्ध ने सरकार की आँखें खोल दीं और ताता कम्पनी को रेलवे इंजिन तथा हलकी मशीनरी बनाने का अधिकार मिल गया। बिहार के बाहर यह व्यवसाय केवल मैसूर में था। अभी इसके विकास का कोई ठिकाना नहीं है। राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक है कि इस व्यवसाय को सरकार अपने हाथ में लेकर इतनी वृद्धि दे कि भारतवर्ष कम-से-कम सारी देशीय आवश्यकताओं को पूरा करने लगे। जर्मनी, रूस, ब्रिटेन और अमरिका के सहयोग से इसमें अब काफी प्रगति हो रही है।

अन्य व्यवसाय—बीसवीं शताब्दी में शक्कर, सीमेंट, दियासलाई, कागज तथा दवाइयों के भी कारखाने खुल हैं। इनमें शक्कर सबसे महत्त्वपूर्ण है। जावा की शक्कर के बन्द होते ही इस व्यवसाय ने बड़ी उन्नति की है। मिलें अधिकतर पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार में हैं कुछ बम्बई प्रान्त में भी हैं। युद्ध से इस व्यवसाय को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सीमेंट का व्यवसाय भी इसी शताब्दी

में आरम्भ हुआ है। आजकल देश की आवश्यकतायें इससे पूरी हो जाती हैं। युद्ध काल में हवाई अड्डों के बनने से इस व्यवसाय में बड़ा विकास हुआ है।

दियासलाई का व्यवसाय भी चुङ्गी बचाने ही के लिए बाहरी कम्पनियों ने आरम्भ किया है। इसमें भी अभी विकास हो सकता है क्योंकि कच्चा माल, लकड़ी व फासफोरस काफी मात्रा में मिलता है। कागज का व्यवसाय प्रायः बंगाल ही में सीमित है। टीटागढ़ मिल सबसे बड़ी फैक्टरी है। छोटी-छोटी फैक्टरियाँ उत्तर प्रदेश में भी हैं जिनमें से एक लखनऊ में है। दूसरे व्यवसाय, जिनमें काफी उन्नति हुई है और अभी बहुत उन्नति की आवश्यकता है, शीशा, चमड़े, फिल्म आदि हैं। शीशे के मुख्य केन्द्र बम्बई और उत्तर प्रदेश में हैं। चमड़े के कारखाने कलकत्ता, कानपुर, मद्रास, बंगाल, आगरा आदि में हैं। फिल्म कम्पनियाँ अधिकतर बम्बई और कलकत्ते में हैं। पर कुछ लाहौर, लखनऊ, मद्रास, पूना आदि में भी खुल गई हैं। राष्ट्रीय निर्माण में इस व्यवसाय का भी प्रमुख हाथ रहेगा।

खनिज पदार्थ—खनिज पदार्थों की उत्पत्ति में भी इस काल में बड़ी उन्नति हुई है। कोयला यहाँ से बाहर भेजा जाता है। अधिकतर खानें बिहार और छोटा नागपुर में हैं। वे लोहे की खानों के पास ही हैं। लोहे और कोयले के सिवा आसाम में मिट्टी का तेल, मैसूर में सोना और बिहार में सीसा, जस्ता, अबरख आदि मिलते हैं। कोयले का व्यवसाय यद्यपि क्रमशः वृद्धि पाता गया है पर इसके उत्पादन और रक्षण पर नियन्त्रण की आवश्यकता है क्योंकि आधुनिक राष्ट्रों की शक्ति का एक प्रमुख अंग कोयला है।

यातायात के साधन—इन सब व्यवसायों की उन्नति के लिए यातायात के साधन आवश्यक हैं। आजकल यातायात के साधनों में सबसे रेल तथा पानी तथा हवा के जहाज मुख्य हैं। ब्रिटिश काल में इनके निर्माण पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। अब सरकार का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है और रेलवे कम्पनियों के योग से सड़कों की योजना बनाई गई है। सरकार ने एक सड़क फण्ड स्थापित किया है, जिसके द्वारा काफी प्रगति हुई है।

रेलों का प्रारम्भ डलहौजी के समय में हुआ था। धीरे-धीरे कई कम्पनियाँ बनती गईं। महायुद्ध के बाद सरकार ने रेलों को अपने हाथ में लेना प्रारम्भ किया और सारी कम्पनियाँ टूट गईं। सन् १८४९ में केवल ५०० मील लाइन बनाने का ठेका दिया गया था पर सन् १९३९ में ४४००० मील रेलवे लाइनें थीं। देश-विभाजन एवं नव-निर्माण के बाद इस समय भारत सरकार के अधीन प्रायः ३५,००० मील लम्बी और अधिकांश नगरों को मिलानेवाली रेलवे

लाइनें हैं पर इस बड़े देश में अब भी रेल की लाइनों का जाल और घना होना चाहिये तभी यहाँ की खेती और व्यवसाय की उन्नति सम्भव होगी। देश में इंजिन और रेल की पटरी बनने लगी हैं। इससे आशा है कि अब विकास शीघ्र होगा। सन् १९३५ के ऐक्ट के पहले रेलवे नीति यातायात के सदस्य के अधीन थी। पर इस ऐक्ट के लागू होने से रेलवे की नीति को देशी आवश्यकताओं के अनुसार चलाने के लिए एक रेलवे फेडरल अथारिटी की स्थापना हुई। वही इसकी नीति की कर्णधार रही। रेलवे बजट भी सरकारी बजट से अलग कर दिया गया और नई लाइनें बनाने तथा ठीक प्रबन्ध करने के लिए अधिक रुपया अलग कर दिया जाता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद रेलों के प्रबन्ध और संगठन में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। अब सभी रेलवे लाइनें सरकारी अधिकार में ले ली गयी हैं और उनको उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी, पूर्वी, मध्यदेशीय, पूर्वोत्तर एवं दक्षिणोत्तर लाइनों में विभक्त कर दिया गया है। उनकी देख रेख का भार अब भारतीय सरकार के रेलवे मन्त्रालय पर है, जिसने उनके उचित प्रबन्ध के लिए अनेक समितियाँ, बोर्ड आदि बनाये हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण रेलवे बोर्ड है जिसमें १९५१ के पुनर्गठन के बाद पाँच सदस्य होते हैं। रेलवे मंत्रालय का सचिव इसका पदेन चेयरमैन होता है। इसका एक दूसरा विशेष सदस्य है आर्थिक कमिश्नर। रेलों को बिजली से चलाने, उनकी गति को बढ़ाने तथा यात्रियों की सुविधा को बढ़ाने की ओर निरन्तर चेष्टा चल रही है। प्रायः प्रत्येक लाइन में जनता गाड़ियाँ चलाने की चेष्टा चल रही है। रोडवेज की बसों में भी अत्यधिक उन्नति एवं विस्तार हुआ है।

युद्ध के पहले से ही कुछ विदेशी हवाई मार्ग की कम्पनियाँ बन चुकी थीं जिनके जहाज बड़े बड़े नगरों से होकर जाया करते थे। युद्धकाल में अनेक हवाई अड्डे बने और पहली जनवरी १९४६ से दिल्ली-कलकत्ता, दिल्ली-पेशावर, दिल्ली, बम्बई, बम्बई-कलकत्ता और दिल्ली-कराची के बीच हवाई सर्विस का प्रबन्ध हो गया है। डाक, सामान तथा यात्रियों के ले जाने के लिए उनका उपयोग हो रहा है। समय बीतने पर हवाई जहाजों का अधिकाधिक प्रयोग अनिवार्य है। विदेशों से हवाई जहाज द्वारा सम्बन्ध बढ़ गया है और हवाई यात्रा बढ़ गई है।

भारतवर्ष का समुद्रतट काफी लम्बा है इसलिए यहाँ पर सामान ढोनेवाले समुद्री जहाजों की अनेक कम्पनियाँ बनाई जा सकती थीं। इस शताब्दी में किनारों का व्यापार अंशतः देशी जहाजों के हाथ आ गया है। दूसरे देशों से व्यापार के

विक्टोरिया टर्मिनस (बम्बई)
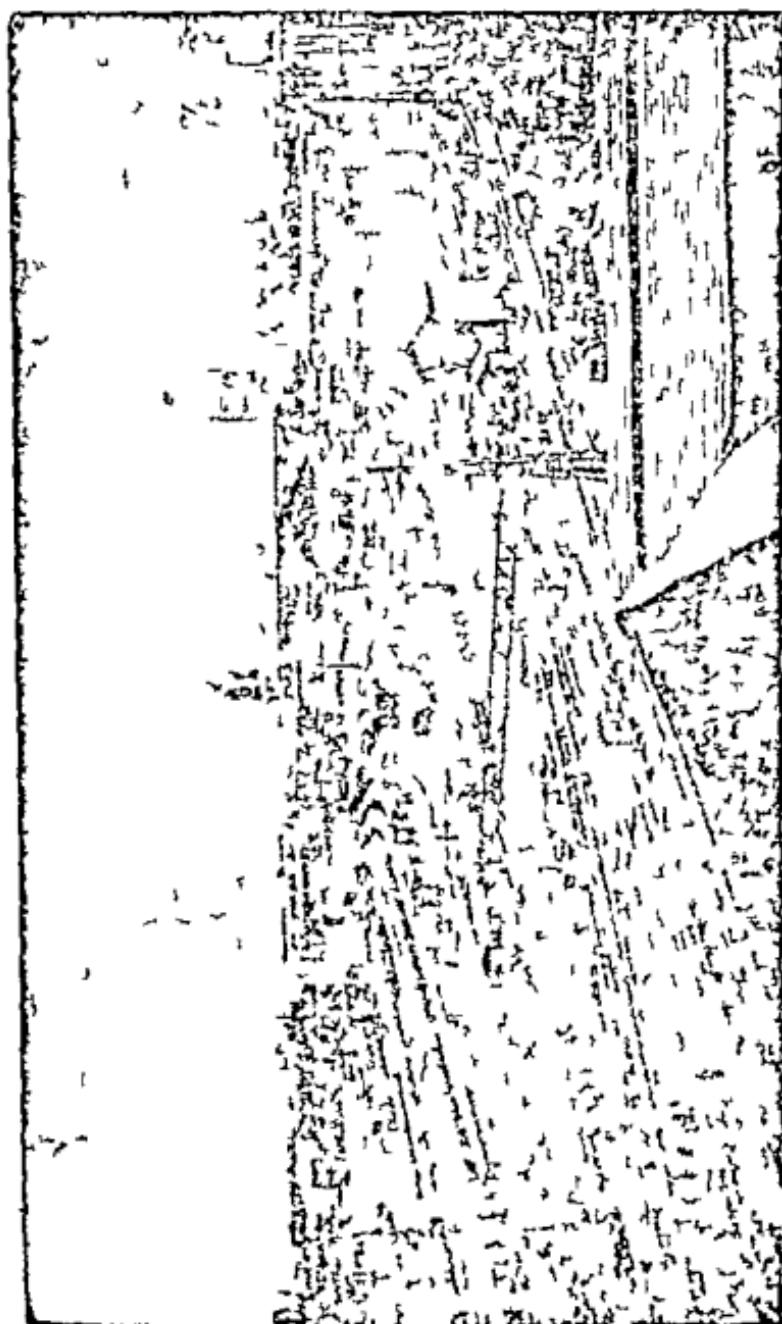
लिए भी जहाजी कम्पनियाँ बनी हैं, जिनमें सिंधिया स्टीम नविगेशन कम्पनी विजगापट्टम मुख्य है। आशा है कि अब इस व्यवसाय में भी उन्नति होगी।

तार, डाक, रेडियो—समाचार भेजने की सुविधा के लिए रेल और हवाई जहाज तथा सामुद्रिक जहाज द्वारा डाक भेजने का प्रबन्ध किया गया है। डाक के अतिरिक्त तार-टेलीफोन और रेडियो का भी प्रचार हो गया है जो दिन पर दिन बढ़ रहा है। अब बहुत से गाँवों में भी रेडियो लगा दिया गया है। टेली विज़न का प्रचार भी आरम्भ हो रहा है।

बैंक—किसी भी देश की व्यावसायिक उन्नति वहाँ के बैंकों पर निर्भर रहती है। इस देश में छोटे-मोटे बैंक उन्नीसवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गये थे पर कोई राष्ट्रीय नीति न होने के कारण अक्सर ये बैंक टूट जाते थे जिससे व्यापारी समुदाय को बड़ा कष्ट होता था। पिछले महायुद्ध के बाद इनके नियन्त्रण के लिए कानून बने। १९३५ के ऐक्ट के अनुसार रिज़र्व बैंक की स्थापना हुई जो देश के राष्ट्रीय बैंक की तरह है। इसका काम दूसरे बैंकों पर नियन्त्रण, उनकी सहायता, सरकारी पूँजी की रक्षा, नोट बनाना इत्यादि है। दूसरे महा युद्ध के पहले तक इन बैंकों और बीमा कम्पनियों ने काफी उन्नति की थी। पर वे आन्तरिक व्यापार व व्यवसाय ही में मदद दे सकते थे। बाहरी व्यापार विदेशी बैंकों और भारत मन्त्री की हुंडी के सहारे होता था। सरकार ने अब इंपीरियल बैंक के स्थान पर एक स्टेट बैंक की स्थापना की है तथा बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया है।

युद्धोत्तर निर्माण की योजनायें—देश की पर्याप्त व्यावसायिक प्रगति के लिए योजना बनाकर चलना आवश्यक है। युद्ध-काल में पुरुषोत्तमदास ठाकुर दास के नेतृत्व में बम्बई के ७ व्यवसायियों ने एक योजना प्रकाशित की कि किस प्रकार देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने का उद्योग किया जाय ताकि जन-साधारण की आर्थिक दशा, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि में उन्नति हो। सरकार ने भी एक योजना-विभाग खोला और सर आर्देशीर दलाल के हाथों में सौंपा। इस विभाग ने कई व्यवसायों से सम्बन्ध रखनेवाली योजनायें बनाई। सूबे की सरकारों ने भी अपनी-अपनी योजनायें तैयार की हैं। भारतीय सामाजिक तथा राज नीतिक उन्नति के लिए इनका उचित ढंग से कार्यान्वित होना आवश्यक है। अब सरकारी और गैर सरकारी सभी लोगों का ध्यान इस ओर है। बम्बई के व्यव सायियों के अनुसार पन्द्रह वर्ष में भारत का आर्थिक पुनरुद्धार संभव है। सर कारी योजना के अनुसार ४५ वर्ष लगेंगे। कांग्रेस की योजना, जो वर्धा में बनी यह गाँव और छोटे कारखानों की नींव पर ही राष्ट्रीय-निर्माण करना चाहती है।

सचमुच यदि युद्ध के लिए रुपये की कमी नहीं पड़ती तो राष्ट्रीय आर्थिक निर्माण के लिए भी रुपया मिल सकता है। देश में शीघ्रातिशीघ्र विदेशों से मशीनें मँगाकर नई-नई फैक्टरियाँ खुलना चाहिए जिनमें मशीनें भी बन सकें। देश में यातायात के साधनों तथा बैंकों में भी उन्नति होनी चाहिए पर इन सब उन्नतियों से देश को पूरा लाभ तभी होगा जब देश के ही लोग इन व्यवसायों में प्रमुख भाग ले सकें। अतः आर्थिक सुधार के साथ ही-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का भी सुधार होना चाहिये। जनता में आत्मविश्वास और इन सुधारों से यथासाध्य शीघ्र लाभ उठाने की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए राजनीतिक स्थिति का सुधारना सबसे अधिक आवश्यक है।

उपसंहार—भारतीय जनता ने पिछले ६० वर्षों में काफी उन्नति की है। व्यवसाय की वर्तमान गिरी हुई दशा में भी भारत का व्यावसायिक देशों में आठवाँ नम्बर है और अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक संघों में उसको स्थान मिलने लगा है। टाटा स्टील कम्पनी अच्छे से-अच्छे इस्पात का निर्माण करती है। विज्ञान की शिक्षा में पिछड़े होने पर भी इस देश में जगदीश चन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय, सी० वी० रमन, मेघनाद साहा, होमी जहाँगीर भाभा आदि सम्पूर्ण सभ्य जगत में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। महात्मा गाँधी ने भी इसी युग में अपना अहिंसा और सत्य का प्रचार किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसे साहित्यिक, सर राधाकृष्णन ऐसे दर्शनशास्त्र के पण्डित और स्वामी विवेकानन्द तथा रामतीर्थ ऐसे दार्शनिक भी इसी काल में हुए हैं। ये सभी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के महापुरुष हुए हैं। परतन्त्र होने पर भी भारतीय नेता पड़ोसी परतन्त्र राज्यों के स्वतन्त्रता-संग्राम में पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं और पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस ने पूर्वी प्रदेशों में बहुत ख्याति पाई है। वर्तमान काल में भारतीय सैनिकों ने वीरता तथा साहस का उच्चतम प्रदर्शन किया है, तैरने में रोबिन चटर्जी, कुश्ती में गामा, खेलों में हाकी का दल और नृत्य में उदयशंकर भट्ट अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त प्रांतीय तथा देशीय क्षेत्रों में विभिन्न दिशाओं में उन्नति हुई है।

वर्तमान काल में मनुष्य ने भौतिक साधनों द्वारा सुख-शांति लाभ करने का बहुत उद्योग किया है, किन्तु विश्व में कहीं पर भी वास्तविक सुख-शांति नहीं है। ईर्ष्या, हिंसा, विद्वेष सभी को परेशान किये हैं। एकता और कमजोर के नामों प्रबल स्वार्थ और अभिमान की वेदी पर बलिदान हो जाते हैं। मानव-मात्र

में शांति और प्रगति चेतना के मौलिक रूपांतर द्वारा ही सम्भव है। श्री अरविंद और पाण्डीचेरी की श्री मा इसी कार्य को पूर्ण करने के लिए निरंतर कार्य कर रही हैं। आशा है कि मानव भागवत प्रसाद एवं अपनी अभीप्सा के द्वारा विश्व में दिव्य जीवन की स्थापना करेगा। यह महत् कार्य इसी देश में सर्वप्रथम होना है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) भारतीय समाज मे क्या मुख्य दोष हैं? उनको हटाने के लिए किन संस्थाओ ने क्या उद्योग किया है?
(२) भारतीय जनता का स्वास्थ्य ठीक क्यो नही है? स्वास्थ्य-सुधार के लिए सरकार ने क्या प्रबन्ध किया है?
(३) भारतीयो के मुख्य व्यवसाय क्या हैं? खेती की दशा सुधारने के लिए सरकार ने क्या-क्या कार्य किये हैं?
(४) गाँधी चर्खा संघ किस उद्देश्य से स्थापित किया गया था? उससे देश को क्या लाभ हुआ है?
(५) इस देश में यातायात के साधनों में किन सुधारो की आवश्यकता है?
(६) आधुनिक काल में भारतीयो ने किन दिशाओ मे उन्नति की है? वर्तमान भारतीय असंतोष का क्या कारण है?

अध्याय ३५

स्वतंत्र भारत

प० जवाहरलाल नेहरू का मन्त्रित्व-काल (१९४७-१९६४)

भारतवर्ष के इतिहास में १५ अगस्त १९४७ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तिथि है। उनके गौरवपूर्ण अतीत में अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनको भारतीय आत्मा अपनी स्मृति में चिर-संचित रखेगा। परन्तु १५ अगस्त १९४७ ही पहला अवसर है जब भारतीय जनमत को समस्त देश की सभी आंतरिक तथा वैदेशिक समस्याओं

को समझने और सुलझाने का अवसर प्राप्त हुआ तथा एक अखिल भारतीय सर्वोच्च सत्ताधारी प्रजातंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होता दिखाई पड़ा।

भारतीयों के कंधे पर जो गुरुतर भार आ पड़े हैं और उन्हें जो महान् सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं उनका निर्वाह तथा सदुपयोग तभी सम्भव होगा जब हम अपनी प्राचीन संस्कृति के उत्तमोत्तम अंगों को अपनी भावी नीति की आधार शिला बनायें और वर्तमान जगत में प्राचीन विचारों तथा आदर्शों से उनका समुचित सामञ्जस्य कर लें।

१—भारतीय इतिहास से क्या शिक्षा मिलती है?

विचारों की उदारता—हमारे इतिहास के संकेत क्या हैं और वे हमें क्या प्रेरणा देते हैं? सबसे अधिक महत्त्व की बात है विचारों की उदारता। यहाँ की अधिकांश जनता तथा शासकमण्डल धार्मिक, सामाजिक तथा जातीय विचारों में बहुत उदार रहे हैं। जब भारत सम्पन्न तथा सशक्त था तब उसने पड़ोसी देशों पर तलवार का आतंक न जमाकर उन्हें धर्म, संस्कृति, कला तथा ज्ञान की भेंट की और उनकी उन्नति तथा समृद्धि में उसने हाथ बँटाया।

गुरु का आदर—यहाँ के विद्वानों ने लक्ष्मी की उपेक्षा भले ही न की हो परन्तु वे उसके दास नहीं रहे। उन्होंने समाज के कल्याण को ही अपना उचित आदर्श समझा है। यही कारण है कि राजा सामंत सेठ साहूकार सभी उनका आदर करते थे और उनके आश्रमों में जाकर विद्याभ्यास करते थे एवं यह विश्वास रखते थे कि गुरु को वेतन नहीं वरन् दक्षिणा ही दी जा सकती है। अपने शिक्षकों का हमें फिर सम्मानित करना सीखना पड़ेगा और ऐसी स्थिति पैदा करनी होगी जिसमें वे इस सम्मान के योग्य आचरण करनेवाले बन सकें।

कृषि का महत्त्व—साथ ही हमें यह भी स्मरण रहना चाहिए कि भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है, यद्यपि इसमें दस्तकारी का काम भी बहुत ऊँचे दर्जे का तथा काफी परिमाण में होता रहा है। कृषकों की व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं का उचित ध्यान रखकर ही हम इस देश को ऊपर उठा सकेंगे। उनकी आवश्यकताओं को समझना तथा उन्हें ही इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग देने की क्षमता प्रदान करने में हमारी सफलता निर्भर करेगी। अकाल एवं महामारी के अभिशापों का निवारण हमारा एक महान् कर्त्तव्य होना चाहिए।

पतन के कारण—साथ ही हमें अपने पतन के कारणों का भी ध्यान रखना चाहिए। आपस की फूट, विचारों की संकीर्णता, अहंकार तथा

भारतीय राज्य संघ
(१९५६)
राजस्थान
महाराष्ट्र
बंगाल की खाड़ी
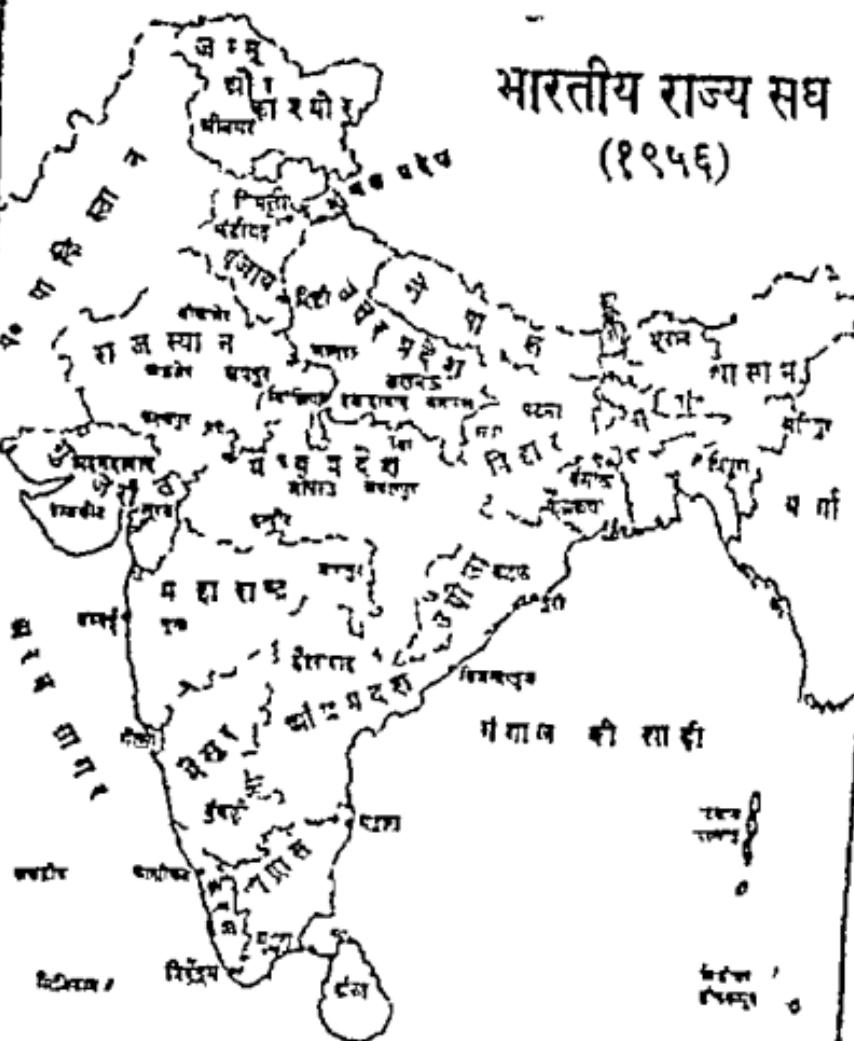
की प्रधानता इनमें मुख्य हैं। हमें देश प्रेम की समान भावना और देश-सेवा की समान सुविधा पैदा करनी होगी।

आध्यात्मिक नेतृत्व—महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्र होनेवाले भारत ने सत्य अहिंसा सद्भावना एवं उदारता को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। व्यावहारिक जगत की विषमताओं का ध्यान रखते हुए हमें इन आदर्शों को और पुष्ट तथा व्यापक बनाना है। भारत का विश्व के प्रति एक विशेष दायित्व है वह है आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन। इसके लिए देश की एकता विशेष रूप से आवश्यक है। इस दृष्टि से मुसलमान एवं ब्रिटिश विजेताओं ने भारत की महान सेवा की है। हमने भी अरविन्द के परामर्श को न मान कर देश का विभाजन स्वीकार करके अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी है। द्विखण्डित भारत को एक करना हमारा पावन भगवतनिर्दिष्ट कर्तव्य है। श्री अरविन्द ने पाण्डीचेरी में दिव्य जीवन की स्थापना के लिए जो उत्कट साधना की और श्री माँ जिसे वास्तव करने के लिए सचेष्ट हैं वह ऐक्यप्राप्त भारत में ही पूर्ण प्रतिष्ठित हो सकती है।

२—वर्तमान सरकार की आन्तरिक नीति

स्वतंत्र भारत की सरकार ने विभिन्न दिशाओं में प्रगति की है। साथ ही उसने वर्तमान जगत में शान्ति तथा उन्नति के उपायों में सहयोग करने की चेष्टा की है। भारतीय इतिहास के पिछले वर्ष बड़े संकट के वर्ष बीते हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद उत्पन्न होनेवाले आर्थिक संकटों के अतिरिक्त उसे एक नये राज्य का संगठन भी करना पड़ा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ नेहरू और पटेल के समर्थन से देश में बँटवारा भी हुआ। उससे पुनर्निर्माण का काम और भी कठिन हो गया। फिर भी प्राय सभी दिशाओं में कुछ-न-कुछ उन्नति होती ही रही है—यह दूसरी बात है कि कुछ लोग यह समझते हों कि उसका मार्ग कुछ भिन्न होना चाहिए था। अथवा उसकी रफ्तार कुछ और तेज अथवा कुछ अधिक धामी होनी चाहिए थी।

साम्प्रदायिक समस्या—इस काल में आंतरिक क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई है। उनमें से अधिकांश की और पिछले अध्यायों में सकेत किया जा चुका है। देश विभाजन के पूर्व और पश्चात दिल्ली पंजाब, बंगाल बिहार तथा उत्तर प्रदेश में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए। पाकिस्तान का जन्म साम्प्रदायिकता के आधार पर ही हुआ था। परन्तु वहाँ हिन्दुओं के प्रति घोर दुर्व्यवहार हुआ। उसके फलस्वरूप भारतीय संघ की सीमाओं में भी दंगे हुए जिनमें मुसलमानों को बहुत क्षति उठानी पड़ी। महात्मा गाँधी ने दंगों को

शान्त करने के लिए पूर्वी बंगाल एवं बिहार का दौरा किया। और कलकत्ता तथा दिल्ली में उपवास किया। इससे आग कुछ कम हुई। परन्तु एक वर्ग के लोगों को गाँधीजी की नीति बहुत खराब लगी। उनकी धारणा थी कि गाँधीजी की नीति ने ही जिन्ना को बढ़ावा दिया और उनकी उदासीनता के कारण ही देश विभाजित हुआ तथा हिन्दू-मुसलमानों की दोनों भागों में अदला बदली नहीं हुई और अब वही मुसलमानों का पक्ष लेकर हिन्दू हितों को बरबाद कर रहे हैं। अतएव उसने उनकी हत्या के लिए एक षडयन्त्र रचा और नाथूराम गोडसे ने ३० जनवरी १९४८ को पूजा भवन में जाते समय उनको गोली से मार दिया। इस हत्या के उपरान्त कुछ दिन भीषण क्षोभ रहा और हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की बहुत बदनामी हुई, यद्यपि बाद में न्यायालय द्वारा यह निर्णय हुआ कि इन संस्थाओं का इसमें कोई हाथ नहीं था। सरकार ने ऐसी नीति का पालन किया है जिसके कारण साधारण मुसलमान जनता पूर्ण शान्ति तथा सुरक्षा के साथ यहाँ निवास करती है और बिना किसी भेदभाव के मुसलमान नागरिक संघीय सरकार के मन्त्री, राज्यों के राज्यपाल राज्यों के मन्त्री, सुप्रीम तथा हाईकोर्ट के जज राज्य तथा संघीय लोक सेवा आयोगों के सदस्य तथा अन्य छोटे-बड़े पदों पर रहकर देश-सेवा के कार्य में लगे हैं। वैदेशिक नीति में भी उनको सहयोग करने की सुविधा है और कई भारतीय राजदूत मुसलमान हैं। १९६७ के चुनावों के बाद डा० जाकिर हुसैन भारतीय संघ के अध्यक्ष चुने गये हैं। हिन्दू-मुसलमानों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध बढ़ रहा है। अध्यक्ष डाक्टर जाकिर हुसेन की एक पौत्री का विवाह एक ब्राह्मण के साथ हुआ है।

विस्थापितों की समस्या—सरकार का दूसरा प्रमुख काम उन लोगों को बसाना तथा व्यवसाय में लगाना है जो पाकिस्तान छोड़कर भारत आये हैं और जिनकी आर्थिक दशा प्राय सम्पूर्ण चल तथा अचल संपत्ति पाकिस्तान में ही रह जाने के कारण अत्यन्त शोचनीय है। विस्थापितों की समस्या के अनेक पहलू हैं और प्रत्येक काफी जटिल है। केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों ने विस्थापितों की दशा सुधारने के लिए अनेक कार्य किये हैं और कर रही हैं। उनमें से कुछ का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

(क) **पुनर्वास मन्त्रालयों का संगठन**—विस्थापितों के प्रश्न को सामूहिक तथा व्यवस्थित ढंग से हल करने के लिए केन्द्र में तथा पाकिस्तान की सीमा

से सटे हुए राज्यों में पुनर्वास मन्त्रालय स्थापित किये गये हैं। केन्द्रीय सरकार ने कलकत्ता में एक शाखा कार्यालय खोला है जो पूर्वी बंगाल से आये हुए लोगों को पश्चिमी बंगाल आसाम विहार, उड़ीसा और त्रिपुरा में बसने तथा अन्य सब सुविधाएं देने का प्रबन्ध करता है। अन्य राज्यों में भी न्यूनाधिक संख्या में पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान से आए हुए लोग फैल गये हैं। उनकी व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक राज्य में उच्चस्तरीय प्रबन्ध है।

(ख) यातायात एवं व्यवस्थित वितरण की समस्या—विस्थापितों की संख्या ६० लाख से अधिक है। गैर सरकारी क्षेत्रों का अनुमान है कि भारत में आनेवाले लोगों की संख्या प्राय एक करोड़ है। यह लोग एक ही समय नहीं आये। विभाजन के समय १९४७-४८ में इस प्रकार आनेवालों की संख्या अत्यधिक थी। उस समय भारतीय संघ से भी बहुत-से लोग पाकिस्तान जा रहे थे इन आने-जानेवालों के यातायात की व्यवस्था करना तथा यात्रा के समय उनकी रक्षा का समुचित प्रबंध करना बड़ा भारी काम था। १९४८ के बाद बीच-बीच में बराबर पाकिस्तान निवासी हिन्दू भारत आने को बाध्य होते रहे हैं। नूतन परिपत्र व्यवस्था स्थापित होने के समय इस प्रकार आनेवालों की संख्या में एक बार फिर बाढ़-सी आ गई थी। पाकिस्तान से आनेवाले लोगों में अधिकांश हिन्दू अथवा सिख हैं। परन्तु पिछले वर्षों में भीतर अनेक भारत से जानेवाले मुसलमान भी पाकिस्तान से लौटकर फिर भारत में आ बसे हैं। इन सबके कारण भारत सरकार तथा सीमांत राज्यों की सरकारों को बराबर बहुत हैरानी उठानी पड़ती है क्योंकि इनमें से अनेक पंचमांगियों का कार्य करने के लिए भेजे गये हैं और भारत के कुछ देश द्रोही प्रवृत्ति के लोगों की सहायता से सरकारी नौकरियों तथा व्यवसाय क्षेत्र में घुसकर बैठ गये हैं।

(ग) भोजन एवं निवास की व्यवस्था—भारत आनेवालों में कुछ लोग ऐसे थे जिनके सम्बन्धी यहाँ पहले से थे। उनके विषय में विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी है। परन्तु अधिकांश आनेवालों में ऐसे लोग हैं जो किसी का सहारा नहीं ले सकते और जिनके भोजन तथा निवास की कोई व्यवस्था नहीं थी। सरकार ने वयस्कों को १२ रुपया मासिक तथा बच्चों को ८ रुपया मासिक के हिसाब से भोजन-दान का व्यवस्था की और उन्हें कम्पों प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों निष्क्रमणार्थियों के मकानों, नये बनाये हुए झोपड़ों अथवा घरों में ठहराया और उनको ऐसी सुविधायें दीं जिससे वे शीघ्र-से-शीघ्र अपने ठहरने का

समुचित प्रबंध कर सकें। परन्तु सरकार ने उनको आत्मनिर्भर रखने की दृष्टि से अधिक समय तक मुफ्त भोजन नहीं दिया और कैम्पों में भी उन्हें अल्प काल के लिए ही ठहराया। अनेक लोग सरकार को बिना सूचना दिये भी इधर-उधर फैल गये। उनका दूसरों की अपेक्षा अधिक कष्ट हुआ है। अब इन लोगों के उद्यम से अनेक नये नगर अथवा उपनगर बन गये हैं या बन रहे हैं।

(घ) रोजगार का प्रश्न—विस्थापितों को किसी-न-किसी रोजगार में लगाने के लिए सरकार ने अनेक काम किये हैं। जो कृषिहर परिवार आये हैं उनको निष्क्रमणार्थियों द्वारा छोड़ी हुई जमीन तथा नये सिर से तोड़कर उपलब्ध की हुई जमीन दी गई है और खेती आरंभ करने के लिए उन्हें ऋण दिया जाता है। इस ऋण के रुपये से वे लोग कुएँ खुदवाते, बैल खरीदते तथा बीज और खेती के औजार उपलब्ध करते हैं।

नागरिक विस्थापितों को नगरों में बसाया गया है। जो लोग व्यवसायी थे, उनको अपना व्यवसाय आरम्भ करने के लिये सरकार ने ऋण दिया है, उनके लिए छोटी-छोटी दूकानें तथा स्टालें बनवाई हैं और उनको निष्क्रमणार्थियों द्वारा छोड़ हुए घर तथा दूकानें दी हैं। इन लोगों की सुविधा के लिए कोआपरेटिव सोसाइटियाँ तथा साझे की कम्पनियाँ भी खोली गई हैं। उन्हें रोजगार केन्द्रों द्वारा छोटी-छोटी हजारों नौकरियाँ दिलवाई गई हैं तथा अनेक लोगों को शिक्षण-शिविरों में दर्जी, बढ़ई, लोहार, रँगरेज, बुनकर आदि का काम सिखाया गया है। यह शिक्षण-केन्द्र देश भर में फैले हुए हैं और वहाँ उसी रोजगार की शिक्षा दी जाती है जिसे सीखकर उस क्षेत्र में आसानी से रोजी कमाई जा सके।

(ङ) स्त्रियों का पुनरुद्धार—विभाजन के बाद के दंगों में अनेक हिन्दू मुसलमान स्त्रियाँ लापता हो गई थी। उनका पता लगाकर उन्हें उनके परिवारों में लौटाने की चेष्टा की गई है। जो स्त्रियाँ किसी कारण अपने परिवारों में वापस नहीं जा सकतीं उन्हें स्त्रियों के केन्द्रों में रखकर दस्तकारियाँ सिखाई जाती हैं ताकि वे अपना पेट पाल सकें। यदि इन स्त्रियों के बच्चे हों तो उनके पालन पोषण तथा शिक्षण का भार सरकार अपने ऊपर ले लेती है।

(च) पाकिस्तान में छोड़ी हुई सम्पत्ति—विस्थापितों ने अपनी चल एवं अचल संपत्ति का प्रामाणिक ब्योरा सरकार को दे दिया है और सरकार पाकिस्तान की सरकार से मिलकर इस संपत्ति को प्राप्त करने का चेष्टा करती है।

आर्थिक नीति—भारत सरकार की आर्थिक नीति के चार प्रमुख उद्देश्य हैं—(१) छिपी हुई पूंजी को उत्पादक कार्यों में लगाने की अधिकतम सुविधाएँ

प्रदान करना (२) उपलब्ध पूँजी का इस प्रकार उपयोग करना जिससे कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास हो, (३) विकास एवं निर्माण कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए योजना बनाकर कार्य करना (४) राष्ट्रीय निर्माण की योजना इस प्रकार बनाना जिससे देश की सर्वतोमुखी उन्नति हो तथा देश अधिक-से अधिक वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ कुछ ऐसे उत्पादनों को बढ़ा सके जिनका निर्यात करके आयात वस्तुओं का मूल्य चुकाया जा सके।

सरकार को सबसे अधिक चिन्ता भोजन देने की रही है। इस हेतु सरकार ने अनेक उद्योग किये हैं। खाद्यान्नों के अधिक उत्पादन के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये जाते हैं, सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाई गई हैं और बहुत-सी नदियों पर बाँध बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं जिनसे न केवल बाढ़ को रोकने में सुविधा होगी वरन् बिजली के उत्पादन तथा सिंचाई के लिए नहरों के निर्माण में भी सहायता मिलेगी। सरकार ने उपयुक्त समय पर पर्याप्त वृष्टि कराने के हेतु नये पेड़ लगवाने की प्रेरणा दी है और वैज्ञानिक विधि से वर्षा कराने के उपायों का अनुसन्धान कराया है। फिर भी जब तक आवश्यकता से कम अन्न पैदा हो रहा है सरकार बराबर बाहर से खाद्यान्न मँगाती रही है। इसी से सम्बन्धित कार्य है खाद्यान्नों का उचित मूल्य पर बिकवाना। सरकार ने इसी उद्देश्य से मूल्य नियन्त्रण किया एवं घाटा सहकर महँगा खरीदा हुआ अन्न सस्ते दामों पर बिकवाया है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही देश अपने भोजन के लिए आत्मनिर्भर हो जायगा। परन्तु महँगी बराबर बढ़ती ही जा रही है और इस कारण निम्न श्रेणी तथा मध्यम श्रेणी के लोगों को बहुत संकट के समय बिताना पड़ रहा है बीच-बीच में अकाल की-सी अवस्था आन लगती है। सरकार जनकष्ट-निवारण के लिए जो सम्भव है सब करने का वादा करती है किन्तु अनेक लोगों की धारणा है कि नेहरू-सरकार की नीति इन जटिलतर कर दिया है।

कृषि पद्धति में भी उन्नति की गई है। खादों के कारखाने खोले गये हैं जहाँ उत्तम प्रकार की सस्ती लागत पर खादें तैयार करने की चेष्टा की जा रही है। चावल पैदा करने के लिए जापानी पद्धति का परीक्षण हो रहा है। अनेक स्थानों में चकबन्दी कराके ट्रैक्टरों का उपयोग कराया जा रहा है। कृषि-अनुसंधानशालाओं और कृषकों में अधिकाधिक संपर्क बनाकर खेती को वैज्ञानिक विधि से करने की प्रेरणा दी जा रही है।

उद्योग धन्धों को बढ़ाने की ओर भी बहुत प्रयत्न किया गया है। सरकार ने छात्र-वृत्तियाँ देकर होनहार युवकों एवं महिलाओं को विदेशों में उच्च औद्योगिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा है। उसने विदेशी पूँजी को देश में बस कारखानों पर व्यय होने की सुविधा दी है ताकि भारतीय इन विदेशी कारखानों में रहकर उस प्रकार का काम सीख लें और उस प्रकार के कारखाना को चलाने की योग्यता प्राप्त कर लें। सरकार यह देखने की चेष्टा करती है कि इन विदेशी कारखानों में सभी ऊँचे पद विदेशियों के ही हाथ में न रहें। उसने विदेशी कारीगरों को बुलाकर भारत में ही भारतीयों को विभिन्न प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की है। फिर भी अभी देश अपनी आवश्यकताओं के लिए विदेशों पर बहुत निर्भर है।

पंचवर्षीय योजनायें—देश के साधनों का सम्यक् सामूहिक एवं सर्वाधिक उपयोगी ढंग से उपयोग करने के लिए सरकार ने मार्च १९५० में एक योजना कमीशन नियुक्त किया जिसने पंचवर्षीय योजनाओं को जन्म दिया। प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५६ में समाप्त हुई और उसके बाद द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार कार्य आरम्भ हुआ। यह दोनों योजनायें एक दृष्टि से एक दूसरे की पूरक हैं। प्रथम योजना में २३ अरब ५६ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान लगाया गया था। द्वितीय योजना में ४८ अरब रुपये की व्यवस्था की गयी है, यद्यपि संभव है कि योजना की समाप्ति के समय तक इसमें और वृद्धि करनी पड़े। प्रथम योजना में देहाती जनता के सुधार के लिए कृषि, सिंचाई, सामुदायिक उत्थान आदि के ऊपर प्राय ६५% व्यय करने की बात थी और यातायात पर २३ ६% तथा उद्योगों पर ७ ६%। यह योजना समाप्त होते-होते अद्भुत-सा सुधार-कार्य पूरा हो गया और अनेक बहुमुखी नदी घाटी योजनाओं पर काम हुआ। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं भाकड़ा नंगल बाँध योजना, दामोदर घाटी योजना, हीराकुड बाँध योजना, रेंड बाँध योजना, कोसी योजना और नागार्जुन सागर योजना। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बड़े उद्योगों के विकास पर अधिक बल देने का निश्चय किया गया है परन्तु कृषि तथा सिंचाई आदि पर भी यथेष्ट व्यय किया जाना है। इन योजनाओं से जितना लाभ होना चाहिए था उतना अभी नहीं हो रहा है किन्तु सारा काम पूरा होने पर बिजली, सिंचाई खेती, बाढ़ नियंत्रण आदि में बहुत लाभ होगा। १९५८ की वर्षा में समय कई बाँधों के फट जाने से भयंकर क्षति हुई है और शंका उत्पन्न हुई है कि शायद बाँधों के निर्माण का कार्य पूरी सतर्कता से नहीं किया गया। इसके पर्याप्त प्रमाण पाये गये हैं

कि इन कार्यों में बहुत रुपया बर्बाद हुआ है। इस समय चौथी पंचवर्षीय योजना चल रही है।

इन योजनाओं को पूरी करने के लिए सरकार ने कर बढ़ाये हैं तथा विदेश से भारी ऋण लिया है। सरकार ने विदेशी पूँजीपतियों तथा विशेषज्ञों की भी सहायता ली है। उसने विदेश से उचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य व्यक्तियों को विदेश भेजा है और थोड़े समय के भीतर बहुमुखी चेष्टा द्वारा देश को आत्म निर्भर, समुन्नत, सुखी एवं समृद्ध बनाने की इच्छा की है। नये कर विधान में उसने इस बात का भी ध्यान रखा है कि आय की असमानताएँ कम होती जायें तथा धनी वर्ग से रुपया लेकर उसे सामूहिक हित के कार्यों में व्यय किया जाय।

सरकार ने इस बीच जो कार्य किये हैं उनमें सबसे अधिक चर्चा के विषय हैं बाँध योजनाएँ। बाँध बनाने के अनेक उद्देश्य हैं जिनकी सबकी पूर्ति अभी पूर्ण रूप से नहीं हो पायी परन्तु आशा है शीघ्र ही होने लगेगी। इन बाँधों के द्वारा जो जल रोक लिया जाता है उसे एकत्रित करके बिजली उत्पादन एवं नहर निकालने में उपयोग किया जायगा। इसी पानी को रोकने के कारण समतल भाग में बाढ़ों का नियन्त्रण भी संभव होगा। बिजलीघरों के बन जाने से गाँवों में भी बिजली का प्रचार किया जायगा और वहाँ पर बिजली से चलनेवाले कुटीर उद्योगों का विकास होगा। नहरों की व्यवस्था होने पर बहुत सी ऊसर भूमि या कम उपज वाली भूमि अच्छी जोत में आ जायगी और प्रतिवर्ष आने वाले खाद्य संकट का अन्त होना संभव होगा।

इतना होने पर भी अभी देश में बहुत सुधार-कार्य बाकी रहेगा क्योंकि हमें सदियों के कोढ़ को दशाब्दियों में धोना पड़ रहा है। यातायात के साधनों का विकास, निःशुल्क शिक्षा के प्रचार, बेकारी का हल, स्वास्थ्य रक्षा सफाई, औद्योगीकरण, स्वच्छ एवं सुन्दर गृह निर्माण आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिनको अभी बहुत आगे बढ़ाना है। १९६७ के चुनाव के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि जनमत कांग्रेस के २० वर्ष के शासन से ऊब गया है किन्तु वह शांतिपूर्ण ढंग से ही अन्य नीति का सूत्रपात होते देखना चाहता है।

३—वैदेशिक नीति

१९४७ के पूर्व—ये सभी काम बड़े महत्व के हैं। परन्तु शायद इनसे भी अधिक महत्व का कार्य है भारतवर्ष का विश्वनीति में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करना। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पूर्व भी कांग्रेस विदेशों से सम्बन्ध स्थापित

करने और वहाँ की जनता को भारतीय राजनीति में रुचि कराने की चेष्टा करती थी। उसने इंग्लैंड तथा अमरिका में इस प्रकार का विशेष प्रचार किया था। कुछ अन्य भारतीय टर्की, जर्मनी, जापान आदि देशों में भी रहकर वहाँ की जनता अथवा सरकारों के सहयोग से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते थे। स्पेन के गृह-युद्ध, इटली अबीसीनिया-संग्राम तथा चीन-जापान-युद्ध में कांग्रेस ने न्यायपक्ष वालों को अपनी सदभावनायें अर्पित की थी और चीन में तो उसने एक डाक्टर-मण्डल भी भेजा था जिसने घायलों की सेवा की और प्राचीन मैत्री की भावना को दृढ़तर किया था। उसी काल में उसके नागरिकों ने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में अनेक सम्मानित पद प्राप्त किए तथा सन् १९२४ में आगा खाँ राष्ट्रसंघ की साधारण सभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

१९४७ के बाद—स्वतंत्र होने के बाद भारतीय संघ के प्रथम प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने वैदेशिक विभाग अपने अधीन रखा और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क बढ़ाने का अधिकाधिक उद्योग किया। यद्यपि कुछ आलोचकों ने भारतीय दूतावासों एवं विदेश से आनेवाले राष्ट्रीय नेताओं की सुरक्षा एवं अभ्यर्थना पर होनेवाले बहुतर व्यय को अनावश्यक बताकर इसका विरोध किया है तो भी नेहरू सरकार का दृढ़ विश्वास था कि भारत की मध्य-युगीन परम्परा एवं वर्तमान गौरव की रक्षा के लिए हमारे दूतावासों में ठाटबाट रहना ही चाहिए। साथ ही भारत ऐसे महान् देश को यदि तेजी से विश्व में सम्मानित पद प्राप्त करना है तो उसे वैदेशिक विभाग की वर्तमान नीति के मूलाधारों को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

भारतीय वैदेशिक नीति के आधार—ये आधार क्या हैं? (१) विश्व के सभी प्रमुख देशों से और विशेष कर एशिया के पड़ोसी देशों से दूत-संबंध स्थापित करना और इस प्रकार उनको भारत की जानकारी कराना तथा उन देशों के विषय में स्वयं जानकारी प्राप्त करना। (२) संयुक्त राष्ट्रसंघ (१९४५ में स्थापित) तथा उसकी प्रधान संस्थाओं से पूर्ण सहयोग करते हुए उनका अधिकाधिक उपयोग करना एवं विश्व-शान्ति की रक्षा में समुचित हाथ बटाना। (३) एशिया के राष्ट्रों का संगठन बनाना तथा उसके द्वारा संपूर्ण एशिया से साम्राज्यवादी भावनाओं का अन्त करना। (४) अमरीकी अथवा रूसी गुट में बिना शामिल हुए निर्बल राष्ट्रों के हित की वकालत करना।

विदेशों से संबंध—इन उद्देश्यों का ध्यान में रखते हुए भारत ने संसार के प्रायः सभी छोटे-बड़े देशों से सम्बन्ध स्थापित किया है। भारत अभी भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य है इसलिए जो देश पहले ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत थे

उनमें उसके हाई कमिश्नर रहते है। अन्य देशों में उसके राजदूत अथवा छोटी श्रेणी के प्रतिनिधि रहते है। इसी भाँति संसार के लगभग ६० राष्ट्रों के दूत एवं प्रतिनिधि भारत में रहते है।

भारत के पडोसी राज्य—भारत के पडोसी राज्यों में काफी घनिष्ठ एवं मत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो चुके है। इन देशों से व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ रहा है और इस भाँति पारस्परिक सदभावना एवं सहयोग में वृद्धि हुई है। उसने ब्रह्मा के साथ बराबर अच्छा सम्पर्क रखा है और सन् १९५६ से उसने एक संधि द्वारा १९६१ तक प्रतिवर्ष २० लाख टन चावल खरीदने का वचन दिया है। अफगानिस्तान की सरकार ने पाकिस्तान की पख्तून नीति का विरोध किया है और स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान आन्दोलन का समर्थन किया है। खान अब्दुल गफ्फार खाँ तथा उनके अनेक अनुयायी वर्षों जल में पड़े रहे। भारतीय नेताओं को विभाजन के पूर्व के सम्बन्ध के कारण इनकी स्थिति से क्षोभ है और वे पख्तूनिस्तान आन्दोलन से हार्दिक सहानुभूति रखते है। भारत-सरकार ने अफगान सरकार को विदेशी व्यापार में नूतन सुविधाएं प्रदान की है।

फारस ने अपने देश से अंग्रेजों का प्रभाव नष्ट करने के उद्देश्य से ऐंग्लो-ईरानियन तेल कम्पनी का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। इस प्रश्न को लेकर बहुत बखेड़ा हुआ। भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य होने के कारण ब्रिटिश सरकार से सहानुभूति रखता है परन्तु वह फारस के पूर्ण स्वतन्त्र होने का अधिक जोरदार समर्थक है। इसलिए उसका संबंध फारस से भी उत्तरोत्तर अधिक मत्री-पूर्ण होता जा रहा था किन्तु १९६५ के बाद से इस स्थिति में थोड़ा विषमता पैदा होने लगी है। ईरान पाकिस्तान के साथ इस्लामी आधार पर मल बढ़ाने के पक्ष में है और उसने भारत-पाक युद्ध के समय में भारत के हितों के विरुद्ध पाकिस्तान को सामरिक सहायता देना आरंभ कर दिया है। फिर भी भारत उससे संबंध बनाये है।

चीन की साम्यवादी सरकार को भारत ने मान्यता प्रदान की है और उसने संयुक्त राष्ट्र-संघ की सभाओं में राष्ट्रीय चीनी प्रतिनिधि के स्थान पर साम्यवादी चीन के प्रतिनिधि को लेने की बराबर सिफारिश की है। चीन में साम्यवाद का प्रभाव जम जाने से नेपाल, तिब्बत, ब्रह्मा, इण्डोचीन आदि में भी साम्यवादी प्रभाव बढ़ गया है। पिछले भारतीय निर्वाचनों में साम्यवादियों को अधिक वोट मिले है और केरल में दो बार उनकी सरकार स्थापित हो गयी है तो भी भारत-

सरकार चीन से मैत्रीपूर्ण संबंध दृढ़तर करने की नीति पर डटी रही। जुलाई १९५३ में ३५ व्यक्तियों का एक दल सांस्कृतिक उद्देश्य से चीन गया जिसमें कवियों संगीत विशारदों नृत्यकारों, वाद्यनिपुण कलाकारों आदि को सम्मिलित किया गया था। इसके बाद विश्वविद्यालयों के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों का शिष्टमण्डल गया और उसके बाद भारतीय संसदीय प्रतिनिधि-मण्डल सितंबर १९५६ में गया। दोनों देशों में विद्यार्थियों का आदान-प्रदान भी चल रहा है। चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाऊ एन लाई जून १९५४ में एक बार और १९५६ के अन्त में तीन बार भारत आये और उन्होंने पण्डित नेहरू के साथ २८ जून १९५४ को जो संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया जिसे पंचशील कहते हैं। उसके सिद्धान्त थे—(१) एक दूसरे की सार्वभौम सत्ता और राज्य-सीमा का आदर करना (२) एक दूसरे के आंतरिक मामलों में किसी भी बहाने हस्तक्षेप न करना (३) समानता एवं पारस्परिक लाभ के आधार पर सहयोग करना, (४) एक दूसरे पर आक्रमण न करना और (५) शांतिपूर्ण ढंग से अपने पथ पर चलना। इस वक्तव्य के कारण तिब्बत, नेपाल तथा भूटान आसाम की सीमा के विषय में अशांति की संभावना समाप्त हो गयी और पारस्परिक सहयोग बराबर बढ़ता गया। बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर तिब्बत के दलाई लामा तथा पणछेण लामा भी भारत आये और उन्होंने बौद्ध तीर्थों का दर्शन किया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्राय चीन और भारत की सरकार एक दूसरे से सहयोग करती रहीं और दोनों देशों में सद्भावना तथा प्रेम बढ़ता गया। १९५९ १९६० में चीन ने तिब्बत से दलाईलामा को हटा दिया और भारतीय सीमा पर प्राय ४०,००० वर्ग मील जमीन पर अधिकार कर लिया। इस कारण पूर्वकालीन मैत्री-सम्बन्ध संकट में पड़ गया। १९६२ से चीन और भारत का सम्बन्ध क्रमशः अधिकाधिक खराब होने लगा। चीन ने भारत-सीमा पर आक्रमण कर दिया और एक विश्व-युद्ध की आशंका उपस्थित होने से ही युद्ध बन्द करने को बाध्य हुआ। उसके बाद उसने भारत की सीमा पर झगड़े जमाते रहने पाकिस्तान का भारत पर आक्रमण करने के लिए उकसाने नागा एवं मीजो को गोरिल्ला युद्ध प्रणाली में शिक्षित करने भारतीय साम्यवादियों को क्रांति के लिए उभारने का बराबर दुश्मनी पूर्ण व्यवहार किया है और कर रहा है।

नेपाल के साथ भारत का संबंध अत्यन्त प्राचीन एवं घनिष्ठ है। नेपाल स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के प्रति भारतीयों के मन में आदर का भाव है। नेपाली जनता भारत को अपना सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल-स्थान समझती है और यहाँ के तीर्थों

का दर्शन करने आती रहती है। भारत सरकार ने इस सम्पर्क को सहज एवं सौहार्द्रपूर्ण बनाने के लिए अनेक उपाय किये हैं। उसने नेपाल की आन्तरिक नीति में हस्तक्षेप नहीं किया। उसने नेपाल-नरेश त्रिभुवन वीर विक्रमशाह और महेन्द्र वीर विक्रमशाह का स्वागत किया है। उसने १९५६ में सम्राट महेन्द्र वीर विक्रमशाह के राज्याभिषेक के समय मई में भारत के उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को भेजा और उसके बाद अक्तूबर में भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने नेपाल की यात्रा की। उसने १९५५ में नेपाल को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य होने में सहायता की और भारत तथा नेपाल के बीच में सुगम आवागमन की सुविधा के लिए एक नया पथ निर्माण किया है। उसे त्रिभुवन पथ कहते हैं।

भारत और पाकिस्तान—परन्तु भारत का निकटतम पड़ोसी पाकिस्तान है। उसका जन्म साम्प्रदायिक विद्वेष और हिंसा के कारण हुआ था और उसने अपने शैशव की घड़ियों में ही ऐसे व्यापक रक्तपात लूट-मार एवं नृशंसता का सूत्रपात किया जिसके कारण हिन्दू प्रधान भारतीय संघ और मुस्लिम प्रधान पाकिस्तान के आपसी सम्बन्ध बहुत बिगड़ गये। पाकिस्तानी नेता समझते थे कि उनके हिन्दू सिख सहनागरिक भारत के पचमांगी बनकर रहेंगे और भारतीय नेता, जो अन्त समय तक पाकिस्तान की स्थापना के पक्ष में नहीं थे उनका सहयोग करके अवसर पाते ही पाकिस्तान को हड़प जाना चाहेंगे इधर भारतीय संघ के लोगों का यह सन्देह था कि पाकिस्तान का निर्माण करनेवाला ब्रिटेन पाकिस्तान को अपनी कूटनीतिक चालों का यन्त्र बनाकर भारत के लिए संकट पैदा कर सकता है। थोड़े ही दिन बाद पाकिस्तान में इंगलैंड तथा अमरिका को विशेष व्यापारिक एवं सामरिक सुविधायें मिलने लगी। इससे सन्देह की भावना और भी बढ़ी। पाकिस्तान के कुछ क्षेत्रों में इस प्रकार का प्रचार किया जाने लगा कि भारत का युद्ध द्वारा विजय करना सुगम होगा और इस भाँति फिर से अखिल भारतीय मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो सकेगी। वे कहते थे हँस के लिया है पाकिस्तान लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। इस भाँति दोनों ही देशों के बीच विभाजन के कारण सन्देह की ऐसी खाई पड़ गयी थी जिसे साधारण सद्भावना द्वारा पाटना सम्भव नहीं था। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों पर संगठित अत्याचार होने लगे जिसके कारण पाकिस्तान विशुद्ध मुस्लिम राज्य बनने की ओर बढ़ा। वहाँ का शासन विधान मुल्लाओं द्वारा प्रतिपादित नियमों पर आश्रित है। इसलिए अल्पसंख्यकों की चिन्ता और भी बढ़ी। पाकिस्तान और भारतीय संघ के बीच

की सीमा अस्पष्ट और अस्वाभाविक विभाजन द्वारा गठित है? अस्तु सीमा पर अनेक प्रकार की अवैध कार्यवाहियाँ होती रहती हैं जिनमें दोनों ही देशों के नागरिकों का हाथ रहता है। उनके कारण कभी कभी सशस्त्र हमले भी हो जाते हैं। इनके कारण भी आपसी तनाव बढ़ता रहा है। इन्हीं सब उलझनों के बीच में कश्मीर का प्रश्न, पारपत्र व्यवस्था तथा निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति की अदला-बदली की समस्या पारस्परिक मतभेदों को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनों ही देशों के नेताओं ने यह अनुभव किया कि विभाजन एक ऐतिहासिक घटना है जिसे रद्द नहीं किया जा सकता। दोनों ही देशों को एक दूसरे की स्थिति और स्थायीपन को स्वीकार करके अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ेगी। बीच-बीच में दोनों देशों के प्रधान-मन्त्रियों ने विचार-विनिमय द्वारा झगड़े की गुत्थियों को सुलझाने की चेष्टा की है जिनमें उनको कुछ सफलता भी मिली है। पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री श्री मुहम्मद अली ने अनेक बार दुहराया कि वह भारत से औचित्यपूर्ण समझौते के लिए तैयार हैं और महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक के समय उनमें और नेहरूजी में जो गैर-रस्मी बातें हुई उनके आधार पर समझौते की संभावना पहले की अपेक्षा बढ़ गई। भारत और पाकिस्तान के बीच यदि वास्तविक सद्भावना स्थापित हो जाय तो दोनों ही देशों के आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए बहुत सुविधा हो जायगी क्योंकि तब सुरक्षा पर किया जानेवाला व्यय विश्वास के साथ घटाया जा सकेगा और इस बचत को निर्माण-कार्य में लगाया जा सकेगा। दुर्भाग्य से यह अवस्था अभी तक नहीं हुई। पाकिस्तान अमेरिका के हाथों का खिलौना बनकर एक गुट का समर-केन्द्र बन गया है और अमेरिका से उसने सैनिक संधि करके सीमाओं पर सरगर्मी दिखायी है। उसने अन्य अनेक गुटों में भी स्थान ग्रहण किया है जो स्पष्टतः भारत विरोधी हैं। वह भारतवर्ष के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेष का भाव पोषण किये जा रहा है। नेहरू सरकार की उदार नीति को पाकिस्तान ने दब्बू नीति समझा। इससे उसका विरोध और बढ़ गया। नेहरू सरकार ने पाकिस्तानी घुसपैठियों को खदेड़ने और सीमा से बाहर करने में तत्परता नहीं दिखायी उसने कश्मीर में युद्ध को विजय के बीच में बंद कर दिया और कश्मीर के विभाजन को व्यवहार में स्वीकार कर लिया। आर्थिक नीति में भी उसने पाकिस्तान को तुष्ट कर दिया।

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल—इंगलैण्ड की सरकार के अनुरोध एवं भारत के आर्थिक विकास की सुविधा की दृष्टि से भारत ने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल

में रहना स्वीकार कर लिया परन्तु उसने इंग्लैण्ड के सम्राट को अपना सम्राट स्वीकार न करके सार्वभौम सत्तासम्पन्न प्रजातन्त्र सरकार की स्थापना की है। उसने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के विभिन्न सदस्य राष्ट्रों के साथ हाई कमिश्नरों की नियुक्ति द्वारा कूटनीतिक सम्बन्ध दृढ़ किये हैं। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की सामूहिक समस्याओं पर विचार विनिमय द्वारा पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध में वृद्धि हुई है। परन्तु भारत का तीन सदस्य राष्ट्रों के साथ उतना अच्छा सम्बन्ध नहीं है जितना अभीष्ट है। इनमें से एक है पाकिस्तान जिसके विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरे दो राष्ट्र हैं लंका और दक्षिण अफ्रीका। इन देशों के साथ विशेष मनमुटाव का कारण वहाँ बसे हुए प्रवासी भारतीयों की स्थिति है। दक्षिण अफ्रीका की मलान सरकार ने रंगभेद के आधार पर श्वेतों की बस्तियों को बिलकुल अलग कर दिया है और श्वेतों की प्रभुता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अनेक नये नियम बनाये हैं। भारत इस नीति का विरोधी है और इसने इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाकर दक्षिण अफ्रीका की सरकार पर दबाव डालने का विफल प्रयास किया है। दोनों देशों के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सहयोग पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है। लंका की सरकार ने ऐसा नागरिकता नियम निर्माण किया जिससे अनेक लंका में बसे हुए भारतीय नागरिकता के अधिकार से वंचित हो जायं और उस दशा में उनको कई प्रकार की आर्थिक एवं राजनीतिक असुविधाओं का सामना करना पड़े तथा अंततोगत्वा लंका छोड़ने पर बाध्य होना पड़े। भारत-सरकार ने इस नीति का विरोध किया और चाहा कि केवल इस एक बात के कारण दोनों पड़ोसियों के सम्बन्ध में कटुता न आवे। सन् १९५६ में लंदन कान्फ्रेंस के समय श्री नेहरू तथा लंका के प्रधान मंत्री में जो बातें हुई थीं उनके कारण स्थिति में सुधार हुआ और लंका तथा भारत विश्वमंच में प्रायः कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगे हैं।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत की स्थिति कुछ अजीब सी हो गई है और उसकी तटस्थता की नीति पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष आघात पहुँचता है क्योंकि उसका गठबंधन उन राष्ट्रों से हो जाता है जो पूँजीवादी गुट के मुखिया हैं और जो साम्यवादी देशों से इतने खिन्न हैं कि निरंतर नागरिक संग्राम की चिन्ता करते रहते हैं। अमेरिका का संयुक्त राज्य स्पष्टतः साम्यवाद विरोधी है और वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अधिकांश सदस्यों को भारी आर्थिक सहायता देकर उनकी नीति को नियन्त्रित करने का इच्छुक है। भारत भी इस प्रभाव से पूर्णतः अछूता नहीं रह सकता। इतना होने पर भी अभी तक भारत तट-

स्थना की नीति पर दृढ़ है और पहले की अपेक्षा उसको अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अधिक सम्मान प्राप्त हो रहा है।

भारत और एशिया—भारत ने अपने पड़ोसियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त एशिया के सामूहिक उत्थान के लिए भी चेष्टा की है। उसने इस उद्देश्य से सांस्कृतिक सहयोग के प्रश्नों पर विचार करने के लिए दिल्ली में एक एशियाई सम्मेलन की बैठक कराया था। उसका फल यह हुआ कि पारस्परिक सद्भाव बढ़ा और सन् १९४९ में एशिया के १७ राज्यों ने सामूहिक रूप से इण्डोनेशिया में डच आक्रमण का विरोध किया जिससे इण्डोनेशिया की स्वतन्त्रता की रक्षा हुई।

अप्रैल सन् १९५५ में इण्डोनेशिया के बांडुङ्ग स्थान पर एशिया अफ्रिका के तीस राज्यों की एक कान्फ्रेंस हुई जिसमें पंचशील के सिद्धान्तों का समर्थन किया गया और आर्थिक तथा सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

भारत ने कोरिया, हिन्दचीन, इण्डोनेशिया तथा मध्यपूर्व के आन्तरिक संघर्षों को शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त करने और प्रत्येक राज्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का भी दृढ़ समर्थन किया है जिसमें उसे बहुत कुछ सफलता मिली है।

उसने जापान के साथ औद्योगिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाया है और इस उद्देश्य से अक्तूबर १९५६ में उससे सन्धि की है तथा १९५८ में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जापान की यात्रा के लिए गये। उसने जापान को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रविष्ट कराने में सहायता की और सन् १९५७ में उसे सुरक्षा समिति की सदस्यता के लिए वोट दिया।

प्रधान मंत्री नेहरू ने सऊदी अरब तथा मिस्र की यात्रा की और सह-अस्तित्व तथा पंचशील के सिद्धान्तों को पुष्ट किया। उन्होंने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी शांतिपक्ष का प्रवर्तन करने, साम्राज्यवाद का समाप्त करने और प्रत्येक राष्ट्र को अपनी प्रकृति के अनुसार विकास करने की स्वतंत्रता देने का समर्थन किया। लेबनान और जार्डन तथा ईराक में विप्लव होने पर जब तनातनी बढ़ने लगी और विश्व-युद्ध की आशंका दिखाई पड़ने लगी तब अनेक लोगों ने पंडित नेहरू को मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव किया।

दिसम्बर १९५७ में एक और एशियाई अफ्रीकी सम्मेलन की बैठक काहिरा में हुई जिसकी राजनीतिक समिति की अध्यक्ष श्रीमती रामेश्वरी नेहरू चुनी गयीं।

इस भाँति भारत एशिया के समस्त राष्ट्रों के न्यायपूर्ण हितों का समर्थक है और उसने एशिया तथा अफ्रिका के राज्यों की स्वाधीनता के लिए चेष्टा की है।

भारत और विश्व—किन्तु भारत किसी सकुचित दृष्टिकोण का शिकार नही ह। वह धर्म रग, जाति का भेद भूलकर विश्वबधुत्व एवं विश्वसहयोग का हार्दिक समथक ह। उसने सम्मान की रक्षा करते हुए जो उसे सहायता करना चाहता ह उसका सहयोग वह कृतज्ञता-पूवक स्वीकार करता ह और उनके साथ घनिष्ठ सबध स्थापित करने का उद्योग करता है। इस भाँति उसक रूस तथा अमरिका दानों स ही अच्छे सम्बध ह। पण्डित नेहरू ने रूसी सरकार क आमत्रण पर जून १९५५ में रूस की यात्रा की और उसी वर्ष नवबर, दिसम्बर में माशल बुलानिन तथा श्री क्रुश्चेव भारत आये। इसके आगे और पीछे दोनों देशों क बीच में अनेक शिष्टमण्डलों द्वारा सौहार्द्र एव संपक बढाने का उद्योग किया गया ह। भारत क समझाने स सन् १९५५ में रूस ने १६ नये राज्यो को संयुक्त राष्ट्रसघ का सदस्य हो जाने दिया और दिल्ली में होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक मन में सहयोग किया किन्तु भारत सब समय रूस के पक्ष का समथन नही करता।

पडित नेहरू ने अमेरिकी सरकार क निमत्रण पर दिसम्बर १९५६ में अमेरिका का यात्रा की और भारत सरकार के निमत्रण पर अमेरिका के राष्ट्रपति आइसनहावर ने भारत आना स्वीकार किया।

इसी भाँति यूगोस्लविया के माशल टीटो ने सन् १९५४ के दिसम्बर मास में तथा कनाडा क विदश मत्री ने १९५५ में भारत भ्रमण किया।

भारत ने फ्रास की सरकार से शातिपूण वार्ता द्वारा १९५४ में फ्रांसीसी भारतीय बस्तियो पर अधिकार कर लिया और २८ मई १९५६ को सधि द्वारा इसे वधता प्रदान की गयी। इसी भाँति पुतगाली बस्तियो—गोवा, डामन, डयू आदि पर भारतीय सम्प्रभुता स्थापित हो गयी। इस विवेचना स प्रकट होता है कि नेहरू सरकार युद्ध को अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का आधार बनाने क लिए प्रस्तुत नही है।

भारत और सयुक्त राष्ट्रसघ—इस काल में भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की संस्थाओ तथा समितियो में पूण भाग लिया ह। वह सुरक्षा समिति का सदस्य चुना गया तथा भारत क श्रममंत्री श्री जगजीवनराम अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन क प्रधान चुने गय। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मलनो तथा संगठनो में कई अन्य सम्मानित पद भी भारतीयो को प्राप्त हुए हैं जसे संयुक्त राष्ट्रसंघ का असिस्टण्ट सेक्रेटरी जनरल इण्टरनेशनल आर्थिक एव तथा इण्टरनेशनल बैंक क गवनर, सामाजिक एव आर्थिक समिति मे ... न्यायालय में ...

आदि। भारत के प्रधान मंत्री को संयुक्त राष्ट्रसंघ की असेम्बली में भाषण देने के लिए आमन्त्रित करके भी भारत का सम्मान किया गया है।

परन्तु यह सब केवल प्रारम्भिक दृष्टि से ही सन्तोषजनक है। भारत की जन-संख्या, प्राचीन संस्कृति उदार नीति एवं भावी उन्नति को ध्यान में रखते हुए उसे विश्व-संघटना में इससे अधिक महत्त्व मिलना चाहिए। भारत की सैनिक शक्ति अभी काफी कम है। इस कारण भी उसका प्रभाव अधिक नहीं रहता। अभी भारत का व्यावसायिक निर्माण-कार्य अपनी प्रारम्भिक दशा में है। उसकी समुचित उन्नति होने पर उसका वैदेशिक सम्बन्ध अधिक व्यापक हो सकेगा। यदि भारत सरकार अपनी नीति पर दृढ़ रह सका और उसकी कतिपय त्रुटियों को यथासमय दूर करती रही तो अवश्य ही निकट भविष्य में वह उन शान्तिप्रिय स्वतन्त्र राष्ट्रों का पथ प्रदर्शक बन जायगा जो जाति रंग, धर्मगत असमानता एवं साम्राज्यवादी भावना को नष्ट करके सहयोग तथा सदभावना द्वारा विश्वशांति तथा सुरक्षा की स्थापना में भाग लेने के इच्छुक होंगे। तब भारत अपने अतीत की थाती का वास्तविक अधिकारी होगा।

प० जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु (२७ मई, १९६४)—स्वतन्त्र भारत की स्थापना के बाद प्रायः १७ वर्ष तक भारत के प्रधान-मंत्री रहने के बाद २७ मई, १९६४ को नेहरू जी का देहान्त हो गया। भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन की विषमताओं को पार करने के पश्चात् एवं नव राष्ट्र के निर्माण का कार्य प्रधानतः नेहरू जी पर पड़ा क्योंकि गांधी जी और सरदार वल्लभ भाई पटेल की क्रमशः १९४८ और १९५० में मृत्यु हो गयी और उसके बाद मौलाना आजाद को छोड़कर अन्य कोई नेता ऐसा नहीं रह गया जो शासन की दुश्चिन्ताओं के वहन करने में उनके साथ बराबरी के दर्जे पर सहयोग कर पाता। यद्यपि प्रजातन्त्र में डिक्टेटर होना प्रशंसा की बात नहीं है किन्तु अपने विशिष्ट संस्कारों तथा भारतीय राजनीतिक परिस्थिति के कारण नेहरू जी ने प्रायः डिक्टेटर की भाँति ही भारतीय प्रजातंत्र का संचालन किया। यह भारत के लिए केवल सामंजस्य ही नहीं रहा। नेहरू जी के भीतर जो प्रजातान्त्रिक और समाजवादी भावना थी उसके कारण वह स्वयं भी दीर्घकाल तक प्रधान-मन्त्री बने रहना देश के लिए हितकर नहीं समझते थे। किन्तु अन्य लोगों के आग्रह के कारण वह मृत्यु-पर्यन्त प्रधान मंत्री ही रहे। शासन की त्रुटिपूर्णता और विशेषकर चीन एवं पाकिस्तान के आक्रमक कार्यों एवं शत्रुतापूर्ण मनोभावों ने उनकी शान्तिप्रिय आत्मा को बहुत धक्का पहुँचाया और १९६३ की

भुवनेश्वर कांग्रेस में उनको मृत्यु की प्रथम नोटिस मिली। डाक्टरों के परामर्श के विरुद्ध वह शासन के दायित्व को वहन करते ही रहे जिसका परिणाम हुआ २७ मई को पक्षाघात का दूसरा दौरा और उसी दिन २ बजे दिन में प्राणविसर्जन।

नेहरू जी ने भारत के जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और उनके व्यक्तित्व तथा उनकी शान्तिवादी नीति का सारे विश्व पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। उनकी मृत्यु होने पर सारे विश्व के चोटी के नेताओं ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित की और विश्व के प्रमुख देशों के प्रतिनिधि उनकी शव-यात्रा में सम्मिलित हुए।

मुख्य तिथियाँ

एशिया के १७ राष्ट्रों द्वारा इंडोनेशिया का समर्थन	१९४९ ई०
स्वतंत्र भारत का प्रथम निर्वाचन	१९५१ ई०
पंचवर्षीय योजनाओं का आरम्भ	१९५१ ई०
मार्शल टीटो का भारत-आगमन	१९५४ ई०
नेहरू-चाऊ पंचशील घोषणा	१९५४ ई०
अफ्रोएशियाई सम्मेलन	१९५५ ई०
अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक प्रदर्शनी (दिल्ली)	१९५५ ई०
नेहरू की रूस-यात्रा तथा बुल्गानिन क्रुश्चेव की भारत-यात्रा	१९५५ ई०
भारत का द्वितीय निर्वाचन	१९५६ ई०
द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ	१९५६ ई०
भारतीय राष्ट्रपति की जापान-यात्रा	१९५८ ई०
आइसनहोवर की भारत यात्रा	१९६० ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) पंचवर्षीय योजनाओं के विषय में जो जानते हो लिखो।

(२) भारतीय वैदेशिक नीति के मूल आधार क्या हैं ?

(३) पंचशील से क्या समझते हो ? उसका विश्वनीति पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(४) भारत का विदेशों में सम्मान बढ़ने के क्या कारण हैं ?

(५) पं० जवाहरलाल नेहरू का भारतीय राजनीति में क्या महत्त्व है ?

अध्याय ३६

श्री लालबहादुर शास्त्री का मन्त्रित्वकाल

२७ मई १९६४ को नेहरूजी की मृत्यु के पश्चात् अनेक लोगों ने यह मत व्यक्त किया था कि उनके चले जाने से एक ऐसी क्षति हुई है जिसे पूरी करना संभव नहीं होगा। किन्तु प्रजातन्त्र में एक ऐसी अंतर्निहित शक्ति निवास करती है जो सभी परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रायः सदा ही उपयुक्त व्यक्ति का सृजन करती रहती है। श्री लालबहादुर शास्त्री का प्रधान मंत्री के पद पर आरोहण तथा उनका कार्य इस सिद्धान्त का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

लालबहादुर शास्त्री का जन्म १९०४ में बनारस में एक साधारण कायस्थ परिवार में हुआ था। उन्होंने १८ वर्ष की आयु से ही कांग्रेस में क्रियात्मक कार्य आरंभ किया और उन्हें इस काम के लिए कई बार जेल जाना पड़ा। उन्होंने काशी विद्यापीठ से शास्त्री परीक्षा पास की और इस भाँति शास्त्री उनके नाम का एक अंग हो गया। १९४७ में पहले पहल वह मंत्रिपद पर आरूढ़ हुए जब पं० गोविन्दवल्लभ पंत की अध्यक्षता में वह उत्तरप्रदेश के पुलिस एवं परिवहन मंत्री हुए। पं० जवाहरलाल नेहरू उनके व्यक्तित्व से खूब प्रभावित थे अतएव उन्होंने उनको १९५२ में संघसरकार में रेलवे मंत्री का पद दिया और तब से वह क्रमशः नेहरूजी के अधिकाधिक विश्वासभाजन होते गए और नेहरूजी उन्हें अपने उत्तराधिकारी के रूप में तैयार करने लगे।

जिस प्रकार गांधीजी के उत्तराधिकारी नेहरू गांधीजी से विचारों, भाव धारा, कार्य-पद्धति में भिन्न थे उसी प्रकार नेहरू के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति रखते हुए भी लालबहादुर शास्त्री कई बातों में उनसे एकदम भिन्न थे। शास्त्रीजी प्रकृति से खूब सादे, विनयी, कार्यतत्पर एवं मितभाषी थे। उनकी ईमानदार

डॉ० राधाकृष्णन्

डा जाकिर हुसेन

श्री लालबहादुर शास्त्री

श्रीमती इंदिरा गांधी

और सरलता पर शत्रु-मित्र सबकी आस्था थी। उनके इन गुणों के कारण ही कांग्रेस पार्टी ने उनको अपना नेता चुना। नेहरूजी की मृत्यु के बाद राष्ट्रपति ने श्री गुलजारीलाल नन्दा (गृहमन्त्री) को अस्थायी प्रधान मंत्री नियुक्त किया था। श्री नन्दा ने ही शास्त्रीजी के नाम को नेता के स्थान के लिए प्रस्तावित किया। मुरारजी देसाई भी इस पद के लिए उम्मेदवार थे किन्तु सब परिस्थिति समझ कर उन्होंने उनके नाम का अनुमोदन किया और २ जून १९६४ को नेता चुनाव हो गया तथा ६ जून को वह विधिवत् प्रधान मंत्री हो गये। उनके मन्त्रि-मण्डल में उनके बाद सर्वाधिक महत्त्व का पद श्री नन्दा का रहा। शास्त्रीजी ने श्रीमती इंदिरा गांधी को भी कैबिनेट में स्थान दिया और उन्हें प्रधान मंत्री के बंगले में ही रहने दिया। इसका लोगों पर खूब अच्छा प्रभाव पड़ा। कांग्रेस प्रेसीडेण्ट श्री कामराज से उनका सम्बन्ध खूब मर्यादापूर्ण रहा और नन्दा-शास्त्री-कामराज त्रिगुट के हाथ में देश के शासन का दायित्व रहा।

लालबहादुर को अधिक समय देश की सेवा का अवकाश नहीं मिला क्योंकि जनवरी १९६६ में उनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु होने पर देश विदेश में जो उद्गार प्रकट किये और उनके परिवार के सदस्यों के प्रति जो व्यवहार किया गया उससे स्पष्ट हो गया कि उन्होंने डेढ़ वर्ष के भीतर ही अपनी योग्यता, निष्कपट देश-सेवा, दृढ़ता एवं शान्तिप्रियता का सिक्का सभी के ऊपर जमा लिया था। ताशकन्द में जिस परिस्थिति में उनकी मृत्यु हुई—पाकिस्तान से समझौते पर हस्ताक्षर के कुछ घण्टे के बाद ही—उससे उनका गौरव और भी अधिक बढ़ गया। श्री अयूब और कोसीगिन ने उनके शव में कंधा दिया और समस्त विश्व के चोटी के नेताओं ने भारत के साथ संवेदना प्रकट की।

शास्त्रीजी का कार्य

(१) स्वदेश में—शास्त्रीजी ने देशवासियों पर यह प्रभाव डाला कि वह जो कहेंगे उसे अवश्य करेंगे। इससे जनमत में उत्साह आया। उन्होंने बड़े-बड़े नए कारखानों पर अधिक रुपया लगाने की अपेक्षा था। इसके स्थान कृषि की उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिलाना चाहा किन्तु इस दिशा में वह अधिक सफल

नहीं हो पाये । उन्होंने खाद्य-सकट को दूर करने के लिए उद्योग किया, सदाचार बढाने की चेष्टा की और चोरबाजारों से पिछला कर उगाहने का निश्चय किया। वातावरण बदलने लगा। जनता का शासन पर विश्वास बढने लगा किन्तु इसी समय वदेशिक अशान्ति भी आरम्भ हो गयी जिसके कारण उसका शक्ति एवं सुधार का कार्य बीच में ही रुक गया।

(२) विदेश में—शास्त्रीजी ने नेहरू की वैदेशिक नीति को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया और पचशील, सहअस्तित्व तथा गुटबन्दी स दूर रहने का पूर्ववत् संकल्प जारी रखा। किन्तु उनकी नीति में यथार्थवादिता अधिक थी। फलत अक्तूबर १९६४ में लका और भारत सरकार के बीच में लकास्थित भारतीय प्रवासियों के विषय में समझौता हो गया। इसी भाँति ब्रह्मा में जा भारतीय नागरिक थे उनके विषय में भी ब्रह्मा की सरकार से समझौता कर लिया गया।

शास्त्रीजी ने मिस्र, यूगास्लाविया, इंगलैंड और सोवियत संघ की यात्रा की और सवत्र उनके व्यक्तित्व का प्रभाव ऐसा पड़ा जिससे देश का विश्व-क्षेत्र में सम्मान बढ़ा और भारत तथा विश्व के पारस्परिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ एवं मत्रीपूर्ण होते गये। इसी समय कई विश्व सम्मेलनों में भी शास्त्रीजी ने भाग लिया और पोप की अध्यक्षता में भारत में कैथोलिकों का विश्व-सम्मेलन हुआ।

शास्त्रीजी की इच्छा थी कि पाकिस्तान से स्थायी सन्धि करके आपस के तनाव को समाप्त कर दिया जाय। इसलिए वह प्रेसिडेण्ट अयूब खाँ से मिले और उन्होंने झगडे के मामलों को शांतिपूर्ण ढग से निटाने का प्रस्ताव किया। किन्तु इस उद्देश्य में उन्हें केवल आंशिक सफलता मिली। पहले पाकिस्तान ने कच्छ एवं कश्मीर युद्ध विराम रेखा के विषय में समझौता के पत्र का स्वीकार किया किन्तु बाद में उसने अपनी नीति बदल दी और अगस्त १९६५ में उसने खुल्लम खुल्ला भारत भूमि पर सनिक भेजना आरम्भ कर दिया।

भारत पाक-युद्ध (अगस्त सितम्बर १९६५)

पाकिस्तान की युद्ध नीति के पीछे प्रधानत तीन कारण थे —(१) चीन चाहता था कि यदि भारत-पाकिस्तान में बड़े पैमाने में युद्ध छिड़ जाय तो उसे म

केवल भारत एवं पाकिस्तान का उत्तरी क्षेत्र हड़पने का सुयोग मिल जायगा वरन् पाकिस्तान के भीतर साम्यवाद का प्रचार भी सहज ही संभव हो जायगा। अतएव चीन बराबर पाकिस्तान को भीतर भीतर युद्ध के लिए उकसा रहा था और सहायता का वचन दे रहा था।

(२) पाकिस्तान को इंगलैंड तथा अमेरिका की ओर से भी पूरी सहायता पाने की आशा थी क्योंकि उसकी धारणा थी कि ये दोनों देश भारत-रूस मैत्री से इसके प्रति असंतुष्ट हैं और उसे दबाना चाहते हैं।

(३) पाकिस्तान की धारणा थी कि भारत से युद्ध होते ही कश्मीर और भारत के मुसलमान विद्रोह कर देंगे और भारत पाकिस्तान के सामने घुटने टेक एवं कश्मीर छोड़ने के लिए बाध्य होगा।

यही कारण है कि पाकिस्तान के ऊपर शांति-प्रस्तावों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और अंत में एक सीमितक्षेत्र में विकट युद्ध आरंभ हो गया। भारतीय जवानों और सेना नायकों ने हाजीपीर दर्रे, गमरगन, स्यालकोट लाहौर आदि क्षेत्रों में बड़ी दृढ़ता एवं वीरता का परिचय दिया और पाकिस्तान के अमरीकी टैंक सैकड़ों की संख्या में ध्वस्त कर दिए गए तथा भारतीय वायुयानों ने पेशावर तक धावा मारा। पाकिस्तान आपाद भयभीत हो गया। उसकी दशा केवल इसलिए हो गई क्योंकि भारत के नेता अपना सैनिक शक्ति—शांति—पर दृढ़ रहे और उन्होंने अपनी ओर से न तो युद्ध क्षेत्र का विस्तार होने दिया और न उन्होंने पाक भूमि को हथियाने की ही चेष्टा की।

भारतीय जनता ने एक स्वर से सरकार का समर्थन किया और युद्ध के बादलों के प्रकट होने के साथ-साथ सभी भारतीय नागरिक जाति और धर्म का भेद-भाव भूल कर राष्ट्र की रक्षा में लग गए। यही कारण है कि २२ सितम्बर १९६५ को पाकिस्तान संधि करने पर राजी हो गया।

इस विराम संधि को वास्तविक संधि में परिणत करने के लिए भारत ने रूस के प्रधान मंत्री श्री कोसीगिन का प्रस्ताव स्वीकार करके ताशकन्द की यात्रा

की और वहाँ उनमें तथा अयूब खां में प्राथमिक संधि हो गयी किन्तु उसके कुछ घण्टे बाद ही वह हृद्रोग से पीडित हुए और उनकी मृत्यु हो गयी।

उनकी मृत्यु के बाद देखा गया कि वह परिवार के लिए केवल कुछ ऋण छोड गये हैं। अतएव देश की सरकार ने उनकी स्त्री-पुत्रों के लिए पेंशन और छात्रवृत्ति देने का निश्चय किया। उनकी सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें 'भारतरत्न' की उपाधि दी गयी। ताशकन्द में उनके नाम के ऊपर एक सडक का नामकरण किया गया और कई देशों में उनके नाम के डाक-टिकट निकाले गये। शास्त्रीजी ने जन-मन के ऊपर अनेक स्थलों में नेहरू से भी अधिक श्रद्धा एवं प्रीति पायी। यही उनके सार्वजनिक जीवन की सफलता का सर्वोत्तम प्रमाण है।

अध्याय ३७

श्रीमती इन्दिरा गांधी (१९६६-)

लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती इंदिरा गांधी कांग्रेस दल की नेता चुनी गयीं और श्री गुलजारीलाल नन्दा कुछ समय तक अंतर्कालीन प्रधान मंत्री रहने के बाद फिर अपने पुराने गृहमंत्री के पद पर उतर आये तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रथम महिला प्रधान मंत्री हुईं।

उनका जन्म १९१७ में हुआ था और अपने पिता-माता तथा परिवार के अन्य लोगों का अनुसरण करती हुई उन्होंने छोटी उम्र से ही राजनीति में सक्रिय भाग लेना आरम्भ कर दिया था। यद्यपि १९६४ के पूर्व उन्हें शासन-तंत्र में कोई उच्च पद प्राप्त नहीं हुआ था किन्तु कांग्रेस दल में वह वर्षों से उच्चतम दायित्व के पदों पर काम कर रही थीं। प्रधान मंत्री होने के बाद उन्होंने अमरीका, इंगलैण्ड और रूस की यात्रा की और उसमें उन्हें अपने उद्देश्य में आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

किन्तु आरम्भ से ही उन्हें कई कठिन प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है। खाद्यान्नों की कमी भी देश में बनी है और अनेक स्थानों में दुर्भिक्ष की भी अवस्था प्रकट होने लगी है। ताशकन्द समझौता होने के बावजूद पाकिस्तान में फिर तनाव का आरम्भ हो रहा है और चीन भी चोरी के गढ़ा पाकिस्तान को अपने शिकंजे में फँसा कर भारत के विरुद्ध खड़ा करने के लिए व्यग्र है। देश के भीतर कुछ स्वार्थ पूर्ण प्रथाएँ होने लगी हैं और स्थान-स्थान पर स्वार्थ प्रेरित झगड़े चल रहे हैं। नागालैण्ड का झगड़ा तो शांत हुआ ही नहीं था देश के अन्य भागों के प्रान्तवासी भी विरोधी भावना से प्रभावित हो रहे हैं। पंजाब में सिक्खों ने पंजाबी सूबा आन्दोलन आरम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप सरकार को निर्णय करना पड़ा कि १ ली नवम्बर १९६६ से पंजाबी सूबा और हरियाणा की दो नयी पृथक सरकारें बन जायेंगी और पंजाब का विभाजन कर दिया जायगा।

गोवध निवारण आन्दोलन—इन्दिरा जी के समय में गोवध-निवारण के प्रश्न को लेकर एक प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। दिल्ली में आन्दोलन का रूप प्रशांतिकर हो गया जिसके फलस्वरूप श्री गुलजारीलाल नन्दा को त्याग पत्र देना पड़ा। सरकार के आश्वासन देने पर यह आन्दोलन शांत हुआ और पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व में जो महात्मा विभिन्न स्थानों में अनशन कर रहे थे उन्होंने अनशन भंग करना स्वीकार कर लिया।

१९६७ का आम निर्वाचन—इन्दिरा जी के सामने आंतरिक क्षेत्र में सर्वप्रधान प्रश्न था १९६७ के आम निर्वाचन की उचित व्यवस्था करना और उसमें कांग्रेस दल के लिए बहुमत प्राप्त करना। भारतीय प्रजातन्त्र का प्रथम निर्वाचन १९५२ में हुआ था। उसके बाद १९५७ और १९६२ के निर्वाचन भी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के समय में ही हुए थे। प्रथम निर्वाचन में कांग्रेस को सभी राज्यों तथा लोकसभा में बहुमत प्राप्त हुआ था और सर्वत्र कांग्रेसी सरकारें बनी थी। उस समय डा० राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति चुने गये थे। १९५७ तथा १९६२ में भी कांग्रेस को ही प्रायः सब जगह बहुमत मिला था किन्तु देश में कांग्रेस की नीति का विरोध होना प्रारम्भ हो गया। केरल में पहले प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी की संयुक्त सरकार बनी। उसके बाद १९६२ में वहाँ पर कम्यूनिस्ट सरकार बनी थी किन्तु वह अधिक दिन टिक नहीं सकी। १९६२ में राजेन्द्र बाबू के स्थान पर डा० राधाकृष्णन् राष्ट्रपति तथा डा० जाकिर हुसैन उपराष्ट्रपति हुए थे।

नेहरू जी की व्यक्तिगत प्रतिभा प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता के कारण कोई विरोधी दल पनप नहीं सका और कांग्रेस का प्रायः एकछत्र निर्विरोध शासन रहा। किन्तु जनता कांग्रेसी नीति की कटु आलोचक होने लगी। कांग्रेस के भीतर प्रत्येक राज्य में प्रबल गुटबन्दियाँ प्रारम्भ हो गयी जिनका आधार या प्रधानतः व्यक्ति अथवा गुट विशेष की महत्वाकांक्षा और स्वार्थपरता। इसके कारण जनता की आस्था और भी घटने लगी। साधारण जीवन में निराशा बढ़ने लगी और भ्रष्टाचार भयंकर रूप धारण करने लगा। बड़े-बड़े व्यवसायियों और अनेक कांग्रेसी मन्त्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतें होने लगी किन्तु कांग्रेस के हाथ में शक्ति रहने के कारण जिन लोगों को उसका समर्थन प्राप्त था उनको कोई दण्ड नहीं दिया जा सका। करोड़ों रुपया बड़े व्यवसायियों के ऊपर कर

हिन्दुस्तानी का अखिल भारतीय प्रचार इसी उद्देश्य से आरंभ हुआ था। १९४० में देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों ने संविधान में हिन्दी को बहुसंख्यक भारतीय जनता की भाषा होने तथा देश के प्रायः सभी भागों में प्रचलित होने के कारण राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था, किन्तु नेहरू सरकार ने सम्पूर्ण अंग्रेजी का हटाना नहीं चाहा। इस कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा होने के लिए पूरे तौर से प्रस्तुत करने का काम आरंभ नहीं किया गया। फल यह हुआ कि स्वार्थ एवं सुविधा के आधार पर कुछ लोग जिद करने लगे कि हिन्दी जिस रूप में है, उसी रूप में उसे तुरंत राष्ट्रभाषा की मर्यादा मिलनी चाहिए और कुछ लोग राष्ट्रीय भावना की तुलना में स्वार्थ का प्रश्न करके अंग्रेजी के समर्थक और हिन्दी के विरोधी हो गये। डा० त्रिगुणायन और श्री मुरारजी देसाई ने हिन्दी विषयक पूर्व-निर्णय को कार्यान्वित करने के विषय में दृढ़ता का परिचय दिया। फलतः कहीं यह माँग हुई कि अंग्रेजी को तुरंत सारे देश से विदा कर दिया जाय और कहीं यह ऐलान किया गया कि हम हिन्दी को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, वरंच भारत संघ से पृथक् हो जायेंगे। इस हलचल से देश की संपत्ति की भयंकर क्षति हुई और सामयिक शांति हो जाने पर भी कोई सर्वमान्य समाधान कर पाना कठिन हो गया। तथापि हिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी का प्रचार अधिक व्यापक एवं उसकी भित्ति अधिक दृढ़ हो गयी।

कच्छ निर्णय—वैदेशिक क्षेत्र में भारत को कोई विशेष सफलता या मर्यादा प्राप्त नहीं हुई। भारत-सरकार की दृढ़ता और निरपेक्षता नीति के कारण अमेरिका के संयुक्तराज्य का रुख कठोर होने लगा और उसने पाकिस्तान को अधिक पुष्ट करना चाहा। चीन की सरकार पूर्ववत् अपनी ही नीति पर दृढ़ है। रूसी सरकार भारत को अपने हाथ से बाहर नहीं जाने देना चाहती किन्तु उसकी नीति भी पाकिस्तान के पक्ष में अधिकाधिक जाने लगी। कच्छ के विषय में भारत-पाक झगड़े का निर्णय अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अपने सिद्धांत के आधार पर न करके राजनीतिक सुविधा की दुहाई देकर पाकिस्तान के पक्ष में अपना मत दिया है। भारत-सरकार शांति की समर्थक होने का प्रमाण देने के लिए इस अन्यायपूर्ण मत को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर है।

भारत का उज्ज्वल भविष्य—यद्यपि ऊपरी तौर से देखने पर ऐसा प्रतीत होगा कि भारत इस समय चारों ओर से कठिनाइयों, [illegible] अपमान एवं [illegible] के अंदर जीवन-यापन कर रहा है। किन्तु इन्हीं [illegible]

अंधकार के पीछे भारत का जाज्वल्यमान भविष्यत अपना रूप गठन कर रहा ह। यह काय हो रहा ह आध्यात्मिक स्तर पर और इसका नियत्रण कर रही हैं पाएडीचेरी की श्री मा तथा वह सत्य जिन्हें वह इस पृथ्वी पर प्रतिष्ठा करने के लिए और दिव्य प्रेम का राजत्व स्थापित करने के लिए लायी ह। श्री मा ने पिछले वप समस्त मानव जाति को, समस्त देशा और महाम्शो को सतर्क किया था कि सत्य का राज्य प्रतिष्ठित होने जा रहा है अतएव प्रत्येक के लिए यह आवश्यक ह कि वह स्वेच्छा से निर्णय करें कि वह सत्य को लेगा अथवा वतमान जागतिक जीवन रूपी रसातल को। उन्होंने पिछले कई वर्षों से भारत की सरकार को सचेतन करना आरम्भ किया ह और उसे समझाया है कि भारत विश्व का आध्यात्मिक गुरु ह और उसी के सपूतो के कम द्वारा विश्व में एकत्व, शाति, प्रेम और सौन्दय की प्रतिष्ठा अनिवायत होगी। भारत-सरकार अभी से अपनी नीति को इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर स्थिर कर। श्री मा ने उषा नगरी की इस वप भित्ति-स्थापन करायी ह जिसमें भारत के २४ स्थाना के अतिरिक्त विश्व के १२१ देशा की मिट्टी वहाँ युवका द्वारा लाकर रखी गयी ह। भारत के नागरिको का कतव्य ह इस परम सौभाग्य के विषय में सचेतन होना और श्री मा के निर्देश पर चलने के लिए स्वेच्छा से प्रस्तुत हो जाना एव उनके महादान को ग्रहण करने के लिए उन्मुख रहना।
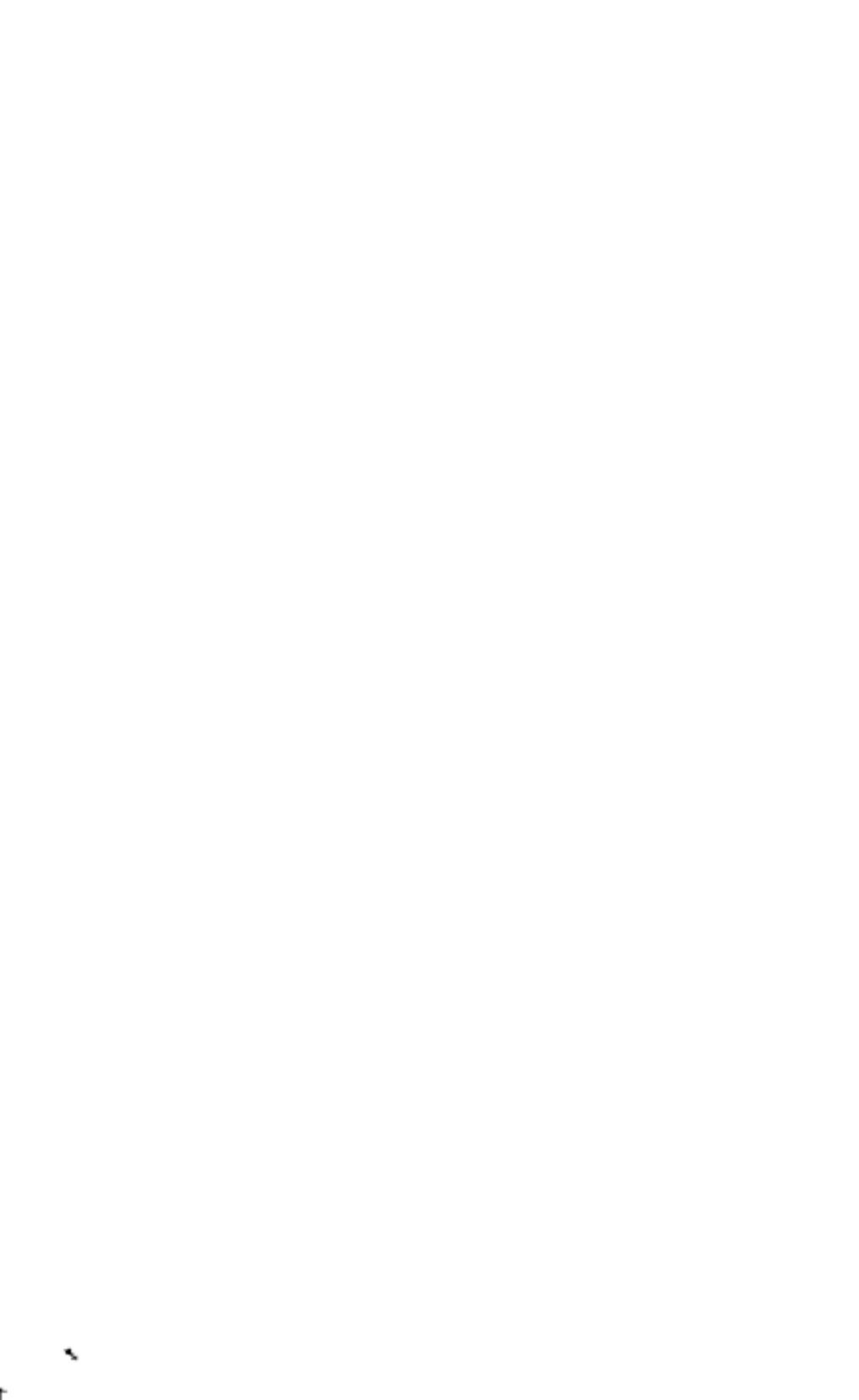
परिशिष्ट १—'वंशावली'

नाग वंश (५४३ ई० पू०–४११ ई० पू०)

भट्टिय

|

बिम्बिसार (५४३ ई० पू०—४९१ ई० पू०)

|

अजातशत्रु (४९१—४५९ ई० पू०)

|

उदायिन (४५९—४४३ ई० पू०)

दशक (?—४११ ई० पू०)

शिशुनाग वंश (४११—३४३ ई० पू०)

शिशुनाग (४११—३९३ ई० पू०)

|

कालाशोक (३९३—३६५ ई० पू०)

|

नन्दिवर्धन (३६५—३४३ ई० पू०)

नंद वंश (३४३—३२१ ई० पू०)

महापद्मनंद (३४३—? ई० पू०)

|

(अज्ञात नाम पुत्र) धनानंद
(?—३२१ ई० पू०)

मौर्य वंश (३२१—१८४ ई० पू०)

चन्द्रगुप्त मौर्य (३२१—२९७ ई० पू०)

बिन्दुसार अमित्रघात (२९७—२७२ ई० पू०)

- सुषीम
- अशोक (२७२ २३२ ई० पू०)
  - कुणाल
    - दशरथ (२३२ २२४ ई० पू०)
    - सम्प्रति (२२४ २१६ ई० पू०)
      - शालिशुक (२१६ २०६ ई० पू०)
        - सोमशर्मन् (२०६ १९९ ई० पू०)
          - शतधन्वन् (१९९ १९१ ई० पू०)
            - बृहद्रथ (१९१ १८४ ई० पू०)
  - जालौक
  - महेन्द्र
  - चारुमती
  - संघमित्र
- अन्य पुत्र

कुषाण वंश (७८-१७६ ई० पू०)

कनिष्क (७८—१०६)

हुविष्क (१०६—१३८)

वासुदेव (१३८—१७६)

गुप्त वंश (३२० ई०-५२७ (?) ई०)

गुप्त

|

घटोत्कच

|

चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०—३३० ई०)

|

समुद्रगुप्त (३३०—३७५ ई०)

|

चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५—४१३ ई०)

- गोविंद गुप्त
- कुमार गुप्त (४१३ ४५५ ई०)
  - स्कन्दगुप्त (४५५ ४६७ ई०)
  - पुरुगुप्त (४६७-४६९)
    - नरसिंह गुप्त (४६९ ४७३)
      - कुमार गुप्त द्वितीय (४७३ ४७६)
  - बुद्धगुप्त (४७६ ४९६)
    - तथागत गुप्त
      - वज्र (?—५२७)
  - भानुगुप्त (४९६ ५१५)
- प्रभावती

वर्धन वंश (५८०–६४७ ई०)

पुष्पभूति

|

प्रभाकर वर्धन (५८० ६०५)

- राज्यवर्धन (६०५ ६०६)
- हर्षवर्धन (६०६ ६४७)
- ———

गुलाम वंश (१२०६–१२९० ई०)
कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०)
आरामशाह (१२१०–१२११)
पुत्री इल्तुतमिश (१२११–१२३६)
नासिरुद्दीन महमूद
रुकनुद्दीन (१२३६)
रजिया (१२३६–१२४०)
बहराम (१२४०–१२४२)
मसूद (१२४२–१२४६)
नासिरुद्दीन महमूद (१२४६–१२६६)
पुत्री = गयासुद्दीन बलबन (१२३६–१२८६)
मुहम्मद
बुगराखाँ (बंगाल)
कैकुबाद (१२८६–१२९०)
कैकाउस (बंगाल)
नासिरुद्दीन (बंगाल)

खिजली वश (१२९०–१३२० ई०)
(१) जलालुद्दीन (१२९०–१२९६)
महमूद
अरकलीखाँ
(२) रुक्नुद्दीन इब्राहीम (१२९६)
पुत्री = (३) अलाउद्दीन (१२९६–१३१६)
खिज्रखाँ
शादीखाँ
(५) कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (१३१६–१३२०)
(४) शहाबुद्दीन उमर (१३१६)

सैयद वंश (१४४१–१४५१ ई०)
खिज्र खाँ (१४१४–१४२१)
मुबारक शाह (१४२१–१४३४)
फरीद
मुहम्मद शाह (१४३४–१४४४)
अलाउद्दीन आलमशाह (१४४४–१४५१)

लोदी वंश (१४५१–१५२६ ई०)
बहलोल लोदी (१४५१–१४८८)
बायजीद
बारबक
सिकन्दर शाह
(१४८८–१५१७)
मुबारक
आलम
याकूब
इब्राहीम
(१५१७–१५२६)
इस्माइल
हुसेन
महमूद

सूर वंश (१५४०–१५५५)

- इब्राहीम खाँ
  - हसन खाँ
    - (१) शेरशाह (१५४०–१५४५)
      - (२) इस्लामशाह (१५४५ १५५४)
        - (३) फीरोजशाह (१५५४)
    - निजाम खाँ
      - (४) मुहम्मद आदिलशाह (१५५४–१५५६)
      - पुत्रियाँ
  - गाजी खाँ
    - (५) इब्राहीमशाह (१५५५)
  - अहमद
    - (६) सिकन्दरशाह (१५५५)

मुगल वंश

(१) जहीरुद्दीन बाबर
(१५२६–१५३०)

- (२) हुमायूँ (१५३०–१५४०) (१५५५–१५५६)
  - (३) अकबर (१५५६–१६०५)
    - (४) जहाँगीर (१६०५–१६२७)
      - खुसरो
      - परवेज
      - (५) शाहजहाँ (१६२८–१६५८)
        - दारा
        - शुजा
        - (६) औरंगजेब (१६५८–१७०७)
        - मुराद
      - शहरयार
    - मुराद
    - दानियाल
- कामरान
- अस्करी
  - मिर्जा हकीम
- हिन्दाल

औरंगजेब (आलमगीर)

- मुहम्मद
- (७) बहादुरशाह प्रथम शाहआलम प्रथम (१७०७–१७१२)
  - (८) जहाँदारशाह (१७१२–१७१३)
    - (१६) आलमगीर द्वितीय (१७५४–१७५९)
      - (१७) शाहआलम द्वितीय (१७५९–१८०६)
        - (१८) अकबर द्वितीय (१८०६–१८३७)
          - (१९) बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–१८५७)
  - अज़ीमुश्शान
    - (९) फर्रुखसियर (१७१३–१७१९)
  - रफीउश्शान
    - (१४) महम्मद इब्राहीम (१७२)
    - (१२) रफीउद्दौला (१७१९)
    - (१०) रफीउद्दरजात (१७१९)
  - ख़ुजिस्ता अख़्तर
    - (१३) मुहम्मद शाह (१७१९–१७४८)
      - (१५) अहमदशाह (१७४८–१७५४)
        - बिदार बख़्त
- आज़म
- अकबर
  - (११) नेकुसियर (१७१९)
- कामबख्श

भोसला वंश

मालोजी

जीजीबाई=शाहजी=तुकाबाई

इकोजी (तंजौर)

सई बाई = शिवाजी प्रथम = सुइराबाई
(१६७४–१६८०)

शम्भूजी प्रथम (१६८०–१६८९)

ताराबाई = राजाराम = राजस बाई (१६८९–१७००)

शाहू प्रथम (१७०८–१७४९)

शिवाजी द्वितीय (१७००–१७०८)

शम्भूजी द्वितीय (कोल्हापुर)

(दत्तक पुत्र) रामराजा

रामराजा

शाहू द्वितीय

प्रतापसिंह (सतारा)

शाहूजी राजा

नाम	साल	मुख्य घटनाएँ
८ लार्ड डफरिन	१८८४–१८८८	कांग्रेस का जन्म, अस्पतालों में वृद्धि ब्रह्मा की तीसरी लड़ाई।
९ लार्ड लन्सडोन	१८८८–१८९४	दूसरा इण्डियन कौंसिल्य ऐक्ट सर सयद अहमद द्वारा मुसलमानों का संगठन।
१० लार्डएलगिन द्वितीय	१८९४–१८९९	
११ लार्ड कर्जन	१८९९–१९०५	महामारी और अकाल, शासन-सुधार पदशिक नीति, बंग विच्छेद।
१२ लार्डमिण्टो द्वितीय	१९०५–१९१०	मुस्लिम लीग की स्थापना कांग्रेस की उन्नति, मार्ले मिण्टो सुधार।
१३ लार्ड हार्डिञ्ज	१९१०–१९१६	हाईकोर्टों में सुधार, प्रथम महायुद्ध।
१४ लार्ड चेम्सफोर्ड	१९१६–१९२१	असहयोग आंदोलन शासन विधान में सुधार प्रजा में असन्तोष।
१५ लार्ड रीडिंग	१९२१–१९२६	स्वराज्य पार्टी की प्रबलता, दमन नीति, कांग्रेस में फूट।
१६ लार्ड अरविन	१९२६–१९३१	शासन-सुधार की तयारी, कांग्रेस से समझौता, गोलमेज कान्फ्रेंस।
१७ लार्ड विलिंगडन	१९३१–१९३६	असहयोग आन्दोलन का दमन, नया शासन विधान (१९३५)।
१८ लार्ड लिनलिथगो	१९३६–१९४३	प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना, द्वितीय महायुद्ध, क्रिप्स प्रस्ताव अगस्त आन्दोलन।
१९ लार्ड वेवल	१९४३–१९४८	कांग्रेस नेताओं की रिहाई, शिमला कान्फ्रेंस, महायुद्ध का अन्त केन्द्रीय तथा प्रांतीय धारा-सभाओं में नये चुनाव मजदूर मन्त्रिमंडल की भारतीय नीति, कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव अंतर्कालीन भारतीय शासन की स्थापना और विधान-सभा का निर्वाचन।